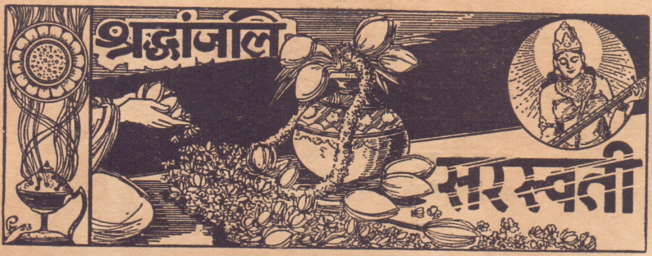


सम्पादक

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी : देवीदयाल चतुर्वेदी

अगस्त १९५३, श्रावण २०१०; भाग ५४, खण्ड २; संख्या २, पूर्ण संख्या ६४४

स्नेहाञ्जलि

[स्वर्गीय पटल बाबू के प्रति]

सर्वप्रथम मानव थे तुम, हाँ, मनुष्यत्व से भूषित,
सहृदय मित्र, सहायक जन के, मनुज-प्रीति से स्पंदित।
स्वतः कलाविद्, कलाविदों से वेष्टित, सहज समादृत,
स्नेह दया की प्रतिमा, अगणित जन थे तुमसे उपकृत।
सिद्धहस्त व्यवसायी थे तुम, मुक्तहस्त थे दाता,
सुज्ञ, दूरदर्शी, स्वक्षेत्र के बहुविधि अथ-इति ज्ञाता।
अथक कर्मरत, अविरत जाग्रत्, महदाकांक्षी निश्चित,
प्रतिभा से दीपित, प्रतीक श्रमबल के गरिमा-मंडित।

तुम असमय ही चले गये, उर को कर व्यथा-निमज्जित,
हाय, अनिच्छा से विधि-इच्छा करनी पड़ती स्वीकृत !!
कहीं सौम्य स्मित मुख, तुम भू पर करते होते विचरण,
निज उर का तारुण्य, आत्मबल सुहृदों को कर वितरण।
किन्तु स्वर्गवासी तुम अब ! स्नेहाञ्जलि करता अर्पित,
हे निश्छल स्नेही नर, प्रेमी सखा, बंधु जन-पूजित !

पं० सुमित्रानन्दन पन्त

विषय-सूची



स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष

श्रद्धाञ्जलि

पं० सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए०, एल-एल० बी०

बंधु कहूँ, या स्वजन कहूँ
या तुम्हें स्नेह की मूर्त्ति कहूँ ?
जीवन के अभाव की तुमको
या कि मनोरम पूर्त्ति कहूँ ?

प्रतिमा की प्रतिमा कह दूँ,
या कहूँ शारदा की महिमा,
प्राणों को अनुप्राणित करने-
वाली या नव स्फूर्ति कहूँ ?

ऐ मेरे सुख-दुख के साथी,
तुम्हें क्या कहूँ, क्या न कहूँ ?
जी होता है, कुछ न कहूँ मैं,
श्रद्धानत हो मौन रहूँ।

हार्दिकता का हास कहूँ,
अपनेपन का उल्लास कहूँ ?
चिर अजेय पौरुष का तुमको
या परिपूर्ण विकास कहूँ ?

बाधाओं विघ्नों का तुमको
या शाश्वत उपहास कहूँ ?
जी होता है, तुम्हें सफलता
का स्वर्णिम इतिहास कहूँ !

ऐ मेरे चिन्तामणि की निधि,
खो तुमको मर्माहत हूँ।
कंठ रुद्ध, अवरुद्ध शब्द हैं,
कैसे मैं श्रद्धाञ्जलि दूँ।



स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष के श्राद्ध-मण्डप का एक दृश्य।



स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष का श्राद्ध करते हुए उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री देवप्रसाद घोष
तथा द्वितीय पुत्र श्री सत्यप्रसाद घोष।



स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष का श्राद्ध करते हुए उनके तृतीय पुत्र श्री असीमप्रसाद घोष तथा कनिष्ठ पुत्र श्री ज्योतिप्रसाद घोष।







इंडियन प्रेस के प्रधान व्यवस्थापक स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष के पिता, स्वर्गीय श्री चिन्तामणि घोष तथा माता स्व० श्रीमती गोलापमोहिनी घोष

योरप—जैसा कि मैंने उसे देखा

लेखक : श्री हरिकेशव घोष

[इंडियन प्रेस के प्रधान व्यवस्थापक स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष (पटल बाबू), जिनकी पुण्य स्मृति में 'सरस्वती' का प्रस्तुत श्रद्धांजलि अङ्क प्रकाशित किया जा रहा है, न केवल हिन्दी को विकासोन्मुख करने में प्रयत्नशील रहते थे, प्रत्युत स्वयं लेख भी लिखते थे।

सन् १९३५ में बाबू साहब ने जो योरप-यात्रा की थी, उसका आँखों देखा वर्णन उसी वर्ष की 'सरस्वती' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। वह लेख-माला तथा उसी सिलसिले में लिखे गए दो अन्य लेख आज भी 'सरस्वती' के पाठकों के लिए रोचक और उपादेय हैं, जिन्हें हम श्रद्धांजलि अङ्क के प्रारम्भ में ही दे रहे हैं। इन लेखों में पटल बाबू की लेखन-शैली, रुचि-वैचित्र्य और 'सरस्वती' के प्रति उनकी आत्मीयता की मनोरम झाँकी ओतप्रोत है।

—सम्पादक]

१—जहाज पर

योरप की यह मेरी पहली यात्रा है। गत पन्द्रह वर्षों में मुझे छुट्टी मनाने का अवसर बिलकुल नहीं मिला। पिछले वर्ष से मैं छुट्टी का आनन्द लेने एवं व्यवसाय और आनन्द को एक में मिलाने की बात सोच रहा था। गत नवम्बर मास में यह अवसर आया, जबकि एक प्रमुख जर्मन-निर्माता ने मुझे एक 'रोटरी प्रिंटिंग मशीन' देने को कहा। मुझे एक विशेष प्रकार की मशीन मँगानी थी ताकि बहुत बड़े पैमाने पर पुस्तकें, विशेषकर मासिक पत्रिकाएँ छापने में सुविधा हो। हमारी 'सरस्वती' दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होती जा रही थी और मैं मित्रों और पाठकों का कृतज्ञ हूँ कि हमें अब इसे बहुत बड़े पैमाने पर छापने की आवश्यकता प्रतीत हुई है। यह स्पष्ट था कि यदि हम अपने पाठकों को अधिक पाठ्य-सामग्री, अधिक चित्र दे सकें और वार्षिक मूल्य में कुछ कमी कर दें, तो इस पत्रिका को इँगलैंड या योरप की सुव्यवस्थित पत्रिकाओं के समकक्ष ला सकेंगे। दुःख की बात है कि यद्यपि भारतवर्ष की सम्पूर्ण जन-संख्या का दो-तिहाई भाग हिन्दी-भाषी है, तथापि अभी तक ऐसी कोई पत्रिका नहीं है, जो वास्तव में हिन्दी की प्रतिनिधि पत्रिका कही जाय। हिन्दी-पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या अत्यन्त कम है, कदाचित् ही किसी की ६००० से अधिक हो। ऐसी दशा में शीघ्र से शीघ्र एक ऐसी पत्रिका की आवश्यकता है, जिसके द्वारा मध्य-वर्ग के ऊँचे और नीचे दर्जे के लोगों में हिन्दी-साहित्य के प्रचार का उद्देश्य सिद्ध हो सके।

मैंने सोचा कि यदि अमरीकन ढंग पर पत्रिका निकाली जाय, जहाँ कि मूल्य बहुत कम रक्खा जाता है—करीब-करीब उसका आधा, जो कि हम भारतवर्ष में देते हैं, तो हम हिन्दी-भाषी जनता के एक बड़े भाग तक पहुँच सकेंगे। अभी हम वैसा नहीं कर सकते, क्योंकि प्रकाशन की वर्तमान पद्धति अधिक व्यय-साध्य है।

इस प्रकार अपनी पत्रिका और स्टैंडर्ड साहित्य को बहुत बड़े पैमाने पर छापने की आवश्यकता

से प्रेरित होकर मैंने रोटरी प्रिंटिंग मशीन का आर्डर दिया। योरप जाने और वहाँ प्रचलित विभिन्न कार्य-प्रणालियों के देखने का इसे मैंने अच्छा अवसर समझा। २३ मई से पहले मैं रवाना नहीं हो सका, यद्यपि इसमें सन्देह था कि समुद्र शान्त मिलेगा। मुझे समुद्र-यात्रा, समुद्री बीमारी और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्त परेशानियों का सदैव बड़ा भय रहा है। परन्तु मैं अपनी इच्छा के अनुसार कार्य नहीं कर सकता था, क्योंकि मुझे प्रेस और अपनी शुगर कम्पनी के बहुत-से महत्त्वपूर्ण मामलों को साफ करना था। मेरे बहुत-से मित्रों ने १० मई को रवाना होने की सलाह दी, परन्तु मैं वैसा नहीं कर सका। कभी-कभी मुझे बड़ी निराशा होती थी, क्योंकि यात्रा से पूर्व मुझे जो कार्य करने बाकी थे, उनका अन्त ही न मिलता था। खैर, मैंने यथासम्भव उन्हें समाप्त किया और 'एस० एस० कोंटेरेसो' नामक जहाज से यात्रा करने के लिए लिखा-पढ़ी की। मेरे कलकत्ता के मित्रों ने, जिनके सुपुर्द मैंने यह काम किया था, देरी कर दी। इससे जहाज में मुझे अनुकूल स्थान न मिल सका। अन्तिम घड़ी में मुझे एक 'बर्थ' मिली, जो ऊपर के डेक के नीचे थी। यह बंद और अँधेरी जगह थी। खैर, अब मैं कर ही क्या सकता था? मुझे इसी से संतोष करना पड़ा।

हमारे बहुत-से पाठक जहाजी यात्रा के आराम और तकलीफ से परिचित होंगे, इसलिए मैं विस्तार के साथ उसका वर्णन न करूँगा। यात्री-जहाज के विषय में साधारण तौर पर हमारी जो धारणाएँ होती हैं, उनसे वह भिन्न होता है। यहाँ मैं पाठकों को यह बता देना चाहता हूँ कि तकलीफों के सम्बन्ध में हमारा भय बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण होता है। मैंने इटालियन लाइन लायड ट्रिस्टिनो के जहाज से यात्रा की और जहाज पर चढ़ने से पूर्व हमारे मन में भय की जो आशंकाएँ रहती हैं, उनका मुझे कोई सबूत नहीं मिला। जहाज के कर्मचारी बड़े ही विनम्र होते हैं और वे यात्रियों की सहायता करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। भोजन बहुत अच्छा और स्वादिष्ट मिलता है। कई प्रकार का भारतीय भोजन भी वे देते हैं और यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि व्यक्तिगत माँगों का वे कितना ध्यान रखते हैं। कोई भी शाकाहारी अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार का भोजन प्राप्त कर सकता है। फल सुरक्षित रूप में और यथेष्ट मात्रा में मिलते हैं।

आमतौर से सब यात्री-जहाजों में चार दर्जे होते हैं। पहला दर्जा, दूसरा दर्जा, दूसरा इकानॉमिक दर्जा और डेक। हमारे जहाज के पहले दर्जे में बहुत-से भारतीय थे, जिनमें श्रीयुत घनश्यामदास बिड़ला और सर चिमनलाल शीतलवाद मुख्य थे। इकानॉमिक दर्जे में लाहौर की मिसेज दत्त थीं। ये भारतवर्ष की कुछ छात्राओं को योरप के शिक्षा-सम्बन्धी वातावरण से परिचित कराने के लिए वहाँ अपने साथ ले जा रही थीं। जहाज खूब भरा था।

इस प्रकार की यात्रा में एक ऐसा भव्य अवसर मिलता है, जो अन्यत्र सम्भव नहीं होता। भूमण्डल के विभिन्न भागों के लोगों का एक कासमोपालिटन समूह दस अच्छे दिन एक साथ व्यतीत करने के लिए एकत्र कर दिया जाता है। वे साथ-साथ खाते हैं, साथ-साथ खेलते हैं, साथ-साथ टहलते हैं और अपने-अपने जीवन के दृष्टिकोणों के सम्बन्ध में परस्पर विचार-विनिमय करते हैं। विभिन्न स्वभावों और विचित्र रुचियों के लोग परस्पर एक दूसरे को करीब

से देखते हैं और अपने देश और अपने रहन-सहन की मर्यादा का परिचय देते हैं। कदाचित् शरीर-विज्ञान की दृष्टि से मनुष्य के अध्ययन के लिए इन कुछ दिनों के उदाहरणों से बढ़कर उदाहरण नहीं मिल सकते, जब हम यहाँ चीनियों, जापानियों, जावावासियों, इटालियनों, फिलिपाइनवालों और भूमण्डल के कोने-कोने के लोगों से मैत्री-सूत्र में आबद्ध होते हैं।

यह मेरी प्रथम समुद्र-यात्रा थी, इसलिए मुझमें पास-पड़ोस के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने का विशेष भाव पैदा हुआ। मैंने यह निश्चय किया कि मैं बहुत-से लोगों का परिचय प्राप्त करूँगा। इस यात्रा से मुझे दूसरे देशों की स्थिति—राजनैतिक और आर्थिक दोनों—के जानने का यथेष्ट अवसर मिला। चीन के एक प्रधान व्यापारी से, जो चीन की वर्तमान स्थिति समझाने के लिए लेबर कान्फ्रेंस में भाग लेने जनेवा जा रहे हैं, मेरी घनिष्ठतापूर्ण बातें हुईं। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि चीनी व्यापारी कितनी सतर्कता के साथ पाश्चात्य तरीकों का अनुसरण कर रहे हैं। कोड़ियों चीनी नवयुवक काहिल चीन को व्यावसायिक रूप देने के निश्चित उद्देश से शिक्षा ग्रहण करने के लिए दूसरे देशों को गये हैं। वस्त्र, चीनी, इनेमिलिंग, काँच और मिट्टी के बर्तनों आदि के अब वहाँ तमाम कारखाने खुल गए हैं। यह सच है कि बड़े पैमाने पर इन चीजों का निर्माण करने में वे जापान से बहुत पीछे हैं, जैसा कि मेरे चीनी मित्र ने स्वीकार किया; पर अपने तरीकों में सुधार करते हुए वे क्रमशः आगे बढ़ रहे हैं। बहुत-से नवयुवक व्यवसाय को प्रभावित करनेवाली समस्याओं का अध्ययन करने के लिए जर्मनी और अमरीका गये हैं। अमरीका और जर्मनी के साथ उन्होंने अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर लिए हैं और अपने व्यवसाय में उन्नति करने के लिए इन देशों से वे समुचित सलाह पाते रहते हैं। पाश्चात्य वेश-भूषा और रहन-सहन को वे शीघ्रता के साथ अपनाते जा रहे हैं। जापान को वे भय के भाव से देखते हैं और वे जानते हैं कि वे शीघ्रता के साथ जापानी तरीकों का अनुसरण करके ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

हम भारतीय विदेश जानेवाले अनेक भारतीय विद्यार्थियों के अनुभवों से लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं। इसका एक बड़ा सजातीय कारण यह है कि हम अपने विद्यार्थियों को पारिभाषिक तरीकों के अध्ययन करने के लिए बहुत थोड़ा समय देते हैं। तीन वर्ष का कोर्स काफी नहीं होना चाहिए। हमारे नवयुवकों को व्यवसाय और उत्पादन में प्रयुक्त होनेवाले विभिन्न पारिभाषिक तरीकों का अध्ययन और अभ्यास करने के लिए योरप में लगभग दस वर्ष दत्तचित्त होकर रहना चाहिए ताकि वे प्रत्येक व्यवसाय में वह पारिभाषिक दक्षता और ज्ञान प्राप्त करलें, जो उन्हें अपने पूर्ण पारिभाषिक ज्ञान के द्वारा दूसरे देशों से प्रतिद्वन्द्विता करने में समर्थ बनाए।

मेरे मित्र जावा-निवासी मिस्टर इस्सर ने मुझसे जावा के सामाजिक और आर्थिक जीवन का बड़ा दिलचस्प वर्णन किया। उन्होंने अच्छी डच-सरकार के सम्बन्ध में अपनी इस टिप्पणी पर जोर दिया कि वहाँ वर्णगत भेदभाव नहीं है। वे एम्सटर्डन जा रहे हैं। वहाँ वे अपने परिवार को छोड़ देंगे और तब अटलांटिक पार करके दक्षिणी अमरीका में अपने पिता से मिलने जायँगे। मैंने उनसे एम्सटर्डन में मिलने का वादा किया। वे बहुत अच्छे और प्रसन्नचित्त अधेड़ पुरुष हैं। वे सदैव मुसकराते हुए मिलते और

सबेरे ऊपरी डेक पर टहलते समय हर किसी से, जो मिलता, परिचय प्राप्त करने को तैयार रहते।

ये दस दिन पहाड़ हो जाते हैं। यद्यपि समय काटने के लिए आनन्द-विनोद की यथेष्ट सामग्री रहती है, तथापि उन आनन्दों में लिप्त होना बहुतों के स्वभाव के अनुकूल नहीं होता—विशेषकर उनके, जो शान्तिमय आनन्द पसन्द करते हैं। सौभाग्य से इस जहाज का पुस्तकालय सज्जित है और समय व्यतीत करने के लिए यहाँ नई से नई पुस्तकें प्राप्त हो सकती हैं। सिनेमा, नृत्य और शिकार का भी प्रबन्ध है।

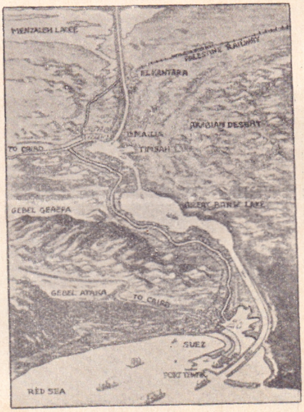
पहले यह आस्ट्रिया का जहाज था। परन्तु जब इटलीवालों ने ट्रीस्ट पर अधिकार किया, तब युद्ध के बाद से यह भी उनके अधिकार में आ गया। समस्त महत्त्वपूर्ण बन्दरों पर ठहरता हुआ यह शंघाई से ट्रीस्ट तक जाता-आता है। मेरे मित्र इस्सर बड़े निपुण फोटोग्राफर हैं। उन्होंने कृपापूर्वक कुछ फोटो मुझे भी दिए, जो उन्होंने मार्ग में लिये थे। वे यहाँ छापे जाते हैं।

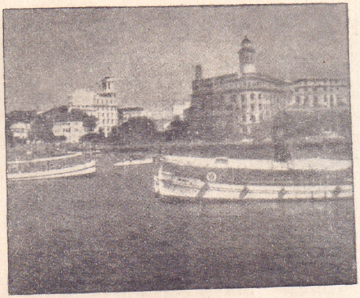
एक बड़े यात्री-जहाज का सुन्दर प्रबंध देखकर हम सब आश्चर्यचकित हैं। भारतीय इटालियन लाइन को बहुत पसन्द करते हैं, क्योंकि इसके जहाजों में भोजन अति उत्तम और विभिन्न प्रकार का मिलता है। संसार के विभिन्न भागों के फल, योरप, अमरीका और भारत की खाद्य-सामग्री और आठ विभिन्न देशों के रसोइए इसके जहाज में यात्रियों की सेवा करने के लिए उपस्थित हैं। इस जहाज में ५०० मुसाफिर और लगभग ३५० नाविक हैं। सब मिलाकर ९०० आदमी हैं, जिन्हें प्रतिदिन चार बार नियत समय पर भोजन मिलता है। कोई भी फल, जितने आप चाहें, मिल सकता है। जहाज-भाण्डार अक्षय्य प्रतीत होता है। इस जहाज में एक बड़ा तापहारी कमरा है, जिसमें सब प्रकार के फल, मांस और अन्य प्रकार की खाद्य-सामग्री रक्खी जा सकती है। हमें यहाँ गोभी, जो अब उत्तर भारत में शायद ही मिले, और बहुत-सी भारतीय फलियाँ, जो अब वहाँ बे-मौसम हैं, मिल सकती हैं। जहाजवालों ने इन वस्तुओं को महीनों पहले खरीदा था और तापहारी कमरे में जमा कर रक्खा है।

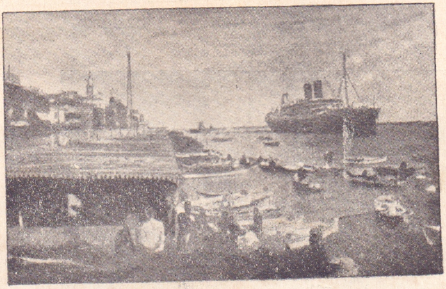
मेरे मित्र....., मुझे यह उल्लेख करते हुए दुःख होता है, बुरी सोहबत में पड़ गए और यदि हम उन्हें सचेत करने का शीघ्र प्रयत्न न करते, तो हालत और भी खराब हो जाती। उनकी सदिच्छा और हमारे अनुनय-विनय को धन्यवाद है कि उन्होंने वह सोहबत छोड़ दी और हमारे बीच में आ गए। फिर वे उस 'काक टेल बार' में न गए, जिसमें वे कुछ विदेशी मित्रों के साथ आधे दर्जन बार जा चुके थे और बहुत बेवकूफ बनाए गए थे। श्रीयुत तिवारी भी, जो मेरे ही कमरे में थे, बड़े आनन्द के साथ जा रहे हैं। वे लन्दन में करीब तीन महीने ठहरेंगे। वहाँ उन्होंने मुझसे मिलने का वादा किया है।

जो लोग मिस्र की एक झलक—प्राचीन पिरामिड, रहस्यमयी ममी और गन्दा बाजार—देखना चाहते हैं, उन्हें यह जहाज बड़ा सुन्दर अवसर देता है। वे स्वेज में उतर सकते हैं। टामस कुक एण्ड सन्स के कर्मचारी वहाँ से मुसाफिरों को 'लांच बोट' पर किनारे और वहाँ से मोटर पर कैरो ले जाते हैं। कुछ मित्रों ने, जिनमें मैं भी हूँ, इस यात्रा में सम्मिलित होने के लिए लिखा-पढ़ी की है। मुझे आशा है कि जब मैं शहर से लौटूँगा, तब मैं अपने पाठकों को मिस्र और उसके निवासियों के बारे में कुछ नई बातें बता सकूँगा।

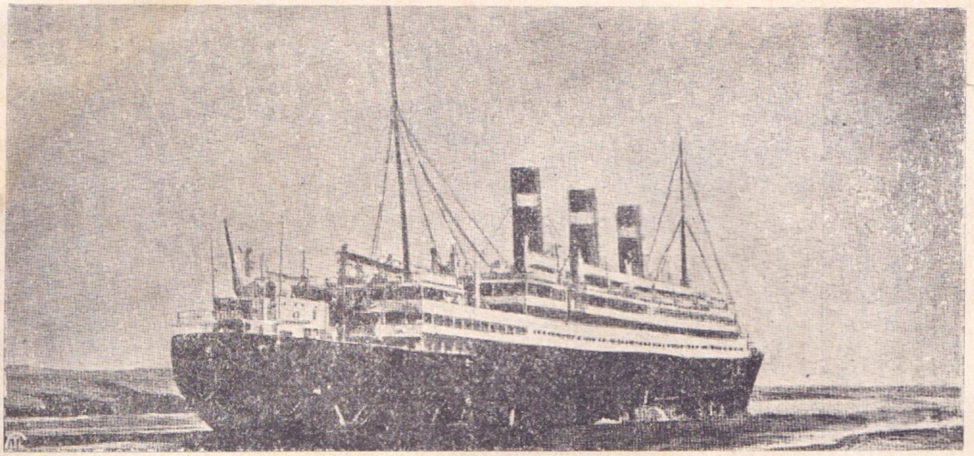








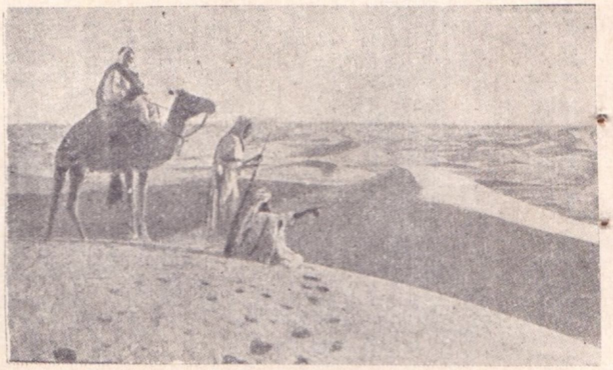
ऊपर--एस० एस० कोन्ते रेसो। बीच में--नहर स्वेज। नीचे--पोर्ट सईद।



स्वेज नहर में



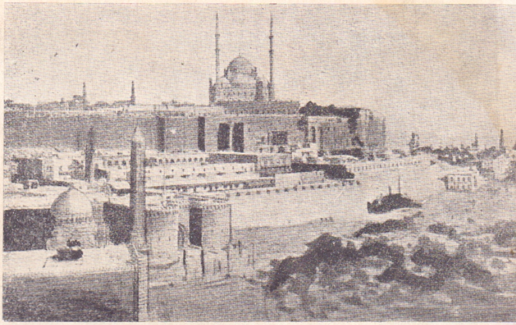
स्फिंग्ज के निकट नमाज का एक दृश्य (कैरो)



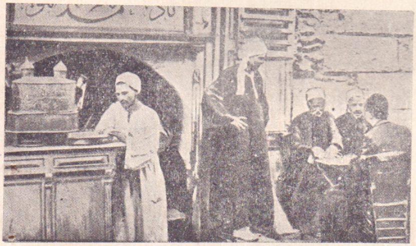
रेगिस्तान का एक दृश्य



का देश



कैरो



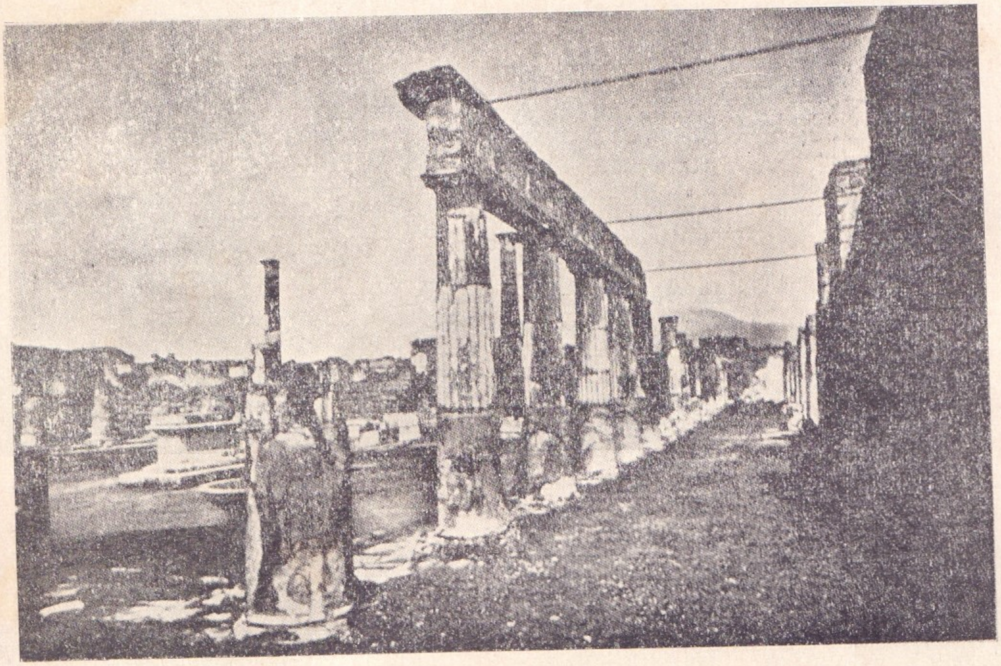
अरबी कहवा (पोर्ट सईद)



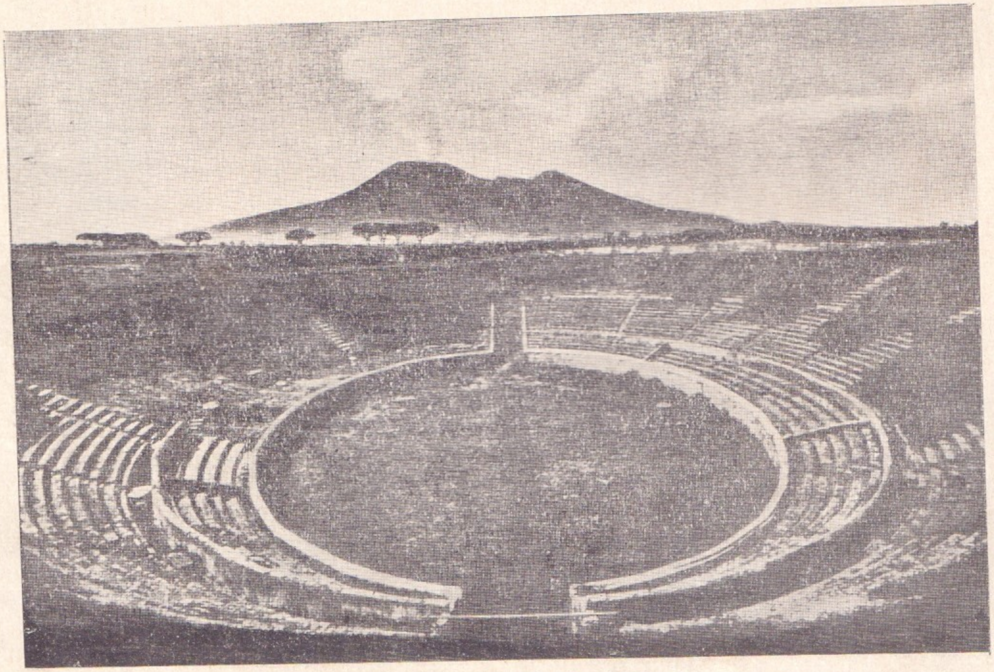
मिस्री स्त्रियाँ



पोर्ट सईद की बस्ती



पाम्पियाई--ओपोलो का मन्दिर



पाम्पियाई--एम्फीथिएटर।

२—फैराओ का देश

टामस कुक के प्रबन्ध के अनुसार कैरो की यह संक्षिप्त यात्रा अत्यन्त मनोरम होती है। कुल मिलाकर वे ५½ पौंड लेते हैं। इसी में मोटर, भोजन और सन्ध्या को स्टीमर तक वापस पहुँचने का व्यय भी सम्मिलित रहता है। यदि कोई चार मित्रों की मंडली बना सके, तो उसे जो व्यय करना पड़ेगा, उसका प्रायः दूना व्यय इसमें बैठता है। खैर, हम सोचते हैं कि यह मूल्य चुकाने के योग्य है, क्योंकि इस प्रकार सम्पूर्ण भ्रमण एक दिन में समाप्त हो जाता है और इस यात्रा का सस्ता प्रबंध केवल वे ही, या कम से कम उनमें से एक व्यक्ति, जो उस स्थान को भली भाँति जानता है, कर सकता है। दिन बहुत गर्म नहीं था, कम से कम हमें, जो भारत में अत्यन्त उग्र जल-वायु के आदी हैं, ऐसा प्रतीत नहीं हुआ। भारतवर्ष में इन दिनों मई में जो गर्मी पड़ती है, उसके मुकाबिले में यहाँ १० डिगरी गर्मी कम थी।

यह पचास व्यक्तियों का अत्यन्त रमणीय दल था, जिसमें सब देशों के लोग सम्मिलित थे। 'कुक' के एक कर्मचारी की सलाह के अनुसार सईद बन्दर में हम मोटरों पर सवार होने के लिए चार-चार की टोलियों में विभक्त हो गए। दो अमरीकन महिलाएँ, मैं और दिल्ली के एक प्रसिद्ध व्यापारी की पुत्री ने एक साथ जाने का निश्चय किया। मेरे मित्र मिस्टर झिलानी और मेरे बम्बई के एक दूसरे मित्र भी इस यात्रा में हमारे साथ थे।

जिन्हें दस दिन तक कोई देश देखने का अवसर न मिला हो, उन्हें जब जहाज सईद बन्दर के निकट पहुँचने लगता है, तब बड़ा सुहावना मालूम होता है। महान् अफ्रीका के दूरस्थ प्रदेश को, जो सर्वथा नग्न और निर्जन पड़ा था, ऊबड़-खाबड़ समुद्री किनारे को, जो नीचे की नील जल-राशि के सम्मुख विशाल दीवारों के समान खड़ा था, देखना हम सबको बहुत भला प्रतीत हुआ। इतने दिनों के बाद फिर से मनुष्य की बस्ती देखने की आशा से समस्त यात्री सतृष्ण नेत्रों के साथ डेक पर आ जमा हुए।

पाठक जानते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि-कोण से यह नहर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वेज कैनाल कम्पनी, जिसका कि इस नहर पर अधिकार है, एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है। परन्तु अधिक हिस्से अब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के हाथ में हैं, यद्यपि इसके कर्मचारी प्रायः फ्रांसीसी हैं। इसलिए स्वभावतः यह कहा जा सकता है कि नहर की कुंजी ब्रिटेन के हाथ में है, जो कि राजनैतिक दृष्टिकोण से उसके लिए एक महान् जय-हर्ष का विषय है। स्वेज-शहर काफी बड़ा है और उसका विकास मुख्यतः कम्पनी की बहु-संख्यक इमारतों और उसके अफसरों के बँगलों से हुआ है। शहर का नवीन विकास सर्वथा आधुनिक है और जो लोग वहाँ रहते हैं, उनकी माँगों की पूर्त्ति के लिए वहाँ बहुत-सी बड़ी-बड़ी दूकानें खुल गई हैं। स्थानीय निवासियों की बस्ती जरा गंदी है। साधारण शिष्टाचार के बाद हम 'कुक' के लांच से किनारे पर गये और सीधे मोटर-कार पर सवार हो गए। हम द्रुत-गति से कैरो की ओर, जो बन्दर से लगभग ७५ मील की दूरी पर है, बढ़े। हमारा मार्ग मुख्यतः रेगिस्तान से होकर गया था। सड़क के दोनों ओर नग्न पर्वत के सर्वथा उदासीन

दृश्य के अतिरिक्त और कुछ न था। सौभाग्य से प्रातःकाल शीतल था, इसलिए हमें बहुत बेचैनी का अनुभव नहीं हुआ। 'कार' का ड्राइवर एक नवयुवक यूनानी था, जो मिस्र देश में छुटपन में ही आ गया था और तभी से वहाँ रहता है। उसकी अरबी निर्दोष और अँगरेजी साधारण थी। हमें ज्ञात हुआ कि यूनान में भीषण बेकारी के कारण यूनानियों की एक यथेष्ट संख्या समुद्र-पार करके मिस्र में आ बसी है। उसने कैरो की एक लड़की के साथ शादी कर ली है। उसने हमसे मिस्रियों की हास्यपूर्ण कहानियाँ कहीं कि वे किस प्रकार उसकी स्त्री के यूनानी गिरजे में दीक्षित हो जाने के कारण रुष्ट हैं। हमें बालू की बड़ी-बड़ी पहाड़ियाँ दिखाई पड़ीं। ये सब हिमाच्छादित पर्वत के समान श्वेत थीं और उस महान् मरुभूमि के ऊपर उठ रही थीं। कभी-कभी हमें हरियाली का एकाध छोटा टुकड़ा मिल जाता था, परन्तु मनुष्य की कोई बस्ती वहाँ नहीं थी। कहीं-कहीं सड़क की मरम्मत हो रही थी और बलिष्ठ सूडानी वहाँ काम कर रहे थे। वे प्रायः ऊँचे कद के लोग थे और उनका स्वास्थ्य अच्छा था। परन्तु उनके शरीर पर कपड़े बहुत कम थे। यह भूमि सर्वथा शून्य है और कहीं-कहीं कृषि के लिए जो कुछ प्रयत्न हुए भी हैं, वे सिंचाई का प्रबन्ध न होने के कारण असफल सिद्ध हुए हैं। वर्षा यहाँ बहुत ही कम होती है। सड़क की मरम्मत हो रही थी, परन्तु यह आशा की जाती है कि जब यह बन जायगी, तब कैरो के लिए मोटर की बहुत अच्छी सड़क होगी।

लगभग ११ बजे सर्वथा लस्त हालत में हम कैरो पहुँचे। इस नगर के बाहर का दृश्य अच्छा नहीं लगता। कैरो दो भागों में विभक्त है। सरकारी शहर में बहुत-सी आधुनिक इमारतें और आधुनिक दूकानें सुव्यवस्थित ढंग से बनाई गई हैं। इन इमारतों की बनावट फ्रांसीसी ढंग की है। कैरो हमें दो लाख से कुछ अधिक आबादी का एक बड़ा शहर प्रतीत हुआ। नये शहर में मुख्यतः योरपियनों की बस्ती है। वहाँ बहुत-से बड़े-बड़े होटल हैं, जो यात्रियों द्वारा बहुत अच्छी तरह संरक्षित जान पड़ते हैं। 'कुक' के कार्यालय के सामने हम रुके। वहाँ हमारे साथ स्थानीय गाइड जो बहुत अच्छी तरह अँगरेजी बोल सकते थे, कर दिये गए। उनके साथ हम सीधे कैरो के संग्रहालय में पहुँचे। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि यह मिस्री पुरातत्त्वों के अति प्रसिद्ध संग्रहालयों में है। हमने तूतनखामन की कब्र से निकाली हुई वस्तुओं का निकट से निरीक्षण किया और प्राचीन राजसी महल की विभिन्न वस्तुओं के रूप-रंग को, जो बिलकुल नए-से जान पड़ते थे, देखकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। कब्र में रक्खी गई शृंगार की विभिन्न वस्तुओं की कारीगरी और उन पर किए गए सुनहले काम का सविस्तर वर्णन करना असम्भव है। प्रदर्शन की वस्तुओं से ३,५०० वर्ष पूर्व की मिस्री संस्कृति का अनुमान किया जा सकता है। इन अवशेषों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन दिनों के मिस्र-निवासी किस प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे। हमारी चार पहिए की गाड़ियों की तरह उनके रथ होते थे। उनके रथों में मील बताने-वाले यन्त्र भी थे। हमारे पाठक मिस्र देश की ममियों और मिस्री पुरातत्त्व के महान् ज्ञाता मिस्टर होवर्ड कार्टर द्वारा खोजे गए अन्य अव-शेषों के सम्बन्ध में पढ़ चुके हैं। इसलिए मैं पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोजों का यहाँ वर्णन न करूँगा।

इस संग्रहालय में रोमन-काल की, जो पुरातत्त्व-वेत्ताओं को अध्ययन की यथेष्ट सामग्री प्रदान करता है, कुछ आश्चर्यजनक मूर्तियाँ भी हैं।

संग्रहालय देखने के पश्चात् हम देशी बाजार में गये। वहाँ यहूदियों, इटालियनों और यूनानियों की बड़ी-बड़ी दूकानें थीं। उनमें से अधिकांश ठग थे और जब तक आप उनसे खूब दृढ़तापूर्वक सौदा न करें, आपका ठगाया जाना अवश्यम्भावी है। हमने कुछ वस्तुएँ खरीदीं और होटल में गये। भोजन के बाद हम पिरामिड देखने निकले। पिरामिडों को जो सड़क जाती है, वह कैरो की अत्यन्त सुन्दर सड़कों में से एक है। सड़क के दोनों ओर मिस्र के श्रीमन्तों के बँगले हैं। पहाड़ी के नीचे उपत्यका में एक मील जाकर सड़क समाप्त हो जाती है। यहाँ से पिरामिडों तक जाने के लिए ऊँट मिलते हैं। ये ऊँट बड़े ही सीधे होते हैं। यद्यपि आरम्भ में यह सवारी बड़ी खतरनाक जान पड़ी तथापि हमें इससे बहुत आनन्द मिला। प्राचीन पिरामिड, जिनके विषय में मिस्री पुरातत्त्व के विशारदों ने आश्चर्यजनक बातें बतलाई हैं, वास्तव में दर्शनीय हैं और जो स्वेज नहर से गुजरते हैं, उन्हें यह अवसर न चूकना चाहिए। हम पिरामिडों के आन्तरिक भाग में गये और प्राचीन मिस्रियों ने उन विशाल स्तूपों की कैसे रचना की है, यह देखकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रत्येक पत्थर समान पूर्ण घनाकार वजन में लगभग १५ टन के होगा। पिरामिड नम्बर १ की उँचाई लगभग ५०० फीट है और इसकी बनावट ककचायत के समान है। अन्दर के भाग में शिखर तक जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। मैं और मेरे चीनी मित्र मिस्टर कू चोटी तक गये। परन्तु जब हम नीचे उतरे तब सर्वथा थक गए थे।

पिरामिड देखने के बाद टामस कुक का मार्गदर्शक हमें नील नदी में एक नाव पर ले गया। वहाँ एक अत्यन्त रमणीक दृश्य के बीच में हमने चाय पी। सुन्दर नील के दोनों किनारों पर कैरो के धनी पाशाओं के सुन्दर बँगले हैं। नदी भरी हुई थी और सम्पूर्ण पास-पड़ोस दुर्लभ सौंदर्य से व्याप्त था। योरपियन ढंग से बिछाए गए उन उद्यानों के मध्य में भी पूर्वीय वैभव का अभाव नहीं था। नील नदी में इस नौका-भ्रमण का यात्री बड़ा आनन्द लेते हैं। बहुत-से लोग जो योरप से कैरो में छुट्टी का दिन बिताने आते हैं, वे नदी-मार्ग में स्वास्थ्यप्रद वायु का आनन्द लेते लक्सर तक जाते हैं। संध्या की ठण्डक बड़ी सुहावनी थी। उसमें हमने नदी के किनारे शान्तिपूर्वक आधा घंटा बिताया। हमारे देश में बहुत-सी सुन्दर नदियाँ हैं, परन्तु आर्थिक अभावों के कारण हम उनका उपयोग करने से वंचित रह जाते हैं।

सन्ध्या को हम पोर्ट सईद की गाड़ी पकड़ने के लिए रेलवे स्टेशन को द्रुत-गति से लौटे। गाड़ी काफी भरी थी। इस यात्रा में लगभग चार घंटे लगते हैं और रेल नील नदी के उपजाऊ कछार से होकर गुजरती है। सौभाग्य से सन्ध्या निर्मल थी, इसलिए हमें नील की उपजाऊ घाटी की भी एक झलक देखने को मिल गई। वहाँ के निवासी स्पष्ट रूप से खुशहाल प्रतीत होते थे। साधारण किसान भी यथेष्ट रूप से प्रसन्न थे और स्त्रियों की पोशाक अच्छी थी। एक स्थान पर एक बड़ा मेला लगा था। वहाँ हमने बहुत-सी चर्खियाँ देखीं, जो सुन्दर पोशाकों से युक्त बच्चों को लिए आनन्द से घूम रही थीं। हम कई कस्बों से भी गुजरे, जिनमें आधुनिक इमारतें दिखाई पड़ीं। अधिकांश कस्बों में

बिजली की रोशनी हो रही थी। उपहार-गृहों में लोगों की भीड़ दिखाई पड़ी। एक नवयुवक मिस्री हमारे साथ रेलगाड़ी में सवार था। वह मामूली अँगरेजी बोल लेता था और वह हमें बहुत सुखदायक साथी प्रतीत हुआ। उसने हमें बताया कि गत महायुद्ध के बाद से देश काफी सँभल गया है और रहन-सहन के औसत दर्जे में उन्नति हुई है। उसका सम्बन्ध प्रगतिशील दल से है और कट्टर धारणाएँ उसमें नहीं हैं। उस ऋतु की मुख्य फसल कपास थी। पौधे नये थे और उनमें ओज था। कपास की इन हरी-हरी घनी झाड़ियों का देखना बड़ा रुचिकर प्रतीत होता था।

आठ बजे शाम के लगभग हम सईद बन्दर के निकट एक स्टेशन पर पहुँचे। यहाँ एक दुर्घटना हो गई और सौभाग्य से भीषण काण्ड होते-होते बच गया। दो डिब्बे जो एक-दूसरे से स्प्रिंगदार कटियों से जुड़े हुए थे, टूट गए और दूर जा पड़े। चूँकि गाड़ी अभी छूटी ही थी और उसकी चाल में तेजी नहीं आई थी, इसलिए वह उलटने से बच गई। यह दुर्घटना इंजीनियरिंग विभाग की समुचित निगरानी न होने के कारण हुई थी। इस व्यवस्था-पद्धति को कोसते हुए इस स्टेशन पर हमें लगभग दो घंटे प्रतीक्षा में बिताने पड़े। अधिकारी इस दुर्घटना के लिए बड़ा खेद प्रकट कर रहे थे। यदि रेल की चाल ३० मील प्रति घंटा के हिसाब से होती, तो इसका अन्त भयानक होता। दो घंटे के पश्चात् हम सईद बन्दर के स्टेशन पर किसी प्रकार पहुँचे।

बन्दरगाह में तेज प्रकाश हो रहा था और समुद्री हिस्से में ऐसा जान पड़ता था, मानो दिवाली हो रही हो। बन्दरगाह में १५ से अधिक जहाज थे और उन सबमें तेज रोशनी हो रही थी। हममें से कुछ लोग बन्दरगाह देखना चाहते थे। इसलिए माँझी से कहा कि वह हमें एक घंटे बाद जहाज पर ले जाने के लिए आवे। हम बाजार में टहलते हुए गये और याददाश्त के लिए कुछ चीजें ख़रीदीं। कुछ मुहल्ले बहुत गंदे थे और वेश्या-गृहों से भरे हुए थे। मार्ग-दर्शक ने समय पर हमें उधर न जाने के लिए सावधान कर दिया था।

मिस्र में शिक्षा का औसत प्रचार बहुत कम है और यद्यपि वहाँ अब बहुत-से आधुनिक स्कूल खुल गए हैं तथापि जन-साधारण में शिक्षा का प्राबल्य होने में अभी पीढ़ियाँ लग जायँगी। तो भी जन-साधारण में शिक्षा के प्रचार की समस्या वहाँ इतनी दारुण नहीं है, जितनी कि हमारे देश में है। उपजाऊ हिस्से के लोगों की आय का औसत हमारे देश के किसानों की आय के औसत से अधिक है और उनका स्वास्थ्य भी अधिक अच्छा है।

३—इटली में मेरा प्रथम सप्ताह

सईद बन्दर से ब्रिंडिसी की यात्रा बड़ी सुहावनी थी। लाल सागर से आगे बढ़ने पर ठंढ मालूम पड़ने लगी और हमें गर्म कपड़े पहनने पड़े। भूमध्य-सागर अत्यन्त शान्त था। धूप चटकीली थी, विलक्षण मन्द वायु बह रहा था और दिन मनोरम और ठंढे थे। यात्रियों ने इस ऋतु का पूर्णरूप से आनन्द लिया। हमारे मित्र श्रीयुत के०....तो अपनी प्रसन्नता को

बिना प्रकट किए न रह सके। वे इतने जोर जोर से गाने और नाचने लगे कि बहुत-से गम्भीर लोगों ने उनकी कड़ी आलोचना अवश्य की होगी। सारांश यह कि उन उज्ज्वल दिनों ने प्रत्येक व्यक्ति को आनन्द-विभोर कर दिया था।

तीसरे दिन यूनान के निकट के छोटे-छोटे द्वीप दृष्टिगोचर होने लगे। उनमें से कुछ में लोग बसे हुए थे, परन्तु अधिकांश चट्टानी पहाड़ होने के कारण उजाड़ थे। चौथे दिन लगभग आठ बजे प्रातःकाल हम ब्रिंडिसी पहुँचे। मैं और मेरे साथ कुछ और मित्रों ने ब्रिंडिसी में उतरने का निश्चय किया, इसलिए हमने अपने इरादे की सूचना 'पर्सर' को दी और हमें अपने पासपोर्ट पर 'विसा' मिल गया। हमने अपना रुपया पहले ही इटालियन सिक्के—लिरा—में बदल लिया था, जो हमें एक पौंड में साठ के हिसाब से मिला। उस समय युद्ध की चर्चा नहीं थी, इसलिए विनिमय की दर स्थिर थी। चुंगी घर के साधारण शिष्टाचारों से छुट्टी पाने पर हमने दो टैक्सियाँ किराए पर लीं और शहर देखने निकले।

ब्रिंडिसी गन्दा शहर है और सिवा इसके कि वह एक बन्दरगाह है, उसका कोई और महत्त्व नहीं है। फौजी सिपाहियों की एक बड़ी संख्या को सड़क पर मार्च करते हुए हमने एक बड़े खुले मैदान की ओर, जहाँ रविवार का सैनिक-प्रदर्शन किया जा रहा था, जाते हुए देखा।

सड़क ऊबड़-खाबड़ पत्थरों की बनी, तंग और गन्दी थी। एक योरपीय शहर का हम लोगों पर जो पहला प्रभाव पड़ा, वह अत्यन्त निराशाजनक था। ठाकुर साहब ने सीधा लन्दन जाने की अपनी मूल योजना में परिवर्तन कर लेने के कारण अपने आपको बहुत कोसा। मेरी योजना बदलवा देने के कारण श्रीयुत डी....ने बहुत खेद प्रकट किया। खैर, श्रीयुत लाल ने विश्वास दिलाया कि हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। उनके मित्र श्रीयुत गोविल का, जो गत वर्ष ब्रिंडिसी उतरे थे, कहना था कि इटली की विचित्र घाटियों से होकर अपनी नेपल्स की यात्रा में उन्होंने कुछ अत्यन्त चित्रोपम दृश्य देखे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जब हम इटली के दक्षिणी पर्वतों की घाटी से होकर गुजरे, तब हमें श्रीयुत लाल का वक्तव्य सत्य प्रतीत हुआ।

सब मिलाकर हम आठ व्यक्ति थे, परन्तु हममें से कोई इटालियन भाषा का एक शब्द भी नहीं बोल सकता था, इसलिए हमने टामस कुक से एक गाइड लिया। शहर में दो घंटे घुमा-कर वह हमें सही-सलामत स्टेशन पर ले गया। स्टेशन पर खाने के लिए हमें सिर्फ कुछ रोटी और मक्खन मिल सका, लेकिन फल यथेष्ट मिले। हम सब लोग बहुत भूखे थे, इसलिए जो कुछ भी मिला, उसे खूब खाया। लगभग १२ बजे दिन को हमने नेपल्स की गाड़ी पकड़ी। गाड़ी बहुत भरी थी, परन्तु हमें आराम के साथ बैठने के लिए जगह मिल गई। इटली से होकर जानेवाले यात्रियों को रेलवे वास्तविक किराए में ६० प्रतिशत की रिआयत करती है। दिन कुछ कुछ गर्म हो चला था, इसलिए इस यात्रा में हमें पेय पदार्थों का यथेष्ट सेवन करना पड़ा। टामस कुक का आदमी हमारे लिए बड़े काम का निकला, परन्तु अपनी सेवाओं का उसने हमसे बहुत अधिक मूल्य लिया। औसत दर्जे के मुसाफिरी असबाब को रेल के डिब्बों तक लिवा जाने का हमें ८ आने देना पड़ा। हमें ज्ञात हुआ कि गत चार वर्षों में दक्षिणी इटली की

उल्लेखनीय उन्नति हुई है। गेहूँ और चावल की हमने अत्यधिक कृषि देखी। इटली अपनी शराब के लिए प्रसिद्ध है और हमने पहाड़ों की ढाल पर अंगूर के बड़े-बड़े बाग देखे। कुछ स्थानों का दृश्य तो अत्यन्त आश्चर्यजनक था। पर्वतों की ढालों पर अंगूर-उद्यानों, छोटी-छोटी नदियों और सुन्दर गृहों का दृश्य हमारे लिए सर्वथा नवीन था। जिन स्टेशनों से हम गुजरे, वे बड़े नहीं थे; परन्तु पानी, सोडा और आइस-क्रीम सर्वत्र सुलभ था। ब्रिंडिसी में हमने टामस कुक से नेपल्स में एक होटल की व्यवस्था करने के लिए कहा था। नेपल्स में हम रात में पहुँचे। गाड़ी से उतरते ही हमें टामस कुक का आदमी मिला। उसने तुरन्त हमारे असबाब के लिए प्रबन्ध किया और नेपल्स की खाड़ी के ठीक ऊपर अधिष्ठित एक अच्छे होटल में ले गया। वह रात विशेष रूप से तारों से पूर्ण थी और बहुसंख्यक बिजली की बत्तियों के प्रकाश में हमने खाड़ी की एक झलक देखी।

हमारे पाठकों को यह भली भाँति मालूम होगा कि नेपल्स यथेष्ट प्राचीन नगर है। विसूवियस का जीवित ज्वालामुखी नेपल्स की खाड़ी पर प्रहरी के समान खड़ा है। अतीत काल से यह ज्वालामुखी पड़ोस के नगर का कई बार विध्वंस कर चुका है। प्राचीन रोमन नगर—प्रसिद्ध पाम्पियाई—इसी विसूवियस से निकले लावा में समा गया था। जो यात्री इटली से गुजरते हैं, वे विसूवियस और पाम्पियाई का नगर, जिसकी अब बहुत काफी खुदाई हो चुकी है, देखने से नहीं चूकते। पाम्पियाई के खँडहरों से रोमन नगर का प्राचीन वैभव, उसकी संस्कृति, कला और खेल सब हमारे सामने अत्यन्त स्पष्ट रूप से आ जाते हैं। रोमन-इतिहास और संस्कृति से सम्बन्ध रखनेवाली यहाँ जो पुरातत्त्व की वस्तुएँ निकली हैं, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रत्येक वर्ष हजारों यात्री पाम्पियाई देखने आते हैं।

पाम्पियाई नगर को उसका विधिवत् स्वरूप ईसा के जन्म से छः शताब्दी पूर्व यूनानियों ने दिया था। फोनेशिया और यूनान के नाविकों का उतरने का अड्डा होने के कारण यह नगर बहुत प्रसिद्ध हो गया था। सन् ६३ ईसवी में भूकम्प से पाम्पियाई की भीषण हानि हुई थी, तो भी यह समृद्धिशाली व्यापारिक केन्द्र बना रहा और भूकम्प के बाद ही यह नगर फिर से बस गया। प्रथम भूकम्प के सोलह वर्ष बाद अन्तिम विध्वंस संघटित हुआ। विसूवियस एकाएक जागृत हो उठा और अपनी चोटी से बड़ी शीघ्रता के साथ जलती हुई राख और लावा की घोर वृष्टि करने लगा। पाम्पियाई के ऊपर २० से २५ फुट तक मोटी राख पड़ गई। उसके निवासी ढहते हुए मकानों से भागे; परन्तु उनमें बहुत-से हवा में फैली जहरीली भाप से दम घुट जाने के कारण मर गए।

इस भीषण दुर्घटना ने विद्वानों के अध्ययन के लिए सांस्कृतिक काल के अनेक अमूल्य स्मारकों को सुरक्षित रक्खा है। पाम्पियाई का पता लोगों को सोलहवीं शताब्दी में चल गया था, यद्यपि वास्तविक खुदाई सन् १८०६ में आरम्भ हुई। तब से यह कार्य अविश्रान्त भाव से चल रहा है। उल्लेखनीय इमारतें, जिनमें 'हाउस आफ वेट्टी', 'हाउस आफ सिलवर वेडिंग' और 'हाउस आफ गोल्डेन क्यूपिड' सम्मिलित हैं, अभी ३० वर्ष हुए, प्रकाश में लाई गई हैं। सुव्यवस्थित जीर्णोद्धार और पुनर्निर्माण ने इसे पुरातत्त्व के क्षेत्र में संसार का सबसे सफल प्रयास प्रमाणित किया है।

पुरातत्त्व की दृष्टि से अन्य प्राचीन नगरों के ध्वंसावशेषों के विपरीत पाम्पियाई में वास्तु-कला की अनेक विभिन्न शैलियों का साक्षात् होता है। कहीं-कहीं लावा के ढोकों से युक्त पत्थर के गम्भीर और स्थूल तोरण हैं और कहीं मूर्त्तियों और भित्तिचित्रों से अलंकृत गृह-द्वार हैं, जो निर्माण-कला की एक सर्वथा भिन्न शैली का परिचय देते हैं। विनाश के पूर्व इस नगर की जनसंख्या सम्भवतः २५,००० थी। नगर के स्थायी निवासियों के अतिरिक्त उसके औद्योगिक और व्यापारिक महत्त्व के कारण व्यापारियों की एक बहुत बड़ी संख्या उसमें आकर वास किया करती थी।

हम नेपल्स में तीन दिन ठहरे और पाम्पियाई, विसूवियस और संग्रहालय देखा। संग्रहालय में वे विचित्र मूर्त्तियाँ, जो खोदकर निकाली गई हैं, प्रदर्शन के लिए रक्खी गई हैं। नेपल्स के इस संग्रहालय में बहुत-सी विख्यात रोमन-मूर्त्तियाँ भी हैं। कुछ मिस्र की विख्यात मूर्त्तियाँ भी इसमें संगृहीत हैं। रोमन लोगों की उन दिनों की महान् संस्कृति को देखकर चकित हो जाना पड़ता है। यूनानी मूर्त्तियों में से कुछ तो बहुत ही आश्चर्यजनक हैं। वे अधिकतर पौराणिक विषयों से सम्बन्ध रखती हैं। यूनानी पुराण-शास्त्र अत्यन्त मनोरंजक है। ये संगमरमर की प्रतिमाएँ उसी यूनानी पुराण के महान् योद्धाओं के पराक्रम, महान् प्रेमियों और शक्तिमान् तथा निर्दयी राजाओं की गाथाएँ कहती हैं। चारुवेनस, अनुपम ईरिस और नील नदी की प्रस्तर प्रतिच्छाया आदि उन प्रसिद्ध मूर्त्तियों में से कुछ हैं, जिनका नेपल्स के इस संग्रहालय को गर्व है। सभी संगमरमर सफेद नहीं हैं, किन्तु विभिन्न रंगों के हैं और विभिन्न देशों से लाये गए थे। ये पत्थर अब अप्राप्य हैं, इसलिए ये प्रतिमाएँ बड़ी मूल्यवान् हैं।

हमारे नेपल्स में ठहरने के दूसरे दिन एक इटालियन भद्र पुरुष से, जो अच्छी अँगरेजी बोल सकते थे, मेरी भेंट हुई।

इटालियन संस्कृति और फैसिस्ट आन्दोलन के सम्बन्ध में मेरी उनकी कई घंटे बड़ी मनोरंजक बातें हुईं। मैंने उन्हें और उनकी प्रिय पत्नी को 'लंच' के लिए निमन्त्रित किया और उसके बाद हम खाड़ी के गिर्द के बागों में जी बहलाने को गये। फैसिस्ट सरकार कायम होने के बाद से इटली की चतुर्मुखी उन्नति के सम्बन्ध में उन्होंने बातें करनी शुरू कीं। कला, व्यवसाय और कृषि की उन्नति अत्यन्त स्पष्ट है। देश में मुसोलिनी की लोकप्रियता बहुत बढ़ी हुई है। मैंने उनसे पूछा कि क्या मुसोलिनी विदेशियों से मिलते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि आजकल यह सम्भव नहीं, क्योंकि प्रत्येक डिक्टेटर के शत्रु होते हैं और उनके जीवन पर जो पिछला आक्रमण हुआ, उससे अब किसी को उनसे मिलने की आज्ञा नहीं मिलती। इन इटालियन महोदय ने नगर की सामाजिक स्थिति दिखाने के उद्देश्य से अपनी ही ओर से हमसे प्रस्ताव किया। हम मजदूरों के कुछ घर देखने गये। सरकार ने जो नए मकान बनवाए हैं, वे अत्यन्त स्वच्छ और सुखप्रद हैं; परन्तु इन्हें अन्य योरपीय देशों के समकक्ष लाने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है। दक्षिणी इटली के मजदूर-श्रेणी के लोग उतने साधन-सम्पन्न नहीं हैं, जितने उत्तरी प्रान्तों के मजदूर हैं। खैर, मेरे मित्र ने बतलाया कि पहले उनकी स्थिति और भी खराब थी और अब तो कृषि-सम्बन्धी कार्यों के विस्तार के कारण उनकी बहुत कुछ उन्नति हो गई है। इटली ने

कृषि-सम्बन्धी उपजें अब बाहर से मँगाना बहुत कुछ कम कर दिया है और उसने शराब, चावल, ताजे फल और मुरब्बे बाहर भेजने में यथेष्ट वृद्धि की है।

इटली में होटलों का व्यय उनकी श्रेणी के अनुसार कम और अधिक पड़ता है। बहुत-से होटलों में मूल्य के सम्बन्ध में मोल-तोल करना पड़ता है।

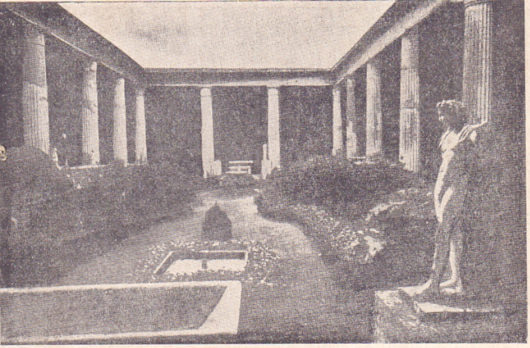
हमारे देश की दूकानों की भाँति वहाँ की दूकानों में भी मोल-तोल करने की आवश्यकता पड़ती है। साधारणतया दूसरे दर्जे के अच्छे होटल में ठहरने और भोजन का व्यय दस पया प्रतिदिन बैठता है। भोजन अच्छा होता है और फल यथेष्ट मिलते हैं। इटली में संगीत का बहुत प्रचार है और उसका संगीत सारे योरप में विख्यात है।

नेपल्स में तीन दिन ठहरने के पश्चात् हम इटली की फैसिस्ट सरकार की राजधानी रोम के लिए रवाना हुए। यह यात्रा नेपल्स से केवल छः घंटे के लगभग की होने के कारण सुखप्रद प्रतीत हुई। यहाँ इटालियन टूरिस्ट कम्पनी का एजेण्ट हमें मिला और शहर के बीच में हमें एक अच्छे होटल में ले गया।

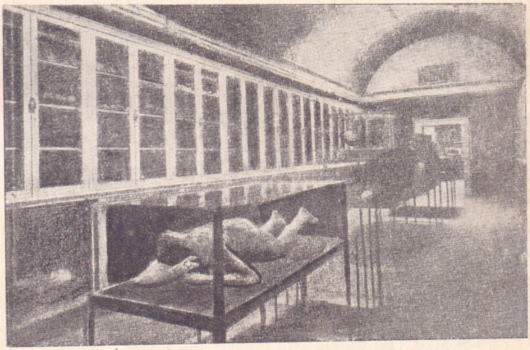
४—सौन्दर्यशाली रोम

कोई भी भारतीय यात्री जहाज पर से उतरकर जब योरप के समुद्रतट पर पैर रखता है, तब वह जिस ओर भी दृष्टि डालता है, उसे विचित्रता ही विचित्रता दिखाई पड़ती है। वहाँ के मनुष्य, उनका रहन-सहन, पशु-पक्षी तथा प्राकृतिक दृश्य आदि वस्तुएँ भारतवर्ष से सर्वथा भिन्न हैं, अतएव अकस्मात् इस परिवर्तित जगत् में आकर वह चकित हो जाता है और कुछ दिनों तक जब तक कि वह वहाँ की हर एक वस्तु से अभ्यस्त नहीं हो जाता, हत-बुद्धि-सा बना रहता है। अपनी मातृभूमि के जिस वातावरण में उसका पालन-पोषण हुआ है तथा जिस संस्कृति से वह सदा से प्रभावित होता आया है, योरप का वातावरण तथा वहाँ की संस्कृति इससे सर्वथा भिन्न है, अतएव वहाँ पहुँचकर भारतवासी जहाँ कहीं भी जाते हैं या जो कुछ भी करते हैं, उन्हें एक प्रकार की उद्विग्नता का-सा अनुभव होता है।

योरप और भारतवर्ष की सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था में आकाश-पाताल का अन्तर है। हमारा भारतवर्ष भू-मण्डल के मध्य उष्ण कटिबन्ध पर स्थित एक कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की संस्कृति और प्रकृति मानव-जाति में एक ऐसी मनोवृत्ति उत्पन्न करती है, जो योरप के निवासियों की मनोवृत्ति के सर्वथा प्रतिकूल है और उसके कारण भारतवासियों में एक विशेष प्रकार के जीवन के दृष्टिकोण का निर्माण होता है। हमारे देश में परम्परा से यह शिक्षा चली आ रही है कि समस्त भौतिक विभूतियाँ निःसार एवं निरर्थक हैं, अतएव सरल जीवन व्यतीत करके धर्मचिन्तन में समय व्यतीत करना ही मनुष्य का प्रधान कर्त्तव्य है। इस शिक्षा के कारण मनुष्य के हृदय में एक भिन्न प्रकार की ही प्रवृत्ति उत्पन्न होती है और यही एक ऐसी बात है, जिसके कारण पूर्व और पश्चिम कभी मिल नहीं सकते। इस विचार-



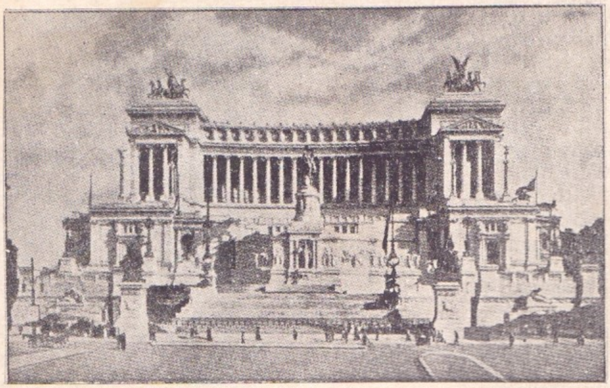
पाम्पियाई—एक गृह-उद्यान



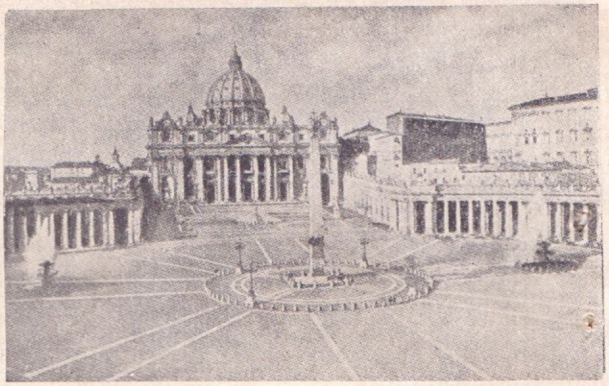
पाम्पियाई—संग्रहालय



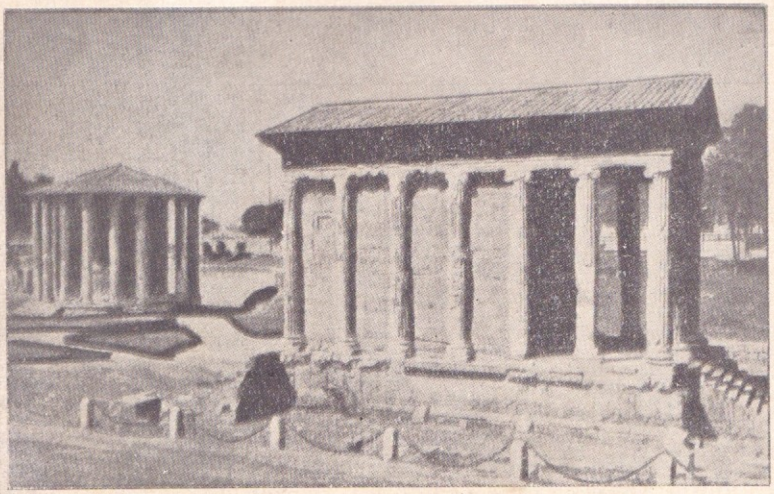
विसूवियस ज्वालामुखी



विक्टर इमैनुअल द्वितीय का स्मारक



सैण्टपीटर्स का गिरजा और चौक



वेस्टा का मन्दिर

सौन्दर्यशाली रोम

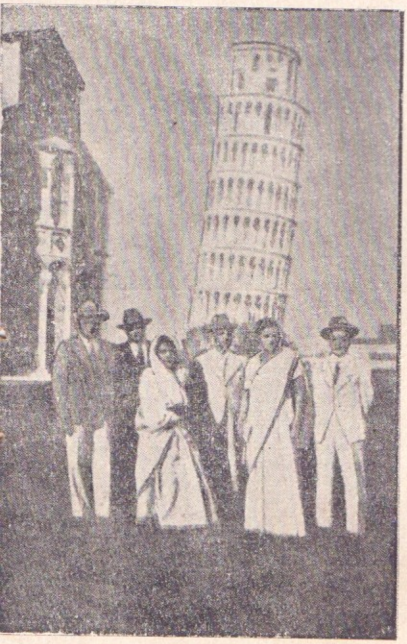


इम्पायर स्ट्रीट और कोलिसियम

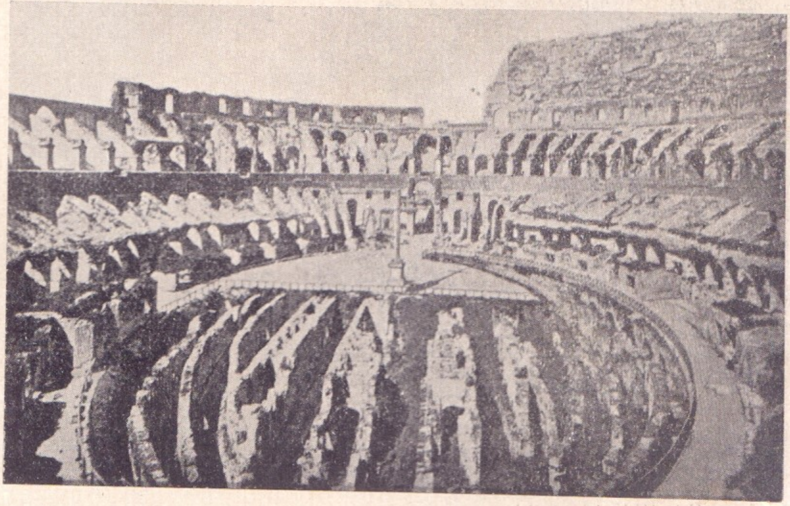


बाएँ--रोमन फोरम
नीचे--कोलिसियम का भीतरी भाग

फ्लोरेंस, वेनिस, वायाना और बुडापेस्ट से होकर

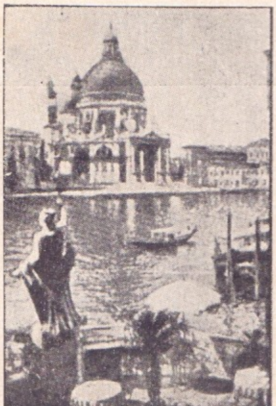


पीसा की मीनार के निकट लेखक की पार्टी

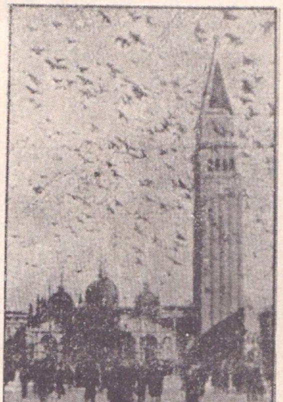




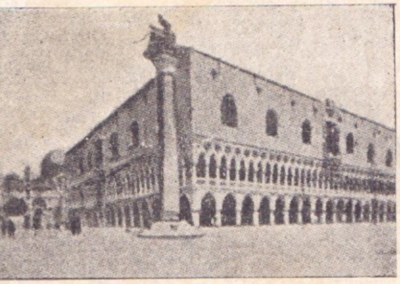
आहों का पुल



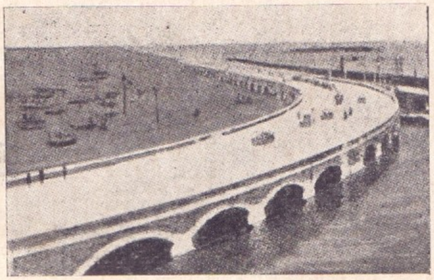
डेला सैल्ट का गिरजा



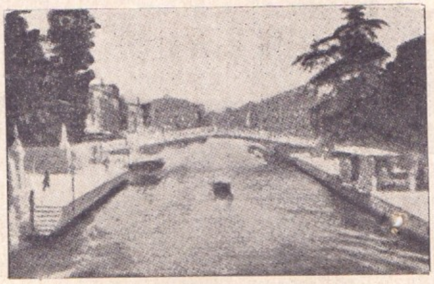
सेंट मार्को का गिरजा और बेलटावर



डोज का महल



लेंगून के पार नया पुल



वेनिस की एक नहर



दो आस्ट्रियन कृषक सुन्दरियाँ



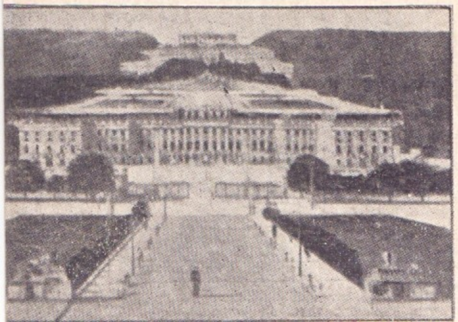
बुडापेस्ट के किसान

दाएँ : वायना विश्वविद्यालय

नीचे बाईं ओर : आस्ट्रिया के भूतपूर्व शाह का ग्रीष्मनिवास

नीचे दाईं ओर : ग्रीष्मनिवास का एक दृश्य







धारा और प्रवृत्ति के ही कारण जब कभी हमारे देशवासी पाश्चात्य सभ्यता तथा रीति-नीति का कुछ अंश अस्वाभाविक भाव से ग्रहण कर लेते हैं, तब उनमें सामंजस्य नहीं आता, उनके उस पूर्व और पश्चिम के सम्मिश्रण में तेल और जल का सा पार्थक्य स्पष्ट रूप से विद्यमान रहता है। वास्तव में हमारे देशवासियों के लिए यह बहुत ही कठिन बात है कि वे पाश्चात्य संस्कारों को ग्रहण करके अपने जीवन में इस प्रकार मिला लें कि उनमें जरा भी कृत्रिमता न मालूम पड़े। हमारे नागरिक जीवन में धीरे-धीरे पाश्चात्य रीति-नीति की बहुत-सी बातें सम्मिलित हो गई हैं, तथापि ग्राम्य जीवन में वह बात नहीं है। देहातों का जीवन नागरिक जीवन से बहुत ही भिन्न प्रकार का है। आज भी देहातों में हमारी कुछ प्राचीन प्रथाएँ बहुत ही अधिक मात्रा में अपनी प्रभुता स्थापित किए हुए हैं। ग्रामीण और नागरिक जीवन में इस प्रकार की भिन्नता का कारण है वहाँ की आर्थिक भिन्नता।

एशिया की तुलना में योरप एक नया महादेश है। यहाँ की सभ्यता के विकास का आरम्भ उस समय हुआ, जब एशिया की सभ्यता की काफी उन्नति हो चुकी थी। ईसवी सन् जब आरम्भ हुआ था, तब से योरप के भिन्न-भिन्न देशों के आन्तरिक सम्बन्धों में अधिक घनिष्ठता आ गई है। इससे हमें ज्ञात होता है कि वर्तमान युग में योरप की संस्कृति के मूल-स्रोत में इस प्रकार की विभिन्नता नहीं है, जैसी एशिया के देशों की संस्कृति में है। धर्म ने ही इस प्रकार की एकता स्थापित की है। इसमें सन्देह नहीं कि ईसाई योरप में भी साम्प्रदायिक विभिन्नता है और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों—रोमन कैथलिक तथा प्रोटेस्टेंट आदि—के धार्मिक सिद्धान्तों में भी कुछ अन्तर है; किन्तु इस अन्तर के कारण उनकी मूल संस्कृति से इतनी अधिक विभिन्नता नहीं है, जितनी एशिया में है।

एशिया में तीन ऐसे धर्म हैं, जो प्रधान रूप से व्यापक हैं। वे हैं हिन्दू, मुसलमान और बौद्ध, जिनके सिद्धान्त मुख्य संस्कृति का निर्माण करने में एशिया के निवासियों को विशेष रूप से प्रभावित कर सके हैं। परन्तु आजकल चीन और जापान के निवासी बौद्ध-धर्म के मूल सिद्धान्तों का अटल श्रद्धा के साथ अनुसरण नहीं कर रहे हैं। वे लोग इस समय अपनी शक्ति भर अधिक से अधिक मात्रा में पाश्चात्य सभ्यता का अनुसरण करने का प्रयत्न कर रहे हैं। पाश्चात्य सभ्यता को अपनाने में जापानवालों को जो सफलता मिल रही है, उसका कारण उनकी औद्योगिक उन्नति है, क्योंकि इस औद्योगिक उन्नति के लिए जापान को योरप से अधिक सम्पर्क में आना पड़ा है। परन्तु भारत की परिस्थितियों में तो बहुत ही विभिन्नता है। हमारे लिए यह सहन करना सम्भव नहीं है कि अपनी परम्परागत प्रथाएँ और आचार-व्यवहार छोड़ दें। भौतिक विभूतियों के लिए हम योरप की संस्कृति भी नहीं ग्रहण कर सकते। इस प्रकार भारत के लिए इस समस्या का कोई समाधान ही नहीं है।

रोम सचमुच नागरिकों की राजधानी है। यह नगरी हमें बहुत ही पसन्द आई। संयोगवश जिस होटल में हम ठहरे, उसी में हमारे देश के और भी बहुत-से लोग थे और उनमें से कतिपय ऐसे व्यक्ति भी थे, जो हमारे परिचित थे। इन लोगों से अकस्मात् मिलकर हमें बड़ा सुख मिला। मेरे मित्र एस—से आज दस वर्ष

के बाद मेरी मुलाकात हुई। विद्यार्थी-जीवन में वे मेरे बड़े ही घनिष्ठ मित्र थे। इनकी जीवन-यात्रा का मार्ग बहुत ही घटनामय है और उसी सिलसिले में इन्होंने एक इटालियन कन्या का पाणिग्रहण कर लिया है। परन्तु खेद है कि पाँच वर्ष तक बहुत ही सुखमय दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करने के बाद इन्हें उससे सदा के लिए वंचित हो जाना पड़ा। इन महोदय से मिलकर मैं सचमुच बहुत ही सुखी हुआ। इनसे मुलाकात होने पर यौवन के उन्मेष-काल की बहुत-सी मधुर स्मृतियाँ जागृत हो आईं और इनके साथ जितना भी समय व्यतीत हुआ, वह बड़े ही आनन्द से कटा। किसी समय इन्हें बड़ा अच्छा काम मिल गया था। उस समय ये बहुत ही सुखी थे। परन्तु आजकल ये वहाँ के टूअरिस्ट आफिस में गाइड का काम करते हैं और उससे इन्हें इतनी ही आय होती है कि ये किसी प्रकार अपना निर्वाह कर लेते हैं।

रोम में आने पर रात्रि व्यतीत करके चारपाई पर से उठते ही हमारे दल ने वहाँ के स्थानीय टूअरिस्ट आफिस से अपने भ्रमण का कार्यक्रम स्थिर करने में सहायता माँगी। हम लोगों ने निश्चय कर लिया था कि यहाँ का भ्रमण हम चार दिन में समाप्त कर देंगे। अन्त में हमारा कार्यक्रम स्थिर हो गया और हम लोग एक ऐसे 'गाइड' के साथ, जो अँगरेजी खूब अच्छी तरह बोल सकता था, सबेरे दस बजे एक साथ निकल पड़े। उत्तम श्रेणी के गाइड को बहुत-सी भाषाएँ सीखनी पड़ती है और उसके लिए यह आवश्यक है कि वह भिन्न-भिन्न देश के निवासियों का कौतूहल निवृत्त कर सके। नेपिल्स का गाइड चार मुख्य भाषाएँ बोलता था और वह सर्वसाधारण के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। योरप के हर एक नगर में स्त्री और पुरुष, दोनों ही प्रकार के गाइड उपलब्ध होते हैं। कभी-कभी तो, यदि किसी विशेष प्रकार के यात्री ने इच्छा प्रकट की, तो उसके कला, पुरातत्त्व तथा इतिहास-सम्बन्धी कौतूहलों की निवृत्ति के लिए विश्वविद्यालयों के अवसरप्राप्त अध्यापक तक गाइड के रूप में बुलाए जाते हैं। ये लोग यात्री को हर एक बात पूर्ण विवरण के साथ बतलाया करते हैं। रोम के टूअरिस्ट आफिसों में तीन सौ से भी अधिक गाइड हैं, जो समय-समय पर काम किया करते हैं। उनमें से कुछ तो इतने सुविज्ञ हैं कि वे वहाँ के ध्वंसावशेषों तथा स्मृति-चिह्नों का पूर्ण ऐतिहासिक विवरण अधिकारपूर्वक जानते हैं और विषय को आसानी के साथ दूसरों को हृदयंगम कराने के लिए आवश्यक नकशे तथा चित्र आदि प्रामाणिक सामग्रियाँ भी अपने साथ रखते हैं।

रोम के नामकरण के सम्बन्ध में एक परम्परागत किंवदन्ती है। उस किंवदन्ती से यह ज्ञात होता है कि इसके पास से होकर जो रूमा नामक महानदी बहती थी, किन्तु आजकल जो एक क्षुद्र नदी के रूप में परिणत हो गई है, उसी के नाम पर इसका नामकरण हुआ है। पैलेटाइन नामक सुप्रसिद्ध नगर को जीतकर इट्रस्कन ने इसका यह नामकरण किया था। इस नगरी में अतीत युग के गौरव के कितने ही मनोमुग्धकारी ध्वंसावशेष वर्तमान हैं, जिनके कारण दर्शक वहाँ के गत वैभव का अनुमान अनायास ही कर लेता है और उसे अत्यधिक श्रद्धा के कारण घुटने टेक देने पड़ते हैं। योरप के ध्वंसावशेषों की खोज के सम्बन्ध में अभी हाल में जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उसमें इस बात के यथेष्ट प्रमाण विद्यमान हैं कि इस नगर

के पहले के निवासी ईसा से लगभग चौदह शताब्दी पूर्व विद्यमान थे।

पहले दिन के भ्रमण में हमने जो-जो वस्तुएँ देखीं, उनमें रोम के मुख्य-मुख्य गिरजाघर भी हैं। उन समस्त गिरजाघरों में से दो विशेष महत्त्व के हैं। उनमें से एक है सेंट पीटर्स का और दूसरा सेंट जान का। हम लोग रोम की मुख्य-मुख्य सड़कों से होकर अपने गाइड के साथ कार से गये। रास्ते में वर्तमान रोम के जितने भी सार्वजनिक संस्थाओं तथा सरकारी कार्यालयों के भवन मिले, गाइड उन सबके सम्बन्ध में हम लोगों को बराबर बतलाता रहा। हम लोगों ने विक्टर एमैनुअल द्वितीय के सुप्रसिद्ध स्मारक को घूमकर देखा। यह स्मारक स्थापत्य कला का एक अद्‌भुत नमूना है और यह पन्द्रह-सोलह वर्ष में बनकर तैयार हुआ है। यह स्मारक एक बहुत ऊँची भूमि पर बनाया गया है। इसके सामने जो बरामदा है, उसके ऊँचे-ऊँचे खम्भे एक बहुत ही मनोमुग्धकारी दृश्य उपस्थित करते हैं। सामने के चबूतरे के बीच में विक्टर एमैनुअल द्वितीय की एक चमकीली और आकर्षक काँसे की स्वर्णरंजित मूर्त्ति बनी है। स्तम्भ के चारों ओर मुख्य-मुख्य घटनाएँ लिखी हैं। इस भवन में रोम का सर्वश्रेष्ठ म्यूजियम है, जिसमें बहुत-से महत्त्वपूर्ण चित्र तथा मूर्त्तियाँ सुसज्जित रक्खी हुई हैं। यह स्मारक ढाई सौ फुट ऊँचा है और इसकी परिक्रमा करती हुई एक बहुत चौड़ी सड़क चली गई है। यह वही भव्य भवन है, जिसके छज्जे पर खड़े होकर मुसोलिनी ने गत अक्टूबर में फासिस्ट इटली को यह घोषणा सुनाई थी कि अबीसीनिया में इटली की क्या नीति होगी।

एक चौड़ी नई बनी हुई सड़क इस स्मारक से कोलिसियम के ध्वंसावशेषों तक जाती है। यह कोलिसियम प्राचीन रोमन-काल का एक बृहत्काय प्रासाद है। गत बीस वर्षों से सरकार इस महान् प्रासाद के हर्म्यमुख को यथासम्भव पूर्णरूप देने में संलग्न थी। रोमन-गृह-निर्माण-कला का यह नमूना, जो अब खँडहर-मात्र रह गया है, २,००० वर्ष से अधिक प्राचीन है। प्रसिद्ध रोमन शिल्पी 'वेस्-पासियन' ने इसकी रचना की थी। यहाँ वन-पशुओं के भयानक खेल होते थे, रथों की दौड़ होती थी और योद्धा लोग अपनी सम्पूर्ण उग्रता-व्यंजक शक्ति का प्रदर्शन करते हुए लड़ते थे। राज्य के शत्रु यहाँ मृत्यु-पर्यन्त लड़ने के लिए वन-पशुओं के आगे डाल दिए जाते थे। रंगांगण चार मंजिलों का बना था: प्रथम डोम, द्वितीय आयोनिक, तृतीय और चतुर्थ कारिन्थियन। तोरणों में प्रसिद्ध राजाओं और पौराणिक देवी-देवताओं की मूर्त्तियाँ लगी थीं। नष्ट होने से जो थोड़ी मूर्त्तियाँ बची हैं, वे संग्रहालयों में हटा दी गई हैं। प्रासाद का घेरा १६०० फुट से कुछ अधिक है और उँचाई लगभग २०० फुट है। कुछ सुरंगें भी हैं। इन्हीं में से वन-पशु खुले स्थान में ले जाए जाते थे। कहा जाता है कि इसके उद्‌घाटनोत्सव में जो १०० दिन तक मनाया गया था, ५,००० से अधिक भयावने वन-पशु मारे गए थे। बाद के वर्षों में असि-क्रीड़ा उठा दी गई थी। कहानियों से ज्ञात होता है कि एक बार एशियाई साधु, जो ईसाई था, यहाँ के वीभत्स खेल से त्रस्त होकर जिस स्थान पर योद्धा एक-दूसरे का प्राण लेने में संलग्न थे, वहाँ दौड़कर जा पहुँचा और उसने अपने आपको उनके बीच में डाल दिया ताकि वे पृथक् हो जायँ। साधु के इस कार्य से दर्शकों के आनन्द में इतना विघ्न पड़ा कि उन्होंने उसको

क्रोधावेश में मार डाला। परन्तु इस बलिदान का नैतिक प्रभाव बहुत बड़ा पड़ा और इसके बाद वन-पशुओं की लड़ाई भी ईसा के ५०० वर्ष पहले बन्द हो गई थी। इमारत का पहला विनाश ईसा से १,००० वर्ष पूर्व हुआ, जब शत्रुओं ने इसमें लूट-मार मचाई थी। उसके बाद एक गढ़ के रूप में इसका उपयोग किया जाने लगा। चौदहवीं शताब्दी के भूचाल में इसकी भीषण हानि हुई। बाद को कई महलों के निर्माण में इसने पत्थर की खान का काम किया।

कोलिसियम देखने के बाद हम सेंट पीटर्स का गिरजा देखने गये। योरप के कैथलिक गिरजों में यह सबसे अधिक सुन्दर कहा जाता है। इसके चौक के मध्य में पत्थर का एक मिस्री स्तम्भ है। पर इसमें कोई चित्राक्षर नहीं है और यह बहुत बड़ा है। यह विशाल स्तम्भ रोम में प्रसिद्ध सम्राट् कैलीगोला द्वारा लाया गया था। सेंट पीटर्स गिरजे के चौक का नकशा महान् इटालियन शिल्पी बरनिनि ने तैयार किया था। गिरजे के सामने दो सुन्दर फव्वारे हैं, जिनमें दूर के पहाड़ के झरने से पानी आता है। गिरजे का भीतरी भाग संगमरमर की मूर्त्तियों द्वारा आश्चर्यजनक रीति से सजाया गया है। कुछ मूर्त्तियाँ बहुत ऊँची हैं और दुर्लभ कारीगरी की द्योतक हैं। खम्भों की बनावट यूनानी ढंग की है और वे स्वर्णजड़ित हैं। छत में पच्चीकारी द्वारा ईसा और उनके शिष्यों के चित्र और टेस्टामेंट (बाइबिल) की बहुत-सी कहानियाँ अंकित हैं। गुम्बज की उँचाई का क्या कहना! जब हम पहुँचे, वहाँ उपासना हो रही थी। कैथलिक पादरी स्वर्ण के दीपाधारों में जलती हुई मोमबत्तियों से प्रकाशित वेदी के सामने लेटिन में मन्त्र-पाठ कर रहे थे। वातावरण अत्यन्त शान्त प्रतीत हो रहा था। बहुत-सी वृद्ध और कुछ युवती स्त्रियाँ हाथ जोड़े और घुटने टेके प्रार्थना कर रही थीं।

श्रीमती चटर्जी ने राह चलते हुए लोगों का अत्यधिक ध्यान आकर्षित किया। इसका कारण यह था कि उन्हें भारतीय स्त्रियों के देखने का बहुत कम अवसर मिलता है। इसी प्रकार अपने साँवले रंग के कारण मेरे मित्र श्रीयुत एल० भी आकर्षण के केन्द्र बने हुए थे। एक इटालियन महिला श्रीमती चटर्जी के मस्तक पर सिंदूर की लाल बिन्दी देखकर उस सम्बन्ध में अपने कौतूहल को न रोक सकी। श्रीमती चटर्जी ने उसे इस चिह्न का मर्म बताया। उसने करीब आधे घंटे तक हमसे भारतवर्ष के बारे में बातें कीं और श्रीमती चटर्जी की साड़ी की बड़ी प्रशंसा की। उसने हमें भोजन के लिए निमंत्रित भी किया, परन्तु अपने भारी कार्यक्रम के कारण हम उसे स्वीकार न कर सके।

इटली की स्त्रियाँ प्रायः सुन्दर होती हैं। उनके केश काले, बरोनियाँ और आँखें बड़ी और सुन्दर होती हैं। अपनी इँगलैंड और जर्मनी की बहिनों की अपेक्षा कद में वे छोटी होती हैं। समस्त योरप में सामाजिक पोशाक एक-सी ही ह। गाँव की स्त्रियाँ अपनी देशी पोशाक में मुश्किल से देख पड़ती हैं। धूप-प्रधान दक्षिणी जलवायु के कारण वहाँ के निवासियों का जैतूनी सफेद रंग होता है। परन्तु यह जलवायु उनमें आलस्य और थकान भी, विशेषकर जून और जुलाई के गर्म महीनों में, उत्पन्न करती है।

रोम में बहुसंख्यक सुन्दर फव्वारे हैं, जिन्हें बराबर जारी रखने के लिए पर्वत का पानी आता रहता है। ये सब संगमरमर के बने हैं, परन्तु उनमें से कुछ एक हजार वर्ष से भी अधिक

पुराने हैं। बीच-बीच में सड़क के मोड़ों पर हमें सुन्दर फव्वारे दिखाई पड़े, जिनसे हमें श्रेष्ठ रोमन शिल्प-कला का परिचय मिला। फव्वारों के चतुर्दिक् मूर्त्तियों का सौन्दर्य देखते ही बनता है। ट्रिनी का फव्वारा इटालियन कला का अद्‌भुत नमूना है।

सेंटपीटर्स और कोलिसियम देखने के बाद हम रोम की मुख्य सड़कों से होते हुए अपने होटल को लौट आये। मार्ग में हमें 'पैंथियन' मिला। यह एक अत्यन्त उल्लेखनीय ऐतिहासिक इमारत है। पैंथियन का अर्थ है नीरो के समय से लेकर अब तक के रोमन देवताओं की पूजा का स्थान। द्वार-प्रकोष्ठ के दोनों बड़े प्रतिमा-स्थानों में अगस्टस और अग्रिप्यापा की मूर्त्तियाँ थीं।

इसके पश्चात् हम वेस्टा नामक एक छोटे और गोल मन्दिर के पास से गुजरे। यह मन्दिर सम्भवतः सूर्य को समर्पित किया गया था। कदाचित् यह हरकुलीज का मन्दिर रहा हो। इसके चारों ओर एक अत्यन्त सुन्दर प्रकोष्ठ है, जिसमें कोरिन्थियन ढंग के १९ स्तम्भ हैं।

अब हम लोग सर्वथा थक गए थे और गाइड से पुरानी यादगारों की दुःखान्त कथाएँ सुनते-सुनते हमारा मन उदास हो गया था, इसलिए हमने सन्ध्या समय छः बजे तक पूर्ण विश्राम किया। बाद को हमारे गाइड ने होटल के पास ही एक विस्तृत वाटिका में खुली हवा में नाटक देखने का आग्रह किया। यद्यपि हमारी समझ में एक शब्द भी नहीं आया, तथापि हमने इसका अत्यधिक आनन्द लिया। इटालियन गीत बहुत मधुर होते हैं और हमने उन्हें बहुत पसन्द किया। पर उनके कुछ मजाक हमें मूर्खतापूर्ण प्रतीत हुए। बाग में खूब तेज रोशनी हो रही थी और ५०० से ऊपर सुसज्जित स्त्री-पुरुष पेड़ों के नीचे हलका भोजन करते हुए संगीत का आनन्द ले रहे थे।

दूसरे दिन हम प्राचीन रोमन फोरम देखने गये। इसकी खुदाई बहुत कुछ गत शताब्दी में हुई है। रोमन राजाओं के अतीत गौरव का यह आश्चर्यजनक स्मारक है। इस फोरम में रोमन इतिहास में वर्णित बहुत-से ऐतिहासिक ध्वंसावशेष हैं। व्योस-पासियन का मन्दिर और सैटर्न के मन्दिर के प्रकोष्ठ के स्तम्भ अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। शिल्प-कला का यहाँ पूर्ण प्रदर्शन हुआ है। यहाँ जिन देवताओं की मूर्त्तियाँ थीं, वे अब रोम के बहुत-से संग्रहालयों में हैं। अपोलो का मंदिर बहुत ध्यान देने योग्य है। इन ध्वंसावशेषों के देखने में हमें पूरा एक दिन लग गया और उनकी संख्या इतनी अधिक है कि सबका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दूसरे दिन हम वेटिकन संग्रहालय देखने गये। इसमें शताब्दियों से जमा की गई दुर्लभ वस्तुएँ एकत्र हैं। यह संसार के अति सम्पन्न संग्रहालयों में से एक है और इसमें हजारों ऐसी प्रदर्शन की वस्तुएँ हैं, जिनके जोड़ की वस्तुएँ संसार में कहीं भी प्राप्त नहीं हैं। इसमें कलाविदों के बहुत-से दुर्लभ चित्र और अगणित ऐसे रत्नजटित आभूषण हैं, जिनमें बहुत-से गत शताब्दियों के पोपों के शरीर की शोभा बढ़ा रहे थे।

रोमन तहखाने विख्यात हैं। इन्हें भी हमने देखा। ये पृथ्वी के नीचे कमरों और मार्गों के रूप में बने हैं। रोमन इतिहास के आरम्भ-काल में गैर-ईसाइयों से सताए जाने पर इनमें छिपकर ईसाई लोग अपनी जान बचाते थे। वे गुफाएँ भी हैं, जिनमें शुरू के ईसाई पत्थर के काफिनों में अपने मृतकों को गाड़ते थे। ये पृथ्वी के अन्दर के मार्ग और कमरे कई वर्गमील में हैं।

आरंभिक शताब्दियों में ईसा के अनुयायियों पर किस सीमा तक अत्याचार होता था, इसका स्मरण करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

रोम में हम चार दिन रहे और इस समय में वहाँ हमारा खूब मन लगा। प्रत्येक घंटा हमने स्मरणीय इमारतों, प्रसिद्ध संग्रहालयों और योरप के सर्व प्राचीन ध्वंसावशेषों के देखने में, जो हमें ईसा के पूर्व की कितनी ही शताब्दियों की याद दिलाते हैं, मन बहलाया। जिस समय हम रोम में थे, नगर में रौनक थी। फैसिस्ट शासन से वह नए सिरे से समृद्धिशाली हो रहा था और चारों ओर महान् सैनिक प्रदर्शन हो रहे थे, यद्यपि युद्ध की कोई चर्चा नहीं थी। मुसोलिनी की शक्ति सर्वत्र व्याप्त हो रही है। इसमें सन्देह नहीं कि फैसिज्म ने करिश्मे दिखलाए हैं, पर इसका स्थायित्व संदिग्ध है।

५—फ्लोरेंस, वेनिस, वायना और बुडापेस्ट से होकर

रोम के बाद हम फ्लोरेंस के लिए रवाना हुए। यह शहर अपनी चित्रशालाओं के लिए प्रसिद्ध है। हम उत्तर की ओर जा रहे थे और प्राकृतिक दृश्य का परिवर्तन हमें स्पष्ट प्रतीत हो रहा था। दक्षिणी इटली में धूप तेज होती है और खेती भी अधिक होती है। वर्ष के इस भाग में वहाँ उष्णता-प्रधान देशों में पाई जानेवाली अनेक धान्यों की खेती होती है। परन्तु यहाँ हरियाली कम दिखाई पड़ती है।

फ्लोरेंस हम उपयुक्त समय पर दिन में पहुँचे। रोम में हमारे गाइड ने फ्लोरेंस की एक यात्री-संस्था को तार दे दिया था। हमारे पहुँचते ही उसने शीघ्र ही हमारे ठहरने की व्यवस्था करनी आरम्भ कर दी। नगर के केन्द्र में हम एक अच्छे होटल में आराम के साथ ठहराए गए। तीसरे पहर के चाय-पानी के पश्चात् हम गाइड के साथ शहर घूमने निकले। मार्ग में हमें इटली के अमर कवि दान्ते का घर मिला। हमें वह विशेष स्थान दिखाया गया, जहाँ दान्ते बिआट्रिस पर प्रेम-मुग्ध हुआ था। ये दोनों स्थान संरक्षित हैं। फ्लोरेंस का गिरजा इटालियन शिल्प-कला का एक अच्छा नमूना है। इसका निर्माण गाथिक शैली पर हुआ है और प्रवेश-द्वार पर खूब बारीक कारीगरी है। ऐसी कारीगरी कोलेन (जर्मनी) के गिरजा के सिवा और कदाचित् ही कहीं देखने को मिली। फ्लोरेंस में उसके गर्व करने योग्य वैसी विशाल इमारतें नहीं हैं।

रात में खूब आराम करने के बाद सबेरे हम यहाँ की प्रसिद्ध चित्रशालाएँ देखने को निकले। वहाँ दो चित्रशालाएँ हैं और उनको अच्छी तरह से देखने के लिए साधारण तौर पर दो दिन लगते हैं। इन दोनों चित्रशालाओं ने शताब्दियों से योरप और अमरीका के हजारों चित्रकारों को आकृष्ट कर रक्खा है। हमने वहाँ कई विद्यार्थियों को, जिनमें पुरुष और स्त्री दोनों थे, प्रसिद्ध कलाविदों के चित्रों की प्रतिलिपि तैयार करने में व्यस्त देखा। उनमें बहुत-से अपनी इन प्रतिलिपियों को दर्शकों के हाथ बेचते हैं और इस प्रकार जीविकोपार्जन करते हैं। एक वयस्क महिला द्वारा अंकित 'टिटियन' की एक प्रतिलिपि ने हमें

विशेष रूप से आकर्षित किया। मूल और प्रतिलिपि में वास्तविक अन्तर क्या है, यह जानना कठिन था। चटर्जी साहब तो उससे इतने प्रभावित और मुग्ध हुए कि उन्होंनें उस महिला को दो पौंड उपहार-स्वरूप दिये।

उन चित्रशालाओं में बहुत-से धुरन्धर चित्रकारों की कृतियाँ हैं। उन सबका विस्तृत वर्णन हम यहाँ नहीं करेंगे, क्योंकि उससे पाठक ऊब जायँगे। अमर चित्रकार रैफेल के तीन प्रसिद्ध चित्र यहाँ रक्खे गए हैं। मेरे पास शब्द नहीं है कि मैं बताऊँ कि वे कितने अद्भुत हैं। मडोना और शिशु नामक प्रसिद्ध चित्र को, जो प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक रूप में अंकित किया गया है, हम देखते ही दंग रह गए। वह इतना सजीव, इतना सुन्दर और इतना नवीन प्रतीत हुआ कि हमारे मानस-पट पर सदा के लिए अंकित हो गया और उसे अपने जीवन में हम कभी नहीं भुला सकेंगे। अल्पायु में ही स्वर्गवासी हो जानेवाले महान् रैफेल के लिए इस महान् स्थान में एक विशेष स्थान अलग कर दिया गया है। यहाँ की अन्य कृतियाँ भी, जो यद्यपि इतनी प्रसिद्ध नहीं हैं, ध्यान देने योग्य हैं। यह संग्रह इटालियन चित्रकारों तक ही परिमित नहीं है, बहुत-से डच, जर्मन, फ्रेंच और इँग्लिश चित्र भी इसमें रक्खे गए हैं। उस समय कुछ चित्र एक विशेष प्रदर्शन के लिए पेरिस भेज दिए गए थे, अतएव उन्हें हम नहीं देख सके।

इस चित्रशाला में इटालियन तक्षण-कला का एक खास विभाग है। महान् मूर्त्तिकार माइकल एंजिलों और ल्योनार्डो की सांस्कृतिक कला के बहुत ही सुन्दर नमूने यहाँ मौजूद हैं। यह संग्रहालय इतना बड़ा है कि इसमें प्रत्येक काल और प्रत्येक शैली के उन कलाविदों की कृतियों के यथेष्ट नमूने भरे पड़े हैं, जिनका नाम इटली में ही नहीं, तमाम योरप में घर-घर लिया जाता है।

दूसरे दिन हम मोटर-कोच से विसा का झुका हुआ मीनार देखने गये। हमारी पार्टी में दस व्यक्ति थे और हममें से कोई भी उस आश्चर्यजनक और रहस्यपूर्ण मीनार को देखने से वंचित नहीं रहना चाहता था, क्योंकि वह संसार के सात आश्चर्यों में से एक है। निस्सन्देह यह एक महत्त्वपूर्ण इमारत है और गणित के विद्यार्थियों के लिए अध्ययन की एक मनोरंजक वस्तु है। इटली के गाँवों से होकर जाने से हमारी यह यात्रा बड़ी मनोरम रही। सामने करीरा पहाड़ी की चोटी दिखाई पड़ रही थी, जहाँ से करीरा का संगमरमर समस्त संसार में भेजा जाता है।

दूसरे दिन हमने फ्लोरेंस छोड़ दिया। हमारा लक्ष्य मिलन से होकर वेनिस जाना था। मिस्टर अब्दुल्ला हमारे साथ नहीं जा सके। वे हमें वहीं छोड़कर लन्दन के लिए रवाना हो गये। मिलन में हम एक दिन रहे और बहुत देख नहीं सके, क्योंकि यह व्यापारिक नगर है और गिरजाघर के सिवा यात्रियों के दिलचस्पी की कोई वस्तु यहाँ नहीं है। मिलन का गिरजाघर अपनी आंतरिक सजावट और मोसाइक चित्रकारी के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है। मिलन का स्टेशन कदाचित् योरप में सबसे अच्छा है। सम्पूर्ण गिरजाघर करीरा के संगमरमर का बना है और इसमें कारिन्थियन बनावट के ऊँचे-ऊँचे स्तम्भ लगे हुए हैं। इसे बने अभी कुछ ही वर्ष हुए हैं।

मिलन इटली का व्यापारिक नगर है और इटली की बहुत-सी मुख्य-मुख्य व्यावसायिक संस्थाएँ इस नगर के बाह्य भाग में स्थित हैं।

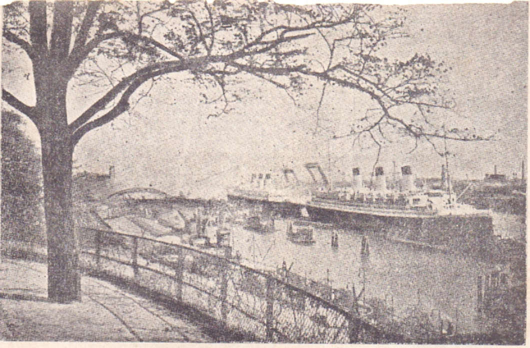
मुख्य बाजार बहुत सुन्दर है और कलापूर्ण ढंग से बसाया गया है।

इसके बाद हमने वेनिस की यात्रा की। मार्ग लम्बा और थकानेवाला था। मार्ग में हमें बहुत-सी झीलें मिलीं, जिनके किनारे पर सुन्दर बँगले बने हुए हैं। स्वास्थ्य-लाभ की दृष्टि से यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है। शनिवार का दिन था, इसलिए बहुत-से लोग अपने सप्ताहान्त की छुट्टी मनाने निकल पड़े थे। गाड़ी भरी थी और हर स्टेशन पर और भी भरती जा रही थी। इस छुट्टी का योरोपियों के जीवन में एक विशेष स्थान है। चाहे कारखाने हों, चाहे स्कूल या दफ्तर, दोनों सरकारी और व्यावसायिक, सब शनिवार को एक बजे बन्द हो जाते हैं। तब शहरों के रहनेवाले लगभग ८० प्रतिशत लोग, यदि वे बीमार या दो वर्ष से कम आयु के बच्चे नहीं हैं, बागों में या स्नान की जगहों में ग्रीष्म-काल की चमकीली धूप का आनन्द लेने को झुंड के झुंड निकल जाते हैं। स्थल की ओर से जाने में वेनिस का बाह्य भाग जरा मनहूस-सा दिखाई पड़ता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि एड्रियाटिक सागर में यह मुख्य बन्दरों में से एक है। वेनिस हम लगभग तीन बजे दिन को पहुँचे और पहुँचते ही हमारे सामने होटल के एजेंटों का एक झुंड आया। परन्तु कोई गड़बड़ नहीं हुआ। वे दो कतारों में खड़े हो गए थे और उस अवस्था में आप अपने मन का होटल बखूबी पसन्द कर सकते हैं। हम स्टेशन के करीब ही एक होटल में ठहराए गए, और यात्रियों के लिए यही सुविधाजनक भी होता है। इससे टैक्सी और कुलियों के भारी खर्च में किफायत भी होती है। होटल बहुत अच्छा नहीं था, परन्तु कम हवादार कमरे के कारण जो असुविधाएँ हुई थीं, उनकी बहुत कुछ पूर्त्ति यहाँ अच्छे भोजन से हो गई। हमें यहाँ थोड़े ही समय तक ठहरना था, इसलिए हमने स्थान बदलने की बहुत परवा न की। यहाँ का व्यय भोजन के सहित लगभग आठ रुपया प्रतिदिन था। यह व्यय औसत दर्जे का समझा जाता है।

लायड ट्रिस्टिनो लाइन, जिसके जहाज वेनिस से बम्बई तक आते-जाते हैं, यहाँ बहुत लोकप्रिय है, क्योंकि हमारे बहुत-से भारतीय यात्री सीधे यहाँ उतरते हैं। लंदन को रवाना होने से पूर्व वे प्रायः यहाँ एक रात व्यतीत करते हैं। इस तरह वेनिस में आपको वर्ष में किसी भी समय अपने देशवासियों के दर्शन हो सकते हैं। हमें बहुत से मित्रों से मिलने का यहाँ अवसर प्राप्त हुआ, जो वायना को विशेष चिकित्सा के लिए जा रहे थे।

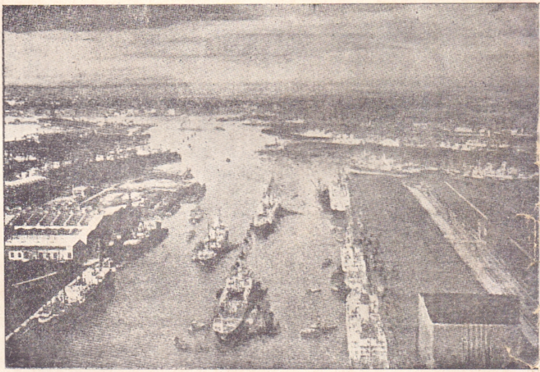
वेनिस कच्छ-प्रदेश में स्थित है, इसलिए सारा शहर नहरों से घिरा हुआ है। किसी भी इमारत में जाइए, आपको नहरों से होकर ही जाना होगा। हमारा होटल 'ग्रेंड कैनल' के किनारे पर था। यह शहर की मुख्य नहर है। नहरों के बीच में द्वीप की भाँति खड़ी इमारतों को देखना हमारे लिए एक अभूतपूर्व दृश्य था। यह दृश्य बहुत ही सुहावना मालूम पड़ता है।

तीसरे पहर हमने एक 'गोंडोल्ला' किराए पर लिया और नहर में लगभग ११ मील के भ्रमण का अत्यन्त आनन्द उठाया। निशा का दृश्य वास्तव में विराट् था। दोनों किनारों पर बिजली की हजारों बत्तियाँ जगमगा रही थीं और रात को दिन बना रही थीं। नवयुवक प्रेमी, खिलाड़ी, सुन्दरी युवतियाँ सब सैर करने को निकले थे। सुरीली आवाज में गाती हुई सुन्दर स्त्रियों और अच्छी पोशाक पहने हुए



हंबर्ग

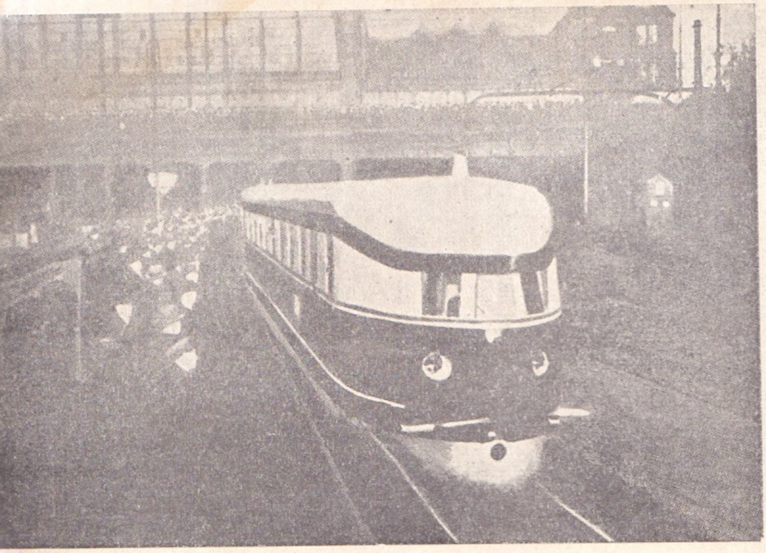
ऊपर : हंबर्ग बन्दर का एक दृश्य



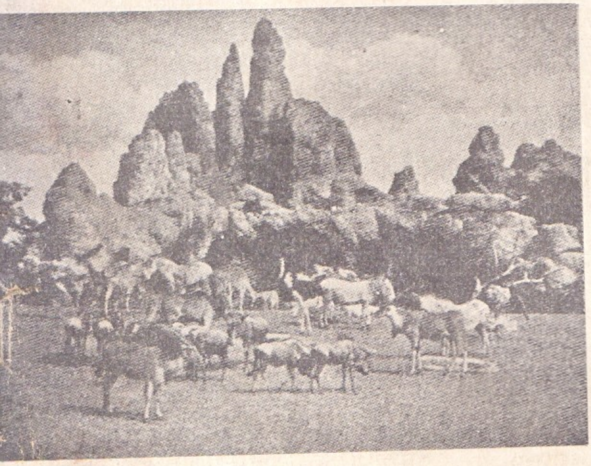
सामने : एल्ब नदी में स्टीमरों का आना-जाना



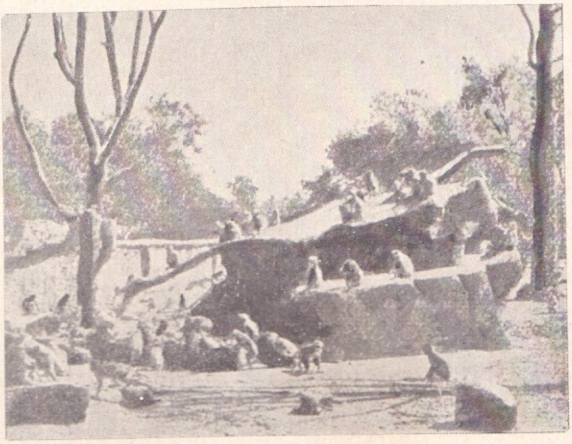
पार्श्व में : स्टेशन पर छुट्टी मनाने के लिए निकलनेवालों की भीड़



बाईं ओर : 'फ्लाइंग हंबर्गर' जो ७८ मील प्रति-घंटे की गति से चलता है



एक से वातावरण में रहनेवाले अफ्रीका के वनपशु (टीयर पार्क जू)

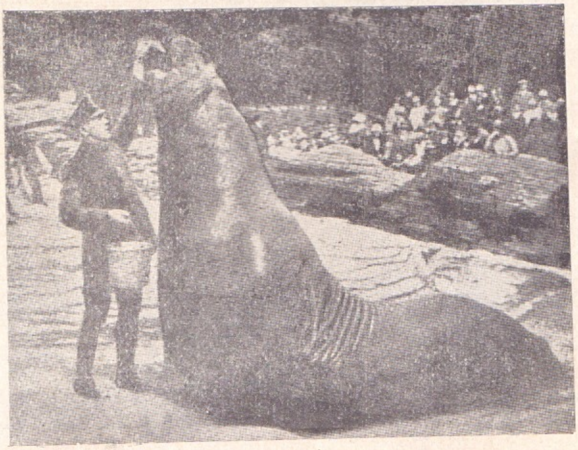


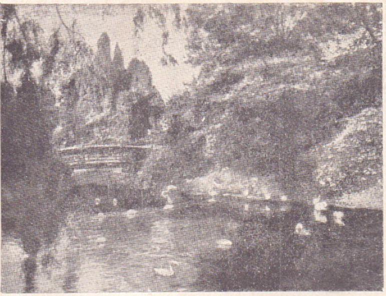
बंदरों की क्रीड़ास्थली (टीयर पार्क जू)

नीचे : जिराफ (टीयर पार्क जू)

नीचे : समुद्री हाथी (टीयर पार्क जू)







जल-पक्षियों का एक सुख-निवास (टीयर पार्क ज़ू)



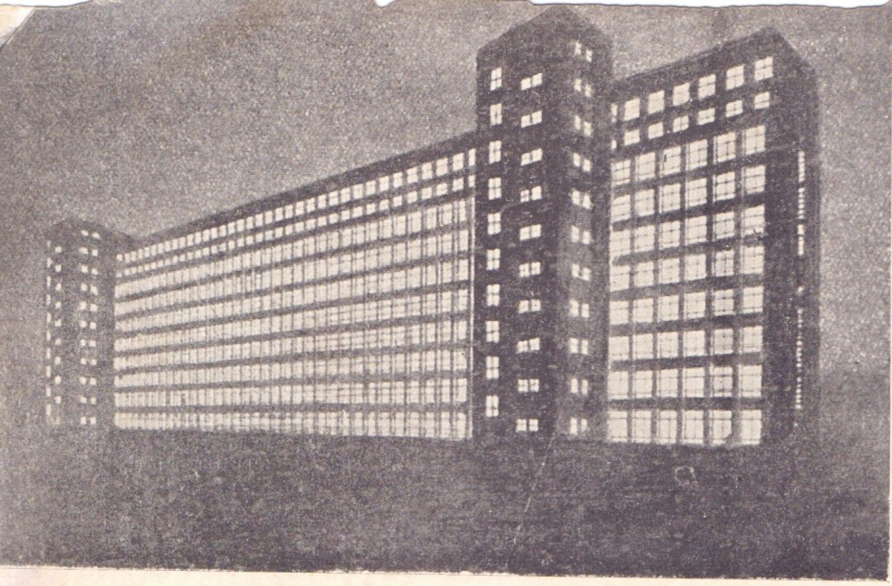
अपने बच्चे के साथ बाघ (टीयर पार्क ज़ू)



पहाड़ी बकरियाँ (टीयर पार्क ज़ू)

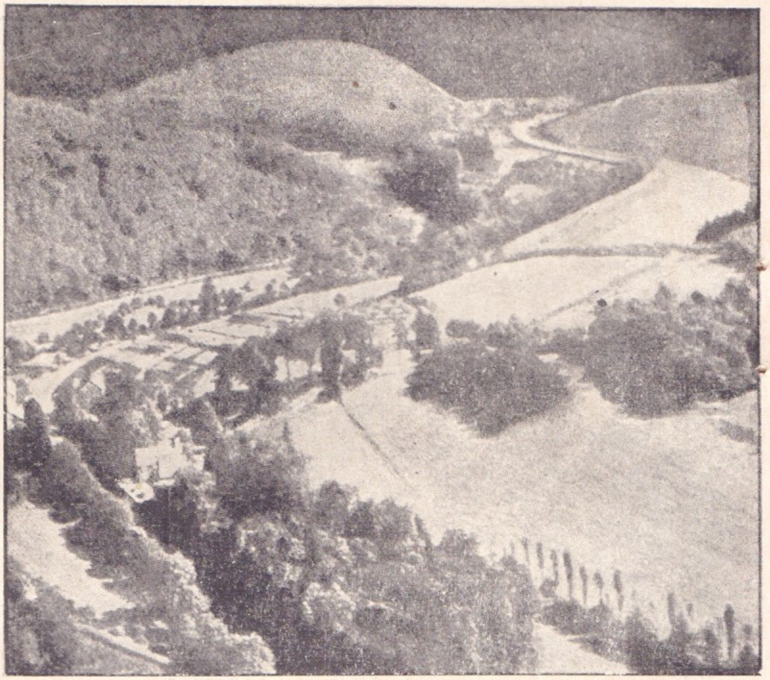
दाईं ओर : बैवेरियन अल्प्स का एक मनोरम दृश्य



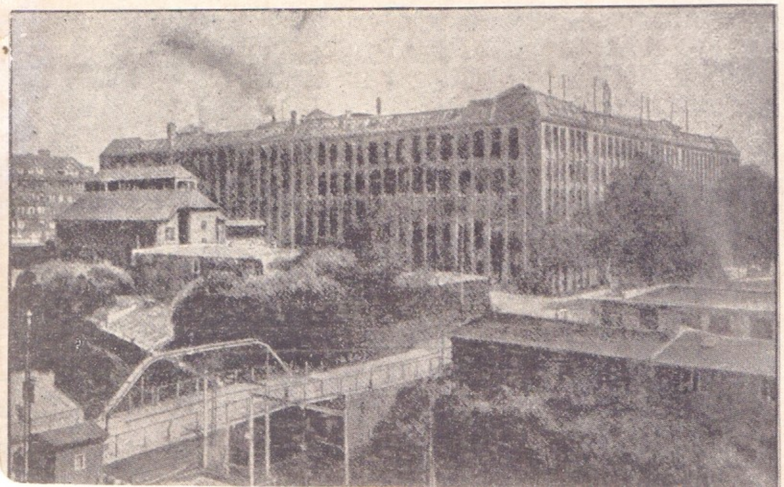


जर्मनी

बाईं ओर : विद्युत्-प्रकाश से युक्त सीमेन की इमारतों में से एक का रात्रिकालीन दृश्य



दाईं ओर : नगरनिवासियों के विहार के लिए बर्लिन का एक कृत्रिम वन



बाईं ओर : सीमेन के कारखाने का एक दृश्य

दर्शनीय पुरुषों से वह स्थान अत्यन्त रमणीक हो उठा था।

इसी समय हमारी नौका एक तंग नहर से गुजरी। यह ग्रैंड कैनाल की एक शाखा थी। यहाँ पानी से दुर्गन्ध आ रही थी, और यह हमें बहुत असुखकर प्रतीत हुआ। इस नहर के मार्ग से हम 'आह के पुल' के पास पहुँचे, जिसके पार से उत्पीड़न के दिनों में अभागे कैदी न्यायालय से कत्लगाह को ले जाए जाते थे। लार्ड बायरन ने अपनी एक अमर रचना के लिए यहाँ एक रात व्यतीत करके अनुप्राणिता प्राप्त की थी। सबेरे हम इस स्थान पर पहुँचे और उन गुफाओं को देखा, जिनमें बीते युग में दण्डित मनुष्य रक्खे जाते थे। नदी में एक घंटा भ्रमण करने के बाद हम अपने होटल को लौट आये और खाना खाया। भोजन बढ़िया था और हमें बहुत-सी अच्छी निरामिष वस्तुएँ खाने को मिलीं। वेनिस के ये होटल भारतीय यात्रियों का सत्कार करना जानते हैं, क्योंकि ये हमारी रुचि से बहुत अच्छी तरह परिचित हैं।

दूसरे दिन सबेरे जलपान के बाद हम १४वीं शताब्दी के एक भव्य महल में ले जाए गए। यह महल ग्रैंड कैनाल पर स्थित है और इसमें डोज लोग रहा करते थे। ये पहले वेनिस के शासक थे और अपने अपार धन और शौर्य के लिए सारे देश में विख्यात थे। यह लगभग २५० कमरों की एक विशाल इमारत है। इसमें इटली के बहुत-से प्रसिद्ध चित्र अंकित हैं और छत की मोसाइक शैली की कारीगरी प्रशंसनीय है।

सेंट मारकोंस का गिर्जा और 'बेल-टावर' वेनिस के एक फैशनेबिल मुहल्ले में स्थित हैं। नगर की बड़ी-बड़ी दूकानें भी यहीं हैं। हमने वेनिस की कौतूहलवर्धक वस्तुएँ खरीदीं और तब गिरजा देखने गये। यह गिरजा बहुत पुराना था, पर इसमें वह भव्य सजावट न थी, जो रोम के गिरजों में आमतौर पर देखने को मिलती है। किसी समय वेनिस तुर्कों के हाथ में था। कुछ प्राचीन तुर्की परिवार अब भी वहाँ रहते हैं।

वेनिस में कोई पुरातत्त्व-सम्बन्धी वस्तुएँ नहीं मिली हैं। यह नगर बहुत स्वच्छ भी नहीं है। इस शहर में नाविकों की भरमार रहती है, जो यहाँ प्रत्येक बार छुट्टी पाने पर दो-चार दिन ठहरते हैं। वेनिस का काँच का व्यवसाय बहुत विख्यात है। यहाँ की काँच की वस्तुओं की ११वीं शताब्दी से बड़ी माँग चली आ रही है और अब भी उम्दा कारीगरी की काँच की वस्तुओं के लिए यह नगर अपना निराला स्थान रखता है। नगर के प्रमुख काँच के व्यापारी से हम लोग मिले। उन्होंने हमें बड़े प्रेम से अपना कारखाना दिखलाया और काँच की बहुमूल्य वस्तुओं के निर्माण के विभिन्न प्रयोग बतलाए। चटर्जी साहब ने मेज की सजावट की काँच की चीजों के कुछ सेट माँगे। हमने 'आर्डर-बुक' भी देखा, जिसमें बहुत-से भारतीय नरेशों के बहुमूल्य मोसाइक और काँच की वस्तुओं के आर्डर दर्ज थे। प्रत्येक यात्री जो इस नगर में उतरता है, इस आश्चर्यजनक संस्था में ले जाया जाता है। यहाँ मोसाइक कारीगरी की वस्तुओं में नवयुतियाँ जिस चपल गति से पत्थर जड़ रही थीं, उसे देखकर हम दंग रह गए। यह कारीगरी वास्तव में बड़े ऊँचे दर्जे की है, पर साथ ही खर्चीली भी है। वेनिस में अपने ठहरने के दूसरे दिन संध्या को हम एक स्थानीय संगीत-भवन देखने गये। हम वहाँ एक घंटे से अधिक न ठहर सके; क्योंकि वहाँ जो नृत्य हो रहे थे, वे हमें पसन्द नहीं आए। इनमें कला के बजाय

कामुकता का ही अधिक प्रदर्शन था और दर्शक भी शिष्ट-वर्ग के नहीं थे।

पूर्णरूप से देखने से वेनिस हमें वैसा पसन्द नहीं आया, जैसा कि उसका वर्णन किया जाता है। हाँ, नहर का भ्रमण निःसन्देह बहुत आनन्द-प्रद है।

दूसरे दिन दो बजे हम आस्ट्रिया की राजधानी वायना के लिए गाड़ी पर सवार हुए। यह यात्रा जरा लम्बी थी और चूंकि हम कुछ अनुभव प्राप्त करना चाहते थे, इसलिए हम सब ने तीसरे दर्जे का टिकट खरीदा। केवल चटर्जी साहब हमारा साथ न दे सके, क्योंकि उनके पास इटालियन रेलवे का पास था। तीन विभिन्न स्थानों में हमें गाड़ी बदलनी पड़ी और इटली की सीमा पर चुंगीवालों ने बड़ी कड़ाई के साथ हमारे असबाब की जाँच की। उसके बाद हम वायना जानेवाली गाड़ी पर सवार हुए और आस्ट्रियन 'टिरोल' से होकर गुजरे। यह टिरोल यात्रियों के समक्ष एक भव्य दृश्य उपस्थित करता है। प्रत्येक वर्ष हजारों यात्री यहाँ छुट्टी बिताने आते हैं। यहाँ बहुत-सी स्वास्थ्यप्रद जगहें हैं, जहाँ लोग स्वास्थ्य-लाभ करने पहुँचते हैं। यहाँ बहुत-से प्राकृतिक सोते हैं, जो रोग-नाशक गुणों के लिए विख्यात हैं।

दूसरे दिन करीब दो बजे हम वायना पहुँचे और पूर्व व्यवस्था के अनुसार एक नवयुवक विद्यार्थी हमसे मिलने आया। श्री चटर्जी साहब का इस विद्यार्थी से परिचय था। नगर के मध्य में हम एक दूसरे दर्जे के होटल में ठहराए गए। चटर्जी साहब को वायना में एक महीना ठहरना था, इसलिए वे दूसरे दिन एक किराए के मकान में चले गये। अब मैं और मेरे मित्र श्रीयुत लाल अकेले रह गए। वायना में हम सात दिन ठहरे।

किसी समय वायना योरप में 'नगरों की रानी' कहलाता था और सभ्यता और ऐश्वर्य का केन्द्र था। इस समय इसकी जनसंख्या २० लाख है और इसमें बहुत-से सुन्दर बाग, संग्रहालय और महल हैं। इसका नकशा रोम से अधिक सुन्दर है। सड़कें अत्यन्त स्वच्छ और चौड़ी हैं। यहाँ की नाटकशालाएँ सारे योरप में विख्यात हैं। एक दिन हम नाटक देखने गये और यद्यपि हम भाषा नहीं समझ सके, तथापि यहाँ का कलापूर्ण नाटच हमें पसन्द आया। रंगमंच अब सर्वथा आधुनिक रूप में है और विशाल यन्त्रों से युक्त है। नाटकशाला की इमारत का क्या कहना! इसके निर्माण में अपार धन लगा होगा। यह इतनी सुन्दर है, जितना महल। यह पत्थरों की बनी है और बहुत सुन्दर नक्काशी और मूर्त्तियों से सुशोभित है।

वायना चिकित्सा-पद्धति का एक प्रसिद्ध केन्द्र है। प्रतिवर्ष यहाँ सहस्रों विद्यार्थी आधुनिक शल्य-विद्या तथा अन्य चिकित्सा-प्रणालियों में योग्यता प्राप्त करने आते हैं। यद्यपि इसका राजकीय ठाट-बाट तो अब कुछ बाकी नहीं रहा, तथापि कला और शिक्षण के लिए इसका स्थान अब भी वैसा ही गौरवपूर्ण है।

आस्ट्रिया की आर्थिक स्थिति निश्चय ही बुरी है। आस्ट्रिया-हंगरी का व्यवसाय-प्रधान भाग अब जेकोस्लोवाकी के अन्तर्गत है और वर्तमान आस्ट्रिया केवल कृषि-प्रदेश ही रह गया है। इस राज्य की जनसंख्या ६० लाख से ऊपर है, जो सब जर्मन है। राजनैतिक कठिनाइयों के कारण यहाँ के जर्मन जर्मनी से नहीं मिल सकते। वायना का शाही महल अब एक संग्रहालय में परिणत है। हमारे गाइड ने, जो एक चतुर व्यक्ति था, हमें महल घुमाकर दिखाया

और विस्तार के साथ हमें प्रदर्शन के लिए रक्खी गई ऐतिहासिक वस्तुओं का महत्त्व बतलाया। इसी महल में समस्त शाही खजाना भी रक्खा है। महारानी मेरिया थेरेसा, जो किसी समय आधे योरप पर शासन करती थीं, यहीं रहती थीं। बड़ी-बड़ी गैलरियों में बहुत-से सुन्दर चित्र और शाही जिरहबख्तर रक्खे हैं।

भूतपूर्व बादशाह का ग्रीष्म-निवास, जो 'स्कोन-प्रौन' के नाम से विख्यात है, एक अत्यन्त सुन्दर आरामगृह है। यह बाग योरप के श्रेष्ठ बागों में से एक है और अब भी राष्ट्र की ओर से इसकी व्यवस्था का समुचित प्रबन्ध है। महल के भीतरी भाग के भी संरक्षण का वैसा ही प्रबन्ध है। यात्रियों को यहाँ वह महान् ठाट-बाट देखने को मिलता है, जिसके बीच में यहाँ के प्राचीन सम्राट् रहा करते थे।

हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट वायना से बहुत दूर नहीं है, इसलिए हम वहाँ भी गये। हमारे मित्र श्रीयुत रामेश्वरदयाल वहीं ठहरे थे। हम वहाँ शाम को पहुँचे और स्टेशन के निकट एक होटल में ठहरे। मिस्टर दयाल ने अपना पता हमें दिया था, इसलिए हमने होटल के दरबान की सहायता से उन्हें खोज लिया।

बुडापेस्ट में हम जितने समय तक रहे, श्रीयुत दयालजी ने अपना सारा समय हमारे मनोरंजन में लगाया। यह शहर डैन्यूब नदी के तट पर है। नदी के दोनों किनारों पर बहुत-से विशाल होटल और बहुसंख्यक उपहार-गृह धूमधाम से चल रहे हैं। राजनैतिक दृष्टि से हंगरी बहुत निर्बल है और कुछ कृषि-सम्बन्धी यन्त्र बनानेवाली दूकानों के अतिरिक्त यहाँ कोई और व्यवसाय नहीं है। अब यह मुख्यतः कृषि-प्रधान देश है और गेहूँ, जौ और मक्का की पैदावार होती है। यह पैदावार अधिकांश में इटली को भेजी जाती है।

६—जर्मनी का प्रधान व्यापारिक नगर : हम्बर्ग

इस लेखमाला को आरम्भ करते समय मैं पाठकों को बता चुका हूँ कि मेरे योरप जाने का उद्देश्य दोहरा था। वायना का परिभ्रमण पूरा करने के बाद मैंने बहुत कुछ स्वास्थ्य-लाभ कर लिया था। अब मुझे सस्ते प्रकाशनों के लिए एक रोटरी मशीन खरीदने जर्मनी जाना था। मेरे मित्र श्रीयुत बी॰ एन॰ दास गुप्त भारतवर्ष में उसी फर्म के प्रतिनिधि हैं, जिसे मैंने एक खास तरह की रोटरी मशीन तैयार करने का आर्डर दिया था। उन्होंने मुझे अपने हम्बर्ग के कार्यालय द्वारा यह सूचना दिलवाई कि वे हम्बर्ग में मेरी प्रतीक्षा करेंगे। मुझे उनका पत्र वायना में मिला। मेरे मित्र श्रीयुत बनवारीलाल के सामने कोई विशेष कार्यक्रम न था, इसलिए वे मेरे साथ हम्बर्ग चलने के लिए राजी हो गए। इस निश्चय के अनुसार हम एक लम्बी यात्रावाली रेलगाड़ी पर सवार हुए, जो २४ घंटे की यात्रा के बाद हम्बर्ग पहुँचती थी। इस यात्रा में हम कुछ बड़ी सुन्दर जगहों से होकर गुजरे। बैवेरिया की आल्प्स-पर्वतमाला अपने उच्च शिखरों और उनके चरणों पर लोटी बहुत-सी झीलों के कारण बहुत ही सुन्दर दिखाई पड़ती है।

सौभाग्य से चुंगी के अधिकारी हमारे साथ बहुत ही मित्र भाव से पेश आए और हमें कोई कष्ट नहीं हुआ। श्रीयुत दास गुप्त से हमारी भेंट हो गई और वे हमें स्टेशन के करीब एक होटल में ले गये, जहाँ हम आराम के साथ ठहराए गए। हम्बर्ग में हमारा कार्यक्रम बहुत लम्बा रहा, पर मैंने वहाँ के जिन विभिन्न व्यावसायिक कारखानों को देखा, उनका विस्तृत वर्णन करके मैं पाठकों को थकाना नहीं चाहता। मैं केवल संक्षेप में वर्तमान व्यावसायिक उन्नति की मोटी-मोटी बातें ही बतलाऊँगा। हम्बर्ग के निर्यात व्यापार का ब्योरेवार अध्ययन करने से इसका भली भाँति परिचय मिल जाता है।

हम्बर्ग बहुत ही सुन्दर शहर है। इसमें बड़ी-बड़ी नहरें हैं। यह जर्मनी का वेनिस कहा जा सकता है। यह बहुत सघन बसा है। जन-संख्या लगभग २० लाख होगी। हम्बर्ग का इतिहास प्रबल सम्राट् चार्ल मेगन के समय से आरम्भ होता है। कहा जाता है कि उसी ने इस नगर की नींव डाली थी। पहले यह एक पृथक् राज्य की राजधानी था और सत्रहवीं शताब्दी में यह जर्मन साम्राज्य का स्वतन्त्र शाही नगर माना जाता था। १९वीं शताब्दी के अन्त में हम्बर्ग जर्मन-चुंगी-संघ के अन्तर्गत आ गया, इससे जर्मनी के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वृद्धि करने में इस नगर को बहुत महत्त्व मिला। गत योरपीय महायुद्ध के आरम्भ होने के समय यह योरप का सबसे बड़ा बन्दरगाह था। लन्दन के बाद दूसरा नम्बर इसी का था। भूतपूर्व कैसर के शासन-काल में भी हम्बर्ग स्वतन्त्र नगर बना रहा। इसके अपने पृथक् कानून थे और इसका शासन म्युनिसिपैल्टी के हाथ में था। यह जर्मनी का अब भी सबसे बड़ा बन्दरगाह है। सच तो यह है कि जर्मनी का ८० प्रतिशत निर्यात व्यापार इसी शहर से होता है। यह एल्ब नदी पर स्थित है। यह नदी हमारी गंगा के समान चौड़ी तो नहीं है, पर बहुत तेज बहती है। जर्मनी में अगणित जलमार्ग हैं, जो एक नगर से दूसरे को जाते हैं और विभिन्न नदियों में मिले हैं। ये मार्ग हम्बर्ग में आकर एल्ब से मिल गए हैं। गत शताब्दी में इन बहु-संख्यक जलमार्गों से जर्मनी की औद्योगिक उन्नति में बहुत सहायता मिलती रही है। दूर के नगरों को व्यावसायिक रूप देना इन्हीं के द्वारा सम्भव हो सका।

मैं श्रीयुत दास गुप्त का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने मुझे वर्तमान जर्मनी की औद्योगिक स्थिति बतलाने और हम्बर्ग के इस प्रकार की दिलचस्पी के विभिन्न स्थानों के दिखलाने का कृपापूर्वक कष्ट किया। इससे मुझे जर्मनी के वर्तमान निर्यात-व्यापार का एक व्यापक ज्ञान हो गया। यह व्यापार इधर जब मैं वहाँ था, बहुत गिरती हुई अवस्था में मुझे प्रतीत हुआ। हमारे पाठक यह भली भाँति जानते हैं कि युद्ध से पहले के दिनों में जर्मनी का मशीनों और वस्त्रों का व्यापार सबसे अधिक बढ़ा-चढ़ा था। वास्तव में उन्नति के उन गुजरे हुए दिनों में जर्मनी के चारों तरफ से सम्पत्ति आकर जमा हुई थी और उद्योग-प्रधान नगरों में हमें अब भी इसका परिचय मिलता है।

लगभग ३ बजे हम हम्बर्ग पहुँचे। स्नान के बाद श्रीयुत दास गुप्त हमें अपने कार्यालय में ले गए। उनका कार्यालय हम्बर्ग के कारबारी भाग में है। यहाँ बैठकर हमने एक कार्यक्रम निश्चित किया। यहाँ मैं उन सुविधाओं का उल्लेख कर देना चाहता हूँ, जो जर्मन-सरकार

यात्रियों को प्रदान करती है। आजकल जर्मनी की विनिमय की दर बहुत ऊँची है और जिन देशों ने स्वर्ण-माध्यम का परित्याग कर दिया है, उनकी करेन्सी के विरुद्ध पड़ती है। इसलिए जर्मन-सिक्का अर्थात् मार्क बहुत महँगा है। परन्तु यात्रियों के लिए जर्मन-सरकार ने एक विशेष व्यवस्था कर दी है, जिसके अनुसार यात्री मार्क उतनी ही सस्ती दर से प्राप्त कर सकते हैं, जितनी कि शिलिंग। वर्तमान विनिमय की दर के अनुसार यात्रियों को एक मार्क के लिए एक रुपया से अधिक देना पड़ता, परन्तु यात्री-मार्क उन्हें करीब-करीब एक शिलिंग में ही मिल जाता है, जो वर्तमान विनिमय की दर से ४० प्रतिशत कम पड़ता है। यात्रियों को जर्मनी का भ्रमण करने के लिए यह अच्छा प्रलोभन है। जर्मनी में प्रवेश करने से पूर्व वायना में मैंने कई सौ पौण्ड के यात्री-मार्क भुना लिए थे। हमारी जर्मनी की यात्रा में इससे बड़ी सहायता मिली। इस यात्री-मार्क की बदौलत यात्रियों को जर्मनी में आस्ट्रिया की अपेक्षा कम व्यय करना पड़ता है। इस सुविधा ने जर्मनी को एक ऐसा स्थान बना दिया है, जहाँ प्रतिवर्ष संसार के विभिन्न भागों से सहस्रों यात्री जाते हैं। हमारे पास सिक्के कम थे, इसलिए शाम को हम टामस कुक के कार्यालय में गये और हमने कुछ चेक तुड़ाए और व्यय के लिए जर्मन-मार्क प्राप्त किए। बाद को श्रीयुत दास गुप्त हमें एक निरामिष भोजनालय में ले गए, जहाँ हमें क्षुधा शान्त करने के लिए बहुत से स्वादिष्ट भोजन मिल सकते थे। हम बहुत थक गए थे, इसलिए वहाँ से अपने होटल को लौट आये और दूसरे दिन सबेरे ८ बजे तक पूर्ण रूप से विश्राम किया।

दूसरे दिन हमारा कार्यक्रम एक 'कोआपरेटिव इंडस्ट्री' देखना निश्चित हो चुका था। इसके लिए हम्बर्ग बहुत विख्यात है। इस कोआपरेटिव फैक्टरी के मैनेजर ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक हमारा स्वागत किया और हमें अच्छी तरह से सब स्थान घूम-घूमकर दिखाया। प्रायः सभी कार्यकर्त्ता अच्छी पोशाकों में थे और बिना किसी जल्दबाजी के शान्त भाव से अपना कार्य कर रहे थे। रासायनिक उन्नति और कार्य्यकर्त्ताओं की पूर्णता देखकर हम दंग रह गए। जर्मनी का यह कोआपरेटिव आन्दोलन विद्यार्थियों के गम्भीर अध्ययन के योग्य है। जर्मनी का यह आन्दोलन यहाँ तक सफल हुआ है कि इसके व्यवसाय की एक खास शाखा में विभिन्न स्थानों पर ५० हजार से अधिक लोग काम कर रहे हैं और सदस्यों को सस्ते उत्पादन की सुविधाएँ और एक अच्छा वार्षिक बोनस प्रदान कर रहे हैं। यदि मैं विस्तार के साथ इस विषय का यहाँ वर्णन करूँ, तो पाठकों का जी ऊब जायगा। उन्हें इतना ही जानना काफी होगा कि हमारे देश में कोआपरेटिव आन्दोलन की, जो अभी अपनी बाल्यावस्था में है, उन्नति करने की बड़ी सम्भावना है।

अभी तक इटली और आस्ट्रिया हंगरी की यात्रा में मुझे योरप की औद्योगिक उन्नति के अध्ययन करने का बहुत कम अवसर मिला था। सच तो यह है कि इटली औद्योगिक देश कहा ही नहीं जा सकता। यद्यपि वर्तमान फैसिस्ट शासन ने अपने कार्यक्रम में देश की औद्योगिक उन्नति भी रक्खी है, तथापि जन-संख्या का आधे से अधिक भाग अभी तक कृषि-कार्य में ही लगा हुआ है। कृषि से सम्बन्ध रखने-वाले कुछ कारखानों का उल्लेख किया जा

सकता है, जैसे डेरी या केनिंग फैक्टरियाँ। इटली में किसी कदर तम्बाकू की खेती होती है, परन्तु इसका व्यवसाय सर्वथा सरकार के अधिकार में है। इसलिए सिगरेट के कारखाने कम हैं और जनता को सिगरेट पीने का बहुत शौक भी नहीं है। बिजली की मशीनें बनाने में इटली शीघ्रता के साथ उन्नति कर रहा है और कुछ मोटरकार बनानेवाले कारखाने भी हैं। प्राचीन आस्ट्रो-हंगारियन साम्राज्य का औद्योगिक प्रदेश अब जेकोस्लावोकिया से सम्बद्ध है, इससे माल तैयार करनेवाले कारखानों से आस्ट्रिया का खंडित देश शून्य दिखाई पड़ता है।

लोक-व्यवसाय की दृष्टि से जर्मनी, इटली, आस्ट्रिया और हंगरी से इतना भिन्न है कि यह अपने पड़ोस के देशों से सामाजिक, औद्योगिक और राजनैतिक सभी तरह से सर्वथा पृथक् देश प्रतीत होता है। जर्मनी के निवासियों का स्वभाव भी स्पष्ट रूप से भिन्न प्रतीत होता है। श्रमिक लोग प्रायः सरल, अपने कर्त्तव्यों से प्रायः परिचित और धुनी होते हैं और इटालियनों की भाँति वाचाल नहीं होते। मैंने बहुत-से धुरंधर व्यापारियों से भेंट की, उनकी सफलताओं के बारे में उनसे बातें कीं और औद्योगिक उन्नति के सम्बन्ध में उनका क्या दृष्टिकोण है, इसका अध्ययन किया। ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से उनकी सफलता का रहस्य मालूम हो जाता है। वहाँ श्रमिकों को कल्पनाक्षम, उत्साहपूर्ण और परिश्रमी होना सिखाया जाता है। कठोर विनियम और पूर्ण शिक्षण के द्वारा श्रमिकों के मस्तिष्क में क्रमशः अपने उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य को समझने और प्रत्येक ब्योरे को अच्छी तरह जानने का भाव जागृत हो जाता है। परिश्रमशील मनुष्यों के उत्पन्न होने में देश का जलवायु भी सहायक होता है। सादा रहन-सहन और पास-पड़ोस की स्वच्छता के कारण भी वहाँ योरप के दक्षिणी राज्यों की अपेक्षा अधिक अच्छे श्रमिक उत्पन्न होते हैं। परन्तु व्यापार के मामले में उन्हें इँगलैंड के सामने झुकना पड़ता है। वे अपनी वस्तुओं को विभिन्न बाजारों में पहुँचाने का कार्य उतने अच्छे वैज्ञानिक ढंग से नहीं कर सकते, जैसा कि अँगरेज लोग करते हैं। इँगलैंड का व्यापारिक संघ कहीं अधिक पूर्ण और प्रभावोत्पादक है। जर्मन लोग अपनी वस्तुओं का विज्ञापन करना नहीं जानते और उन्हें संसार के बाजारों की समस्याओं का वैसा पूर्ण ज्ञान भी नहीं है, जैसा कि अमरीकनों और अँगरेजों को है। उनकी उत्पादन शक्ति अद्भुत है, सोचने और आविष्कार करने की वे आश्चर्यजनक समता रखते हैं, परन्तु अपनी वस्तुओं के बेचने की समस्याओं को सुलझाने की क्षमता वे नहीं रखते। अपने व्यापारिक कार्यों पर नजर रखना और अपने ग्राहकों की माँगों पर तुरन्त और मुस्तैदी के साथ ध्यान देना अँगरेज लोग ही जानते हैं। परन्तु सफाई में उनका दर्जा ऊँचा है। उनके कारखाने अच्छे नकशे पर खड़े किए जाते हैं। वे अधिक हवादार होते हैं और उनमें सफाई की अधिक अच्छी व्यवस्था रहती है। दफ्तर भी अत्यन्त स्वच्छ होते हैं। कारखाने की छोटी-मोटी बात पर भी बहुत ध्यान दिया जाता है। उन्नति का क्रम जारी रखने के लिए प्रत्येक बड़े कारखाने में खोज और प्रयोग के लिए अलग विभाग रहता है और देश के आला दिमाग सदैव उनके सम्पर्क में रहते हैं। उद्योग और व्यवसाय की उन्नति में विज्ञान से भी पूरी-पूरी सहायता ली जाती है।

जर्मनी के माल की सबसे अधिक निकासी

हम्बर्ग से ही होती है, इसलिए मैंने वहाँ कुछ दिन ठहरकर लोगों की व्यावसायिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करना आवश्यक समझा। संसार के बड़े-बड़े आयात-निर्यात का व्यवसाय करनेवाले फर्मों के अतिरिक्त जर्मनी के भी प्रायः सभी बड़े फर्मों के प्रतिनिधि हम्बर्ग में रहते हैं। बहुत-सी अमरीकन और इँग्लिश एजेंसियाँ और निर्यात-फर्म यहीं हैं। भारतीय फर्मों में कदाचित् श्रीयुत गुप्त बहुत अच्छा कारबार कर रहे हैं। एक भारतीय ट्रेड कमिश्नर भी वहाँ रहता है, जो अनुमान किया जाता है कि भारत-सरकार को भारत के साथ जर्मनी के व्यापार के सम्बन्ध में सलाह देता है। परन्तु भारतीय फर्म इस प्रबन्ध से वास्तव में कोई लाभ उठाते हैं, यह सन्देह-जनक है।

एक दिन इन ट्रेड कमिश्नर श्रीयुत गुप्त से भारत से जर्मनी में जानेवाले माल के सम्बन्ध में मेरी संक्षेप में बातें हुई और मुझे यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि जर्मन-सरकार ने भारत से माल मँगाना बहुत कम कर दिया है, यद्यपि भारतवर्ष अब भी जर्मनी से बहुत कुछ मशीनें खरीदता है। उनकी रिपोर्ट भारतीय पत्रों में प्रकाशित हो चुकी है और इस मामले में असेम्बली में प्रश्न भी हुए हैं, परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। अब समय आ गया है कि भारत-वर्ष जर्मनी से एक अलग व्यापारिक समझौते की माँग उपस्थित करे, नहीं तो व्यापार का पलड़ा प्रतिवर्ष भारतवर्ष के विरुद्ध होता जायगा। जर्मनी ने खाद्य अन्न और अन्य कच्चा माल भारत-वर्ष से मँगाना बहुत कुछ बंद कर दिया है। यह भारतीय हितों के लिए बहुत ही विघातक है।

यथेष्ट रूप से प्राचीन नगर होने पर भी हम्बर्ग अत्यन्त सुन्दर है। मुझे मालूम हुआ कि यह संसार के अत्यन्त सुन्दर बन्दरगाहों में से एक है। बड़े-बड़े व्यापारिक मुहल्लों में इसके कारबार की छाप स्पष्ट प्रतीत होती है। एल्ब नदी जहाँ शहर के बाहर निकलती है, वहाँ मछुओं का एक रमणीक टापू है। सप्ताहान्त की छुट्टियों में शहर के निवासी नदी और इस टापू पर आनन्द मनाते हैं। हम्बर्ग और अन्य मनोरम जगहों के बीच नदी के उतार और चढ़ाव दोनों ओर समय से स्टीमर आते-जाते रहते हैं।

हम्बर्ग के क्रय-विक्रय का केन्द्र जो नगर की मुख्य नहर पर है, सुसज्जित स्त्री-पुरुषों से सदैव सुन्दर बना रहता है। हम्बर्ग में कई विभागीय भाण्डार हैं और वे सब कलकत्ता के ह्वाइट वे के भाण्डार से बहुत बड़े होंगे।

जो लोग हम्बर्ग की यात्रा करते हैं, वे यहाँ का आश्चर्यजनक ज्यालोजिकल गार्डन देखे बिना नहीं रहते। यह गार्डन हेगेन बेक के परिवार के अधिकार में है और टीयर पार्क के नाम से विख्यात है। यह बाग बहुत ही भव्य ढंग से लगाया गया है और इसमें संसार के बहुत-से भागों के पेड़-पौधे मिलते हैं। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसमें पशु-पक्षियों को करीब-करीब वही स्वाधीनता दी जाती है, जो उन्हें उनकी प्राकृतिक अवस्था में प्राप्त रहती है। वे पिंजड़ों में यहाँ बन्दी नहीं रक्खे जाते और जहाँ तक सम्भव होता है, वे अपने स्वभाव के अनुकूल वातावरण में ही रक्खे जाते हैं। उनकी गिरोहबन्दी उसी तरह की जाती है, जिस तरह अपनी जन्मभूमि में वे स्वयं करते हैं। इस बाग को घूमने में हमें पूरा दिन लग गया, परन्तु हमें आनन्द भी बहुत प्राप्त हुआ।

एक दिन हम एक खास तरह के बोट में नदी के उतार की ओर 'ब्लैंकिनीज' के नाम से

विख्यात एक आश्चर्यजनक स्थान देखने गये। यहाँ से सम्पूर्ण नदी का दृश्य बहुत ही सुन्दर दिखाई पड़ता है। नदी हम्बर्ग से मीलों चौड़ी होती हुई समुद्र की ओर बहती है। पूरा फासला ३२ मील से कुछ ऊपर होगा। एक पहाड़ी की चोटी से जो लगभग एक हजार फुट ऊँची होगी, एल्ब का यह दृश्य देखते ही बनता है। हरे पेड़ों की छाया के नीचे भीनी महक से युक्त गुलाब के बगीचों में हमें विश्रान्ति का इतना अधिक अनुभव हुआ कि मेरे मित्र श्रीयुत लाल एक झपकी लेने से बाज न रह सके।

जिसने किसी दिन सन्ध्या को सेण्टपाली, जहाँ जहाजी लोग आमोद-प्रमोद के लिए जाते हैं, न देखी, उसने मानो यहाँ आकर कुछ नहीं देखा। यद्यपि यह सच है कि सुरुचि का यहाँ बहुत कम ध्यान रक्खा जाता है, तथापि ध्यान-पूर्वक निरीक्षण करनेवाले को सेंटपाली जैसे स्थान बहुत कम मिलेंगे। सब तरह के विचित्र नमूने यहाँ मिलते हैं, वायुमण्डल में विचित्र सुगन्ध व्याप्त रहती है और तेज रोशनी आँखों को चकाचौंध कर देती है। केफों में अलकाजार बहुत बदनाम है, जहाँ रात-रात भर नाच-गान और आमोद-प्रमोद होता रहता है। यहाँ के रात्रिजीवन की हमने एक झलक देखी और १२ बजे से पहले ही शीघ्रतापूर्वक उस स्थान से हट आये। यहाँ हमारी एक पंजाबी नाविक से भेंट हुई। ये महाशय हम्बर्ग में १५ वर्ष से अधिक समय से रह रहे हैं। उन्होंने हमें भोजन के लिए निमंत्रित किया, परन्तु हमने बहाना कर दिया और बड़ी कठिनाई से उनसे पिंड छुड़ाया। वे नाविकों के लिए एक दूकान खोले हुए हैं और हमें उनकी दशा अच्छी प्रतीत हुई।

हम्बर्ग में हवाई जहाजों का एक भारी अड्डा है और कदाचित् यह जर्मनी के सर्वोत्तम अड्डों में से एक है। स्वयं हवाई स्टेशन एक आश्चर्य की वस्तु है और भविष्य की उपयोगिता को खयाल में रखकर यह निर्मित हुआ है। इसकी सजावट खर्चीली और स्थिति विचित्र है। मैं और श्रीयुत गुप्त एक दिन हवाई जहाज से उड़े और हम्बर्ग की ऊपर से सैर की।

कोई आधुनिक जर्मन-स्कूल देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी। श्रीयुत दास गुप्त ने मेरे लिए इसका प्रबन्ध कर दिया। स्कूल शहर के एक अत्यन्त स्वच्छ भाग में स्थित था। प्रधान अध्यापिका ने नियमपूर्वक हमारा स्वागत किया और हमें स्कूल में घुमाया। स्कूल में ४ से १० वर्ष तक के विद्यार्थी थे और उनकी संख्या लगभग २०० थी। उनकी पोशाकें बहुत साफ-सुथरी थीं। आरम्भिक विज्ञान और भूगोल की कक्षाओं में हम शीघ्र ही ले जाए गए। इन कक्षाओं में जो अपरेटस, माडल और बहुत-से दूसरे यन्त्र थे, उन्हें देखकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। हमारे पूछने पर कि आरम्भिक पाठ-शालाओं में कितने अपरेटसों की आवश्यकता पड़ती है, अध्यापक ने बतलाया कि इसके लिए ५०,००० मार्क से कम नहीं लगते। कमरे-कमरे से लेकर वह स्थान हमें भली भाँति दिखाया गया। लड़के बहुत तन्दुरुस्त थे और उन्हें प्रायः सभी विषयों में व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक पाठ उनके लिए रोचक बनाया जाता है। घर पर करने के लिए उन्हें कोई काम नहीं दिया जाता। जो कुछ भी सीखते हैं, स्कूल में ही सीखते हैं। टिफिन के समय उन्हें मुफ्त में जलपान कराया जाता है, जिसमें पोषक अंश यथेष्ट रूप में विद्यमान रहता है। नेचर स्टडी के लिए स्कूल से सम्बद्ध बाग से बालकों की

रुचि और उनकी शिक्षा का पता चलता है। प्रत्येक लड़के को मुफ्त में पुस्तकें मिलती हैं और प्रारम्भिक अवस्था में उनके माता-पिता से कोई फीस नहीं ली जाती। जर्मनी में सर्वत्र अनिवार्य शिक्षा है।

हम्बर्ग में सात दिन रहने के बाद हम बर्लिन के लिए 'फ्लाइंग हम्बर्ग' से रवाना हुए। इसने हम्बर्ग और बर्लिन के बीच १७९ मील का फासला ७८ मील प्रतिघंटा के हिसाब से तय किया।

७—जर्मनी का नागरिक जीवन

बर्लिन योरपीय महाद्वीप में दूसरा सबसे बड़ा नगर है। इसका जलवायु बहुत ही अच्छा है। युद्ध के पूर्ववर्ती दिनों में जर्मन-संस्कृति का केन्द्र होने के कारण यह अपनी ओर यात्रियों के अपार जन-समूह को आकृष्ट किया करता था। युद्ध ने जर्मन देश को निर्धन बना दिया था, तथापि वह इस महान् नगर को इसकी शोभा और आनन्द से च्युत नहीं कर सका। इसकी अवस्था बहुत अच्छी है और यात्री का ध्यान, जो बात सबसे अधिक आकर्षित करती है, वह है सड़कों और रास्तों की हद दर्जे की स्वच्छता। कहीं भी किसी तरह का कूड़ा इकट्ठा नहीं होने पाता। यहाँ की जनता के रहन-सहन को उच्च कोटि का बनाए रखने में इस स्वास्थ्यकर और साफ-सुथरे नगर का बहुत बड़ा हाथ है। इसमें सन्देह नहीं कि आर्थिक दृष्टि से लोगों की हालत बहुत कुछ गिर गई है, तथापि उन्होंने अपनी यथा-सम्भव स्वच्छ रहने की आदत नहीं छोड़ी है। वे स्वच्छता के अपने आदर्श को जीवित बनाए हुए हैं। नगर के चारों ओर बहुत-से सुन्दर उपवन और कृत्रिम वन हैं, जहाँ प्रति सप्ताह नगर निवासी सप्ताह भर की थकावट के पश्चात् जाते हैं और जीवन का आनन्द लेते हैं। ये सुन्दर जगहें लोगों को नागरिक जीवन से कभी थकने नहीं देतीं। कदाचित् संसार में ऐसा कोई दूसरा नगर नहीं है, जो अपने निवासियों को 'वीक एण्ड' की यात्राओं में इससे अधिक सुख और विश्राम की जगहें प्रदान करता हो। आनन्दमयी कृत्रिम झीलें, जहाँ शनिवार और रविवार को हजारों लोग जमा होते हैं, उनकी चिन्ताएँ हर लेती हैं और उनमें स्वास्थ्यवर्द्धक तेजस्कर नवजीवन डालती हैं, जिससे वे आने-वाले सोमवार को फिर अपने कार्यों में आनन्द-पूर्वक संलग्न होने के योग्य हो जाते हैं।

अब इससे जरा हमारे नागरिक जीवन की तुलना कीजिए। यहाँ की गर्म और नम हवा लोगों को वर्ष-प्रतिवर्ष उनके कार्यों के अयोग्य बनाती जाती है। रविवार को हम कहाँ जायँ? जीवन की चिन्ताओं को कैसे भुलाएँ? वही मनहूस पास-पड़ोस, दृश्यों में कोई परिवर्तन नहीं, अपने बच्चों के साथ घनिष्ठता स्थापित करने का कोई अवसर नहीं। क्या अधिकतर इन्हीं सब बातों के कारण हमारा यौवन जिन उमंगों और इच्छाओं का स्वप्न देखता है, वे मिट नहीं जातीं? यह एक समस्या है, जिस पर हमारे नगर-पिताओं ने गम्भीरता-पूर्वक विचार नहीं किया और ये नगर-पिता वे म्युनिसिपल मेम्बर कहलाते हैं, जिन पर लाखों

नगर-निवासियों के स्वास्थ्य का उत्तरदायित्व है। पर यहाँ परवा कौन करता है?

अन्य स्थानों की अपेक्षा बर्लिन में मैं कम समय तक रहा। परन्तु मुझे बहुत से प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिलने का अवसर दिया गया था। इनमें सीमेन के बहुत बड़े बिजली के कारखाने और सबसे बड़े छापाखाने 'डल्स्टीन' के संचालक और बहुत से औद्योगिक नेता भी थे। सम्पूर्ण औद्योगिक जर्मनी में जापान की औद्योगिक उन्नति का बहुत प्रबल भय है। जर्मन लोग यह जानने में असमर्थ हैं कि जापान अपने उत्पादन की लागत कैसे घटा सकता है। उनके निर्ख-विज्ञान के कोई सिद्धान्त इस दिशा में काम नहीं करते। मैंने अपनी जापानी कमीज और रेशमी मोजे कुछ प्रमुख वस्त्र-व्यवसायियों को दिखलाए। जब उन्होंने उनकी परीक्षा की और मालूम किया कि मैंने उन्हें आठ आना गज और चार आना जोड़ा के हिसाब से खरीदा था, तब वे आश्चर्यचकित रह गए। सूती वस्तुओं का निर्यात बन्द कर दिया गया है। यह यहाँ साठ लाख मजदूरों को रोजी देता था। चेमनीज में वस्त्र के महान् कारखानों को देखना वास्तव में एक दुःखद दृश्य था। उनमें से कुछ जो प्रत्येक ३,००० व्यक्तियों को काम देते थे, अब सर्वथा बंद हो गए हैं। लाखों मार्क की मशीनें बेकार पड़ी हुई हैं।

सीमेन का बिजली का विशाल कारखाना देखकर कोई भी यात्री भली भाँति समझ सकता है कि यह प्रमुख व्यवसाय जर्मनी की समस्त सबसे बड़ी औद्योगिक संस्थाओं की चोटी पर कैसे पहुँच गया है। इसमें १,५०,००० से अधिक आदमी काम करते हैं। जमशेदपुर के ताता नगर की तरह इसका अपना निजी नगर है। परन्तु यह तातानगर से कहीं अधिक बड़ा और सुन्दर है। यहाँ सौ से अधिक बड़ी इमारतें हैं, जिनमें सब प्रकार की बिजली की वस्तुएँ बनाई जाती हैं। इस कार्य की महत्ता का अनुमान इसी बात से किया जा सकता है कि इसमें प्रतिदिन लगभग ५० लाख रुपए की वस्तुएँ तैयार होती हैं।

काम करनेवालों को जो सुविधाएँ यहाँ दी जाती हैं, वे आश्चर्यजनक हैं। 'डायनिंग-हाल' जहाँ काम करनेवाले भोजन करते हैं, बड़ी सुन्दरता के साथ सजाए गए हैं और जहाँ भोजन पकता है, वे स्थान तो सफाई और शुद्धता के नमूने हैं। यहाँ के फ्री-क्लब, सिनेमाघर और व्यायाम-शालाएँ तथा बहुत-सी विश्रामप्रदायक ऐसी दर्शनीय बातें हैं, जो हमारे देश के पूंजीपतियों की आँखें खोलनेवाली हैं, क्योंकि यहाँ कुछ ऐसे व्यवसाय हैं, जिनसे वे अनुचित रूप से अत्यधिक लाभ उठाते हैं।

हमारा दल लगभग बीस भारतीयों का था और विभिन्न विभागों को जाकर देखने के लिए हमें बहुत अच्छे गाइड मिले थे। यदि कोई ध्यानपूर्वक प्रत्येक बात को देखना चाहे, तो कदाचित् उसे पूरा घूमने में तीन वर्ष लगेंगे। तीन विभागों का कई घंटे तक निरीक्षण करने के बाद हम सब थक गए। डाइरेक्टरों ने हम लोगों को जल-पान के लिए आमन्त्रित किया। इसमें फैक्टरी का प्रति आदमी कम से कम ५० रुपया व्यय हुआ होगा। इस अवसर पर उन्होंने एक संक्षिप्त भाषण भी किया, जिसमें बताया कि वान सीमेन ने एक मामूली दूकान से, जिसमें तीन आदमी काम करते थे, इतना बड़ा, नगर के बराबर कारखाना, जिसमें बहुत-सी शाखाएँ हैं और लगभग १½ लाख आदमी काम करते हैं, कैसे बनाया।

लंदन की भाँति बर्लिन में भी पृथ्वी के अन्दर रेलगाड़ियों के चलने की व्यवस्था है, पर उतनी विस्तृत और सुलभ नहीं है। नगर लगभग १५० वर्गमील में है। लंदन के विपरीत यहाँ व्यापारिक मुहल्ले एक ही स्थान पर नहीं हैं, किन्तु सम्पूर्ण नगर में बिखरे हुए हैं। श्रीयुत दास गुप्त ने हमारे ठहरने के लिए एक पेनसां* में व्यवस्था की थी। बिस्तर और जल-पान के लिए चार मार्क प्रतिदिन के हिसाब से देना तय हुआ। मकान-मालकिन आस्ट्रियल जर्मन महिला थीं। उनके एक लड़की थी, जो एक स्थानीय दूकान में टाइपिस्ट के रूप में काम करती थी। हमें बहुत से भारतीय विद्यार्थियों से मिलने का अवसर मिला, जो भारतीय विद्यार्थी-संघ के वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए वहाँ जमा हुए थे। उनका यह अधिवेशन योरप-महाद्वीप के विभिन्न स्थानों में प्रतिवर्ष होता है। कुछ विद्यार्थियों से मेरा मनोरंजक वाद-विवाद हुआ। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे अपने अध्ययन के सिवा अन्य विषयों से बिलकुल दिलचस्पी नहीं रखते। मुझे विश्वास है कि प्रायः ८० प्रतिशत विद्यार्थी जो भारत वापस आने पर कुछ भी नहीं कर सकते, उस कार्य के योग्य नहीं होते, जिसके लिए वे योरप भेजे जाते हैं। उनमें निरीक्षण की बहुत कम शक्ति होती है और वे उन औद्योगिक और व्याबसायिक शिक्षा के भीतर काम करनेवाले सिद्धान्तों का अध्ययन न करके अपना बहुमूल्य समय नष्ट किया करते हैं। यह दुःख की बात है कि उनमें दृढ़ता, सम्पूर्णता, धैर्य्य और कल्पना का अभाव होता है। मैं नहीं समझता कि हमारे भारतीय विश्व-विद्यालय उनके मस्तिष्क और चरित्र का इस उद्देश्य से निर्माण करते हैं कि योरप में उन्हें जो शिक्षा मिले, उसे वे पूर्ण रूप से ग्रहण कर सकें। जो विद्यार्थी केवल शास्त्रीय प्रसिद्धि के लिए जाते हैं, उनके लिए यह बहुत ठीक हो सकता है। परन्तु व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावशाली शिक्षा कम या अधिक मात्रा में निराशाजनक है। परीक्षाएँ वे पास कर लेते हैं और कदाचित् विशेषता के साथ, परन्तु व्यावसायिक शिक्षा का अभाव होने के कारण वे कोई कार्य्य कर सकने में समर्थ नहीं होते। यदि हम योरप से ठोस और तत्त्वपूर्ण सहायता प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें व्यावसायिक शिक्षा के लिए केवल ऐसे ही विद्यार्थी चुनकर भेजना चाहिए, जो व्यापार में अभिरुचि रखते हों और सांसारिक मामलों का भी व्यावहारिक ज्ञान रखते हों। कुछ विद्यार्थी तो इतने अनभिज्ञ थे कि वे यह भी नहीं बता सकते थे कि नगर का शासन कैसे होता है, उसमें कितने संग्रहालय हैं और विभिन्न कार्यों में लोग किस प्रकार लगे हुए हैं।

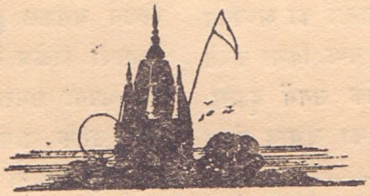
दो नवयुवक जर्मनों ने हमारे देश की शिक्षा के बारे में मुझसे बहुत कुछ पूछा। मुझे अपने यहाँ की पद्धति की वकालत करनी पड़ी, यद्यपि मैं जानता था कि हम कितने पिछड़े हुए हैं और अपने नवयुवकों को प्रभावपूर्ण शिक्षा देने में कितने असफल हुए हैं। जितने समय में कोई विद्यार्थी कालेज से निकलता है, उतने समय में वह अपना समस्त बल-विक्रम गँवा चुकता और उसके सामने कोई भविष्य नहीं होता वह नहीं जानता कि कौन-सी दिशा पकड़ने से वह भूखों मरने से बच जायगा। कभी-कभी वह ऐसी दिशा पकड़ता है, जो उसके आदर्शों से

*एक प्रकार का निजी गृह, जिसमें आगन्तुकों के ठहरने और भोजन की व्यवस्था रहती है।

बहुत दूर होती है। उसकी सोलह वर्ष की कुल शिक्षा व्यर्थ जाती है।

बर्लिन में सात दिन ठहरने के पश्चात् मैं एक व्यापारिक उद्देश्य से ब्रन्सविक गया। यह अति प्राचीन नगर है। प्राचीन काल की बहुत-सी महत्त्वपूर्ण यादगारें यहाँ मौजूद हैं। बारहवीं शताब्दी का रोमन-गाथिक गिरजा यहाँ सबसे पुरानी इमारत है। ब्रन्सविक का शेर, जिसका असली रूप इस समय अमरीका में है, इँगलैंड के बारहवीं शताब्दी के 'हेनरी दि लायन' के समय से विख्यात है। इसके बाद मैं लिपजिग गया, जहाँ मैं पन्द्रह दिन ठहरा। जर्मनी में छपाई के व्यवसाय का लिपजिग केन्द्र है। कई सौ बड़े-बड़े छापाखाने और छपाई की मशीनें बनानेवाले फर्म यहाँ हैं। बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त छापाखानों के आश्चर्यजनक संगठन को देखने में मैंने कई दिन बिताए। मुझे बताया गया कि युद्ध के पूर्ववर्त्ती दिनों में लिपजिग सम्पूर्ण योरप महाद्वीप में प्रतिदिन तीस ट्रेन विभिन्न प्रकार का छपा हुआ सामान भेजा करता था। लिपजिग 'फर' के व्यवसाय के लिए भी प्रसिद्ध है। यह व्यवसाय सर्वथा यहूदियों के हाथ में है। यद्यपि जर्मनी ने अपने बहुत-से नगरों को यहूदियों से मुक्त कर लिया है, तथापि लिपजिग से वह अभी बहुत-से यहूदियों को नहीं भगा सका, क्योंकि यहूदियों ने बहुत समय से इस व्यवसाय को सर्वथा अपने हाथ में ले रक्खा है। लिपजिग और हाले के पास कई बड़े-बड़े रासायनिक व्यवसाय भी हैं। जर्मन रासायनिक कारखानों की बड़ी मुस्तैदी से रक्षा की जाती है। उनमें किसी को प्रवेश की आज्ञा नहीं मिलती——विशेषकर उनमें जहाँ रंग और बहुत-सी गौण वस्तुएँ बनाई जाती हैं।

पोट्सडैम जो भूतपूर्व कैसर का सरकारी निवास-स्थान था, अब एक संग्रहालय में बदल दिया गया है। हमने राजमहल के सुन्दर उद्यानों को देखा। ये अब भी अच्छी हालत में रक्खे जाते हैं। प्रतिवर्ष हजारों यात्री इस स्थान को देखने आते हैं, क्योंकि गत महायुद्ध के राजनैतिक भाग्यों पर यहीं वाद-विवाद हुए थे और यहीं वे निश्चित हुए थे। महान् फ्रेडरिक के प्राचीन महल के द्वार अब जनसाधारण के लिए खोल दिए गए हैं। हमने कुछ खास कमरों को देखा। सजावट का क्या कहना था और उसकी सुरक्षा भी खूब की गई थी। हमें जूतों को ढँकने के लिए मखमल के खास तरह के गिलाफ दिए गए थे ताकि जूतों के तल्लों से कमरों के फर्श की आश्चर्यजनक पालिश खुरच न जाय।



हिटलर और जर्मनी

लेखक : श्री हरिकेशव घोष

योरप की वर्तमान डावाँडोल राजनैतिक परिस्थिति में जर्मनी ने जो रुख प्रकट किया है, उससे सारा संसार एकाएक चौंक उठता है। 'रीशटाग' में हिटलर ने हाल में जो घोषणा की है और उसके साथ ही उसने सैन्य-वर्जित प्रदेश में जो सेना भेजी है, वह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि गत महायुद्ध में जर्मनी ने जो खोया है, उसमें से कुछ वापस लेने के लिए वह दृढ़प्रतिज्ञ है। हिटलर की शर्तें स्पष्ट और प्रयत्क्ष हैं और यह निश्चित है कि यदि योरप के राष्ट्र उसकी कुछ शर्तें स्वीकार न कर लेंगे, तो जर्मनी युद्ध का खतरा उठाने से नहीं हिचकेगा। योरप की बहुरंगी राजनीति की जटिलता इधर इतनी तीक्ष्ण और प्रत्यक्ष हो उठी है कि योरप के प्रायः सभी विचार-शील व्यक्ति राष्ट्रों के दावों और प्रतिदावों को तय करने के लिए उनके बीच एक अनिवार्य युद्ध होने की आशंका कर रहे हैं। फैसिस्ट शासन में इटली का राजनैतिक बल बहुत कुछ बढ़ गया है और उसे अपने विस्तार के लिए अफ्रीका में स्थान खोजना पड़ा है। गत युद्ध में जर्मनी की बहुत क्षति हुई थी। और कदाचित् वह यह अनुभव कर रहा है कि एकमात्र कुछ और देश अधिकार में आने से ही उसकी घरेलू और आर्थिक संकट की समस्या हल हो सकती है।

एक ऐसे समय में जबकि इटली की सारी शक्ति अबीसीनिया की ओर लगी हुई है, जर्मनी ने अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए यह बड़ा ही अनुकूल अवसर चुना है और इसीलिए परिस्थिति और भी विषम हो उठी है। यदि लीग आफ नेशंस में अबीसीनिया के प्रश्न का निर्णय संतोष-जनक रीति से न हो सका, तो सम्भवतः इटली अफ्रीका में अपना बल-प्रयोग जारी रक्खेगा। योरप और अफ्रीका दोनों जगह एक साथ युद्ध करना उसके लिए कठिन होगा। रूस और फ्रांस दोनों अपने हाल के समझौते से मैत्री के एक सूत्र में बँध गए हैं। इस प्रकार जर्मनी अकेला-सा पड़ गया है। हिटलर को अपनी शर्तों पर जोर देने का इससे अच्छा अवसर नहीं मिल सकता था, क्योंकि उसने सोचा होगा कि रूस, इटली और फ्रांस के भावी त्रिगुट्ट से निकलने का यही एक मार्ग है। इटली रूस का साथ देगा, इसमें भी सन्देह है; क्योंकि दोनों के सिद्धान्तों में मूल से ही भेद है। परन्तु कोई कह नहीं सकता कि इस राजनैतिक बवंडर से जो परिस्थिति उत्पन्न होगी, उसके फलस्वरूप पाँसा कैसा पड़ेगा।

जर्मनी की वर्तमान आर्थिक स्थिति बहुत ही गिरी अवस्था में है। उसका निर्यात-व्यापार अब उसका आधा भी नहीं है, जितना युद्ध के पूर्व था। जर्मनी के श्रम-जीवियों और साधारण नागरिकों के रहन-सहन का दर्जा इटली और फ्रांस की अपेक्षा अधिक अच्छा है। इसलिए उसे अपनी छः करोड़ जन-संख्या के लिए जीविकोपार्जन की व्यवस्था करने में कठिनाई पड़ती है। कृत्रिम ढंग से उसने पन्द्रह वर्ष यह गाड़ी और खींची, परन्तु लोगों के रहन-सहन के दर्जे को कायम रखने और उनके लिए जीविकोपार्जन के साधन एकत्र करने के लिए उसके पास कोई साधन नहीं है। फिर जर्मनी के लिए यह अनिवार्य था कि वह अपनी माँगों को सैनिक प्रदर्शन द्वारा उपस्थित करे,

क्योंकि आर्थिक दृष्टि से वह वर्तमान योरप के अत्यन्त निर्बल राष्ट्रों में ठहरता है। खैर, समस्या यह है कि एक निर्धन देश जिसकी साख बहुत निर्बल है, कब तक ठहर सकता है? यह निश्चित है कि अकेला जर्मनी चंद महीनों से अधिक नहीं टिक सकता। सम्भवतः हिटलर को लीग से बड़ी आशा है। कदाचित् वह सोचता है कि इस समय कोई युद्ध में पड़ना पसन्द न करेगा—विशेषकर इँगलैंड जैसे देश, जिनमें राष्ट्रीय पुनरुद्धार का कार्य आरम्भ है।

महायुद्ध के बाद से जर्मनी पर बहुत-सी मुसीबतें आ पड़ी थीं। धीरे-धीरे जर्मनों ने अपने राष्ट्रीय ऋण पर खेलकर उनमें से बहुतों से छुटकारा पाने की व्यवस्था की। बहुत-से ऋणों को चुकाने के लिए जनता पर प्रतिवर्ष भारी-भारी कर लदते गए, तो भी उसका निर्यात-व्यापार तब तक किसी कदर बढ़ता रहा, जब तक इँगलैंड और अन्य देशों में स्वर्णमान प्रचलित रहा। इस प्रकार तीन वर्ष पूर्व तक तो यह संसार के साथ व्यापारिक प्रतियोगिता करने में समर्थ रहा, परन्तु जब बहुत-से देशों ने स्वर्णमान छोड़ दिया, तब जर्मनी के लिए अपने निर्यात-व्यापार को कायम रखना असम्भव हो गया। फिर इस व्यापारिक प्रतियोगिता में जापान इतनी तेजी के साथ कूदा कि जर्मनी के वस्त्र-व्यवसाय का खातमा ही हो गया। प्रायः सभी सूती मिलों को बन्द हो जाना पड़ा और इसके फलस्वरूप बेकारी की समस्या इतनी भीषण हो उठी कि गवर्नमेण्ट सफलता के साथ उसका सामना नहीं कर सकी। अपनी निर्बल करेंसी के कारण जर्मनी स्वर्णमान का परित्याग नहीं कर सका। नई सरकार को देश की कठिनाइयों की बागडोर अपने हाथ में लेनी पड़ी। इस विशेष अवसर पर सिवा डिक्टेटरशाही के और कोई शक्ति देश को छिन्न-भिन्न और बरबाद होने से बचा नहीं सकती थी। हिंडनबर्ग ने भी इस बात को सोचा था। इसी लिए उन्होंने अपने अंतिम दिनों में हिटलर की शक्ति बढ़ने दी, क्योंकि वे जानते थे कि जर्मनी के उद्धार का एकमात्र यही मार्ग है।

जब हिटलर के हाथ में शासन-सूत्र आया, तब उसने जर्मनी के आयात-व्यापार विशेषकर खाद्य पदार्थों पर कड़ाई के साथ चुंगी लगाकर नियंत्रण करना और देश के कच्चे माल के उद्गमों को विकसित करना आरम्भ किया और इसके लिए अपना एक कार्यक्रम बना लिया। इस प्रकार जर्मनी के सिक्कों का ५० प्रतिशत से भी अधिक बाहर जाना रुक गया। कृषि की वृद्धि की गई और बहुत-सी बेकार भूमि जोती जाने लगी। परन्तु निर्यात-व्यापार प्रतिवर्ष गिरता गया और उसके सँभालने की कोई सूरत न निकल सकी। अपने उपनिवेशों के अभाव में जर्मनी को बहुत-सा कच्चा माल विदेशों से खरीदना पड़ता था और भीषण कर-वृद्धि के कारण उसे श्रमजीवियों की मजदूरी की दर भी बहुत अधिक बढ़ानी पड़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे माल तैयार करने में अधिक व्यय करना पड़ा, जो सम्भवतः जापान की अपेक्षा दूना और इँगलैंड की अपेक्षा २५ प्रतिशत अधिक था।

इस प्रकार जर्मनी को यह अनुभव हुआ कि देश की वर्तमान आर्थिक दुरवस्था के बीच में बीते दिनों के वैभव को फिर से प्राप्त करना असम्भव है। कदाचित् हिटलर ने यह सोचा है कि केवल दूसरा युद्ध या युद्ध का भाव उसके देश को आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से अधिक अच्छी स्थिति प्रदान कर सकता है। शान्ति भाव से प्रदेश-प्राप्ति की आशा असम्भव थी और

बिना कुछ प्रदेश प्राप्त किए जर्मनी अपनी करेंसी का सुधार करने में कभी समर्थ न होगा। यही कारण है कि हिटलर ने फिर से जर्मनी में सैनिक तैयारियाँ आरम्भ की हैं। १९३३ और १९३५ के बीच में जर्मनी में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। विचार और कार्य-स्वातन्त्र्य कड़ाई के साथ दबाए गए हैं। यहूदी बुरी तरह पीड़ित किए गए हैं और इसके लिए राष्ट्र को बुराइयों से मुक्त करने की दुहाई दी गई है। सैनिक तैयारियाँ सर्वत्र प्रत्यक्ष हो रही थीं। इस लेख के लेखक को जिसने एक छोर से दूसरे छोर तक सम्पूर्ण जर्मनी का भ्रमण किया है, इस तैयारी की तेजी का बड़ी आसानी से अनुभव हुआ है। इस कार्य में सम्पूर्ण राष्ट्र इतने उत्साह के साथ संलग्न था कि कोई भी यह अनुभव कर सकता था कि सैनिक मनोभाव के इस जोशीले प्रदर्शन का शीघ्र ही कुछ-न-कुछ फल देखने को मिलेगा।

हिटलर ने साफ-साफ यह घोषणा कर दी है कि जर्मनी लोकार्नो पैक्ट से अब एक क्षण भी बँधा नहीं रह सकता। उसके तर्क बहुत कुछ निर्बल हैं। उसका कहना है कि फ्रांस और रूस के नवीन समझौते के कारण उसे ऐसा करना पड़ा है। लोकार्नो का समझौता योरपीय देशों को एक प्रतिज्ञा में बाँधता है, जिसका आशय यह है कि वे सुलह की सन्धियों के अनुसार भौमिक समझौतों को मानेंगे। हिटलर का स्पष्ट शब्दों में यह कहना है कि जर्मनी को तत्कालीन परिस्थितियों के कारण इसे मानने के लिए विवश होना पड़ा था। और वह समझौते पर अन्य हस्ताक्षर करनेवालों को दोषी ठहराता है, क्योंकि उन्होंने जर्मनी के ऊपर सर्वथा अविवेक और अन्याय से भरी हुई शर्तें लादी थीं। इस समझौते की जर्मनी ने उपेक्षा कर दी है और हिटलर जोर से इस बात की घोषणा कर रहा है। इस समझौते को 'लीग आफ नेशंस' ने भी स्वीकृति दी थी, परन्तु जर्मनी अब लीग का मेम्बर नहीं है और इसलिए उसके निर्णय को मानने के लिए वह बाध्य भी नहीं है। लीग के सिद्धान्तों के विरुद्ध आचरण करने का इटली का उदाहरण अभी ताजा है। पाठक जानते हैं कि उसने लीग की धमकियों की किस लापरवाही से उपेक्षा की है। आशा की जाती है कि इस सम्बन्ध में जर्मनी भी उसी पथ का अनुसरण करेगा। लीग अपनी धाक बहुत कुछ गँवा चुका है और यदि वह अपने अस्तित्व के साथ न्याय करने में फिर असफल होता है, तो उसकी मृत्यु निःसन्देह निश्चित है। लीग की कौंसिल से जर्मनी के विरुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्ध लगाने की फ्रांस की भर्त्सनापूर्ण माँग कदाचित् ही कारगर हो और बिना एक अच्छी मात्रा में त्याग किए एक बार उठाए जाने पर यह प्रश्न प्रेमपूर्वक तय हो जायगा, इसमें भी सन्देह है।

राइनलेंड जर्मन-कार्य-व्यवसाय की रीढ़ है। व्यापारिक दृष्टि से इस प्रदेश पर पूर्णरूप से अधिकार प्राप्त करने की जर्मनी की एक बहुत बड़ी लालसा है, जिसकी पूर्त्ति के लिए वह कुछ भी बाकी नहीं रख सकता। दूसरी ओर इससे फ्रांस की सुरक्षा की भावना बहुत कुछ नष्ट हो जायगी। और यदि उसने इस प्रदेश की स्वाधीनता अपने हाथ से निकल जाने दी, तो उसे भविष्य में जर्मन-लाइन से सदैव आक्रमण का भय बना रहेगा। मेज, कोब्लेन्ज, कोलेन और फ्रैंककोर्ट चारों औद्योगिक नगर हैं और इन पर जर्मनी का सैनिक अधिकार एक ऐसी महत्त्वपूर्ण राजनैतिक घटना है, जिसकी फ्रांस मुश्किल से उपेक्षा कर सकता है।

जर्मनी का प्रसिद्ध नगर म्युनिच और अन्य नगर

लेखक : श्री हरिकेशव घोष

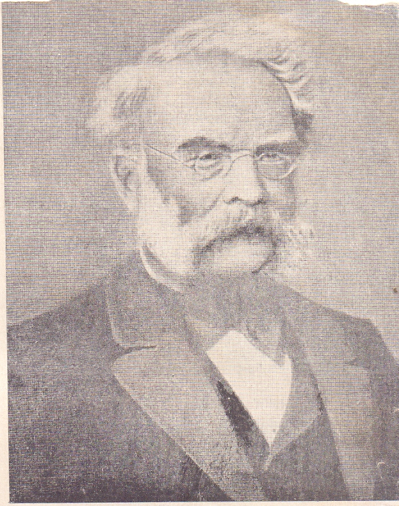
लिपजिग में मेरे मित्र बाबू बनवारीलाल ने, योरपीय कारखानों के भ्रमण से थक जाने के कारण, लन्दन जाने की इच्छा प्रकट की। हमने उनको रोकने की चेष्टा की, पर हमें सफलता नहीं मिली। लगभग एक महीने के इस नीरस साथ के लिए उन्होंने हमें बहुत कुछ बुरा-भला कहा। वे योरपीय शहरों का नागरिक जीवन देखने आये थे और हमारे कार्य्यक्रम से स्वभावतः ऊब गए थे। इसलिए एक दिन हमने उन्हें लिपजिग स्टेशन पर पेरिस और कैले जानेवाली पश्चिम की गाड़ी से रवाना किया। जर्मनी में हमारा कार्यक्रम लम्बा था। हमें कुछ और औद्योगिक केन्द्र देखने थे, विशेषकर म्युनिच और राइनलैंड, जिसका कि जर्मनी को बड़ा गर्व है। लिपजिग के होटल ने, जहाँ हम ठहरे थे, हमारा कार्यक्रम बनाने में बड़ी सहायता की। परन्तु निश्चित दिन को हम रवाना न हो सके, क्योंकि श्रीयुत दास गुप्त के एक मित्र ने हमें गेटे क्लब में खास तौर से आमंत्रित किया। यह प्रबुद्ध जर्मन विद्वानों के एक नमूना थे, पोशाक की ओर से बिलकुल लापरवाह, परन्तु प्रथम श्रेणी के कवि। इनका भाषा-सम्बन्धी ज्ञान भी आश्चर्य्यजनक था। ये विशुद्ध उच्चारण के साथ अँगरेजी बोल सकते थे। औसत दर्जे के जर्मनों के लिए, जो सरलता से अपने स्वर पर काबू नहीं पा सकते, यह एक चमत्कार ही था।

लिपजिग का गेटे क्लब जर्मन विद्वानों का बड़ा ही प्रिय आश्रय-स्थल है। यह क्लब वास्तव में एक बहुत बड़े और अत्यन्त पुराने मकान के नीचे के भाग में एक विश्राम-गृह है। यहाँ गेटे प्रायः आया करते थे और वर्तमान सन्तति से उनकी स्मृति का सान्निध्य स्थापित करने के लिए उनके समय की बहुत-सी कुर्सियाँ आदि सुरक्षित रक्खी गई हैं। यहाँ बहुत-से प्रसिद्ध व्यक्तियों ने हमारा स्वागत किया और एक घंटे तक हमने अपने देश के महान् संस्कृत के कवियों के सम्बन्ध में बातें कीं। अतिथियों में कई एक प्राच्यविद् भी थे। उनका प्राच्य साहित्य का इतना अध्ययन था कि उन्होंने हमें चकित कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें से अधिकांश प्राच्य दर्शन का मर्म नहीं समझते थे, तथापि उन्हें इस विषय का यथेष्ट ज्ञान था। हमारे महान् कवि रवीन्द्रनाथ जर्मनी के साहित्यिक मनुष्यों में बहुत विख्यात हैं। उनकी बहुत-सी पुस्तकें जर्मन-भाषा में अनूदित हो गई हैं। महात्मा गांधी भी बहुत विख्यात हैं। पर कांग्रेस से उनके अलग हो जाने से उनकी प्रसिद्धि कुछ कम हो गई है। एक प्रसिद्ध प्रकाशक ने मुझसे 'गीतांजलि' की बिक्री के बारे में पूछा। मैंने टाल जाने की कोशिश की, क्योंकि भारतवर्ष में पुस्तकों की इतनी कम बिक्री है कि उनका जिक्र न करना ही अच्छा है। केवल जर्मन-भाषा में गीतांजलि की ५०,००० प्रतियाँ बिक चुकी हैं और लगभग १० योरपीय भाषाओं में वह प्रकाशित हो चुकी है।

लिपजिग में मैंने यह अनुभव किया कि यदि हमारी आर्थिक स्थिति सुधर जाय और लोगों के लिए पुस्तकावलोकन विलास की वस्तु न रहकर आवश्यकता और संस्कृति का एक अंग बन जाय, तो भारतवर्ष में भी पुस्तक-प्रकाशन

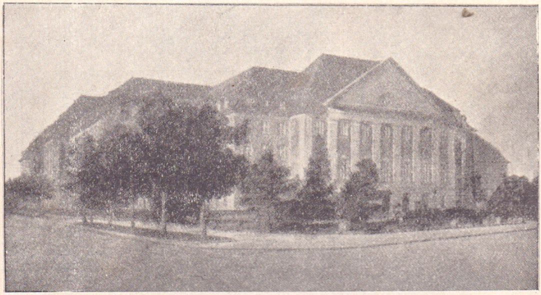


बर्लिन की एक कृत्रिम झील



हरवान सीमेन

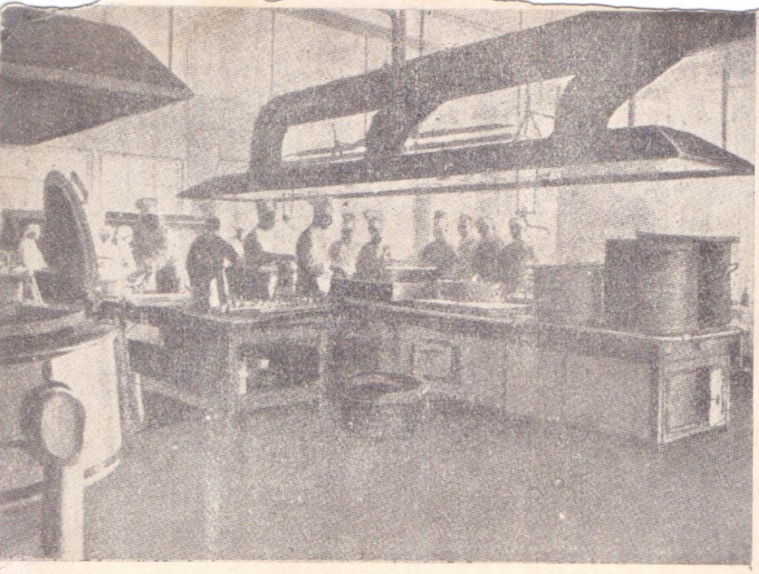
जर्मनी



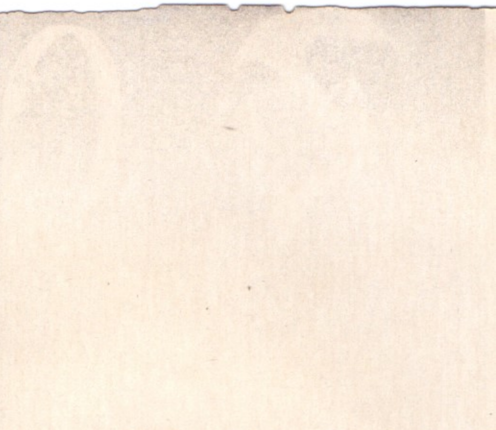
ाईं ओर : सीमेन के कारखाने का प्रधान कार्यालय

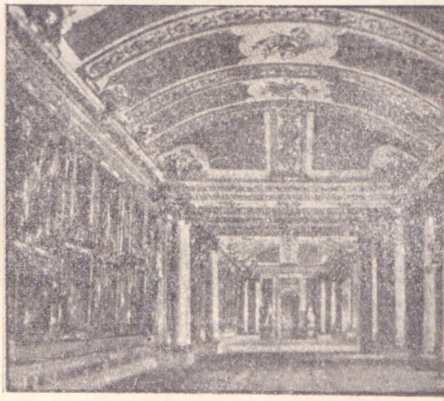
दाईं ओर : सीमेन के कारखाने के कर्मचारी व्यायाम कर रहे हैं





सीमेन के कारखाने का स्वच्छ भोजनालय

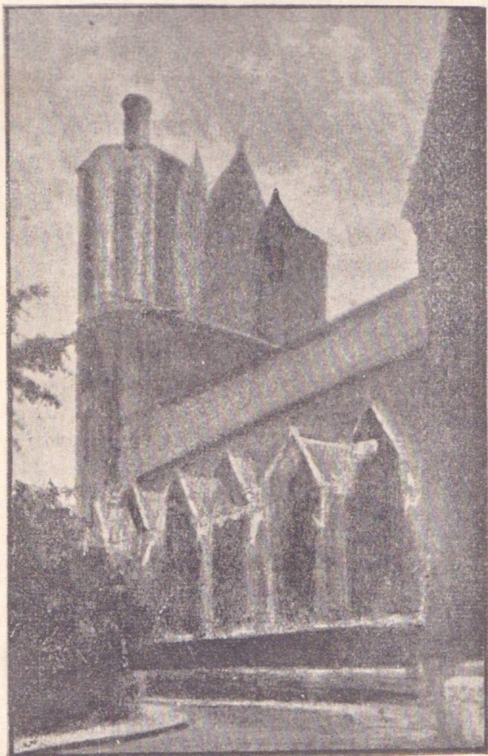




कैसर के राजमहल में कला-भवन

जर्मनी





हिटलर और जर्मनी



बाई ओर : जर्मनी का तानाशाह हर हिटलर



प्रेसीडेण्ट हिंडनवर्ग और हिटलर

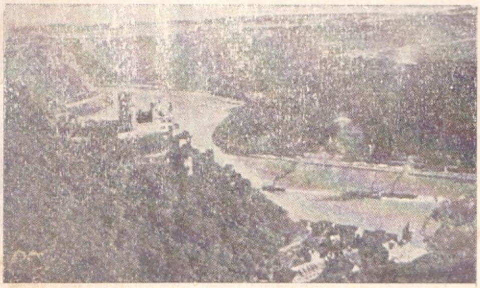


हर हिटलर का दाहिना हाथ डा० गोबुल्स

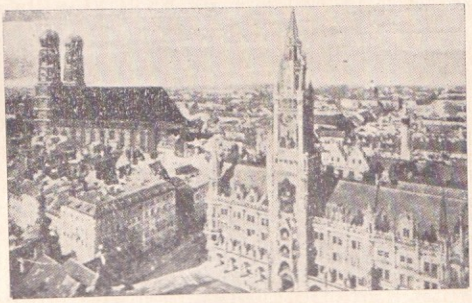
दाईं ओर : जर्मनी के सैनिक बच्चे

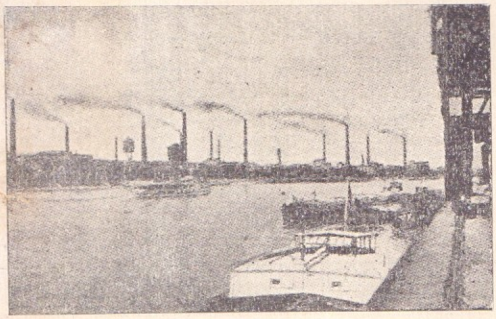




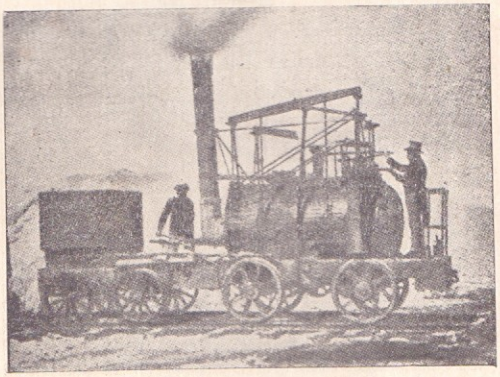


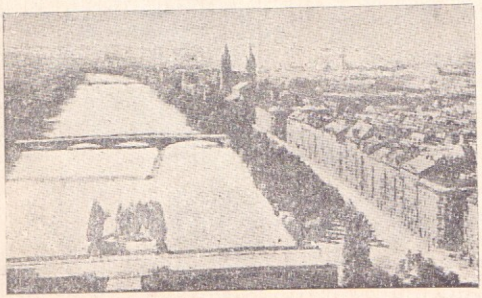
बाईं ओर : राइनलैंड का एक दृश्य
दाईं ओर : म्युनिच शहर का एक दृश्य



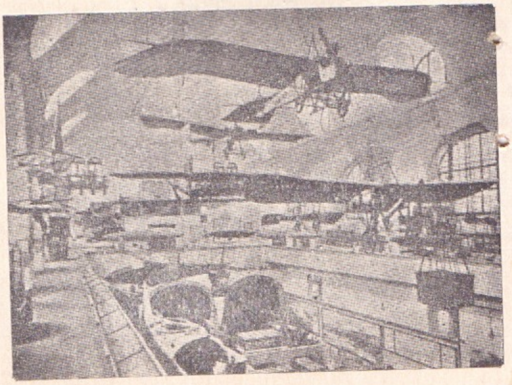


बाईं ओर : राइन के किनारे कारखानों का एक दृश्य
दाईं ओर : १८१३ का बना जर्मनी का पहला रेल-इंजन





बाईं ओर : नहर के किनारे म्युनिच का प्रसिद्ध म्युजियम
दाईं ओर : म्युजियम में हवाई जहाज संबंधी क्रमविकास का एक विभाग



का कार्य्य बहुत अच्छा हो सकता है। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि वहाँ कुछ लोकप्रिय पुस्तकों की १० लाख से अधिक प्रतियाँ प्रतिवर्ष बिकती हैं। और वहाँ के पत्र-पत्रिकाओं की तो कुछ बात ही न पूछिए। सम्पूर्ण जर्मनी में प्रत्येक व्यक्ति उन्हें पढ़ता है। अकेले लिपजिग नगर में दो लाख से अधिक मनुष्य पुस्तक-प्रकाशन-कार्य्य और इससे सम्बन्ध रखनेवाले व्यवसायों में लगे हैं।

लिपजिग अपनी वसन्तकालीन प्रदर्शनी के लिए प्रसिद्ध है। उस समय यहाँ योरप के समस्त भागों से लगभग २५ हजार यात्री जमा होते हैं। ये नवीन आविष्कार और टेकनिकल उद्योगों की विभिन्न शाखाओं की उन्नति देखने आते हैं। अमरीका, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमरीका की रियासतों से बड़े-बड़े खरीदार यहाँ प्रतिवर्ष आते हैं। यहाँ के बड़े-बड़े कारवारियों से माल भेजने के लिए लम्बे-चौड़े इकरारनामे करते हैं। मुद्रण-व्यवसाय-सम्बन्धी तो इस नगर में योरप की सबसे बड़ी प्रदर्शनी लगती है।

एक दिन प्रातःकाल जब मैं होटल से बाहर आ रहा था, मेरी एक नवयुवक बंगाली विद्यार्थी से भेंट हुई। यह विद्यार्थी मेरे कलकत्ते के एक मित्र के दामाद थे और स्थानीय विश्वविद्यालय में वनस्पति-शास्त्र का अध्ययन कर रहे थे। इन्हें यह समाचार मिला था कि मैं लिपजिग में हूँ, इसलिए ये मुझसे मिलने आये थे। ये दो दिन मुझे खेल और सन्ध्या के लोकप्रिय विश्राम-स्थान दिखाने ले गये। सम्पूर्ण महाद्वीप में ग्रीष्म-काल का जनता इतना आनन्द लेती है कि ऊपर से देखने से यह नहीं जान पड़ता कि यह देश अर्थसंकट से पीड़ित है। सन्ध्या-समय सर्वत्र उपवनों और स्नान के केन्द्रों में प्रमुदित जन-समूह देख पड़ता है। नवयुवक टेनिस खेलते हुए नजर आते हैं। मजदूर स्त्रियाँ भी खुले मैदानों में खेल का आनन्द लेती हुई देख पड़ती हैं। सम्पूर्ण वायुमंडल ही आमोद-प्रमोद से पूर्ण प्रतीत होता है। कहीं किसी महामारी का नाम नहीं, बड़े बूढ़े तक टहलने के लिए निकलते हैं और प्रति सन्ध्या को उपवनों के शीतल समीर का आनन्द लेते हैं। पाइन के वृक्ष पंखा-सा झलकर इस बल-वर्द्धक वायु की वृद्धि करते हैं और विश्रामगृह प्रमुदित युवकों और युवतियों से पूर्ण दिखाई पड़ते हैं।

एक दिन जब मैं अपने नवयुवक मित्र के साथ एक बाग में घूम रहा था, स्थानीय विश्वविद्यालय-छात्राओं का एक दल हमारी ओर आकृष्ट हो गया। वे हमारे देश के सम्बन्ध में हमसे प्रश्न करने लगीं। उन्हें हमारे देश का अत्यल्प ज्ञान था। उनका खयाल था कि हमारा देश धन-धान्य से पूर्ण है और उसमें बहुत ही धनी मनुष्य निवास करते हैं। योरप के लोगों में हमारी आर्थिक दशा के बारे में यह गलतफहमी इसलिए है कि हमारे कुछ राजा और रईस, जो इस महाद्वीप की यात्रा करते हैं, होटलों और विश्राम-गृहों में अपार धन लुटाते हैं। प्रत्येक भारतीय जो साफा बाँधता है, अपार धन का स्वामी समझा जाता है। प्रत्येक भारतीय बड़ा धनी माना जाता है।

जर्मनी के एक शहर हाइल्डेलबर्ग में मुद्रण-यन्त्र बनानेवाले एक कारखाने में मुझे थोड़ा-सा काम था। इसलिए एक दिन सुबह के सुहावने समय में एक्सप्रेस ट्रेन से इस नगर की लम्बी यात्रा के लिए रवाना हो गया। यह मार्ग अधिकांश में राइनलैंड होकर गया था। राइन जर्मनी की महानदी है और एक अत्यन्त उपजाऊ

प्रदेश से होकर बहती है। इस नदी के दोनों किनारों पर बहुत से बड़े-बड़े औद्योगिक नगर स्थित हैं। औद्योगिक जर्मनी के लिए यह नदी एक बड़े जलमार्ग का भी काम देती है। नदी के दोनों किनारों पर अंगूर के सुन्दर बाग हैं और इन्हीं स्थानों में प्रसिद्ध जर्मन अंगूरी शराब के मुख्य कारखाने हैं। ऐसे एक स्थान पर हमने संगमरमर की एक सुन्दर मूर्त्ति घोड़े की पीठ पर देखी। इसके एक हाथ में अंगूर और दूसरे हाथ में प्याला था।

छः घंटे की यात्रा के बाद सन्ध्या-समय मैं हाइल्डेलबर्ग पहुँचा। मैंने वहाँ के कारखाने को अपने आने के सम्बन्ध में पहले ही सूचित कर दिया था, इसलिए उनका एक आदमी मुझसे स्टेशन पर मिलने आया। उसने उसी समय मुझे स्टेशन के सामने एक होटल में ठहराया। वहाँ मैंने दूसरे दिन प्रातःकाल तक आराम किया। सारे जर्मनी में खास-खास होटलों में अँगरेजी बोली जाती है। इससे यात्रियों को बड़ी सुविधा होती है, नहीं तो भोजन और अन्य सुविधाओं के सम्बन्ध में यात्रियों को होटल के कर्मचारियों से कहने में बड़ी कठिनाई होती। इस होटल का प्रधान अभ्यर्थनाकारी भारत में पाँच वर्ष रह चुका था, इसलिए उसे एक भारतीय को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरी सुविधाओं की ओर उसने खास तौर से ध्यान दिया। लम्बी यात्रा के बाद मैं थक गया था, इसलिए उसने मेरे लिए गर्म पानी से स्नान करने की व्यवस्था कर दी। दिन में बहुत अधिक गर्मी थी, इसलिए इस स्नान से मुझे बहुत आराम मिला। उसी दिन सन्ध्या को होटल के विश्राम-गृह में स्थानीय साहित्यिक क्लब की एक बड़ी बैठक हुई। ३० के लगभग व्यक्ति उपस्थित थे। वे सब ४० वर्ष से ऊपर थे और साहित्यिक प्रतीत होते थे। सभापति महोदय, जो स्थानीय विश्वविद्यालय के प्रधान थे, बहुत ही लोकप्रिय व्यक्ति प्रतीत होते थे। बहुत-सी स्त्रियाँ भी उपस्थित थीं।

सबेरे जल-पान के बाद, जिस कारखाने में मुझे कुछ काम था, मैं उसमें ले जाया गया। मैंने उनका कारखाना भी देखा। दोपहर के भोजन के पहले मैंने अपना काम समाप्त कर दिया। उसके पश्चात् कारखाने के डाइरेक्टर ने नगर से तीन मील एक पहाड़ी पर एक शांतिमय सराय में अपने साथ भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया। यह अत्यन्त सुन्दर स्थान था, जहाँ से नीचे के छोटे नगर का सम्पूर्ण सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ता है। हाइल्डेलबर्ग का विश्वविद्यालय बहुत प्रसिद्ध है और इँगलैंड और अमरीका के विद्यार्थी प्रतिवर्ष यहाँ आते रहते हैं। भोजन के पश्चात् डाइरेक्टर महोदय मुझे हाइल्डेलबर्ग का प्राचीन 'कैसिल' दिखाने ले गये। यह 'कैसिल' पहाड़ी की चोटी पर एक सुन्दर स्थान में स्थित है। यह प्राचीन स्मृति-चिह्न बहुत अच्छी तरह सुरक्षित है और इसे देखकर यात्री-गण मध्य-काल के वैभव का अनुमान कर सकते हैं। इस छोटे नगर में प्रतिवर्ष हजारों यात्री आते हैं और पर्वत के छायादार वृक्षों के नीचे शान्तिपूर्वक कई दिवस व्यतीत करते हैं।

हाइल्डेलबर्ग में दो दिन ठहरने के पश्चात् मैं अपने मित्र श्रीयुत दास गुप्ता से मानहाईम नगर में जा मिला। यह एक बड़ा व्यापारिक नगर है। राइन नदी नगर के बीच से बहती है और उसके दोनों किनारों पर बड़े-बड़े कारखाने हैं। नगर के निकट कुछ प्राकृतिक स्नानागार बने हैं। यहाँ गठिया आदि से पीड़ित लोग

ग्रीष्मकाल में प्रायः स्नान करने आते हैं। यहाँ ११वीं शताब्दी की कई कारुकार्यमय इमारतें अभी तक मौजूद हैं।

मेरा काम केवल दो घंटे का था और मैं अपने मित्र का साथ नहीं दे सकता था, क्योंकि वे एक फर्म के साथ व्यस्त थे। इसलिए मैं स्वयं बाहर घूमने निकला। जर्मन एक शब्द भी नहीं बोल सकता था, इसलिए कुछ घंटों इधर-उधर घूमने के बाद घर लौटते समय मैं राह भूल गया। बड़ी कठिनाई के बाद मैं एक टैक्सी ड्राइवर को कठिनाई समझा सका कि मुझे कहाँ जाना है। वह तुरन्त मुझे स्टेशन ले गया। चूँकि यह होटल शहर का एक प्रसिद्ध होटल था और उसकी बनावट अतीव आधुनिक तरीके की थी, इसलिए मोटरवाला जल्दी मेरा गन्तव्य स्थान समझ गया। होटल इस स्टेशन के प्रधान द्वार के ठीक सामने था। श्रीयुत दास गुप्त मेरे आसरे में बहुत चिन्तित हो रहे थे और सोचते थे कि मैं कहाँ चला गया। होटल के पोर्टर ने कहा कि मैं सड़कों का एक मानचित्र अँगरेजी में आसानी से प्राप्त कर सकता था। खैर, बहुत थक जाने के कारण हमने जल्दी खाना खाया और म्युनिच की लम्बी यात्रा के लिए रेल पर सवार हुए। यह आयतन और प्रसिद्धि में जर्मनी का तीसरा शहर है और शिक्षा का एक विख्यात केन्द्र है।

वर्ष के इस विशेष अवसर पर म्युनिच में 'आक्टोबर मेला' की धूम मची थी। यह एक प्रकार से आसपास के जिलों के किसानों का मेला था, जो खलिहान उठ जाने के बाद शहर में दिल बहलाने आते हैं। किसान-स्त्रियाँ अपनी देशी पोशाक से स्थान को बड़ा मनोमोहक बना देती हैं। नगर में खूब भीड़ थी, और कई जगह भटकने के बाद हमें एक दूसरे दर्जे के होटल में मुश्किल से एक कमरा मिला। उत्सव प्रतिदिन आधी रात तक होते रहते हैं। म्युनिच 'मदिरा' के व्यवसाय का बहुत बड़ा केन्द्र है। बड़े-बड़े खेमों में, जिनमें दो-दो हजार मौज मनानेवाले जमा होते हैं, गिलासों से नहीं बल्कि बड़े-बड़े शीशे के लोटों से शराब पीते हैं और सब चिन्ताएँ छोड़ हँसते, परिहास करते और नाचते हैं। कभी-कभी इतनी अधिक भीड़ होती है कि बीस कदम जाने में आधा घंटा से अधिक लग जाता है। रात को हम यह मेला देखने गये और दो घंटे बाद वापस आ गये।

म्युनिच को संसार के सर्वश्रेष्ठ अपने 'टेकनिकल म्युजियम' के लिए गर्व है। ज्योतिष, पदार्थ विज्ञान, रसायन, यंत्र-निर्माण, आवागमन और टेकनिकल विभाग के सैकड़ों अन्य विषयों की दर्शनीय वस्तुएँ यहाँ इकट्ठी की गई हैं। राष्ट्र की देशभक्ति का यह एक स्मरणीय उदाहरण है। हजारों आदमियों—विद्वान्, इंजीनियर, कलाकार, व्यापारी और संस्थाओं ने सेवा या धन के रूप में इसके लिए स्वेच्छापूर्वक त्याग किए हैं। प्रदर्शनी की इमारत ९ एकड़ भूमि में है और उसको घूमकर देखने में लगभग ९ मील चलना पड़ता है। इस संग्रहालय का उद्देश्य ऐतिहासिक दृष्टि से स्वाभाविक और पारिभाषिक विज्ञान का क्रम-विकास इस प्रकार बतलाना है कि वह सर्वसाधारण की समझ में आ जाय। इसके पुस्तकालय में विज्ञान और टेकनोलाजी पर दो लाख प्राचीन और नवीन पुस्तकें संगृहीत हैं।

दो विभाग देखने में हमें तीन घंटे से अधिक मिले। शिक्षा की दृष्टि से यह संग्रहालय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रतिदिन अपने अध्यापकों के साथ हजारों विद्यार्थी यहाँ आते हैं और अध्यापक-गण उन्हें यह बतलाते हैं कि साइंस की क्रमोन्नति कैसे हुई। यहाँ शताब्दियों से मनुष्य की इस श्रम-साध्य उन्नति का क्रम-विकास देखकर नवयुवकों के हृदय में बड़ा उत्साह पैदा होता है।

शोकाञ्जलि

ठाकुर गोपालशरणसिंह

गये परलोक तुम लोक में प्रकट कर,
बुद्धिबल का प्रभाव मञ्जु कर्म-फूल में।
हिन्दी के हितैषी रहे सेवा उसकी की सदा,
क्यों न आज हिन्दी-जग डूबे दृग-जल में ?
तुममें सुजनता सुशीलता रही जो चारु,
आती है स्मरण वह नित्य पल-पल में।
निष्ठुर नियति ने ही कर दी पटल बाबू,
अङ्कित तुम्हारी स्मृति हृदय-पटल में।

मधुर व्यक्तित्व

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

श्री हरिकेशव घोष का व्यक्तित्व मधुर और आकर्षक था। दूसरों के हित में सहायता देना उनके स्वभाव का एक अंग था। हिन्दी के काम में उनकी विशेष रुचि थी। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के लिए कई बार उनके सहयोग की मुझे आवश्यकता पड़ी थी, और उन्होंने अपनी सहज शालीनता से अपना सहयोग दिया था। सम्मेलन के मुद्रणालय की कल्पना को रूप देने में मैंने उनके अनुभव का लाभ सम्मेलन के लिए चाहा और उन्होंने प्रेमपूर्ण सहृदयता से सम्मेलन के मुद्रणालय की स्थापना कराई। उनके चले जाने से हिन्दी के कार्यकर्त्ता अपने एक उदार सहयोगी को खो बैठे हैं। उनकी स्मृति मेरे हृदय में प्रेम और कृतज्ञता के साथ निवास करती है।

हँसमुख हरिकेशव घोष

पं० मोहनलाल नेहरू

इनको मैं बचपन से जानता था। इस प्रेस को चिंतामणि बाबू ने बड़ी सफलता से चलाया था और बहुत ऊँचे पावे पर पहुँचाया था; मगर जब से इनके हाथ में आया, दिनोंदिन इसकी तरक्की होती गई। इस प्रेस के अलावा कितने ही उद्योग हरिकेशव बाबू ने चलाए। साइंटिफिक इंस्ट्रूमेंट कंपनी और शक्कर का कारखाना उनमें प्रधान हैं। इंडियन प्रेस की कई शाखाएँ इन्होंने खोलकर बनारस और कलकत्ते में भी प्रेस का काम जारी कर दिया।

हरिकेशव बाबू बड़े ही हँसमुख आदमी थे। किसी से क्रोध नहीं करते थे। ग्राहकों से बड़ी नम्रता से बर्ताव करते और अपने नौकरों तक से सरलता और सुशीलता से पेश आते।

प्रसिद्ध कवियों की रचनाएँ

सेवाग्राम	श्री सोहनलाल द्विवेदी	१०)
गांधी-अभिनन्दन ग्रंथ	,,	७॥)
बासन्ती	,,	२।–)
चित्रा	,,	२।–)
युगाधार	,,	२॥)
विषपान	,,	१)
भैरवी	,,	२॥)
पूजागीत	,,	२)
वासवदत्ता	,,	२)
कुणाल	,,	३)
झरना	,,	१)
बांसुरी	,,	१)
बच्चों के बापू	,,	॥)
माधवी	ठाकुर गोपालशरण सिंह	२)
मानवी	,,	२॥)
ज्योतिष्मती	,,	२॥)
संचिता	,,	३)
सुमना	,,	२)
गंगावतरण	स्व० जगन्नाथदास रत्नाकर	१।)

उद्धव-शतक—स्व० जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	२)
नीरजा—श्रीमती महादेवी वर्मा	१॥)
हल्दीघाटी—श्री श्यामनारायण पाण्डेय	२॥)
रूपान्तर ,,	२)
तुमुल ,,	२)
सरस सुमन—श्रीगुरुभक्त सिंह	॥)
रविबाबू के कुछ गीत—अनुवादक श्री रघुवंशलाल गुप्त	२॥)
रानी दुर्गावती—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'	१)
दैत्यवंश—श्री हरदयालु सिंह	३॥)
तक्षशिला—श्री उदयशंकर भट्ट	३)
अपराजिता—श्री रामेश्वर प्रसाद 'अंचल'	३)
अभिव्यक्ति—श्रीमती प्रेमकुमारी गुप्त	२॥)
संक्षिप्त विहारी—श्री रमाशंकर प्रसाद	२)
संक्षिप्त सूर सागर—श्री बेनीप्रसाद	३॥)
द्विवेदी काव्य-माला—पं० देवीदत्त शुक्ल	४)
नवसतसई सार—डा० कैलाशनाथ भटनागर	२॥)
सुबहवतन—पं० बृजनारायन चकबस्त	२॥)
एकादशी—श्री नत्थाप्रसाद मिलिन्द	१।)

सर्वोपयोगी और सस्ती पापुलर इँग्लिश-हिन्दी डिक्शनरी—४॥)

जीवन-चरित्र

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ—स्व० उमेशचन्द्र मिश्र	५)
विद्यासागर—पं० रूपनारायण पाण्डेय	४)
बुद्धदेव—श्री शरतकुमार राय	१॥)
गोस्वामी तुलसीदास—डा० श्यामसुन्दरदास	१॥)
मेरी आत्म कहानी ,,	२)
चरित चर्या—स्व० पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी	१=)
एक आत्मकथा—पं० देवीदत्त शुक्ल	२)
आत्मकथा—डा० राजेन्द्रप्रसाद	१२)
मैक्सिम गोर्की—महेन्द्रचन्द्र राय	३)

विविध पुस्तकें

ऐतिहासिक भौतिकवाद—श्री मन्मथनाथ गुप्त और श्री रमेन्द्रनाथ वर्मा	६)
योरप-यात्रा में ६ मास—पं० रामनारायण मिश्र और गौरीशंकर प्रसाद	४)
ऋद्धि—श्री ज्ञानेन्द्रमोहन दास	२॥)
ग्रह-नक्षत्र—श्री जगदानन्द राय	३)
प्राकृतिकी ,,	३॥)
गांधी-मीमांसा—स्वर्गीय पं० रामदयाल तिवारी	४)
दूध पिलानेवाले जन्तु—श्री शुकदेवनारायण	३)

धार्मिक पुस्तकें

सचित्र हिन्दी महाभारत	८०)
हिन्दी महाभारत—आचार्य द्विवेदीजी	६)
श्रीमद्भागवत १, २	१६)
श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण १, २	१३)
श्री रामचरितमानस	१२)
विनयपत्रिका	४)
कवितावली	२॥)
कुण्डलिया रामायण	४)
तुलसी रत्नावली	१॥)
ज्ञानेश्वरी गीता	६)
भक्तचरितावली	३॥)
श्रीकृष्ण गीतावली	॥।)
बाल-रामायण	१)
रामचरित मानस अयोध्याकांड—श्यामसुन्दरदास	३॥)

मैनेजर, बुकडिपो, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), लिमिटेड, प्रयाग

मनस्वी नरपुङ्गव

पं० देवीदत्त शुक्ल, भूतपूर्व सम्पादक 'सरस्वती'

मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्।

स्वर्गीय हरिकेशव घोष की जीवन-कथा एक कर्त्तव्यनिष्ठ मनस्वी नरपुंगव की कथा है। उनके प्रतापी पिता स्वर्गीय चिन्तामणि घोष कहा करते थे कि उन्होंने स्माइल्स् की 'सेल्फ-हेल्प' नामक पुस्तक का पंद्रह बार पारायण ही नहीं किया था, किन्तु उसके सिद्धान्तों को अपने जीवन में चरितार्थ करने का प्रयत्न भी किया था। नहीं कहा जा सकता कि उनके इन तेजवन्त पुत्र ने भी उन्हीं की भाँति स्माइल्स् की उक्त पुस्तक का सम्यक् रूप से अध्ययन किया था या नहीं; परन्तु जो इनके सम्पर्क में रहे हैं, वे दृढ़ता के साथ यह कह सकते हैं कि कर्त्तव्य-निष्ठा को ही इन्होंने अपने जीवन का ध्येय बना लिया था। अपने इसी दृढ़ ध्येय के फलस्वरूप ये अपने चारों ही सहोदरों का अमूल्य प्रेमपूर्ण सहयोग प्राप्त करने में समर्थ हुए थे। ऐसे ही बल से बलवन्त होकर ये अपने कार्यक्षेत्र में अति द्रुतगति से अग्रसर हुए और इन्हें तद्वत् पद-पद पर आशातीत सफलताएँ प्राप्त होती गईं।

एक अत्यधिक दुःखद परिस्थिति के कारण इन्हें अपनी पढ़ाई छोड़कर केवल बीस वर्ष के वय में इण्डियन प्रेस जैसी प्रसिद्ध संस्था का भार अपने अनभ्यस्त कोमल कन्धों पर लेना पड़ा था। ये उसके लिए प्रस्तुत नहीं थे; परन्तु अन्य कोई उपाय ही नहीं था।

सन् १९२० की बात है कि इनके पिता बड़े बाबू अपने प्यारे इण्डियन प्रेस को हिन्दी-भाषी प्रान्तों की एक आदर्श संस्था बनाकर उसके प्रबन्ध का सारा भार अपने ज्येष्ठ पुत्र हरिपद घोष के बलिष्ठ कन्धों पर रखकर अपनी वृद्धावस्था को सुखपूर्वक व्यतीत करने की योजना को कार्य का रूप दे रहे थे कि सहसा आपका परिवार बेरीबेरी रोग से आक्रान्त हुआ और उस भयानक रोग से पीड़ित होकर हरिपद बाबू अपनी उठती हुई जवानी में थोड़े ही दिनों की बीमारी में स्वर्गवासी हो गए। इस हृदय-विदारक दुर्घटना से सभी लोग बहुत ही दुःखी हुए। बड़े बाबू का धीर-वीर हृदय तो यहाँ तक विचलित हो उठा कि उन्होंने अपने प्रिय इण्डियन प्रेस तक को बेच देने का निश्चय प्रकट किया। उनके इस निश्चय से घोष-परिवार तो दुखी हुआ ही, इंडियन प्रेस के सब कर्मचारी भी आकुल-व्याकुल हो उठे। इसी समय हरिकेशव बाबू आगे आये और अपने छोटे भाई श्री हरिप्रसन्न घोष को साथ लेकर, उपयुक्त समय देखकर, बड़े बाबू के पास गये। दोनों भाइयों ने उनसे विनयपूर्वक आग्रह किया कि 'आप प्रेस को न बेचें, हम उसे चलायँगे।' उनके इस विनम्र अनुरोध का बड़े बाबू पर प्रभाव पड़ा और प्रेस नहीं बिका। उस समय ये बनारस इंजीनियरिंग कालेज में अध्ययन कर रहे थे। फलतः इन्होंने कालेज का पढ़ना छोड़कर कर्त्तव्य की प्रेरणा से इंडियन प्रेस जैसी भारी संस्था के संचालन का भार अपने हाथों उठाकर अपने कोमल कन्धों पर रख लिया।

नवयुवक स्वामी को कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण देखकर प्रेस के सभी कर्मचारी अत्यधिक प्रसन्न हुए। ये बड़ी लगन के साथ प्रेस का काम करने लगे। इसी बीच एक और बात हुई। यह अनुमान किया गया कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का एक-न-एक दिन अवश्य विकास होगा। उस समय उसके सन्निकट स्थित होने के कारण यूनिवर्सिटी इंडियन प्रेस की इमारतों और भूमि को अवश्य ले लेगी। अतएव इस अवस्था के आने के पहले ही यूनिवर्सिटी के हाथ इमारतों और इंडियन प्रेस के बेच देने का निश्चय किया गया और वह शीघ्र ही बिक भी गया। इंडियन प्रेस का बचा-खुचा सामान किराए के दो बँगलों में रक्खा गया। घोष-परिवार जार्जटाऊन की कोठी में उठ गया। यहीं रहकर ये अब किराए के बँगलों में इंडियन प्रेस का काम करने लगे। 'सरस्वती' और 'बालसखा' तो यहीं एक एक स्थानीय प्रेस में छपते थे; पर प्रेस की पुस्तकें बनारस में इंडियन प्रेस की शाखा में छपती थीं। इन सब कार्यों की देख-रेख ये तत्परता के साथ तो करते ही थे; परन्तु उस समय सबसे अधिक आवश्यकता थी नए सिरे से एक बड़ा प्रेस खोलने की, क्योंकि वैसा किए बिना इंडियन प्रेस जैसी बड़ी संस्था का ठीक ढंग से कार्य-संचालन होना सम्भव नहीं था। अतएव नए प्रेस की स्थापना का भारी भार भी इन्हें उठाना पड़ा और इन्होंने सहर्ष उसे उठा ही नहीं लिया, प्रत्युत चार-पाँच वर्ष के परिश्रम में इंडियन प्रेस की नई विशाल इमारत बनवाकर खड़ी कर दी। साथ ही उसे आवश्यक, आधुनिक प्रेस-सामग्री से अलंकृत भी कर दिया। यह होते ही इंडियन प्रेस के कार्यक्षेत्र को भी ये शीघ्रता के साथ विस्तृत करने लगे। प्रयाग का और बनारस के प्रेस का कार्य जब सुचारु रूप से होने लगा, तब लोगों को ज्ञात हो गया कि ये कितने अधिक क्षमताशाली तथा कार्यकुशल तो हैं ही, धीर-गम्भीर होते हुए महत्त्वाकांक्षी भी हैं। तभी तो उन्हें अपने कार्य के लिए प्रयाग और बनारस के दो प्रेस पर्याप्त नहीं जँचे। अतएव कलकत्ते में एक तीसरा प्रेस खोलकर उसकी व्यवस्था का सारा भार अपने तीसरे सहोदर श्रीहरिसाधन घोष को सौंपकर वे प्रयाग में रहकर इन तीनों प्रेसों की सँभाल करने लगे।

प्रयाग के प्रेस में उनके दूसरे सहोदर श्री हरिप्रसन्न घोष उनकी सहायता किया करते थे और जब-जब वे बाहर जाते थे, प्रेस का सारा भार इनके ऊपर आ जाता था। अपनी सच्ची कर्त्तव्यनिष्ठा से अपने सहोदरों का वास्तविक सहयोग पाकर उन्होंने प्रेस के कारबार में तो अत्यधिक सफलता प्राप्त की ही, व्यापार के अन्य क्षेत्रों में उससे भी अधिक सफलता प्राप्त की। परन्तु वह सब लिखने का अधिकार हमें नहीं है। उसकी हमें पूरी जानकारी भी तो नहीं। उनकी गति विद्युत्-जैसी थी। हम उन्हें पहुँच के बाहर ही पाते। जभी दिखते, घोर रूप से कार्य में व्यस्त, बात तक करने की फुरसत नहीं। कार्यवश प्रायः उनके पास जाना पड़ता था। पहुँचते ही तुरन्त पूछते, 'कहिए।' मैं भी एक-दो वाक्यों में अपनी बात कह सुनाता। नपे-तुले शब्दों में, एक वाक्य में वे मेरी कठिनाई हल कर देते थे। उनकी गति ऐसी ही द्रुत थी।

प्रेस के 'सरस्वती'-विभाग तक ही हमारा उनका सम्पर्क सीमित था और यह लगातार २७ वर्ष तक ज्यों का त्यों बना रहा। इस दीर्घ-काल के सम्पर्क में केवल दो बार को छोड़कर उन्हें हमने कभी अप्रसन्न या असंतुष्ट नहीं पाया।

वे सचमुच बड़े दयालु, क्षमाशील और उदारमना स्वामी थे। अपने उक्त लम्बे समय के सम्पर्क में हमें उनके इन सद्‌गुणों का परिचय पद-पद पर मिलता था। यहाँ मैं उनके अप्रसन्न होनेवाली उक्त दो घटनाओं का उल्लेख करूँगा। एक बार मेरी अनुपस्थिति में उन्होंने एक लेख 'सरस्वती' में छापने को दे दिया था। जब मैं आया, तब उन्होंने मुझसे उस लेख की बात कही और यह भी कहा कि 'उसमें चित्र भी जायगा, ब्लाक बनने को दे दिया गया है।' 'बहुत अच्छा', कहकर मैं कार्य में दत्तचित्त हो गया। कार्य की अधिकता के कारण मैं चित्र की बात ही भूल गया। वह लेख अचित्र ही छपा। जब उन्होंने छपा हुआ फर्मा देखा और उसमें चित्र नहीं देखा, तब वे सीधा ब्लाक-डिपार्टमेण्ट में गये और वहाँ से उक्त ब्लाक लेकर आ रहे थे कि राह में मुझसे भेंट हो गई। उन्होंने खड़े होकर ब्लाक दिखाते हुए मुझसे पूछा—'यह ब्लाक क्यों नहीं छपा?' ब्लाक देखते ही मेरे होश उड़ गए। मैंने धीरे से कहा—'भूल हो गई।' वे क्रोध से तमतमा रहे थे। उन्होंने ब्लाक को जोर से चट्टान पर पटक दिया और अपनी स्वाभाविक गति से, किन्तु भरे हुए अपने कमरे की ओर चले गये।

अपनी भूल के कारण मेरा मन विकल हो उठा। काम में मन नहीं लग रहा था; किन्तु थोड़ी ही देर बाद जब फिर भेंट हुई, तब उनके अधर पर वही मधुर हास्य-रेखा और वाणी में वही सरसता और कोमलता। उनमें आत्म-संयम की अद्‌भुत शक्ति थी।

हमने उन्हें कई बार कर्मचारियों पर क्रोध प्रकट करते देखा और यदि उस अवसर पर कोई आगन्तुक आ जाता, तो उसी क्षण वे मधुर होकर मुसकराते हुए उससे बातें करने लगते। उनकी इस मनःस्थिति को ही देखकर कदाचित् सन् १९२१ में हिन्दी के एक दैनिक पत्र में एक लेख-द्वारा उनका व्यंग्य किया गया था। लेखक महोदय ने इस तथ्य का अनुभव करने का कष्ट नहीं किया कि आत्मसंयम भी मनुष्योचित एक सद्‌गुण होता है और यह सद्‌गुण भी उनमें पूरी मात्रा में था। यही कारण था कि उनके क्रोध का पात्र कभी कोई नहीं बना। उनका क्रोध कर्पूर की भाँति सदा हवा ही हो जाया करता था। दूसरी बार वे 'सरस्वती' में 'द्वितीय महा-युद्ध की डायरी' का छपना देखकर नाराज हुए थे, यद्यपि वह छापी गई थी उनकी ही सहमति से। मुझे उनके मनोभाव को देखकर खेद हुआ था। इन दो अवसरों को छोड़कर हमारे उनके बीच, स्वामी और सेवक के रूप में भी, कभी कोई ऐसी बात नहीं हुई, जो मुझे अखर गई हो। उनमें सद्व्यवहार कूट-कूटकर भरा था। वे अपने इसी सद्‌गुण के बल से अपने कर्मचारियों से इच्छानुसार काम करवा लिया करते थे और लोग भी उत्साह के साथ उनके आदेशों का पालन करते थे। वे काम लेने में भी पटु थे; स्वयं करने में पटु तो थे ही।

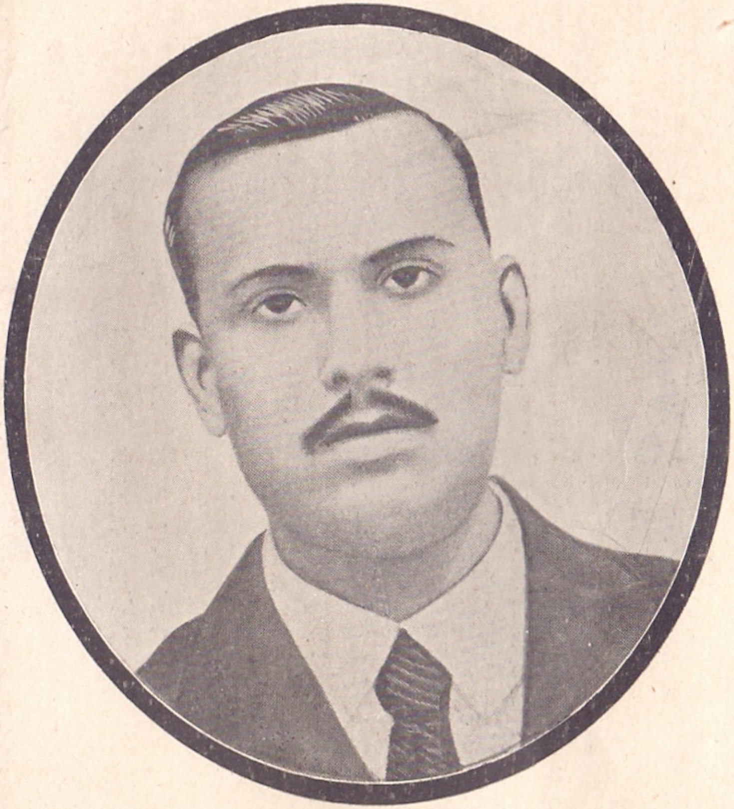
हम लोग समझा करते थे कि उनको कहाँ पता रहता होगा कि 'सरस्वती' आदि में कहाँ क्या छपता रहता है। हम स्वयं देखते रहते थे कि कामों के पीछे वे भागते-से रहते हैं, तब उनको इतनी फुरसत कहाँ कि 'सरस्वती' आदि भी देखते रहें। परन्तु बात ऐसी नहीं थी। वे अवश्य देखते रहते थे, भले ही एक ही निगाह से। इसका हमें अनेक बार प्रमाण मिला। परन्तु हम बराबर भ्रम ही में पड़े रहे। सन् १९२६ में सरस्वती में "प्रेमचन्द की करतूत" शीर्षक एक लेखमाला निकली थी। कुछ लोगों ने बड़ा हो-

हल्ला मचाया। उन तक शिकायत की गई, परन्तु वे कुछ नहीं बोले। इतना मुझसे एक दिन अवश्य कहा था कि 'करतूत' शब्द का प्रयोग सुन्दर नहीं है, और लेखमाला से तो वे यहाँ तक प्रभावित हुए थे कि लेखमाला के लेखक श्री अवध उपाध्याय की रूबिया को उन्होंने बिना हम लोगों से परामर्श किए ही छपवा दिया था।

अपने विभाग के कार्यवश मुझे उनके पास जब-तब जाना पड़ता था। वे भी कभी-कभी मुझे बुला लिया करते थे। परन्तु बातचीत केवल दो मिनट में ही समाप्त हो जाती थी। वे साल भर का काम दिसम्बर के अन्त में निर्दिष्ट कर दिया करते थे। उसी के अनुसार विभाग का सारा काम यंत्रवत् होता रहता था। साल भर तक किसी प्रकार का उसमें हस्तक्षेप नहीं करते थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो उनको पता ही नहीं कि हम लोग क्या काम करते हैं।

हम लोग अपने विभाग का काम ठीक नियम के साथ करते थे, मानो वह अपना ही काम हो। जो चाहते थे, करते थे। कोई पूछनेवाला नहीं था। जो लोग हम लोगों के व्यवहार से असंतुष्ट हो जाते थे, वे शिकायत लेकर उनके पास जाया करते थे। बहुतों की शिकायतों के सम्बन्ध में कभी-कभी वे हम लोगों से पूछते थे कि 'क्या बात है, वे ऐसा क्यों कहते थे?' ठीक-ठीक बात उनसे कह दी जाती थी। तब वे मुसकराकर चुप हो जाते थे। एक का उल्लेख मैं उपर कर ही चुका हूँ। अन्य अवसरों पर तो उन्होंने कुछ पूछा भी नहीं और हम लोगों का बराबर साथ दिया। दो मुख्य बातों का यहाँ उल्लेख करूँगा।

पंजाब के श्रीयुत संतराम, बी० ए० 'सरस्वती' के पुराने लेखक तो थे ही, उनका प्रेस के प्रकाशन-विभाग से भी सम्बन्ध था। वे प्रेस के अपने जैसे हो गए थे। 'सरस्वती' में उनके लेख बराबर छपते रहते थे। सन् ३३ या ३४ में उन्होंने एक ऐसा लेख भेजा, जिसके फलस्वरूप लाहौर के एक सज्जन ने हम लोगों पर मानहानि का दावा करने का नोटिस दिया। नोटिस की बात जब बाबू साहब से कही गई और उसके दिए जाने के कारण का उल्लेख किया गया, तब उन्होंने संक्षेप में यही कहा, 'जाइए, आप लोग अपना काम कीजिए। उन्हें दावा करने दीजिए।' इसी प्रकार जब 'विशाल भारत' के सम्पादक पं० बनारसीदास के इंटरव्यू के छपने की बात को लेकर बड़ा हो-हल्ला मचा, उस समय भी वे सब कुछ सुनते रहे और हम लोगों से पूछताछ तक न की। परन्तु हमने कांग्रेसी नेता श्री सुन्दरलालजी के विशेष आग्रह पर और इस शर्त पर कि चतुर्वेदीजी भी अपने 'विशाल भारत' में इसी मर्म का अपना वक्तव्य छाप देंगे, उस इंटरव्यू के सम्बन्ध में अपना वक्तव्य 'सरस्वती' में छाप दिया। उसके छप जाने पर जब उन्होंने उसे पढ़ा, तब मुझे बुलाकर कहा कि 'आपका वक्तव्य मैंने पढ़ा है। यदि यही करना था, तो इंटरव्यू क्यों छापा था?' यह कहकर वे अपने काम में लग गए। उनके ओंठों पर वह मधुरिमा नहीं झलक रही थी, जो किसी से बातचीत करते समय वहाँ सदैव दिख जाया करती थी। वे अपना काम करने लगे और मैं हतप्रभ होकर अपनी जगह चला आया। भर्त्सना करने का उनका यह एक अनोखा स्वाभाविक ढंग था। परन्तु सबसे अधिक प्रभावित हुआ मैं उनके उस उदार व्यवहार से, जो उन्होंने उस अवसर पर किया था, जब 'सरस्वती' में प्रकाशित राधारानीवाले लेखों



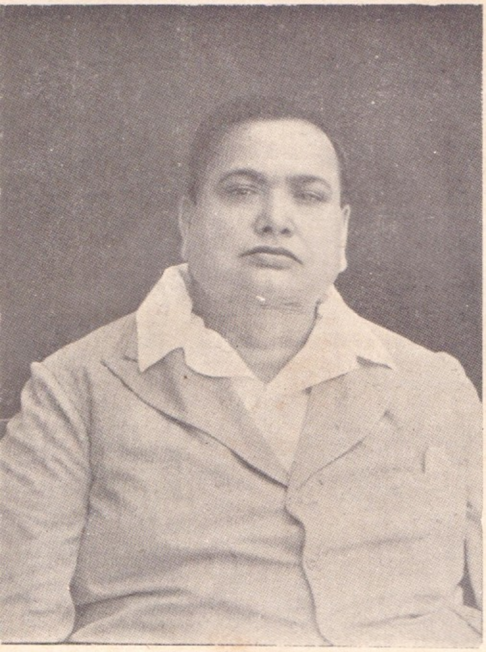


स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष के ज्येष्ठ भ्राता स्वर्गीय श्री हरिपद घोष तथा ज्येष्ठा भगिनी स्वर्गीया श्रीमती हरिप्रभा वसु।

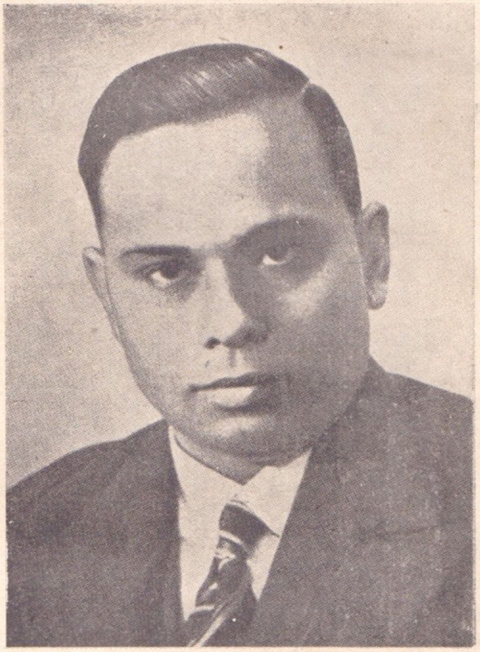


घोष-परिवार

स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष (खड़े हुए बाएँ से चौथे)



श्री हरिप्रसन्न घोष



श्री हरिसाधन घोष

इंडियन प्रेस लि० के संचालक
और स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष
के अनुज

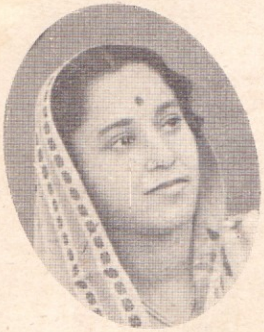


श्री हरिनाथ घोष



श्री हरिभूषण घोष

श्री हरिकेशव घोष का परिवार



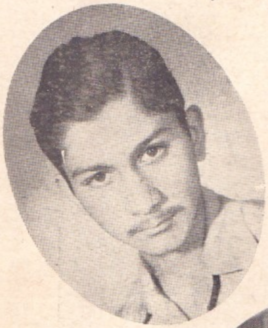
१



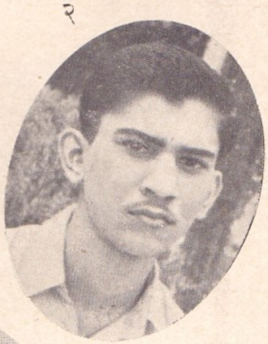
पत्नी श्रीमती मीरा घोष



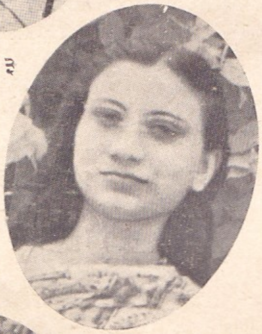
२



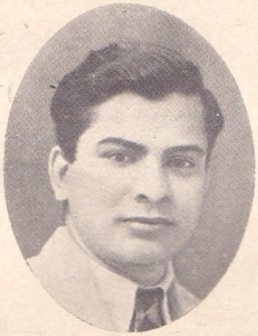
३



४



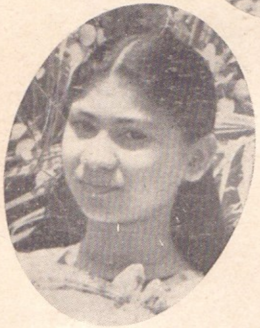
५



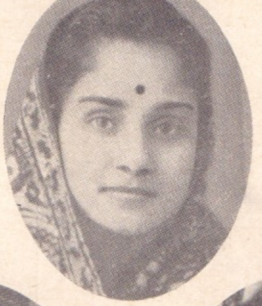
६



७



८



९



१०

१---पुत्री श्रीमती माया मित्र
२-- " " शान्ति मित्र
३---पुत्र श्री सत्यप्रसाद घोष
४-- " " असीमप्रसाद घोष
५---पुत्री कुमारी रमा घोष
६---पुत्र श्री देवप्रसाद घोष



११



१२

७---पुत्री कुमारी छाया घोष
८-- " " चित्रा घोष
९---पुत्रवधू श्रीमती गीता घोष
१०---पुत्र श्री ज्योतिप्रसाद घोष
११---पौत्री श्री शुभ्रा
१२-- " शुक्ला

के कारण हम लोगों को विकट विरोध का सामना करना पड़ा था। उन पर बड़े-बड़े दबाव पड़े, परन्तु उन लेखों के सम्बन्ध में उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा कि तुम लोगों ने अच्छा किया या बुरा। वे हम लोगों का विश्वास करते थे। उनको विश्वास था कि हम लोगों से भूलकर भी प्रेस का अहित न होगा। उनका यह मनोभाव हम लोगों को ज्ञात था और हम लोग भी निष्ठापूर्वक अपना कर्त्तव्य-पालन सदैव करते रहे।

एक बार 'सरस्वती' में नवयुवक लेखकों के सम्बन्ध में एक टिप्पणी छपी। उसे पढ़कर उन्होंने मुझे बुलवाया। जब मैं पहुँचा तब हँसकर बोले, 'यह टिप्पणी क्यों छापी है? क्या इन सज्जन की रचनाएँ आप छापेंगे?' मैंने कहा कि 'यह तो लेख देखने ही पर कह सकूँगा।' उन्होंने हँसते हुए कहा कि 'साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि नहीं छापूँगा।' इस प्रकार अपने तीक्ष्ण व्यंग्य से उन्होंने मेरे उत्तर का सारा मजा ही नहीं किरकिरा कर दिया, किन्तु उसकी पोल भी खोल दी। मैं लज्जित होकर अपनी जगह लौट आया। इस प्रकार के प्रसंग प्रायः आया करते थे। मैंने बार-बार इस बात का अनुभव किया कि वे जो कुछ कहते थे, वही ठीक होता था। उनमें विलक्षण प्रतिभा थी।

हिन्दी की वर्तमान प्रगति में इण्डियन प्रेस और उसकी 'सरस्वती' का अपना हाथ सब से अलग है और इस सत्कार्य का सारा श्रेय 'सरस्वती' के संचालकों को है। उन्होंने हिन्दी की विशिष्ट सेवा की है। हिन्दी के इतिहास में उनके सत् प्रकाशन और 'सरस्वती' का अपना एक अलग अध्याय है। अपनी संस्था के इस गौरव को वे अपने सत्प्रयत्नों से अधिकाधिक विकसित ही करते रहे। सत्साहित्य का प्रसार करने में उन्होंने अपना पैर सदैव आगे ही रक्खा। सचित्र हिन्दी महाभारत, सचित्र हिन्दी श्रीमद् भागवत, उमर खैयाम जहाँ उनकी सुरुचि और कलात्मक बुद्धि के परिचायक हैं, वहाँ पन्त, ठाकुर गोपालशरण सिंह आदि बहुसंख्यक कवियों और ग्रन्थकारों के प्रकाशनों से उनके सत्साहित्य-प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। बहुधंधी होते हुए भी वे प्रेस के प्रकाशन-कार्य के सम्पादन के लिए समय निकाल ही लिया करते थे। 'सरस्वती' और 'बालसखा' की उन्नति करने के लिए वे सदैव संनद्ध रहते थे। यों तो 'सरस्वती' को समुन्नत करने की योजना उन्होंने सन् १९२१ ही में निर्दिष्ट कर ली थी, परन्तु उसको कार्य का रूप सन् १९२६ में दिया था। सन् १९२९ में उन्हीं की प्रेरणा से 'सरस्वती' सर्वथा अभिनव रूप में प्रकाशित हुई थी। रंगीन छपाई के साथ-साथ लोकोपयोगी पाठ्य सामग्री से अलंकृत उस वर्ष 'सरस्वती' निकली थी। परन्तु देशव्यापी महर्घता के फलस्वरूप उन्हें अपनी उक्त योजना को स्थगित कर देना पड़ा। किन्तु ज्यों ही अवसर मिला, वे 'सरस्वती' को नहीं भूले। सन् १९३४ और १९३५ में उन्होंने 'सरस्वती' को अत्यधिक सुन्दर रूप में निकाला। दुर्भाग्य से द्वितीय महायुद्ध के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे और वे फिर सावधान हो गए। वे सचमुच बड़े बुद्धिमान् और कार्यकुशल व्यक्ति थे। उनकी सूझ-बूझ विलक्षण थी। देशकाल को देखकर ही वे काम करते थे। यही कारण था कि उन्हें बराबर सफलता मिलती रही।

उनके सफल जीवन का विवरण देना सरल काम नहीं है। उसके लिए धैर्य चाहिए तथा

समय भी। उनके असमय में दिवंगत हो जाने से मैं हतबुद्धि हो गया हूँ। मुझे कभी ध्यान में भी नहीं आया था कि एक दिन मुझे यह दुःखद कार्य करना पड़ेगा। फिर अब मुझमें ऐसी तीव्र बुद्धि भी नहीं रही कि मैं उनके सारे सद्‌गुणों का परिचय दे सकूँ। वे बड़े तेजस्वी और क्रिया-शील व्यक्ति थे। उनके कार्यों का ब्योरेवार वर्णन करना कम-से-कम मेरी शक्ति के बाहर की बात है। वे इतना कार्यव्यस्त रहते थे, उनके कार्यक्षेत्र भी इतने भिन्न थे, वे कहाँ कब क्या क्या करते रहते थे और इन सबमें वे अपनी प्रतिभा और क्षमता से सारे कार्यों का सम्पादन किस प्रकार करते थे, इस सबका हिसाब लगाकर उनके सम्बन्ध में समुचित रूप से उनके गौरव-पूर्ण चरित्र का चित्रण करना हँसी-खेल नहीं है। अतएव मैं इस महत् कार्य से यहाँ विरत होता हूँ। केवल एक बात का उल्लेख और करूँगा।

हम लोगों में से बहुतेरे यह जानते थे कि केवल प्रातःकाल सबेरे वे अपने स्वाभाविक रूप में भिलते पाए जाते थे। सबेरे चाय पीने के बाद वे प्रायः अखबार देखा करते थे। उस समय जो भी पहुँच जाता था, उससे बातचीत भी करते थे। उस समय का उनका व्यवहार अत्यधिक उदारता तथा सहानुभूति से पूर्ण रहता था। उस समय प्रकट होता था कि वे कितने सुजन और दयालु हैं। उनके इस समय के सौजन्यपूर्ण व्यवहार से कितनों ही ने लाभ उठाया है। उनमें से एक मैं भी हूँ। इस समय वे कदापि 'न' नहीं करते थे।

एक बार एक विशेष उद्देश्य से मैं सबेरे उनके पास गया। थोड़ी देर इधर-उधर की बात करने के बाद जब मैंने अपनी बात कही, तब वे मुझसे सहमत नहीं हुए। मैंने देखा, उन्होंने हाथ का अखबार एक ओर डाल दिया और कुर्सी से उठकर जल्दी-जल्दी कमरे से बाहर हो गए। मैंने उनका ऐसा व्यवहार कभी नहीं देखा था। मैं क्षुब्ध हो उठा। मैंने मन में सोचा कि जान पड़ता है, बाबू साहब नाराज हो गए हैं। थोड़ी देर तक मैंने उनके लौटने की प्रतीक्षा की। जब वे नहीं आये, तब मैं वहाँ से उठा और अपने घर चला आया। मन विकल था। जब दस बजे प्रेस पहुँचा, तब मुझे उनका एक पुर्जा मिला। उसमें उनकी स्वीकृति थी। उनकी ऐसी ही उदारता थी, परन्तु उस पुर्जे को पढ़कर मैंने मन-ही-मन दुःख-मिश्रित लज्जा का अनुभव किया। मैंने तब जाना कि मेरा प्रस्ताव उचित नहीं था, तो भी उन्होंने उसे स्वीकार कर अपनी सुजनता का ही परिचय दिया। वे वास्तव में एक पर-दुःख-कातर सुजन थे। आज उनके दिवंगत हो जाने से हम लोग एक बड़े भारी अभाव का अनुभव कर रहे हैं। उनके असमय में ही स्वर्ग-प्रयाण करने से इंडियन प्रेस की भीषण क्षति तो हुई ही है, स्वदेश की भी हुई है।

पटल बाबू की स्मृति

डॉ० उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, डी० लिट्०

"आज प्रेस में इतनी चहल-पहल क्यों है और बाबू लोग दफ्तर के समय से अधिक देर तक क्यों काम कर रहे हैं?" मैंने स्वाभाविक जिज्ञासा से पूछा।

"क्या आपको यह नहीं मालूम कि कल इलाहाबाद से बड़े साहब यहाँ आ रहे हैं? बाबू लोग हिसाब-किताब ठीक करने में व्यस्त हैं। प्रेस-सम्बन्धी और भी छोटी-मोटी त्रुटियाँ सुधारी जा रही हैं। बड़े साहब किसी भी प्रकार की त्रुटि अथवा असावधानी को सहन नहीं करते। हिसाब का रजिस्टर हाथ में लेते ही उनकी नजर गलती पर ही पड़ती है। कार्यालय के बाबुओं की तो बात ही क्या है, वे बेचारे तो नौकर ठहरे, उनके छोटे भाई भी उनसे डरते हैं।" एक कर्मचारी ने उत्तर दिया।

बात सन् १९४० की है। उन दिनों इन पंक्तियों का लेखक इण्डियन प्रेस की कलकत्ते की शाखा, ९३ ए०, धर्मतल्ला स्ट्रीट में, अतिथि के रूप में रहता था तथा अपनी डी० लिट्० की थीसिस "भोजपुरी की उत्पत्ति एवं विकास" लिख रहा था। प्रेस के कर्मचारी ने जिन बड़े साहब की ओर इशारा किया था, वे इण्डियन प्रेस के जनरल मैनेजर स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष (पटल बाबू) थे।

पटल बाबू से मेरा परिचय कब हुआ, यह मुझे ठीक याद नहीं। कदाचित् सन् १९२९ में एम० ए० पास करने के बाद ही मैं आदरणीय भैया साहब, पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी का पत्र लेकर उनसे मिला था। मैं सम्भवतः छुट्टियों में, नौकरी की तलाश में उनसे मिलने गया था; किन्तु थोड़ी देर बातें करने के बाद ही न मालूम वे मेरी प्रवृत्ति से कैसे परिचित हो गए। उन्होंने कहा—'अजी, तुम प्रेस की नौकरी क्यों करोगे? अभी तो तुमने एम० ए० पास किया है, अभी थोड़ा और पढ़ो।'

मेरी सुषुप्त आकांक्षा जागृत हो उठी। मैं सचमुच पढ़ना चाहता था, किन्तु अपनी चारों ओर की परस्थिति से बाध्य होकर नौकरी की खोज में गया था। और उधर मुंहमाँगा वरदान मिला। प्रथम परिचय में ही एक व्यक्ति ने नितान्त आत्मीय ढंग से मुझसे वही बात कही, जो मैं हृदय से चाहता था। उसके बाद मैंने श्री पटल बाबू से कभी नौकरी की बात नहीं की; किन्तु मैं उनके सद्व्यवहार से मुग्ध होकर उनका चिरभक्त बन गया।

दिन, रात और वर्ष व्यतीत होते गये। बीच में कभी-कभी पटल बाबू मिलते और इधर-उधर की बातें हो जातीं। वे यदा-कदा अपने साथ प्रेस भी लिवा जाते और मेरी रुचि के अनुसार कतिपय नवीन पुस्तकें भेंट करते। मैं प्रसन्नता से उनका यह दान स्वीकार करता। वे मेरी पढ़ाई के सम्बन्ध में भी पूछ लेते और जब मैं उनसे कहता कि मैं अपने अध्ययन में निरन्तर प्रवृत्त हूँ, तो उन्हें प्रसन्नता होती।

सन् १९३३ से १९३९ के मेरे दिन आँधी-पानी के थे। मैं इस समय शनि की दशा का फल ले रहा था; किन्तु बिना हानि-लाभ का विचार करते हुए मैं एक के बाद दूसरी परीक्षा देता गया और ईश्वर की कृपा से मुझे आशातीत सफलता भी मिलती गई। सन् १९४० की

जुलाई में मुझे इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि मैं कलकत्ते जाकर आदरणीय गुरुवर डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी के तत्त्वावधान में भाषाविज्ञान का अध्ययन करूँ तथा अपनी थीसिस लिखूँ। इसके लिए मुझे कलकत्ता विश्वविद्यालय में नियमित रूप से अध्ययन की आवश्यकता थी। मैं अपने कलकत्ता-निवास के संबंध में बातें करने के लिए आदरणीय पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के साथ श्री पटल बाबू से मिला। चतुर्वेदीजी उनसे पहल ही मेरे कलकत्ता जाने की चर्चा कर चुके थे। अतएव मुझे देखते ही पटल बाबू ने कहा—'तुम कलकत्ते जाओ और जब तक तुम्हारी इच्छा हो, रहो। वहाँ तुम्हें सब प्रकार की सुविधा रहेगी।'

मैं १ अगस्त, १९४० को ९३ ए, धर्मतल्ला स्ट्रीट पर स्थित इण्डियन प्रेस में पहुँचा। वहाँ मुझे मालूम हुआ कि लोग एक सप्ताह पूर्व से ही मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरे लिए वहाँ एक सुन्दर कमरा सुरक्षित था और भोजनादि की बढ़िया व्यवस्था थी। मैं लगभग डेढ़ वर्ष तक वहाँ रहकर अध्ययन करता रहा। इस बीच किसी ने मुझसे यह कभी न पूछा कि आप यहाँ और कितने दिन रहेंगे। मैं बड़े साहब का मित्र जो था!

पटल बाबू जब भी कलकत्ते जाते, मिलने-जुलनेवालों की वहाँ खासी भीड़ लग जाती। उन्हें मुझसे मिलने का अवकाश ही न मिलता। वे प्रायः ५ बजे प्रातःकाल उठकर मेरे कमरे में आ जाते और प्रयाग के मित्रों की बातें करने लगते। उन्हें मुझसे शिकायत थी कि निवास तथा भोजनादि के अतिरिक्त मैं उनसे और कोई सहायता क्यों नहीं लेता। मैं उनसे प्रायः कहा करता—"बौद्ध भिक्षुओं के लिए यह कहा गया है कि उन्हें 'सुभर' तथा 'सुवच' होना चाहिए। 'सुभर' से तात्पर्य यह है कि जहाँ वे रहें, वहाँ के लोगों के लिए तनिक भी भारस्वरूप न हों। आखिर, आपने सभी सुविधाएँ तो दे ही रखी हैं। अब और क्या चाहिए?" पटल बाबू के होठों पर एक हलकी मुसकान दौड़ जाती।

मैं सन् १९४२ में कलकत्ते से प्रयाग लौट आया और अपनी थीसिस को टाइप कराने की व्यवस्था करने लगा। युद्ध के दिन थे और बाजार में बढ़िया कागज आकाश-कुसुम हो रहा था। एक दिन अचानक पटल बाबू से भेंट हो गई। वे मेरी थीसिस के सम्बन्ध में पूछने लगे। मैंने कहा—'बड़ी कठिनाई है, पटल बाबू! कहीं बढ़िया कागज नहीं मिलता।' उन्होंने तत्काल पूछा—'कैसा कागज चाहिए और कितने पैसे खर्च करोगे?' मैंने कहा—'मेरे आदरणीय गुरु डॉ० बाबूराम सक्सेना अपनी थीसिस के लिए लन्दन से अमेरिकन बैंकपेपर लाए थे।' उन्होंने कहा—'आज वह कहाँ मिलेगा? किन्तु देखो, उद्योग करूँगा।' दूसरे दिन प्रातःकाल पटल बाबू मोटर से मेरे घर आये। उनके साथ छः-छः सौ शीट (ताव) के आठ बण्डल थे। यह अमेरिकन बैंकपेपर ही था। मैंने जब उनसे पूछा कि कितने रुपए देने होंगे, तो उन्होंने मोटर चला दी और हँसते हुए कहा—'हिसाब बाद में होगा।' मैं समझ गया कि ये बिना मूल्य लिये अमूल्य कागज दे गए। किन्तु मेरे लिए सबसे बड़ी आश्चर्य की बात यह थी कि जीवन के क्षण-क्षण में अत्यधिक व्यस्त रहनेवाले पटल बाबू जैसे व्यवसायी को कागज जैसी साधारण चीज का ध्यान कैसे रहा। किन्तु सच तो यह है कि दैनिक जीवन के साधारण क्रिया-कलापों में ही तो बड़े लोगों के असाधारण

व्यक्तित्व का परिचय मिलता है और पटल बाबू ऐसे ही महान् लोगों में से थे।

श्री पटल बाबू अपने भाइयों में सबसे ज्येष्ठ थे। उनसे बड़े एक भाई अवश्य थे; किन्तु युवावस्था में ही उनका देहान्त हो गया था। सम्मिलित कुटुम्ब की कुल जिम्मेदारी बड़े भाई पर ही रहती है, इस बात को वे खूब समझते थे। छोटे भाइयों के प्रति उनका कितना आकर्षण था, इस सम्बन्ध की दो बातें ही मुझे याद हैं। मैं जिन दिनों कलकत्ते में था, उस समय उनके छोटे भाई श्री हरिनाथ बाबू मानस रोग से पीड़ित हो गए। समाचार मिलते ही पटल बाबू प्रयाग से कलकत्ते पहुँचे। ओषधि आदि की उचित व्यवस्था के साथ-साथ उन्होंने हरिनाथ बाबू को अपने साथ ही रखना ठीक समझा। वे एक क्षण के लिए हरिनाथ बाबू को अकेले नहीं छोड़ते थे। एक दिन जब वे सो रहे थे, तो प्रातःकाल पटल बाबू मेरे कमरे में आये। मैंने देखा, वे असाधारण रूप से चिन्तित हैं। मैंने पूछा—'पटल बाबू, आप रात में बिलकुल नहीं सो सके क्या?' उन्होंने कहा—'हाँ, ऐसी ही बात है। हरिनाथ की बीमारी के कारण अत्यधिक चिन्तित हूँ।'

यों तो पटल बाबू का सभी भाइयों के प्रति अगाध स्नेह था; किन्तु उनके दूसरे भाई धूनी बाबू तो उनके प्राण ही थे। दोनों भाई साथ ही मोटर में बैठकर प्रायः लोगों से मिलने-जुलने जाते थे। पूरी राम-लक्ष्मण की जोड़ी थी। एक दिन मैंने देखा कि श्री पटल बाबू की मोटर मेरे घर के सामने रुकी। वे अकेले थे, किन्तु थे अत्यधिक प्रसन्न मुद्रा में। मुझे उन्होंने बुलाया और कहा—'चलते हो चतुर्वेदीजी की ओर!' मैं उनके पास जा बैठा। मैंने कहा—'आज आप अत्यधिक प्रसन्न दीखते हैं। बात क्या है?' उन्होंने कहा—'तुम्हें मालूम नहीं, मेरे घर में छोटे धूनी का आगमन हुआ है।' बात यह थी कि धूनी बाबू को पुत्ररत्न प्राप्त हुआ था।

यह प्रसिद्ध है कि श्री पटल बाबू एक कुशल व्यापारी थे और उन्होंने प्रभूत सम्पत्ति का अर्जन किया; किन्तु उनके उस जीवन से मुझे किंचित् मात्र भी परिचय प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला। कदाचित् जिन्हें वे स्नेह प्रदान करते थे, उनसे व्यापारिक सम्बन्ध नहीं रखते थे। जो हो, उनके जीवन के अत्यल्प अंश को ही मुझे देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। निश्चय ही वे अपने विशाल जीवन के अन्य अंशों में भी महान् थे। वे नितान्त शिष्ट, मृदुभाषी तथा सरलता की मूर्त्ति थे। उनका व्यक्तित्व आकर्षक था और उनका अट्टहास स्वाभाविक रूप से अपनी ओर आकृष्ट कर लेता था। यद्यपि अब उनका पार्थिव शरीर इस नश्वर संसार में नहीं है, तथापि उन्हें भूल जाना सरल नहीं है। आज भी ऐसा लगता है कि वे किसी ओर से आ रहे हैं।



दीर्घदर्शी और सहृदय पटल बाबू

पं० लल्लीप्रसाद पाण्डेय

सन् १९१७ में जब मैं नई उमंग से प्रयाग आकर प्रेस में भर्ती हुआ, पटल बाबू हाई स्कूल के छात्र थे। उनके बड़े भाई हरिपद बाबू को तो मैं जल्दी पहचान गया; क्योंकि वे उस समय प्रेस का काम-काज करते थे; परन्तु उनके अन्य भाइयों को जानने-पहचानने का अवसर पीछे मिला। उस समय पटल बाबू पन्द्रह-सोलह वर्ष के रहे होंगे। श्री चिन्तामणि बाबू की कुर्सी के पास दफ्तर में, अवकाश मिलने पर, उनके पुत्र आकर बैठ जाते थे। एक बार इन लोगों को बैठे देख मैंने पं० बदरीनाथ भट्ट (आद्य-संपादक बालसखा) से पूछा कि ये कौन कौन हैं। उन्होंने बतलाया कि ये लोग हरिपद बाबू के छोटे भाई हैं।

संभवतः असली गुलाबजल मिलने में कठिनाई देखकर बड़े बाबू ने 'इंडियन परफ्यूमरी' नाम से एक छोटा सा कारखाना ५ मालवीय मार्ग की कोठी में, एक अंश में, खोला था। (घोष परिवार का आवासस्थल आजकल यही विशाल कोठी है।) उस समय इस सड़क का नाम सेमेट्री रोड था। माल तैयार करने के लिए कन्नौज से दो जानकारों को बुलाया गया था। ये लोग जलेसर जाकर गुलाबजल और मद्रास प्रान्त में जाकर केवड़ा जल बना लाते थे। इत्र कन्नौज से ले आते थे। सुगंधित तेल और सुर्ती उस कोठी में ही प्रस्तुत की जाती थी। इसकी देख-भाल सुबह-शाम पटल बाबू करते थे। इस कारखाने को बड़ा रूप देने का विचार था। किन्तु बाबू हरिपद घोष का असमय में देहान्त हो जाने पर पटल बाबू को प्रेस के प्रबन्ध के लिए प्रस्तुत होना पड़ा और परफ्यूमरी की देखभाल दूसरे भाई को सौंप दी गई।

प्रेस का काम सँभालने पर पटल बाबू से हम लोगों का परिचय बढ़ा। आरम्भ में पटल बाबू अपने पिताजी से सलाह लेकर ही प्रेस का काम-काज करते थे। इसी समय, सन् १९२१ में, काशी में एक किराये के मकान में प्रेस की शाखा खोल दी गई। बाबू विश्वेश्वरप्रसाद और मामा बाबू (श्री सतीशचन्द्र मित्र) वहाँ काम करने को भेज दिए गए। एक साल में जब वहाँ पर, मलदहिया मुहल्ले में, खुले स्थान में, प्रेस के लिए कोठी मोल ले ली गई तब एक दिन बड़े बाबू ने मुझे अपने पास बुलाया और बिठाकर काशी में कोठी लेने का ब्योरेवार समाचार बतलाया। अन्त में मुझसे कहा कि प्रयाग भी तीर्थ है और काशी भी बाबा विश्वनाथ की पुण्य नगरी है। बंगाल के तथा अन्य प्रान्तों के बहुत से लोग काशीवास करने में अपना अहोभाग्य समझते हैं। आपका प्रयाग में घर तो है नहीं जो इस स्थान से आपका विशेष आकर्षण हो। इसलिए यदि आप काशी जाकर वहाँ महाभारत के संपादन और मुद्रण में तत्पर हो जायँ तो बड़ा अच्छा हो।

यह सुनकर मुझे अपार हर्ष हुआ। 'अन्धा माँगे आँखें' की लोकोक्ति चरितार्थ हुई।

मुझे काशी निवास की इच्छा बहुत पहले से थी। वहाँ हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों का जमघट सा था। इसके पहले बड़े बाबू मुझसे कई बार

महाभारत का कार्य हाथ में लेने को कह चुके थे; परन्तु मुझे अपनी योग्यता का भरोसा कम था, इस कारण मैं उस काम को टालता जाता और दूसरे कामों में लगा रहता था। पं० बदरीनाथ भट्टजी के, प्रेस की नौकरी छोड़कर, चले जाने पर उनके कागजों में मुझे पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का एक पत्र मिल गया। उसमें लिखा था कि 'अनुवादक को सँभलकर अनुवाद करने की चेतावनी दे दीजिए। (पहले बिहार के एक सज्जन यह काम करनेवाले थे।) जब कई पर्वों का अनुवाद हो जाय, तब मेरे पास भेजिएगा। उस समय स्वास्थ्य अच्छा होगा, तो सम्पादन करूँगा।' मैंने सोचा कि जो काम आचार्य द्विवेदी के करने का है, उसको मैं किस साहस से अपने हाथ में लूँ। फिर वेदव्यासजी के महापुराण का सम्पादन करने के लिए मेरे पास उपयुक्त सामग्री भी न थी। इसके अतिरिक्त इस कार्य में सहायता के लिए अच्छे जानकारों की भी आवश्यकता थी। इन्हीं कठिनाइयों की भीषणता से मैं अपनी जान बचाता था कि यह काम किसी अन्य विद्वान् को दे दिया जाय। पर अन्त में यह कार्य मुझे ही करना पड़ा।

१२-८-१९२३ की शाम को छोटी लाइन की गाड़ी से मैं, दारागंज स्टेशन पर, काशी के लिए प्रस्थित हुआ। पटल बाबू, मेरे लिए भी, टिकट लिए हुए रामबाग स्टेशन से इसी गाड़ी में सवार थे। बातचीत करते हुए हम लोग रात को ९॥ बज काशी में, प्रेस के अहाते के फाटक पर, पहुँचे। पर फाटक भीतर से बन्द था। कई बार पुकारने और फाटक पीटने पर भी जब किसी ने फाटक न खोला तब पटल बाबू उस अँधेरे में, घेरे की दीवार पर चढ़कर, भीतर कूदे और अन्दर से फाटक को खोला। ताँगा अहाते में गया। कोठी के बरामदे में चौकीदार सो रहा था। उसे जगाया और रात को सोने की व्यवस्था की। दूसरे दिन सब काम मुझे समझाकर वे प्रयाग वापस चले आए और मैं विश्वनाथजी तथा अन्नपूर्णा के दरबार में हाजिरी देकर काम करने लगा।

महाभारत के सम्पादन में कौन-कौन-सी कठिनाइयाँ हुई और काशी में किन किन महापुरुषों की सेवा में जाने पर उनका निराकरण हुआ, उनके वर्णन का यह उपयुक्त स्थान नहीं है। महाभारत के संपादन-प्रकाशन आदि में संभवतः एक लाख रुपया खर्च हुआ होगा।

अच्छे कामों में प्रायः विघ्न हुआ करते हैं और यदि विघ्न न हों तो कार्य की पवित्रता में सन्देह होने लगता है। अभी महाभारत का सम्पादन हो ही रहा था कि एक प्रबल विघ्न का सूत्रपात हुआ। प्रेस के एक पुराने कार्यकर्ता, जो मेरे अग्रजस्थानीय हैं और मुझ पर जिनकी सदा असीम अनुकम्पा रही है, काशी की शाखा में काम करने को भेज दिए गए। प्रयाग में उनको सब प्रकार की सुख-सुविधा प्राप्त थी। काशी में इसका ठीक उलटा था। स्वयं भोजन बनाना पड़ता, जिसका उनको अभ्यास कम था। कोई साथी न था जिससे हिलते-मिलते। मिलने-जुलनेवालों के पास वे शाम को प्रेस से दूर दशाश्वमेध जाया करते और रात को नव-दस बजे वापस आते। इस सबसे खीझकर कहा करते कि 'हमारा काशी-प्रवास, अदृष्ट का उपहास' है।

हम लोग साथ ही रहते थे। खासा हेल-मेल था। एक दिन न जाने किस छोटी सी बात पर विवाद हो गया। मुझे ऐसे प्रसंग को टाल देना चाहिए था; परन्तु मेरी क्षुद्रता ने मुझको विवाद से विरत न होने दिया। अन्त में चिढ़कर

मैंने सोचा कि अब यहाँ काम करना ठीक नहीं। बस, मैंने पटल बाबू के पास त्यागपत्र भेज दिया। उसमें लिख दिया कि 'मुझे विश्वनाथजी अपनी नगरी में नहीं रहने देना चाहते। पुण्यपुरुष को काशी में रहने का अधिकार मिलता है। मैं तो अधम हूँ। मुझसे काम करने में, जाने-अनजाने, जो भूलें हुई हों उनको क्षमा कीजिएगा।' यह घटना सन् १९२६ के आरम्भ के किसी महीने की है।

मैं सोचता था कि त्यागपत्र स्वीकृत होने पर कहीं चला जाऊँगा। विपत्नीक होने से और कोई चिन्ता तो है नहीं, केवल कन्या के ऋण से मुक्त होना है, सो किसी प्रकार भगवान् कृपा कर देंगे।

त्यागपत्र भेजने के तीसरे या चौथे दिन किसी गाड़ी से पटल बाबू काशी पहुँचे। उनको वहाँ, बिना किसी पूर्व सूचना के, देखकर मैं स्तम्भित हो गया। त्यागपत्र देने के लिए मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया। इतनी बड़ी संस्था के संचालक को मेरी दुर्बुद्धि के कारण काशी आना पड़ा। जिनसे मेरा मनोमालिन्य हो गया था उन्होंने पटल बाबू को अपनी सफाई दी और मैंने कहा कि अग्रज मानकर मैं तो सदा इनका आदर करता रहा हूँ और अब दूसरी स्थिति हो जाने से नौकरी छोड़कर भाग जाना चाहता हूँ। अस्तु, उनसे निबटकर पटल बाबू साहब ने मुझसे कहा—'यदि आपने अन्यत्र कार्य करने की व्यवस्था नहीं कर ली है और इण्डियन प्रेस का कार्य करने में आपकी कोई क्षति नहीं हो रही है तो त्यागपत्र वापस ले लीजिए। महाभारत के सम्पादन का जो काम हाथ में लिया है, उसे पूर्ण कर दीजिए। पिताजी (बड़े बाबू साहब) की प्रबल इच्छा महाभारत को मुद्रित रूप में देखने की है।'

उस दिन से फिर कभी मैंने त्यागपत्र देने का साहस नहीं किया; यद्यपि और भी दो-एक बार ऐसे अप्रिय प्रसंग आए।

यह ऐसी घटना थी जिसको मैं कभी भूल नहीं सकता; कदाचित् पटल बाबू को इसका स्मरण भी न रहा होगा। क्योंकि यह घटना उस समय की है जब न तो प्रेस का कार्यभार इतना गुरुतर हुआ था और न पटल बाबू का कार्यक्षेत्र ही इतना अधिक विस्तृत था।

काशी में रहने लगने पर कई वर्ष तक मैं नित्य सायंकाल को दशाश्वमेध घाट पर जा बैठता था। वहाँ बंगालियों की भीड़भाड़ देख मुझे ऐसा लगता मानो कलकत्ते के किसी मुहल्ले में आ गया हूँ। प्रायः बँगला भाषा में कीर्तन सुनता और विश्वनाथ जी तथा अन्नपूर्णा के दर्शन करके प्रेस लौट जाता। प्रेस में ही रहने को मुझे मुफ्त स्थान दिया गया था। जान-पहचान कम लोगों से थी। फिर धीरे धीरे वहाँ के साहित्यसेवियों से इतनी अधिक घनिष्ठता हो गई कि काशी मुझे अपनी जन्मभूमि सदृश हो गई। इच्छा थी कि प्रेस से निष्कृति पाकर कहीं काशी में ही, किसी सार्वजनिक संस्था की सेवा में, शेष जीवन बिता दूँगा। इसी बीच पटल बाबू साहब का पत्र प्रयाग में रहकर 'हल' और 'बालसखा' का सम्पादन-कार्य सँभालने के लिए पहुँचा। मैं चिन्ता में पड़ गया।

मित्रों ने कहा कि इस अवस्था में लोग काशीवास करने को आते हैं और तुम यहाँ से टरकना चाहते हो! क्या जीवन भर प्रेस की नौकरी ही करते रहोगे? बाबू श्यामसुन्दरदास, पं० रामनारायण मिश्र, राय कृष्णदास आदि नहीं चाहते थे कि मैं काशी से हटूँ। पर पटल बाबू ने बतलाया कि 'मेरे भरोसे लायक कोई

भी तो प्रयाग में मेरे पास रहे।' इस समय प्रयाग में कुछ हिन्दी-सेवी लोग प्रेस की नौकरी छोड़ चुके थे। इस दशा में यदि मैं भी, पुराने चले आ रहे सम्बन्ध को तोड़कर नौकरी छोड़ देता तो यह शंका हो जाती कि यह भी काम छोड़कर चले जानेवाले दूसरे लोगों की साँठगाँठ में है। इसलिए काशी छोड़ने को मुझे विवश होना पड़ा। वहाँ पं० ठाकुरप्रसादजी को मेरी कमी हमेशा खलती है।

जो सहायक संपादक महाशय प्रयाग में काम करते थे, उनके भी जल्दी प्रेस की सेवा से अलग हो जाने पर मुझे प्रयाग शीघ्र पहुँचना पड़ा।

प्रयाग में जाकर देखा कि पटल बाबू साहब निरन्तर काम में लगे रहते हैं। भोजन करना और सोना भी, काम के आगे, उन्हें तुच्छ जँचता है। मिलने-जुलनेवालों से भी उनको बातचीत करनी पड़ती है। सभा-समितियों में भी जाना पड़ता है। बड़ी-बड़ी व्यापारिक चिट्ठियाँ पढ़ते और उनके उत्तर लिखते हैं। प्रेस के भीतर मुद्रणव्यवस्था देखते, जहाँ त्रुटि पाते उसे सँभालते, पुस्तकों की बिक्री का प्रबन्ध करते और समय निकालकर काशी, शीतलपुर और कलकत्ता आदि जाकर वहाँ का कामकाज सँभालते हैं।

आज कल जिस बड़े हॉल में इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) लिमिटेड का कार्यालय है, यह पहले कई कक्षों में विभक्त था। किसी कक्ष में जनरल मैनेजर बैठते थे, किसी में सम्पादक और लेखक बैठते थे। किसी में पत्रिका-विभाग था और किसी में पुस्तकों की बिक्री का विभाग। छत को गिराए बिना ही, इन कमरों की दीवारों को अलग कर, कार्यालय को जो विशाल और भव्य रूप दिया गया है, वह पटल बाबू की भवन-निर्माण-कला का अपूर्व उदाहरण है। जिस समय कमरों की दीवारें तोड़ी जाकर हॉल नया रूप धारण कर रहा था, उस समय कारीगरों के निरीक्षक बूढ़े नब्बू मिस्त्री से मैंने कहा कि ऐसी तोड़ फोड़ करने से छत तो कमजोर न हो जावेगी। मिस्त्री ने कहा—'पण्डितजी, क्या बताऊँ। मैनेजर साहब कुछ सुनते ही नहीं। मैं बूढ़ा हो गया, ऐसा गोरखधन्धा मैंने देखा ही नहीं।' जब मैंने यह शिकायत बाबू साहब से की तो वे हँसने लगे। कहने लगे—'पुस्तकें पढ़कर और जानकारों से सलाह लेकर ही दफ्तर का कायाकल्प कर रहा हूँ। छत के कमजोर होने की तनिक भी चिन्ता नहीं।' पटल बाबू को भवन-निर्माण-कला से बहुत प्रेम था। इसलिए वे हमेशा कहीं न कहीं कुछ न कुछ बनवाते रहते थे। उनकी भवननिर्माण कला के परिचायक टैगोर टाउन (प्रयाग) की घोष बस्ती, मालवीय रोड पर स्थित घोषनिवास का परिवर्धित रूप, कैनिंग रोड के उनके बँगले और दूकानें तथा काशी और कलकत्ते की प्रेस की इमारतें हैं। कुछ जान-पहचानवालों के अनुरोध करने पर वे उनके भी मकान का नकशा बनवाते और बीच बीच में देख आया करते कि इमारत ठीक बन रही है या कुछ नुक्स रह गया है।

किस प्रदेश के लिए कौन सी पाठ्य पुस्तकें लिखनी हैं, उनमें किस विषय के पाठ आवश्यक हैं, उनके लिए सामग्री कहाँ-कहाँ से लेनी है, इसकी जानकारी उनको भरपूर थी। लेखक को उनसे सभी आवश्यक साधार सूचनाएँ सुलभ रहती थीं। कितनी ही हिन्दी पाठ्य पुस्तकों तक का संकलन उन्होंने स्वयं किया, यद्यपि उन पर नाम अन्य किसी का छाप दिया गया। इसी प्रकार उनके पास हिसाब तैयार रहता था

कि कौन-सी पाठ्य पुस्तक की, किस साल, कितनी प्रतियाँ छापना ठीक होगा। यदि अधिक संख्या में पाठ्य पुस्तक छाप ली जाय और अगले वर्ष वह कोर्स में न रहे, तो घाटा हो। इसीलिए ऐसा हिसाब परमावश्यक होता है।

पुस्तकें और सामयिक पत्र पढ़ने का उनको व्यसन था। इस कारण वे प्रेस के पत्रों के सम्पादकों को प्रायः सलाह दिया करते थे कि कौन-कौन-सी सामग्री छापने से पाठकों का हित होगा। वे यह भी बतला देते थे कि कौन-सी सामग्री किन पत्रों या पुस्तकों में मिलेगी। इस प्रकार पटल बाबू की विशाल दृष्टि हर ओर रहती थी।

सामर्थ्य से अधिक परिश्रम करने के कारण जब वे पिछली बार रोग से जूझ रहे थे, तब हितैषियों के जोर देने पर उन्होंने स्वीकार किया था कि चंगे हो जाने पर मर्यादा के बाहर परिश्रम करने से बचेंगे; परन्तु शरीर में शक्ति आते ही उन्होंने रोग की गुरुता का भय छोड़कर जो कार्य-चक्र को पूरे वेग से प्रवर्तित किया, तो रोग ने भी अन्तिम प्रतिरोध करने की ठान ली और उनको सदा के लिए विश्राम दे दिया।

बड़े बाबू साहब की मेरे ऊपर जितनी अधिक कृपादृष्टि रहती थी, उसमें पटल बाबू और उनके भाइयों ने रत्ती भर भी कमी नहीं होने दी। इसी से कभी-कभी ऐसा प्रसंग आ जाता था कि जिस पुस्तक को प्रेस से प्रकाशित होने योग्य मैं न समझता था, उसके प्रकाशित हो जाने पर जब मैं शिकायत करता, तब मैनेजर साहब हँसकर कहते कि उस पुस्तक को छापने में हमें खुशी नहीं है, पर हमको सब लोगों से मिलकर चलना पड़ता है, इसलिए कभी-कभी ऐसा भी काम कर देना पड़ता है। 'अधिक लाभ के लिए थोड़ी हानि भी सही।' इतना उदार मालिक क्वचित् ही मिलता है। "परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विलसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ?"

उदारता और सज्जनता की मूर्त्ति

श्री बी० एन० झा, शिक्षा-संचालक, उत्तरप्रदेश

स्वर्गीय हरिकेशव घोष से मेरा परिचय आज से प्रायः ३० वर्ष पूर्व हुआ था, जो उत्तरोत्तर प्रौढ़ और परिपुष्ट होता गया। छोटे, बड़े, मित्र, सहकारी इत्यादि सभी उन्हें स्नेहवश 'पटल बाबू' ही कहते थे। अपने सरल और निश्छल स्वभाव के कारण वे मिलनेवाले के हृदय-पटल पर अनायास अधिकार प्राप्त कर लेते थे। व्यवसाय के विभिन्न क्षेत्रों में उनको मिलनेवाली सफलता के यही दो मुख्य कारण थे। उत्कृष्ट कोटि के व्यवसायी होते हुए भी उनकी मनोवृत्ति में व्यावसायिक सहज संकीर्णता और स्वार्थ का सर्वथा अभाव था। उनकी उदारता में क्षुद्रता, लघुता और महत्ता जैसी कोई इयत्ता नहीं थी। उनके हृदय-द्वार सबके लिए समान रूप से उन्मुक्त रहते थे।

प्रतिभाशील होकर वे उत्कृष्ट प्रतिभा के सच्चे पारखी थे। इस प्रदेश का संभवतः ऐसा कोई उच्च कलाकार न बचा होगा, जिसकी सुन्दर कृति उनके द्वारा प्रकाशित न की गई हो। शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रकाशन के द्वारा उन्होंने साधिकार अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। उनका सुन्दर कलेवर, प्रतिभा की द्योतक चमकीली आँखें और विनय-मधुर स्वभाव उनके मिलनेवालों को सदा स्मरण रहेगा। वे उदारता और सज्जनता की मूर्त्ति थे। मुझे दुःख है कि वे अल्पायु हुए। उनके रिक्त स्थान की पूर्त्ति सहज न होगी।

पटल बाबू

पं० रामनरेश त्रिपाठी

दुःख की बात है कि पटल बाबू अब इस संसार में नहीं रहे। उनके नाम के साथ एक सदा प्रसन्नमुख, दूसरों की सहायता में आनन्द अनुभव करनेवाले, उदार-चेता, दृढ़-निश्चयी, निःस्वार्थ और निष्कपट भाव से मित्रता निभानेवाले, संयमी, परिश्रमी, उद्योगी और पिता के गौरव को बढ़ानेवाले मित्र का स्मरण हो आता है और हृदय आह्लाद से भर जाता है। उनकी मृत्यु हो गई, यह एक साधारण-सी घटना है, जो प्रत्येक जीवित प्राणी के साथ बँधी हुई है; न जाने कब सामने आ जाय। महत्त्व की बात तो यह है कि पटल बाबू ने जीवन को सदा उन्नति और यश की ओर अग्रसर करते हुए बिताया। उनका जीवन आदि से अंत तक सद्‌गुणों के आभूषणों से सुशोभित हो रहा है। दुःख उनके लिए नहीं, अपने लिए है; क्योंकि एक आलोक हमारे बीच से निकल गया। तुलसीदास के शब्दों में—

"रामधाम टोडर गये, तुलसी भये असोच।
जियबो मीत पुनीत बिन, यही जानि संकोच॥"

उनकी-सी दशा हम अपनी भी देखते हैं।

मुझे वे दिन अच्छी तरह याद हैं, जब सन् १९१५ में जीविकोपार्जन के लिए मैं पहले-पहल इलाहाबाद गया था। पटल बाबू के पिता स्व० बाबू चिंतामणि घोष से मैं मिला था और उनकी सम्मति और सहायता से मैंने 'साहित्य-भवन' नाम से पुस्तकों का कारबार खोला था, और साथ ही लेखन और प्रकाशन के काम में भी प्रवृत्त हुआ था। उस समय इंडियन प्रेस का सारा प्रबंध पटल बाबू देखते थे। स्व० चिंतामणि बाबू के पास ही पटल बाबू से मेरा सबसे पहला परिचय हुआ था। तब से लेकर सन् १९४१ तक, जब तक मैं इलाहाबाद में स्थायी रूप से रहा, उनका मित्रभाव मेरे साथ सदा एक रस बना रहा। यह उनके स्वभाव की विशेषता थी।

जब-जब मुझे सहायता की आवश्यकता पड़ी, उन्होंने कभी टाल-टूल नहीं किया। मैं कृतज्ञता प्रकट करता, तो दो-एक बार उन्होंने कहा भी कि "आप तो मेरे पिताजी के बताए मार्ग पर चल रहे हैं, इससे मैं स्वयं विशेष ध्यान रखता हूँ।" पिता के प्रति उनमें कितनी श्रद्धा थी, इन वाक्यों में वह स्पष्ट झलक रही है।

सन् १९३१ में अपनी पुस्तकों के प्रकाशन की आवश्यकता समझकर मैंने अपना एक स्वतंत्र प्रेस खोलने की इच्छा प्रकट की, तब पटल बाबू ने मुझे बहुत उत्साहित किया। वे मुझे अपने साथ कलकत्ते ले गये; अपने साथ ठहराया; लगभग एक सप्ताह तक कई कंपनियों में घुमा-फिराकर, अपने प्रेस के मिस्त्री से जाँच कराके एक सिलेंडर मशीन खरीदवा दी और इलाहाबाद वापस आकर अपने प्रेस से मेरे प्रेस के लिए सब जरूरी सामान बहुत थोड़े दामों पर मुझे दे दिया। जब कलकत्ते से मशीन आ गई, तब अपने प्रेस की मशीनों के प्रबंधक श्री काली बाबू को, जो मशीनों के एक दक्ष मिस्त्री भी थे, एक अन्य मिस्त्री के साथ भेजकर मेरी मशीन 'फिट' करा दी और प्रेस चल निकला। मशीन के फिट होने में एक सप्ताह से अधिक समय लगा। पटल बाबू प्रायः रोज एक चक्कर लगा जाया करते थे। वे जब आते थे, तब मन में कितना उत्साह भर

जाता था, उसकी छाप तो आज भी हृदय पर अमिट-सी है।

एक बार मेरे प्रेस में हड़ताल हुई। मैंने उनसे कहा, तो उन्होंने कहा—'घबराइए नहीं, प्रेस बंद मत कीजिए। पाँच बजे शाम को मैं अपने कंपोजीटरों को भेजूँगा। वे रात में आठ बजे तक काम कर जाया करेंगे। छापने के लिए काफी काम तैयार हो जायगा, तो एक मशीन-मैन भेज दूँगा, वह छाप जायगा।' ऐसा ही हुआ। शाम को पाँच-साढ़े पाँच बजे एक लारी में कंपोजीटर आते और रात में ८-९ बजे तक कंपोज कर जाते; फिर दूसरे-तीसरे दिन एक मशीन-मैन आकर कुल छाप जाता। परिणाम यह हुआ कि मेरे प्रेस की हड़ताल तीन ही चार दिनों में समाप्त हो गई।

पटल बाबू ने कभी मुझे 'ना' नहीं कहा। मैं कोई ब्लाक माँगता, तो फौरन दिला देते; केस, रैक या मशीन का कोई पुर्जा माँगता, और उनके प्रेस में फालतू पड़ा होता, तो वे कभी बहाना नहीं करते थे। एक अद्भुत-सा सुन्दर स्वभाव उन्होंने पाया था, जो प्रेस के व्यवसायियों में प्रायः दुर्लभ है।

हम दोनों समान रोगी थे। पहले मुझे डायबिटीज का रोग हुआ, पीछे उनको। इससे मिलने पर कुछ देर तक तो अपने-अपने रोग ही के अनुभव कहते-सुनते; फिर एक कुटुंबी की भाँति घरेलू चर्चाएँ होतीं। उनके पास बैठ-कर बातें करने में बड़ा सुख मिलता था; क्योंकि वे हृदय खोलकर बातें करते थे।

उक्त रोग के कारण ही १९४१ में इलाहाबाद से मैं तो प्रेस के झंझटों को छोड़कर भाग निकला और अभी तक शरीर को बचा रखने में समर्थ हुआ। पर पटल बाबू ने अपना बोझा बहुत भारी कर लिया था; और उनका स्वभाव भी बड़ा परिश्रमी था; इससे वे शरीर पर ध्यान कम दे सके। मेरा अनुमान है कि अधिक परिश्रम करने के कारण ही उनका शरीर जीवन के भार को उठाने में असमर्थ हो गया।

कुछ भी हो, मुझे हर्ष है कि मैं एक उच्च कोटि के मनुष्य का मित्र था, जिसके कितने ही सुखद संस्मरण अब मेरे मन की संचित सम्पत्ति की भाँति मेरे जीवन के साथ रहेंगे।



बाबू हरिकेशवजी घोष

पं० सुन्दरलाल द्विवेदी

घोष बाबू साहब के स्वर्गवास की दुःखद दुर्घटना की खबर मुझे मार्च के अन्तिम सप्ताह में मिल सकी। प्रयाग के बाबू प्यारेलालजी यादव ने एक कार्ड द्वारा यह खबर दी थी। निधन की बात देखते ही मैं एकदम चकरा गया। दो महीने से मुझे चक्कर यों ही आया करते हैं। मैं विह्वल हो उठा। अधपढ़ा कार्ड जमीन पर पटक दिया और विह्वल हो गया। सोचा, ऐसी बात न होगी। फिर सोचा कि यादव बाबू विश्वस्त मनुष्य हैं; बात सच होगी। दुबारा उठाकर कार्ड फिर पढ़ा। शरीर को विकृत देखकर १३ वर्ष की मेरी बिटिया कमला पूछने लगी—'बाबूजी क्या बात है? पत्र कहाँ से आया है? देखूँ तो।' पत्र उठाकर वह पढ़ गई। वह भी महादुखी हुई और मुझे समझाने लगी कि आप कमजोर यों ही बहुत हैं। रंज न कीजिए।

उनके सम्पर्क में ३१ वर्ष तक रहने के कारण इतना घनिष्ठ वातावरण हो गया था कि घोष-परिवार को मैं अपना ही परिवार मान रहा हूँ। मुझे उनके निधन से जो दुख रहता है, उनकी एक-एक बात याद करके जो विह्वलता होती रहती है, वह दूसरे किसी के जानने की चीज नहीं है।

१ अगस्त सन् ८ में जब मैं इंडियन प्रेस में नौकर होकर गया, तब आप ८।१० वर्ष के रहे होंगे। अभी आपकी अवस्था इस योग्य न थी कि अपने परिवार को और इष्ट-मित्रों को बिलखते हुए छोड़कर चल दें।

यों तो संसार में सभी माता-पिता अपने बच्चों पर प्यार करते हैं। सभी जीवधारियों में प्रेम करने का माया-मोह होता है। पर कारण विशेष से वह किसी-किसी बच्चे से बढ़ भी जाता है। बातचीत करते हुए प्रसंग-वश आपके स्वर्गीय पिता बाबू चिन्तामणिजी घोष ने यह स्पष्ट शब्दों में कहा था कि यह बच्चा जब से पैदा हुआ है, तब से हमें किसी तरह की चिन्ता नहीं रही। श्रीवृद्धि होती ही गई। इससे स्पष्ट है कि आप बड़े भाग्यशाली थे।

आपके पिताजी जब सख्त बीमार थे, तब मैं कोठी पर उनके दर्शन करने गया। उस वक्त पटल बाबू साहब मिले। मैंने आपके पिताजी की तबीअत का हाल पूछा और कहा कि बहुत दिनों से आप प्रेस में क्यों नहीं जाते? आपने कहा कि बड़े बाबू साहब की तबीअत अच्छी नहीं है। बीमारी जोर पर है। तुम कल उनसे मुलाकात करना। मैं प्रेस में कैसे आऊँ? वे कहते हैं कि तुम्हीं मेरे पास रहो।

आपके पिताजी को प्रायः सभी लोग बड़े बाबू कहा करते थे और आपको घर के लोग, दफ्तर के लोग और कुछ बाहर के लोग भी पटल बाबू के नाम से सम्बोधित करते थे। पटल बाबू के चार अनुज हैं और बड़े भाई बाबू हरिपद घोष का स्वर्गवास हुए बहुत दिन हो गए। वे बड़े बाबू साहब को दुःखित करके दिवंगत हो गए थे। आप छः भाई थे और दो बहिनें। बड़े बाबू साहब के बाद पटल बाबू साहब ने ही अपने अनुज बाबू हरिप्रसन्नजी घोष की सहायता से प्रेस का कार्यभार सँभाला था।

पटल बाबू साहब बड़े भाग्यशाली थे। संसार में पदार्पण करते ही लक्ष्मी आपकी चेरी

बन गई। समस्त जीवन ऊँचे दर्जे की अमीरी में बीता। हजारों मनुष्यों के आप प्रभु रहे।

आपकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। अँगरेजी के आप प्रकांड ज्ञाता थे। प्रेस में आगन्तुक अँगरेजों से आप ऐसी धारा-प्रवाह अँगरेजी में बातचीत करते थे कि वे लोग चकित होकर आपके मुंह की ओर टकटकी बाँधकर देखते रहते थे।

आपके अनेक गुणों में महत्त्वाकांक्षा सर्वोपरि थी। इसी से प्रेरित होकर आपने विलायत की यात्रा की थी। वहाँ प्रेस-सम्बन्धी अनेक तरह का ज्ञानार्जन करके जब लौटे, तब अपने प्रेस के लिए अनेक तरह की मशीनरी और सामान लाए और प्रेस को ऊँचे दर्जे पर पहुँचाया। आपने बढ़िया से बढ़िया इमारतें बनवाईं, जिनमें प्लाजा सिनेमा की इमारत उल्लेखनीय है।

प्रेम के तो आप पुजारी ही थे। यों तो सभी से वे प्रेम करते और हँसकर बात करते थे; किन्तु भ्रातृप्रेम का एक उदाहरण मेरे दिमाग में सदा चक्कर लगाया करता है। एक बार आपके अनुज बाबू हरिप्रसन्नजी घोष (धूनी बाबू साहब) टाइफाइड से ग्रस्त थे। एक दिन उनकी तबीअत कुछ अधिक खराब हो गई थी। आप कोठी से कार में बैठकर प्रेस आये। कई बाबू उनका समाचार पूछने को दौड़े। मैं भी कुछ पूछने के लिए गया। कुर्सी पर बैठते ही विक्षिप्त मनुष्य की तरह दीवालों की ओर देखकर कहने लगे—'इस सबका क्या होगा? कौन करेगा? सब बेच डालूंगा।' इतना कहकर कुर्सी से उठे और कार में बैठकर कोठी को चल गये। हम लोग अपना-सा मुंह लेकर अपने काम पर चल गये। उन्होंने किसी से एक भी बात नहीं की।

बड़े बाबू के न रहने पर प्रेस का कार्यभार सब भाइयों ने बड़ी योग्यता से सँभाला। अपने छोटे भाई बाबू हरिप्रसन्न घोष के सहयोग से आपने प्रेस को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया, आप बड़े कार्य-कुशल थे। आप बढ़िया चीज और बढ़िया काम पसन्द करते थे। अच्छा काम करनेवाले नौकरों का समुचित सम्मान करते थे। काम खराब करने पर डाँट-फटकार भी करारी देते थे। एक बार एक कम्पोजीटर को मैंने गुस्ताखी करने पर उनके पास पेश किया। वह वहाँ भी यही कहने लगा कि क्या इनसे गलती नहीं होती? गलती सबसे होती है। क्या आपसे गलती नहीं होती? बस, उनका पारा एकदम ऊपर चढ़ गया और जोरों से कड़ककर कहा—'इसी दम प्रेस से बाहर हो जाओ। इसको इसी वक्त निकाल दो।' बाबू लोग देखने लगे कि क्या मामला है। कम्पोजीटर अपने कपड़े वगैरह लेने को भीतर जाने लगा। बाहर न जाते देख, मुझे गुस्सा आ गया और मैंने भी उसे जोर से वहीं डाँटा। इस पर पटल बाबू ने मुझे ऐसी करारी डाँट बतलाई कि सब देवता याद आ गए। मैं फौरन समझ गया कि मेरा कसूर है। मैनेजर साहब के कमरे में मुझे उसे फटकार नहीं देनी चाहिए थी। मैंने तत्क्षण मामला समझ लिया और फौरन माँफी माँगकर वहाँ से चला गया। शाम को उन्होंने अपना मतलब समझा दिया कि ऐसा न करना चाहिए। इस तरह की डाँट-फटकार आप अपनी सीट पर कर सकते थे।

सुयोग्य पिता की परम सुयोग्य सन्तान

श्री रामचन्द्र वर्मा

इण्डियन प्रेस के संस्थापक स्वनामधन्य स्व० श्री चिन्तामणि घोष के दर्शनों का तो मुझे कभी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। परन्तु उनके सम्बन्ध में मैं स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दरदास-जी तथा अन्य अनेक महानुभावों से जो बातें सुना करता था, उनका मुझ पर यथेष्ट प्रभाव पड़ता था; और इसीलिए मैं चिन्तामणि बाबू को सदा एक आदर्श नर-रत्न समझकर उनके प्रति यथेष्ट श्रद्धा रखता था। आगे चलकर जब मुझे कई अवसरों पर स्व० श्री हरिकेशव घोष (पटल बाबू) से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, तब मैंने समझा कि पटल बाबू परम सुयोग्य पिता के परम उपयुक्त आत्मज और अनेक गुणों तथा विशेषताओं की खान हैं।

पहले-पहल काशी में मुझे पटल बाबू से मिलने का अवसर उस समय प्राप्त हुआ था, जब काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने इण्डियन प्रेस को अपने प्रकाशनों का एकमात्र अभिकर्त्ता (सोल एजेण्ट) बनाने का विचार किया था। उस समय स्व० बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने सभा की प्रबन्ध-समिति का एक विशेष अधिवेशन अपने भेलूपुरवाले निवास-स्थान पर आमंत्रित किया था। समिति के सदस्य के रूप में मैं भी वहाँ गया था। स्व० बाबू गौरीशंकर प्रसाद, स्व० पं० रामनारायण मिश्र आदि सभा के सभी तत्कालीन कार्यकर्त्ता और कर्णधार वहाँ उपस्थित थे। सब मिलाकर हम लोग कोई १२-१३ आदमी थे।

इण्डियन प्रेस को सभा के प्रकाशनों की एजेन्सी देने के सम्बन्ध में लोगों को कई तरह की आपत्तियाँ और आशंकाएँ थीं। सब लोग अपने-अपने विचार प्रकट करते थे और उधर से सब बातों का उत्तर देनेवाले अकेले पटल बाबू थे। इतने आदमियों की इतनी तरह की बातों के समीचीन उत्तर जिस ढंग से पटल बाबू देते थे, उसे देखकर हम सब लोग दंग रह जाते थे। हम लोग कई-कई दिन पहले से सोचकर बहुत-सी बातें अपने मन में वहाँ ले गए थे। परन्तु हम लोगों के सभी तर्क-वितर्कों का पटल बाबू तत्काल जैसा ठीक उत्तर देते थे, और जिस दक्षता से सबकी शंकाओं का समाधान करते थे, उसका हम सब लोगों पर एक विलक्षण प्रभाव पड़ता था। उसी समय मैंने पहले-पहल देखा कि पटल बाबू बहुत ही समझदार, दूरदर्शी और व्यवहारकुशल हैं। परिणाम यह हुआ कि सब लोगों का सब तरह से सन्तोष हो गया और इण्डियन प्रेस को अभिकरण (एजेन्सी) देना निश्चित हो गया।

इसके बाद सब लोग वहीं भोजन करने बैठे। उस समय काम की बात छोड़कर (क्योंकि वह तो तय ही हो चुकी थी) इधर-उधर की बातें होने लगीं। उस समय यह देखने में आया कि पटल बाबू केवल अपने व्यवसाय की बातों में ही दक्ष नहीं हैं, बल्कि सभी तरह की बातों के बहुत अच्छे ज्ञाता—और वह भी तह तक की बातों के ज्ञाता हैं। तिस पर बीच-बीच में हास्य-रस का जो पुट मिलता चलता था, वह मानो उस पटल (स्वर्ण) में सुवास होने का भी परिचय देता चलता था। सभा और इण्डियन प्रेस के व्यावसायिक पक्ष के विषय में लोगों के चाहे जो विचार रहे हों, पर पटल बाबू की योग्यता,

बुद्धिमत्ता, सज्जनता आदि के सम्बन्ध में किसी को कुछ भी सन्देह न रह गया। सभी लोग उनसे मिलकर परम प्रसन्न तथा सन्तुष्ट हुए—सब पर उन्होंने मानो सिक्का-सा जमा लिया था।

इसके उपरान्त एक बार बाबू श्यामसुन्दरदास के साथ मुझे उस समय प्रयाग जाना पड़ा, जब द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ की छपाई प्रायः समाप्ति पर थी। हम लोग पटल बाबू के ही अतिथि थे—उन्हीं के घर रहते थे। दोनों समय साथ ही भोजन होता था। इसके सिवा सबेरे-सन्ध्या चाय-जलपान के साथ भी घंटे-डेढ़ घंटे की बैठक और खूब मजेदार बातें हुआ करती थीं। ४-५ दिन जिस आनन्द से बीते, वह जल्दी भूल नहीं सकते। दुनिया भर के सभी विषय बातचीत में आते थे; और हर विषय में पटल बाबू की अच्छी जानकारी सामने आती थी। स्वच्छ और सुरुचिपूर्ण परिहास का तो कहना ही क्या!

याद रखने योग्य उनसे मेरी तीसरी भेंट उस समय हुई थी, जब सभा ने अपने प्रकाशन की सारी व्यवस्था फिर अपने हाथ में लेना निश्चित किया था। इस बार सभा ने स्व० पं० रामनारायणजी मिश्र को तथा मुझे इस काम के लिए प्रयाग भेजा था। इस बार भी हम लोग पटल बाबू के यहाँ ही ठहरे थे। मैंने सभा की सारी परिस्थितियाँ उन्हें समझाईं और उसकी आवश्यकताएँ उनके सामने उपस्थित कीं। उस समय हम लोगों को उनकी उदारता और सौजन्य का जो परिचय मिला, वह सचमुच अपूर्व था। पटल बाबू ने सब बातों का निपटारा जैसी सुन्दरता से किया, उससे हम लोगों ने समझ लिया कि अपने व्यवसाय या आर्थिक हानि-लाभ का उन्हें जितना अधिक ध्यान होना चाहिए था, उससे कहीं अधिक उन्हें एक सार्वजनिक संस्था के हिताहित का ध्यान था। सभा के प्रति उनकी श्रद्धा और सहानुभूति ने हम लोगों को बहुत अधिक प्रभावित किया। केवल संक्षिप्त 'हिन्दी शब्द-सागर' के सम्बन्ध में मेरी एक दो बातें मानने में उन्होंने कुछ सामान्य-सी आपत्ति की। पर जब मैंने उन्हें सभा की वास्तविक स्थिति समझाते हुए, अपनी बातों पर बहुत ज्यादा जोर दिया, तब वे यह कहकर चुप हो गए—अच्छा सोचूँगा। पर दूसरे दिन सबेरे सोकर उठते ही जब वे बाहर आये और मैंने विगत रातवाली चर्चा छेड़ी, तब हँसते हुए उन्होंने कहा—'आप चिन्ता न करें। जब आप इतनी दूर से चलकर आये हैं, और सभा का मामला है, तब मुझे आपकी बात माननी ही पड़ेगी।'

उनकी वह महत्ता देखकर मैं गद्गद हो गया—मेरा हृदय कृतज्ञता से भर गया। मैंने समझ लिया कि पटल बाबू सुयोग्य पिता की परम सुयोग्य सन्तान हैं। उनमें और बहुत-से गुण तो हैं ही—उदारता भी कम नहीं है।

गत मार्च के आरम्भ में जब मैं प्रयाग गया था, तब पटल बाबू से मिलने की आशा से इण्डियन प्रेस भी गया था। परन्तु जब उनकी अस्वस्थता का समाचार सुना और यह सुना कि वे कई महीने से कलकत्ते में चिकित्सा के लिए पड़े हैं, तब मुझे बहुत दुःख हुआ और चिन्ता भी। फिर काशी आने पर, कुछ ही दिन बाद, जब उनके निधन का दुःखद समाचार सुना, तब ऐसा जान पड़ा कि एक परम सुहृद आत्मीय मुझसे छिन गया। अब पटल बाबू जैसा सज्जन काहे को जल्दी कहीं देखने को मिलेगा! हाँ, उनका वह तेजपूर्ण हँसमुख चेहरा, ध्यान आते ही, जरूर सामने आ जायगा।

कर्मवीर पटल बाबू

प्रिंसपल श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

लगभग १५ वर्ष पूर्व मुझे श्री हरिकेशव घोष (पटल बाबू) के साक्षात्कार का सुअवसर प्राप्त हुआ था। मैं कालेज के लिए इंडियन प्रेस से कुछ पुस्तकें खरीदने गया था। पटल बाबू के वार्त्तालाप और उनके व्यवहार का मुझ पर इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि मैं मंत्रमुग्ध-सा हो गया और अत्यन्त प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा करता हुआ कालेज वापस आया। वास्तव में उनका व्यक्तित्व बहुत ही ऊँचा था। इसके अनन्तर उनसे अनेक बार मुलाकात हुई और उनसे मेरा सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़ता गया। पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के दारागंज निवास-स्थान में उनसे प्रायः मुलाकात होती थी।

मैं प्रचार करता रहता हूँ कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी भाई को स्वस्थ रहते हुए कम से कम सौ वर्ष तो अवश्य ही जीवित रहना चाहिए। सादा मेलदार सात्विक भोजन, प्रातःकाल चार मील का दैनिक भ्रमण, नियमित ब्रह्मचर्य, मानसिक विकारों का त्याग और प्राकृतिक चिकित्सा में अभिरुचि—ये सौ वर्ष तक स्वस्थ रूप से जीवित रहने के साधन हैं। जब मैं पटल बाबू से १०० वर्ष के जीवन की चर्चा करता था, तो वे केवल मुसकरा देते थे।

अग्रवाल विद्यालय कालेज की पढ़ाई और उसके अनुशासन की ख्याति सुनकर पटल बाबू ने अपने द्वितीय सुपुत्र श्री सत्यप्रसाद घोष का नाम अग्रवाल कालेज की इंटर कक्षा में लिखाया था। मैं उनकी इच्छानुसार बच्चे की बराबर देखभाल किया करता था, और परमेश्वर की कृपा से वह द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण भी हो गया था। श्री पटल बाबू को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई थी। उन्होंने कलकत्ते से एक पत्र लिखकर मुझे इस सफलता के लिए धन्यवाद दिया था।

पटल बाबू में व्यापार की नैसर्गिक सूझ-बूझ थी। उन्होंने अपने समय में न केवल इंडियन प्रेस को आशातीत उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचाया था, अपितु अन्य स्थानों में भी उन्होंने अपने व्यवसाय को बढ़ाया था। उनको इमारतें बनवाने का बड़ा शौक था। उनके नकशे वे अपनी देखरेख में बनवाते थे, जिन्हें देखकर बड़े-बड़े इंजीनियर भी दाँतों के नीचे उँगली दबाते थे। वे जो इमारतें बनवाकर छोड़ गए हैं, उन्हें देखकर उनकी शिल्पसंबंधी बुद्धि का अनुमान किया जा सकता है।

अपने पूज्य पिता की तरह पटल बाबू को भी भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी से बड़ा प्रेम था। 'सरस्वती' और 'बालसखा' को उत्तम से उत्तम निकालने का उन्होंने जीवन भर प्रयत्न किया और उत्तम से उत्तम धार्मिक तथा अन्य विषयों की पुस्तकों का भी उन्होंने हिन्दी में प्रकाशन करवाया।

कर्म करना उनके जीवन का उद्देश्य था। "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्" को वे अपने जीवन में चरितार्थ करते थे। काम की अधिकता के कारण वे इधर प्रायः बीमार पड़ जाते थे; किंतु चारपाई पर पड़े-पड़े भी वे कागजों का निरीक्षण करते और कर्मचारियों को आदेश देते थे। काम करने का एक प्रकार से उनको नशा था।

सौजन्यसाकार पटल बाबू

डॉ० रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल', एम० ए०, डी० लिट्०

भगवान् कृष्ण के "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः" पर ध्यान देने से यही श्रेयस्कर प्रतीत होता है कि जन्म ग्रहण करनेवालों के लिए यदि मृत्यु ध्रुव है, तो इस पर विशेष दुःखी होना समीचीन नहीं। फिर भी संसार की सांसारिकता को देखते हुए अपने किसी परमप्रिय के असामयिक और आकस्मिक निधन पर हृदय वेदना-व्यथित, चित्त चिन्तित और मन खिन्न अवश्य हो उठता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि निधन पर दुखी होना चाहिए उस व्यक्ति के, जो अपने कर्त्तव्य से दूर रहा हो अथवा च्युत हुआ हो। गोस्वामी तुलसीदास ने किसके निधन पर दुखी होना चाहिए, इस पर अपने मानस में कई चौपाइयाँ दी हैं। प्रयाग के सुप्रसिद्ध हिन्दी हितैषी, इंडियन प्रेस के सर्वेसर्वा प्रियवर श्री हरिकेशव घोष के निधन पर इस दृष्टि से दुखी होना न्यायसंगत और उचित नहीं; क्योंकि घोष बाबू ने अपने कर्त्तव्य को भली प्रकार सोच-समझकर यथेष्ट रूप में अपने सारे जीवन में, पूर्णतया परिपालित किया है।

व्यापक रूप में वस्तुतः कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति के लिए, यों कहने के लिए भले ही कुछ कह दे; किन्तु यथार्थतः अपने वैयक्तिक विचार किसी दूसरे व्यक्ति के संबंध में व्यक्त करने में क्षम होता है। इसलिए मैं अपने कुछ प्रमुख संस्मरण और तदाधारित विचार व्यक्त करता हूँ। बिना व्यक्त किए मैं अपने हृदय के भार को किसी अन्य प्रकार कदाचित् दूर भी नहीं कर सकता।

पटल बाबू के सम्पर्क में मैं लगभग २५ वर्ष पूर्व आया। जिस प्रकार, जिस सौहार्द और जिस सरसता और सुजनता से वे मुझसे प्रथम बार मिले, उसमें बराबर परिचय-प्राबल्य में उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ-साथ वृद्धि ही हुई। मैत्री-संबंध में यह एक बहुत बड़ी विशेषता है। मैत्री-संबंध में यदि उत्तरोत्तर उत्कर्ष न हुआ, तो वह हर्ष का विषय नहीं रहता। सज्जन सखाभाव किसी भी अन्यथा प्रभाव से विकृत न होकर बराबर बढ़ता ही रहा। यह अनुभव केवल मेरा ही नहीं है, वरन् जहाँ तक मैं जानता हूँ, जितने भी व्यक्ति उनके नैकटच में आए हैं, सम्भवतः सभी का यही सुखद अनुभव है।

मेरे और उनके बीच में संबंध स्थापित करानेवाले श्रद्धेय डॉ० रामप्रसादजी त्रिपाठी हैं। वे भी घोष बाबू की अभिन्न मैत्री का रसानन्द प्राप्त कर सर्वथा मुझसे सहमत हैं।

पटल बाबू की दूसरी बड़ी विशेषता जो मैंने देखी, वह थी गुण-ग्राहकता और सहृदयता। कितने ही अवसर मुझे ऐसे मिले, जिनमें उनकी ये दोनों विशेषताएँ बहुत स्पष्टतया सामने आईं। मेरे 'आलोचनादर्श' के प्रकाशित करने का प्रश्न था। बाबू श्यामसुन्दरदास का 'साहित्यालोचन' इंडियन प्रेस ने छापा था। मैंने पटल बाबू से कहा कि आपके यहाँ 'साहित्यालोचन' नामक पुस्तक है। इसे आप क्यों प्रकाशित कर रहे हैं? उन्होंने मेरी पुस्तक की पाण्डुलिपि थोड़ी-सी देखी और यह कहते हुए पुस्तक को तत्काल छापने के लिए भेज दिया कि इसे आप हमारे ही ऊपर छोड़िए। हम इसे समझ लेंगे और इस संबंध में जो आलोचनाएँ होंगी, उन्हें हम देखेंगे।

पटल बाबू में अपनी भावनाओं को नियंत्रित रखने का बहुत बड़ा गुण था। गहरे-से-गहरे क्रोध को भी, जिस समय उसका विस्फोट हो रहा हो, वे शीतल जल के घूँट के समान पी लेते थे। इसे मैंने कई बार देखा। वे भावनाओं से तो उतना नहीं, किन्तु प्रभावित होते थे अपने विवेक और अनुभवजन्य विचार से। उनका अध्ययन भले ही कुछ रहा हो, किन्तु प्रकाशन-कार्य में पूरा मनोयोग देने के कारण उनमें विविध विषयों का ऐसा सुन्दर ज्ञान था कि यह प्रतीत होता था, मानो वे उस विषय में पर्याप्त रूप से अधीत हैं।

व्रजभाषा काव्य में उनका अनुराग था और विशेष रूप में था। एक बार 'सरस्वती' का कायाकल्प करते समय मुझसे उसके संबंध में मेरी सम्मति पूछी। मैंने यह कहा कि 'सरस्वती' अभी आपकी एकांगी है, क्योंकि इसमें व्रजभाषा और उसके काव्य अथवा साहित्य का कहीं कोई स्थान नहीं। पटल बाबू ने इस आलोचना को बड़े हर्ष से स्वीकार किया और 'सरस्वती' का एक भाग व्रजभाषा के लिए निश्चित कर देने का विचार प्रकट किया; किन्तु उस भाग की देखरेख का भार मेरे ऊपर डालना चाहा, तब मैंने यह कहा कि आप किसी व्यक्ति की उन्नति किसी रूप में कर दें; किन्तु उसकी संस्कारजन्य वाणी में हेरफेर करने का आग्रह न करें। 'सरस्वती' खड़ी बोली के लिए हिन्दी संसार की एकमात्र पत्रिका रही है और इसी रूप में इसे रहना चाहिए। खड़ी बोली के गद्य और पद्य के दो विटपियों को इसने यदि पल्लवित और पुष्पित करते हुए सफल किया है, तो अब इसे उन्हीं की बराबर वृद्धि करने का प्रयास करते रहना चाहिए। दो ओर ध्यान के बट जाने और मन के लगा देने पर विशेष अच्छा कार्य नहीं होता। मुझे बड़ा हर्ष और अभिमान हुआ। इस पर उन्होंने कहा—'अच्छा। यदि 'सरस्वती' में व्रजभाषा न आयगी, तो अब प्रेस में आयगी।' इसी विचार से हमारे रसिक-मण्डल की ओर से वे स्वर्गीय रत्नाकरजी के 'उद्धव शतक' के प्रकाशक हुए। इसके उपरान्त मण्डल की दूसरी पुस्तक स्वर्गीय रामचरित उपाध्यायकृत 'व्रज सतसई' भी प्रकाशित की। व्रजभाषा काव्य का इस प्रकार इंडियन प्रेस में प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और सम्भवतः उक्त दो ही पुस्तकें इस प्रेस द्वारा अब तक व्रजभाषा में प्रकाशित हुईं। यह उनका शील, सौजन्य और साहित्य का सच्चा अनुराग था। साथ ही साहित्योचित निष्पक्षता भी है, जिसके कारण उन्होंने द्विवेदीजी की डाली हुई व्रजभाषा-बहिष्कार की परिपाटी को तोड़ते हुए मुख पर मलिनता की रेखा नहीं आने दी।

पटल बाबू नीति-निरीक्षक और पुरुष-परीक्षक भी थे। जो व्यक्ति उनकी परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ, उसके वे सच्चे सहायक और अभिन्न मित्र-से हो जाते थे। उनमें किसी प्रकार की ईर्ष्या, किसी प्रकार का द्वेष आदि नहीं था। प्रायः व्यापारिक दृष्टि से कोई व्यापारी अपने ही व्यापार में आनेवाले किसी नए व्यक्ति का स्वागत नहीं करता, फिर उसे सहाय्य देना तो दूर की बात है। पटल बाबू में यह बात नहीं थी। कितने ही छोटे प्रेसों को उन्होंने अपने यहाँ से कार्य देते हुए प्रोत्साहित कर आगे बढ़ाया है। इस बात का विचार वे न करते थे कि उनके ऐसा करने से उनके प्रतिद्वन्द्वी पैदा होंगे। उनकी नीति विष देकर नहीं, वरन् मधुर मधु देकर किसी को वश में करने की थी। समय पर वे

हृदय खोलकर सहायता करने के लिए तत्पर रहते थे। कहना न होगा कि हिन्दी के एक बहुत बड़े महारथी के आर्थिक-संकट-काल में मेरे केवल एक शब्द कहने पर उनकी उन्होंने तत्काल यथेष्ट आर्थिक सहायता की थी।

पटल बाबू को मैंने कभी चिन्ताग्रस्त तथा रुदनाकृति में नहीं देखा, वरन् बराबर प्रसन्नचित्त और मुसकराते हुए पाया। प्रत्युत्पन्नमतित और दूरदर्शिता उनमें असाधारण थी। विनोद-प्रियता और मनोरंजनप्रियता भी उनमें पर्याप्त थी, यद्यपि कदाचित् ही कोई समय ऐसा उनके काल-विभाजन-चक्र में रहा हो, जिसमें वे अपने व्यापारिक प्रश्नों की उलझनों में व्यस्त न रहते हों।

मेरा और उनका साथ एक बात में और था। वह है दोहरा (सुपारी, लौंग, कत्था, चूना) और सुर्ती अथवा तम्बाकू के अनुपम आस्वादन में। बंगाली होते हुए भी मुझे उनके यहाँ बंगालियों के ऐसा पान, जिसमें धनिया, सौंफ आदि भी रहती, नहीं मिला। केवल कभी बँगला बोलते समय उन्हें बंगाली कहा जा सकता था; किन्तु लगते वे हम-जैसे उत्तरप्रदेशीय-से ही। कभी-कभी सूट पहनकर वे आँग्ल देश-प्रभावित ऊपर से जान पड़ते थे; किन्तु विचार-धारा में शुद्ध भारतीय संस्कृति, धर्मनिष्ठा और सभ्यता उनमें निरन्तर निहित रहती थी।

एक बार जब महात्मा गांधी जेल से छूटकर प्रयाग पधारे थे और स्थानीय पुरुषोत्तमदास पार्क में बृहत् जनता के समक्ष वे भाषण दे रहे थे, मैं, डॉ० त्रिपाठी, रत्नाकरजी और पटल बाबू पार्क के बाहर ही खड़े थे; क्योंकि इतनी अधिक भीड़ थी कि कहीं स्थान न था। रत्नाकरजी ने महात्मा गांधी के दर्शन निकट से करने की इच्छा प्रकट की। महात्मा गांधी के निकट कुछ देवियाँ बैठी हुई थीं। घोष बाबू ने बहुत साधारण रूप में कुछ उदासीन-सा चेहरा रखते हुए कहा—'अगर रत्नाकरजी को इसी स्थान पर स्थान मिल जाए तो 'उद्धव-शतक' चरितार्थ हो जाए।' मैंने अपने मित्र स्वर्गीय पं० कृष्णकान्त मालवीय से किसी प्रकार अन्दर जाकर एतदर्थ निवेदन किया। उन्होंने रत्नाकरजी को लेजाकर ऐसी जगह पर बैठा दिया, जिसके दोनों ओर देवियों की पंक्तियाँ थीं। तब पटल बाबू ने हँसते हुए कहा—'रसालजी ने मजाक को सच्चा कर दिया; लेकिन रत्नाकरजी सुशोभित भी बहुत हैं वहाँ।' इससे स्पष्ट है कि हास्य और विनोद उन्हें कितना प्रिय था और कितनी शिष्टता तथा व्यंजकता के साथ वे इसका उपयोग करते थे।

इस प्रकार की कितनी ही घटनाएँ दृष्टि-पथ पर आती हैं। आनी ही चाहिए। मनुष्य वास्तव में एक कहानी है। कहानी के रूप में ही वह रह जाता है। पटल बाबू अब नहीं हैं; किन्तु उनकी ऐसी अनुभूत कहानियाँ उनके मित्रों, सहयोगियों और सहकारियों के मानस-पट पर चित्रांकित हैं और रहेंगी।



वह कमनीय मूर्त्ति

पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी

इण्डियन प्रेस हिन्दी की सेवा के लिए हमारे साहित्य में ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के अभ्युत्थान में 'सरस्वती' का महत्त्व तो स्पष्ट है ही, इसके अतिरिक्त धार्मिक और साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वयस्कों ने 'सरस्वती' तथा उच्चकोटि की पुस्तकों से साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया, बालकों ने 'बालसखा' तथा बालोपयोगी पुस्तकों से हिन्दी का सुबोध संस्कार पाया। इस तरह हिन्दी के रिक्त भण्डार को भरने में इण्डियन प्रेस ने भरपूर प्रयास किया है।

जिस युग में अँगरेजी का बोलबाला था, हिन्दी में लिखना-बोलना सम्मानजनक नहीं समझा जाता था, उस युग में भी इण्डियन प्रेस हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि में संलग्न रहा। अहिन्दी भाषी प्रकाशक होकर भी उसने हिन्दी को शिरोधार्य किया, मानो कोई बंगीय तीर्थयात्री तीर्थराज प्रयाग में आकर यहीं की गंगा (राष्ट्रभाषा हिन्दी) का पुजारी हो गया।

बंगाल अपनी कलात्मक सुरुचि के लिए प्रसिद्ध है। इस सुरुचि का परिचय इण्डियन प्रेस के मुद्रण में मिला। उसकी स्वच्छ, सुन्दर, शुद्ध छपाई प्रकाशन-क्षेत्र में सदैव एक आदर्श रही है।

स्वर्गीय पटल बाबू इसी इण्डियन प्रेस के प्रतिभाशाली उत्तराधिकारी थे। उनसे मेरा परिचय 'कवि और काव्य' के लेखन-काल (सन् १९३६) में हुआ। तब मैं बिलकुल नया-नया लेखक था। इण्डियन प्रेस के मुद्रण से आकर्षित होकर अपनी पुस्तक वहीं से प्रकाशित कराने के लिए लालायित था। मेरी पुस्तक प्रकाशित हो गई। उसका अच्छा स्वागत हुआ। उसके बाद वहाँ से मेरी अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। आज मैं कृतज्ञ हूँ कि उन पुस्तकों से नवयुवक साहित्य-प्रेमियों की कुछ सेवा हो सकी और मुझे उनका स्नेह-सम्बन्ध मिला। इण्डियन प्रेस मेरे लिए शुभ हो गया।

पुस्तकों के प्रकाशन-सम्बन्धी प्रसंगों में पटल बाबू से मेरी भेंट प्रायः होती रहती थी। उनसे मिलते समय लेखक और प्रकाशक का व्यवधान नहीं रहता था। पटल बाबू ऐसे मिलते थे, जैसे एक सामाजिक मनुष्य दूसरे सामाजिक मनुष्य से मिलता है। वे दूसरों के सुख-दुख को ऐसी संवेदनशील आत्मीयता से सुनते-गुनते थे, जैसे कोई पारिवारिक अभिभावक अपने गृह-प्राणियों के सुख-दुख का अनुभव करता है और यथासम्भव कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न करता है। उनके जैसा मधुर व्यवहार मुझे किसी अन्य प्रकाशक से नहीं मिला।

अपने कार्य्य-क्षेत्र में वे केवल कार्य्याध्यक्ष मात्र नहीं थे। गीता के 'योगः कर्म्मसु कौशलम्' के वे सजीव उदाहरण थे। प्रत्येक कार्य्य में उनकी कला-कुशलता की छाप लग जाती थी। मेरी सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'परिव्राजक की प्रजा' के सांस्कृतिक वातावरण के अनुरूप आवरण-पृष्ठ का कवर-डिजाइन उन्होंने ही अपनी सुरुचि से बनवाया था। सबसे ऊपर अन्न की बाली है, बीच में अशोकचक्र (धर्म्मचक्र), अन्त में शुभ्र

शंख। यह चित्र अन्न (शरीर), आत्मा और वाणी का प्रतीक है। पुस्तक के नाम का लाइन-ब्लाक जिस गैरिक वर्ण पर दुग्धोज्ज्वल निर्झर की तरह शोभायमान है, उस वर्ण की साधना अन्न, आत्मा और वाणी के सहयोग से ही सफल हो सकती है। यही पटल बाबू का जीवन-संकेत है।

वे जीवन की सगुण साधना के कर्म्मनिष्ठ कलाविद् थे। कृषक की तरह कर्म्मठ और कृष्ण की तरह प्रसन्न-चित्त थे। कार्य्य से भारा-क्रान्त और शरीर से अस्वस्थ रहते हुए भी उनके मुख पर एक सौम्य स्निग्धता थी, ओठों पर हृदय की सहज हँसी। उनकी वह कमनीय मूर्त्ति अब स्वर्गीय हो गई है। परमात्मा उन्हें अपने नन्दन वन के कुसुमों की तरह ही प्यार करते होंगे।

तेजस्वी पटल बाबू

श्री लक्ष्मीप्रसाद गुप्त, उप-शिक्षा-संचालक (प्रथम), उत्तरप्रदेश

आज से प्रायः १३, १४ वर्ष पूर्व स्वर्गीय हरिकेशव घोष से मेरा प्रारम्भिक परिचय डॉ० इबादुर्रहमान खाँ के साथ प्रयाग में ही हुआ था। उनकी अपूर्व प्रतिभा तथा तेजस्विता प्रथम साक्षात्कार ही में किसी के हृदय को प्रभावित करने में पूर्ण समर्थ थी। उनकी व्यवहार-कुशलता तथा व्यावसायिक दक्षता किसी भी परिचित एवं अपरिचित व्यक्ति को निराश करना न जानती थी।

पाश्चात्य जगत् का भ्रमण कर उन्होंने अपनी ईश्वर-प्रदत्त व्यावसायिक पटुता को इतना सम्पन्न कर लिया था कि अपने पिता स्वर्गीय चिन्तामणि घोष से उत्तराधिकार-स्वरूप प्राप्त मुद्रणालय को आधुनिकतम यन्त्रों से सुसज्जित कर उसे अल्पकाल में ही परमोन्नत स्वरूप प्रदान कर दिया।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है, पटल बाबू निरन्तर अथक परिश्रम से विविध कार्यों में तल्लीन रहते थे; परन्तु इतना अधिक कार्यव्यस्त रहने पर भी वे यदाकदा अपने मित्रों से मिलने का अवकाश निकाल ही लेते थे। जब कभी भी वे मेरे सम्पर्क में आये, मैंने उन्हें बातें कम, परन्तु कार्य अधिक करते हुए पाया। वे गम्भीर से गम्भीर विषयों में भी संक्षिप्त बातें कर उनकी गुत्थियों को सहज ही में सुलझा लेने की अद्भुत क्षमता रखते थे।

उनका हृदय अत्यधिक दयालु तथा उदार था। वे यथाशक्ति किसी को निराश न करते थे तथा यथासम्भव याचक के अनुरूप कोई न कोई कार्य निकालकर उसके उदर-पोषण का मार्ग प्रशस्त कर देते थे। इतना ही नहीं, अनेक दीन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ भी प्रदान किया करते थे।

यद्यपि वे पिछले कुछ वर्षों से भयानक रूप से रोगग्रस्त भी हो गए थे तथा डाक्टरों ने उन्हें अधिक कार्य करने से रोक भी दिया था; परन्तु उन जैसे कर्मठ व्यक्ति के लिए शान्त बैठे रहना सम्भव न था। वे अपने स्वास्थ्य की बिना कुछ चिन्ता किए, निरन्तर अदम्य उत्साह तथा साहस के साथ अपना कार्य-संचालन करते रहे। फलतः कराल काल ने समय से पूर्व ही उन्हें अपना ग्रास बना लिया।

स्वर्गीय आत्मीय

श्री कालिदास कपूर, एम० ए०, एल० टी०

'सरस्वती' द्वारा इंडियन प्रेस से मेरा परिचय सन् १९०१ के लगभग हुआ, जब ९ वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते मेरा हिंदी ज्ञान इतना हो गया था कि इस पत्रिका में प्रकाशित कहानियाँ और लेख मैं बहुत चाव से पढ़ने लगा था। उस समय मुझे क्या पता था कि 'सरस्वती' और उसके पुजारी आचार्य द्विवेदीजी के आशीर्वाद से मैं हिंदी का एक लेखक हो जाऊँगा, हिंदी भारत में अँगरेजी की जगह ले लेगी और इंडियन प्रेस के प्राण पटल बाबू मेरे आत्मीय हो जायँगे।

'सरस्वती' के लिए लिखना तो मैंने सन् १९१८ से ही प्रारंभ कर दिया था, परन्तु पटल बाबू से मेरा परिचय दस वर्ष बाद हुआ। उस समय तक मैं प्रांतीय शिक्षाबोर्ड का सदस्य हो गया था और कुछ समय तक पाठ्य पुस्तकों की जाँच के बाद अब स्वयं पाठ्य पुस्तक-निर्माण में लग चुका था।

इसी समय के लगभग अन्य प्रकाशकों से भी मेरा परिचय हुआ। विदेशी प्रकाशकों से भी संपर्क हुआ। जो खूबी मैंने विदेशी प्रकाशकों और उनके प्रतिनिधियों में पाई, वह—और उससे बढ़ी हुई पटल बाबू में पाई। विदेशी प्रकाशक प्रकाशन का स्तर उन्नत करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, लेखकों की कदर करते हैं। उनके साथ मौखिक सद्व्यवहार ही नहीं करते, रायल्टी अथवा पारिश्रमिक के संबंध में भी उनसे सच्चाई बरतते हैं। इन प्रकाशकों के विदेशी होते हुए भी भारत में इनकी कदर है और अँगरेजी के अधिकांश भारतीय लेखकों ने पहले इन्हीं को अपनाया है।

विदेशी प्रकाशकों की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि वे विदेशी हैं। अँगरेजी के वे अधिकारी अवश्य हैं, परन्तु हिंदी से वे अपरिचित हैं। हिंदी की सेवा के लिए न उनमें उमंग है, न उनके पास उसके लिए पर्याप्त साधन ही हैं।

स्वर्गीय चिंतामणि घोष इंडियन प्रेस के संस्थापक थे। उनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी; परन्तु वह भारतीय थे, हिंदी के भविष्य का आभास उन्हें उसी समय मिल चुका था, जब हिंदी के केंद्र उत्तरप्रदेश में उर्दू का बोलबाला था। उन्होंने विदेशी प्रकाशकों की नीति अपनाई—आज की राष्ट्रभाषा हिंदी की सेवा के लिए।

चिंतामणिजी ने अपनी लगन से, अपने व्यवहार-कौशल से, हिंदी-सेवा द्वारा व्यावसायिक सफलता प्रत्यक्ष कर दी। वह सफल व्यावसायिक ही न थे, कई पुत्र-पुत्रियों के पुण्यात्मा पिता भी थे। दुर्भाग्यवश उनके ज्येष्ठ पुत्र हरिपद घोष उनके सामने ही स्वर्गगामी हुए; परन्तु उनके निधन के पश्चात् चिंतामणिजी के जीवनकाल में ही पटल बाबू ने जिस योग्यता से प्रेस का कार्य-भार सँभाल लिया, उससे उनके वयोवृद्ध पितृदेव बहुत कुछ अपना पुत्र-शोक भूल से गए; और सन् १९२८ में उनके निधन के पश्चात् घोष और प्रेस-परिवार के कुलपतित्व का जिस प्रकार उन्होंने निर्वाह किया, उससे उन्होंने अपने प्रातःस्मरणीय पिता की कीर्त्ति में चार चाँद लगा दिए।

पटल बाबू से जब मेरा संपर्क हुआ, उस समय वह पूर्णतया स्वस्थ थे। पाठ्य पुस्तक

के प्रकाशन की बात तो मैं उनसे कर ही नहीं सकता था, क्योंकि मैं इतिहास और हिंदी में पाठ्य पुस्तकें लिख सकता था; परन्तु वहाँ अन्य और मुझसे अधिक अनुभवी शिक्षक, लेखक अथवा संपादक की जगह घेरे हुए थे। अतएव मैंने 'सरस्वती' और अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्यिक और शिक्षकोपयोगी लेख छाँटे और उनके पुस्तकाकार प्रकाशन की बात उनसे छेड़ी। पटल बाबू ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। 'साहित्य-समीक्षा' से मुझे कुछ मिला, प्रकाशन-संस्था को भी लाभ हुआ होगा। परन्तु शिक्षक बंधु पढ़ाते हैं, पढ़ते नहीं। अतएव 'शिक्षा-समीक्षा' शीर्षक से प्रकाशित अधिकांश प्रतियाँ भेंट में ही बँटी होंगी। उनसे पटल बाबू को हानि ही हुई होगी। परन्तु उन्होंने मुझसे इसकी शिकायत कभी नहीं की। इधर 'साहित्य-समीक्षा' और 'शिक्षा-समीक्षा' की जो प्रतियाँ बच रही थीं, वे सब उन्होंने मुझे भेंट कर दीं। अब मैं उन्हें अपने मित्रों को भेंट-स्वरूप बाँटा करता हूँ।

सन् १९३१ में शिक्षाबोर्ड की हिंदी-समिति के संयोजक होने पर मुझसे इंडियन प्रेस की कोई सेवा नहीं बन पड़ी, उलटे हाईस्कूल पाठ्य पुस्तक के संबंध में इंडियन प्रेस का एकाधिकार ही समाप्त हुआ। परन्तु पटल बाबू की मुझ पर कृपा बनी रही। जब मैंने उनसे १९३५ के निकट एक प्रामाणिक ऐतिहासिक मानचित्रावली प्रकाशित करने का प्रस्ताव किया, तो उन्होंने मेरा प्रस्ताव सहर्ष स्वीकृत कर लिया और उसे सर्वांग सुन्दर रूप में प्रकाशित करने का वचन दिया।

सन् १९३७ के ग्रीष्मावकाश में एक पक्ष तक मैं पटल बाबू का मेहमान रहा। जल-पान, रसोई और ब्यालू के अवसर पर वे अनेक झंझटों में व्यस्त रहते हुए भी मुझसे बात करने का समय निकाल लेते। उस समय तक मधुमेह उन्हें घेर चुका था और अपने संयम से वह उसका सामना कर रहे थे। प्राकृतिक जीवन के भक्त की हैसियत से मैंने उन्हें कई सुझाव दिए और यथासंभव उन्होंने उन पर प्रयोग भी किए; परन्तु रोग से वह पूर्णतया मुक्त न हो सके।

पटल बाबू के निकट रहकर मैं उनके व्यक्तित्व से इस प्रकार प्रभावित हुआ कि वह मेरे आत्मीय-से हो गए। उन्हें स्वस्थ देखता, तो मैं प्रसन्न होता; उनके रुग्ण होने की खबर मिलती, तो मैं चिंतित हो जाता।

दस-ग्यारह वर्ष तक मुझे ऐतिहासिक मान चित्रावली पर अथक परिश्रम करना पड़ा और इस मान चित्रावली को सुन्दर और सही बनाकर प्रकाशित करने के लिए पटल बाबू को कई बार मुनासिब खर्च के अतिरिक्त हानि के रूप में गैरमुनासिब खर्च भी उठाना पड़ा। इस कारण मैं व्यथित हो जाता था; परन्तु उनकी सहज सुन्दर मुसकराहट में मुझे कभी फर्क नहीं दिखाई दिया। मानचित्रावली को सर्वांग सुन्दर बनाने के उद्योग में उन्होंने खर्च की कोई शिकायत नहीं की।

एक ओर पटल बाबू मधुमेह का सामना करते हुए प्रेस का विस्तार करते रहे, नए-नए यंत्रों से उसे सजाते रहे, प्रयाग और कलकत्ते से प्रकाशन का क्षेत्र बढ़ाते रहे और यों भारतवर्ष में हिंदी के प्रमुख सेवी हुए। दूसरी ओर शासन से हिंदी की मान्यता बढ़नी प्रारंभ हुई। पहले यह हिंदी भाषी प्रांतों में मान्य हुई, फिर देश के स्वतंत्र होने पर उसे राष्ट्रीय पद मिला। तीसरी ओर पुराना हिंदी-सेवी होते हुए मैं हिंदी सेवा को अपना पूरा समय देने के लिए उत्सुक हुआ

और सन् १९५१ तक मैं वैतनिक सेवा से मुक्त होकर अपने व्रत के निर्वाह के लिए प्रस्तुत हुआ।

इंडियन प्रेस के संचालक की हैसियत से पटल बाबू हिंदी के सर्वोच्च प्रकाशक थे। हिंदी के राष्ट्रीय पद प्राप्त करने पर मुझे हिंदी का भविष्य उज्ज्वल दिखाई दिया। अब तो मेरा पटल बाबू से सन्निकट होना स्वाभाविक था। परन्तु हिंदी का दुर्भाग्य और मेरा भी! जितना मैं उनके निकट पहुँचने के प्रयत्न में लगा, उतने ही वह मुझसे दूर जाते दिखाई देने लगे। मार्च १९५२ में मैं प्रयाग ही में था, जब हम सबने अश्रुसिंचित नेत्रों से रुग्ण पटल बाबू को कलकत्ते के लिए चिकित्सार्थ रेल पर सवार होते देखा।

मेरे क्षणिक सौभाग्य से पटल बाबू ने यथेष्ट स्वास्थ्य-लाभ कर लिया। जनवरी १९५१ की 'सरस्वती' में मैंने 'पंद्रह वर्ष की अवधि में हिंदी सेवियों का दायित्व' शीर्षक लेख प्रकाशित कराया था। फिर राजर्षि टंडन की आज्ञा से उसी विषय पर संक्षेप से फरवरी १९५२ की 'सरस्वती' में 'सक्रिय सेवा की रूपरेखा' शीर्षक लेख प्रकाशित कराया और मेरी प्रार्थना पर पटल बाबू ने मुझे उसकी ५०० प्रतिलिपियाँ भी दे दीं। रूपरेखा में प्रकाशित योजना की पूर्त्ति 'सरस्वती' के एक विशेषांक द्वारा ही हो सकती थी। पटल बाबू के स्वस्थ होने पर जब मैं उनसे मिला, तो विशेषांक की अनुमति उन्होंने मुझे सहर्ष दे दी। वैतनिक सेवा से मुक्त होकर मैंने 'मुदर्रिस की रामकहानी' भी पूरी कर ली थी। यह रामकहानी शिक्षकों के ही मतलब की हो सकती थी। 'शिक्षा-समीक्षा' का अनुभव पटल बाबू के सामने था। परन्तु उन्होंने रामकहानी के प्रकाशन की स्वीकृति भी मुझे दे दी। रामकहानी के छपने की आज्ञा देकर उन्होंने मेरे प्रति जिस आत्मीयता का प्रदर्शन किया, उसका सुख भोगना मेरे भाग्य में नहीं था, क्योंकि शीघ्र ही फिर पटल बाबू पर मधुमेह के जिस उपद्रव का आक्रमण हुआ, वह उन्हें हमसे छीनकर ही शांत हो सका।

चिंतामणिजी और उनके सुपुत्र हरिकेशव पुण्यात्मा पुरुष थे। पुण्यात्मा पुरुषों के पुण्य उनके जीवनकाल के पश्चात् भी फूलते-फलते रहते हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि पिता-पुत्र के पुण्य घोष-परिवार की रक्षा करते रहें। उसके सदस्य संगठित रहें, स्वस्थ रहें, दीर्घजीवी हों, राष्ट्रभाषा हिंदी की सेवा में सफल हों और हिंदी सेवियों का निरंतर बढ़ता परिवार घोष-परिवार की सफलता में सम्मिलित होता रहे।

है महा कठिन, है महा सरल

श्री गुरुभक्तसिंह 'भक्त'

मैं जान सकूं निजको तुमको, है महा कठिन, है महा सरल।

मिट्टी को दे वरदान, चाक चढ़वाकर, चक्कर में डाला,
फिर रुचि अनुकूल विविध कर्मों के साँचे में उसको ढाला।
कुछ सूत्र संचलित पुतलों से, करवाया नृत्य, रच रँगशाला,
कुछ पात्रों को दे स्नेहदान, निज ज्योति जगाकर दी ज्वाला।
कुछ मैं ही क्या, उस निर्विकार की भी इच्छा ने किया विकल।

मैं अपना अभिनय करता हूँ, जो रूप भरा वैसा ही बन,
दुनिया का पानी चढ़ न सका, हँसता रहता है सरसिज-मन।
कहने को तो मैं हूँ स्वतंत्र पर गतिरोधक है आकर्षण,
नभ पर चंदा, मैं पृथ्वी पर, बरबस लहरा उठता जीवन।
मैं इस सुंदर रहस्य का खोल न पाया हूँ, घूंघट अंचल।

मेरा चल जीवन बाँध दिया, उन अचल शुष्क पाषाणों में,
उस निष्ठुरता को तो देखो, व्याकुलता दे दी प्राणों में।
पत्थर को तोड़ बहा जीवन, लड़ता गाता चट्टानों में,
फिर टेढ़ी-मेढ़ी राह छोड़, कूदा नभ से मैदानों में।
पग ठमक गये पाकर दुकूलिनी सरस रसा का मृदु समतल।

एकाकीपन से वह ऊबा, रच दी सहचरी रुचिर माया,
चेतनता ने तब करवट ली, मानस कूलों से टकराया।
अपने ही रचे खिलौनों पर निर्माता ऐसा ललचाया,
अमरत्व त्यागकर मानव बन, उनसे खेलने चला आया।
यों जीव ब्रह्म, यों ब्रह्म जीव,
लय हो जाते ज्यों लहरी जल।
मैं जान सकूं निज को तुमको,
है महा कठिन, है महा सरल।

जीवन के ये पच्चीस वर्ष

श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव

पूज्य श्री हरिकेशवजी घोष की छत्रच्छाया में जीवन के पिछले पच्चीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। आज वे हमारे बीच में नहीं हैं। पचपन वर्ष की अवस्था में यह जीर्ण-शीर्ण शरीर और कितने दिनों का साथी रह गया है, यह मैं भी नहीं कह सकता। मार्च, सन् १९२८ में बहते-बहते मेरी नाव को वह घाट मिला था, जिसने अनेक आँधी-तूफानों के बीच अभी १७ मार्च, १९५३ तक निष्कंटक आश्रय दिया और जिसे हम स्नेह और आदरवश 'पटल बाबू' कहना सीख गए थे। आज पटल बाबू नहीं हैं, पर उनके यश और कीर्त्ति का स्तम्भ सदैव गगनचुम्बी रहेगा और आनेवाली पीढ़ियों को सतत सत्प्रेरणा देता रहेगा।

सन् १९२७ में, अस्वस्थ रहने के कारण, श्रीमान् कोरिया नरेश के व्यक्तिगत सचिव का पद छोड़कर मैं प्रयाग इलाज कराने गया था। पूज्य पदुमलालजी बख्शी, जो हमेशा से मेरे अग्रज और गुरु के समान हैं, लगभग सन् १९२१ से ही 'सरस्वती' का सम्पादन करते हुए, प्रयाग-निवासी हो रहे थे। मैं प्रयाग में बहुत कम लोगों को जानता था। इसलिए उठने-बैठने का प्रमुख ठौर-ठिकाना बख्शीजी का घर तथा इंडियन प्रेस-स्थित उनका दफ्तर ही था।

स्वास्थ्य ठीक हुआ तो भविष्य की चिन्ता हुई। बख्शीजी के साथ 'प्रेमा पुस्तक-माला' निकालने की एक योजना बनाई। पहले भी 'सरस्वती' में मेरी कुछ तुकबंदियाँ निकल चुकी थीं। अब हिन्दी-अँगरेजी लिखा-पढ़ी को और एड़ लगाने का प्रयत्न करने लगा। इसी बीच एक दिन बख्शीजी ने कहा कि इंडियन प्रेस लि० भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अपनी शाखाएँ स्थापित करना चाहता है। क्यों न मैं अपने प्रान्त मध्यप्रदेश के लिए प्रयत्न करूँ।

घर जाकर अपने जामाता डाक्टर प्यारेलाल श्रीवास्तव से चर्चा की। उन्होंने कहा कि वे श्रीमान् हरिकेशव घोष को जानते हैं और उनसे मेरी मुलाकात करा सकते हैं। इस प्रकार हम दोनों उनके सम्मुख उपस्थित हुए। पिछले दस वर्षों से मैं जीविका उपार्जन करता आ रहा था। जीविका के लिए अनेक महानुभावों के सम्मुख जा चुका था। निजी सचिव का कार्य करते समय बड़े-बड़े दर्बारों और अफसरों के सम्पर्क में आ चुका था। स्वभाव से भी मैं बख्शीजी के समान संकोची या 'शाई' नहीं हूँ। परन्तु पटल बाबू से पहली ही भेंट में मुझे जान पड़ा कि इनसे बहुत समझ-बूझकर बात करनी चाहिए। साधारण-से-साधारण बात से भी मनुष्य को परख लेने का सामर्थ्य इनमें है।

उन्होंने मुझसे यथोचित पूछ-ताछ की और शर्त आदि के संबंध में बातचीत करने के लिए एक तिथि और समय नियत किया और अपनी डायरी में नोट भी कर लिया। उनका नोट करना मेरे लिए समय की पाबंदी की ताकीद हो गई। मैंने भी नोट किया कि यहाँ दर्बारी नहीं चलेगी और कम-से-कम उनके सम्पर्क में इस नियम की अवहेलना कभी नहीं की।

नियत तिथि को नियत समय पर सब शर्तों के सम्बन्ध में बातचीत हुई और बातें तय होने पर मुझे आज्ञा मिली कि मैं शर्तनामा तैयार

कर दूँ। यों तो कार्यकर्त्ता आदि उन्हें घेरे ही रहते हैं; परन्तु उस दिन दैवयोग से कुछ देर कोई नहीं आये। वे अपना कार्य करते रहे और मैंने भी थोड़ी देर में शर्तनामा प्रस्तुत कर दिया। पढ़कर वे बोले—"आप ग्रेजुएट हैं क्या?"

मैंने कहा—"शिक्षा तो मुझे इंटरमीजिएट तक ही मिली है।"

उन्होंने कहा—"अँगरेजी बहुत साफ-सुथरी है।"

मैंने बतलाया कि जिस अँगरेजी लिमिटेड कम्पनी में मैंने कटनी (म० प्र०) में पाँच वर्ष कार्य किया था, उसके अध्यक्ष अँगरेजी साहित्यकार और पत्रकार भी थे और मैंने भी उनके सम्पर्क में कुछ अँगरेजी लिखने का अभ्यास किया था।

वे बोले—"किन्तु यह तो कानूनी भाषा है।"

मैंने कहा—"प्राइवेट सेक्रेटरी होते हुए मुझे बीच-बीच में ट्रेजरी अफसर, जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट आदि का कार्य भी करना पड़ा है। इसलिए थोड़ा-बहुत कानून भी मैंने देखा है।"

दूसरे दिन से मैं इंडियन प्रेस लि० की उस व्यवस्था में दीक्षित होने लगा, जिसका प्रारम्भ पूज्यास्पद श्रीमान् चिन्तामणि घोष ने किया था और जिसका परिमार्जन पूज्य पटल बाबू और उनके भाई लगातार करते आ रहे हैं।

घोष-बन्धु रचनात्मक प्रगति पर विश्वास करते हैं और पटल बाबू रचनात्मक प्रगति के प्राण थे। वे यह मानते थे कि बिना व्यवस्था के निर्माण नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने ऐसी व्यवस्था की थी कि भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न धन्धे करते हुए भी उनकी नजर, दिन-प्रति-दिन के कारबार पर, अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे, बराबर पड़ती रहती थी। जहाँ-कहीं ढील दीख पड़ती कि फटकार की चिट्ठियाँ चलने लगतीं और जहाँ कार्य अच्छा जान पड़ता, वहाँ सराहना की।

निर्माण ही पटल बाबू के लिए चरम सुख था। अपने ३३ वर्ष के कार्यकाल में उन्होंने कितना निर्माण किया और कैसी-कैसी व्यवस्थाएँ कीं, यह बतलाने के लिए तो एक समूची पुस्तक लिखनी होगी—एक साधारण लेख बिलकुल अपर्याप्त ठहरेगा। इस लेख का उद्देश्य तो संस्मरण-मात्र है; परन्तु यह एक निश्चित सत्य है कि निर्माण से उन्हें सुख होता था और यदि अप्रत्याशित कारणों से उन्हें किसी कार्य में विफलता होती थी, तो उन्हें दुख नहीं होता था। उनका अपना जीवन तो एक साधारण मातहत के जीवन से भी अधिक सादा था।

उत्साहवर्धन

मेरे लिए प्रकाशन और वितरण का काम बिलकुल नया था। दिमाग में हुकूमत की बू-बास भरी हुई थी। स्वयं नहीं जानता था कि भविष्य क्या होगा। परन्तु प्रथम छः मास में ही व्यक्तिगत और पत्रगत आदेश देकर उन्होंने मुझे राह पर लगा दिया और छमाही रिपोर्ट प्राप्त होते ही सराहना का पत्र भेजा। इससे मुझमें आत्म-विश्वास उत्पन्न हुआ। उनका नियम यह था कि काम बिगड़ने पर चाहे फटकार की चिट्ठी लिखना भूल जायँ, पर सुधरने पर सराहना का पत्र अवश्य भेजते थे।

सन् १९३० में प्रयाग में सब शाखाओं के प्रबंधकों की एक सभा की गई। यह वास्तव में एक अध्ययन कोर्स के समान था। प्रत्येक विभाग के संचालन के संबंध में उन्होंने उपदेश-आदेश दिए। व्याख्यान देते तो कभी सुना नहीं; परन्तु वार्त्तालाप अत्यन्त प्रभावपूर्ण होता था।

मर्म यह होता था कि एक लक्ष्य बना लो और आत्मविश्वासपूर्वक उसकी ओर बढ़ो।

विक्रय के संबंध में कहा--"मैं एक पुस्तिका तुम लोगों को भेजूंगा, जिसमें सब पुस्तकों के नाम-दाम आदि हमेशा तुम्हारे सामने रहेंगे।"

मैंने कहा--"मुझे तो सब याद हैं। जो पुस्तकें मेरी समझ के भीतर हैं, उन्हें मैं पढ़ भी लेता हूँ; जिससे ग्राहक से अधिकारपूर्वक बात कर सकूँ।"

मेरी परीक्षा ली, फिर हँसकर बोले--"अभी तुम स्वयं बिल आदि बनाते हो, इसलिए नाम-दाम याद हैं। आगे जब मातहत यह काम करेंगे और प्रकाशन भी और बढ़ेगा, तब सब याद नहीं रहेगा। पढ़ लेते हो, यह बहुत अच्छा करते हो। मातहतों को भी पढ़ने के लिए उत्साहित करो। हमारा काम ही ऐसा है कि हमारे साधारण-से-साधारण कर्मचारी को सुपठित होना चाहिए।"

दोनों बातें सच थीं। बाद में नाम-दाम भूलने लगे और काम ऐसा है कि हमारे चपरासी, पैकर आदि सब अपने आप साक्षर हो जाते हैं।

ये प्रारम्भिक अनुभव उनके अन्त काल तक सभी कार्यकर्त्ताओं को प्राप्त होते रहे। जब भी कोई नई योजना प्रारंभ करते, सब शाखाओं को तत्संबंधी पूरा ब्योरा भेजते और लगातार उत्साहित करते रहते।

शाखाएँ यदि कोई नई योजनाएँ बनातीं, तो उन्हें सहयोग और स्फूर्ति देते रहते। मैंने लगभग पौने तीन वर्ष तक 'प्रेमा' मासिक पत्रिका निकाली। उसमें उन्होंने पूर्ण सहयोग दिया और अंत में जब पत्रिका नहीं चल पाई, तब बहुत-सा रुपया छोड़ भी दिया।

सन् १९२९ में जब श्रीमान् बाबू गोविन्ददास और पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र ने जबलपुर से दैनिक 'लोकमत' प्रारम्भ किया, तब मुझसे यह सहयोग चाहा कि इंडियन प्रेस लि०, यहाँ उनके लिए ब्लाक बनाने का प्रबंध करे और जब तक वह विभाग नहीं खुल जाता, तब तक प्रयाग से ब्लाक बनाकर भेजे। मिश्रजी और मैं प्रयाग में पटल बाबू से मिले। उन्होंने योजना का स्वागत किया और पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया। ब्लाक प्रयाग से आने लगे और मशीनों के लिए आर्डर जर्मनी भेज दिया गया। दुर्भाग्यवश 'लोकमत' ब्रिटिश राजनीति का शिकार हो गया और ब्लाक बनाने की १९२९-३० में जो योजना थी, वह अब लगभग ५०-५१ में 'जयहिन्द' दैनिक, जबलपुर द्वारा सम्पन्न हो सकी। 'लोकमत' के साथ भी ब्लाकों के संबंध में बहुत-सी रियायत की।

सन् १९४२ में पं० द्वारकाप्रसादजी मिश्र ने और मैंने साप्ताहिक 'सारथी' प्रकाशित करना चाहा। मैंने पटल बाबू से अनुमति माँगी, जो उन्होंने सहर्ष दे दी। मैंने यह भी कहा कि पत्र में शासन की तीव्र आलोचना होगी, मुझे जेल भी जाना पड़ सकता है। उन्होंने कहा--"देश की स्वतंत्रता और साहित्य की उन्नति के लिए जेल जाने में कोई हर्ज नहीं है। हमारी ओर से तुम्हारे लड़के को यथावत् आश्रय मिलता रहेगा।"

छः महीने में ही 'सारथी' अगस्त-आन्दोलन का शिकार हुआ और जेल की नौबत आ पहुँची; परन्तु स्वर्गीया सुभद्राकुमारीजी चौहान के अनुरोध से मैं उन भाइयों की सेवा करने के लिए बाहर रह गया, जो जेल जाकर देश की सेवा कर रहे थे और उस सेवा में भी इंडियन प्रेस पूरा सहयोग देता रहा।

इस प्रकार वे स्वयं तो रचनात्मक थे ही, सर्वत्र वे रचनात्मकता का स्वागत करते और उत्साह प्रदान करते थे।

विद्वानों का आदर

पटल बाबू विद्वानों का बहुत आदर करते थे। दो-चार विद्वान् इंडियन प्रेस में रोज पधारते हैं। उनका आगत-स्वागत पटल बाबू अत्यन्त विनम्र और विनीत भाव से करते थे। इंडियन प्रेस में भी अनेक विद्वान् कर्मचारी रह चुके हैं और हैं। पटल बाबू स्वभाव से ही विनम्र थे। साधारणतया उनके मुख पर एक बाल-सुलभ मुसकान खेला करती थी। कार्याधिक्य से कभी चिड़चिड़ाते भी थे, तो उसका कोई स्थायित्व नहीं था—क्षण-दो-क्षण के लिए। परन्तु विद्वानों के सम्मुख, चाहे घर का हो या बाहर का, वे अत्यन्त विनीत और विनम्र रहते थे। उर्दू के चोटी के शायर' स्वर्गीय 'असगर' गोंडवी एक अर्से तक हमारे यहाँ काम करते थे। पटल बाबू दफ्तर में भी खड़े होकर उनका स्वागत करते थे।

स्वर्गीय पं० रामदयाल तिवारी मध्य-प्रदेश के प्रसिद्ध विद्वानों में माने जाते थे। उनकी पुस्तक 'गान्धी-मीमांसा' हमने प्रकाशित की। इस सिलसिले में वे मेरे साथ प्रयाग गये। आदर-पूर्वक कोठी में ठहराए गए। पटल बाबू ने भेंट की और घंटे-डेढ़ घंटे दोनों में वार्त्तालाप होता रहा। विषय राजनीति और अर्थशास्त्र था। बाद में तिवारीजी ने मुझसे कहा कि मैं तो उन्हें एकमात्र व्यवसायी समझता था, परन्तु वे एक गंभीर विचारक और विद्वान् भी हैं।

यही अंतिम समीक्षा है। वे परिश्रमी थे, इसलिए परिश्रमी की कद्र करते थे; विद्वान् थे, इसलिए विद्वानों का आदर करते थे।

सेवा-भाव

जैसा कि १७-४-५३ की मैनेजरों की सभा में श्रीमान् हरिभूषणजी घोष ने कहा, पटल बाबू के लिए कर्मण्यता ही प्रेम था और प्रेम ही कर्मण्यता थी। इतना ऊँचा आदर्श उसी का हो सकता है, जो सेवा के महत्त्व को समझे। शिक्षा और साहित्य की सेवा के लिए पटल बाबू कितना त्याग कर सकते थे, यह बाह्याडंबर देखकर नहीं समझा जा सकता। इसके लिए पर्दे के भीतर भी एक नजर डालनी पड़ेगी।

'गान्धी-मीमांसा' की प्रतियाँ अब तक नहीं बिक सकीं। भारत में, कम-से-कम हिन्दी में, कब वैसे लेखक होंगे, जिनकी पुस्तकों की हजारों प्रतियाँ, एक साल में बिकें या कब वैसे प्रकाशक या पाठक होंगे, यह तो भगवान् ही जानें; परन्तु यथार्थ स्थिति तो स्वयं लेखक, प्रकाशक और पाठक होने के नाते, कुछ-कुछ मैं भी जानता हूँ। नब्बे प्रतिशत साहित्यिक व उच्च कोटि की पुस्तकें केवल सेवा-भाव से प्रकाशित की जाती हैं। शिक्षा के नवीन प्रयोगों के संबंध में प्रकाशित पुस्तकों का भी वही हाल है, अर्थात् प्रथम साहित्य की सेवा है, तो यह शिक्षा-प्रणाली की सेवा है। अभी हिन्दी में उच्च कक्षाओं के लिए वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाशन का प्रयोग हो रहा है। यह प्रयोग प्रकाशक को किस भाव पड़ेगा, यह भविष्य के गर्भ में है।

यह तो अपने जनरल प्रकाशन के बारे में, जिसकी तादाद कुछ कम नहीं है, एक जनरल सेवा की बात हुई; पटल बाबू के संबंध में कुछ विशेष बातें भी हैं।

लगभग सन् १९३६ में मध्यप्रदेश की सरकार ने प्रायमरी शिक्षा की एक नई योजना बनाई। उस योजना की सफलता के लिए सबसे पहले

शिक्षक को शिक्षित करने की आवश्यकता थी। शिक्षा-विभाग ने एक पुस्तक तैयार की, जो म० प्र० की तत्कालीन तीन भाषाओं में छापनी थी—हिन्दी, मराठी और उर्दू। प्रति पुस्तक में लगभग ७०० पृष्ठ थे, २०० चित्र थे, तीन हजार रु० पहले कापीराइट का देना था, छपाई, सफाई, बँधाई, कागज सब अच्छा चाहिए था और तीनों पुस्तकें कुल एक महीने में छापकर दे देनी थीं।

दुर्भाग्यवश उस समय भी पटल बाबू अस्वस्थ थे। कलकत्ते में इलाज हो रहा था। प्रस्ताव लेकर मैं कलकत्ते गया। पूरा विवरण सुनकर कहा—'पुस्तक अच्छी मालूम पड़ती हैं। प्रायमरी शिक्षक के दैनिक कार्यक्रम में सहायता पहुँचावे, ऐसी पुस्तक अभी नहीं देखी। हानि-लाभ का प्रश्न नहीं है। शिक्षा की सेवा होगी। सबसे कम दाम पर बेचने का वचन देकर, ले लो।'

माने या न मानें, एक माह में हिन्दी, मराठी, उर्दू की पुस्तकें तैयार; पृष्ठ ७००; चित्र २००; कापीराइट ३,०००); छपाई, बँधाई, कागज अच्छा—मूल्य कुल डेढ़ रुपया!!

उर्दू, मराठी का एक संस्करण छपकर ठप्प हो गया, हिन्दी के दो। अब तक इस 'हस्ता-मलक' की माँग आती है, 'प्रेमा' की माँग आती है और श्री केशवप्रसाद पाठक कृत 'उमर खैयाम' की माँग आती है। तीनों नहीं हैं। जो सेवा हो गई, वही क्या कम है?

लगभग सन् १९३९ में मध्यप्रदेश की सरकार ने उक्त योजना के अनुसार पुस्तकें माँगीं। निर्धारित शब्दावली पर पुस्तकें लिखनी थीं। लिखी गईं। आप किसी भी भाग के, किसी भी पृष्ठ पर, किसी भी शब्द पर उँगली भर रख दीजिए, हम या शिक्षक तुरन्त यह बतला देंगे कि सर्वप्रथम उस शब्द का कहाँ प्रयोग हुआ है और उसके बाद कम-से-कम पाँच बार वह शब्द कहाँ-कहाँ दुहराया गया है। यह योजना पटल बाबू को बहुत पसन्द आई और उन्होंने अपनी नई योजना उसमें जोड़ी कि हिन्दी, मराठी, उर्दू में एक-सी पुस्तकें लिखी जावें, जिससे शिक्षा का एक-सा स्टैण्डर्ड रहे और शिक्षा-क्षेत्र में एक नया प्रयोग उपस्थित हो। हमने और हमारे अन्य प्रकाशक भाइयों ने इस प्रकार की अनेक पुस्तकें प्रस्तुत कीं; पर प्रयोग होने के पहले उस योजना का ही अन्त हो गया। सीनियर कैम्ब्रिज के समीक्षकों ने हमारी पुस्तकों में कुछ अच्छाई देखी और कुछ पुस्तकें न केवल भारत, वरन् उस संसार में, जहाँ हिन्दी पढ़ाई जाती है, जैसे लंका, अफ्रीका, सिंगापुर, ट्रिनीडाड आदि में नाम-मात्र को चलती रहीं। जो थोड़ी-बहुत सेवा हो सकी, उसी से संतोष करना पड़ा।

अच्छे काम को अच्छी तरह करना भी यदि सेवा है, तो वह पटल बाबू लगातार करते रहे। महाकोशल महाविद्यालय का हीरक-जयंती अंक, नागपुर विश्वविद्यालय की 'प्राणिकी' व 'भौतिकी' तथा कई तरह का सरकारी काम इस प्रकार किया कि वह सर्वप्रशंसित हुआ।

त्रिपुरी कांग्रेस की सब पब्लिसिटी, वहीं मशीन लगाकर, मुफ्त छाप देने का वचन दिया था; परन्तु कुछ ऐसा चक्र चला कि पैसा देकर अन्य प्रेस से छपवाया गया। इस सिलसिले में पटल बाबू त्रिपुरी कांग्रेस का स्थल देख भी आये थे।

दया

पटल बाबू बहुत दयालु थे। इतने बड़े और प्रांत-प्रांत में फैले हुए कारबार में किस-किससे और क्या-क्या गलतियाँ नहीं हुई होंगी?

मुझसे ही इन पच्चीस वर्षों में भयानक से भयानक गलतियाँ हुई हैं। परन्तु सबको डाँट-डपटकर या समझा-बुझाकर छोड़ देते थे। कई लोग रुपया खाकर बैठ गए; मामला-मुकदमा भी नहीं चलाया। एक साहब ने हमारी पुस्तक अपने नाम छाप ली, या ऐसी गुंजाइश रखी कि पूरा शक किया जावे। मुझसे कहीं से जान-पहचान निकल आई। मैंने कहा—जाकर सच बात कह दो और दोषी हो तो क्षमा माँग लो। सिर्फ इतने पर, हजारों रु० खर्च करने के बाद, सब मामला वापस ले लिया।

एक दिन एक क्लर्क से बड़े मजे में कह रहे थे—"देखो, जितनी कमाई प्रेस से होती है, बैंक में रुपया जमा कर दें, तो उतना हमें ब्याज में मिल जाय। तुम्हीं लोगों के लिए तो रात-दिन एक करते हैं। तुम तो दो रोटियाँ खा भी लेते हो, हम तो वह भी नहीं खा सकते (बीमारी के कारण।) फिर भला, तुम काम ठीक से क्यों नहीं करते?"

सिनेमा हाऊस जल गया। शक था कि शरारतन जलाया गया है। कोई कार्रवाई नहीं की। चुपचाप फिर से बनवा लिया—पहले से भी अच्छा।

पंजाब में अशान्ति की आग लगी। लाहौर शाखा को तार दिया कि स्टाक किसी के भी हवाले करके चले आओ। मुझसे अकसर कहते थे—'हमारा तो बहुत बड़ा घर है। हमें तो सभी को देखना है।' लाहौर का स्टाक अब भी किसी के हवाले है। मेरे एक आत्मीय उस सरहद में फौजी अफसर होकर गये। मैंने पूछा कि उनके द्वारा, वहाँ जाकर स्टाक का कुछ पता लगवाऊँ? उन्होंने कहा—'रहने दो। हमारा आदमी सकुशल आ गया, यही बहुत है। अब तुम्हें खतरे में नहीं डालना है।' जितनी जल्दी हो सका, अम्बाले में शाखा खोल दी और 'हमारा आदमी' अर्थात् श्री एम० बनर्जी अत्यन्त योग्यतापूर्वक वहाँ कार्य कर रहे हैं।

दफ्तर के एक क्लर्क ने प्रत्यक्ष खयानत की। मैं वहीं था। तमाम दफ्तर में सनसनी थी कि उसका क्या फैसला होता है। अखीर घंटे में उसे बुलाया गया और डाँट-डपटकर उसको बहाल रक्खा—तनज्जुली तक नहीं की।

बहुत-से कर्मचारियों को तथा उनके कुटुम्बियों को पेंशन या अन्य प्रकार की सहायता देते रहे।

पटल बाबू स्वभाव से 'शाई' थे। सभा-समाज, चहल-पहल से दूर रहना पसन्द करते थे। बहुत अच्छे कपड़े पहनते थे, तब भी बदन सिकोड़कर चलते थे। दिखावा पसंद नहीं था। जब विलायत जा रहे थे, तब हम लोग बन्दरगाह में फूल-माला लेकर विदा करने गये। उन्हें पहना नहीं। कहने लगे—यह दिखावा क्यों किया? लौटे तो साधारण धोती-कुरता पहने हुए।

भोजन साधारण करते थे। स्वास्थ्य के कारण लगभग परहेजी भोजन करते थे। भोजन फेंकते नहीं थे। कहते थे, मेरी आदत थाली में भोजन छोड़ने की नहीं है, इसलिए मुझसे पूछकर परोसना।

यात्रा में न नौकर-चाकर साथ रहता था, न मामूली जरूरत से ज्यादा सामान, न ज्यादा रुपया-पैसा, न कोई बहुमूल्य वस्तु। संदूक में ताला तक नहीं लगाते थे।

बच्चों से और पुस्तकों से बहुत प्रेम था। कोठी में अकसर बच्चों से खेला करते थे। पुस्तकें बहुत खरीदते थे और बहुत पढ़ते थे—सभी विषयों की। मैकेनीकल इंजीनियरी तो पढ़े



१९१७

विभिन्न अवस्थाओं में
श्री हरिकेशव घोष



१९२०



१९२६



१९३५



१९३६



१९४२



१९४७



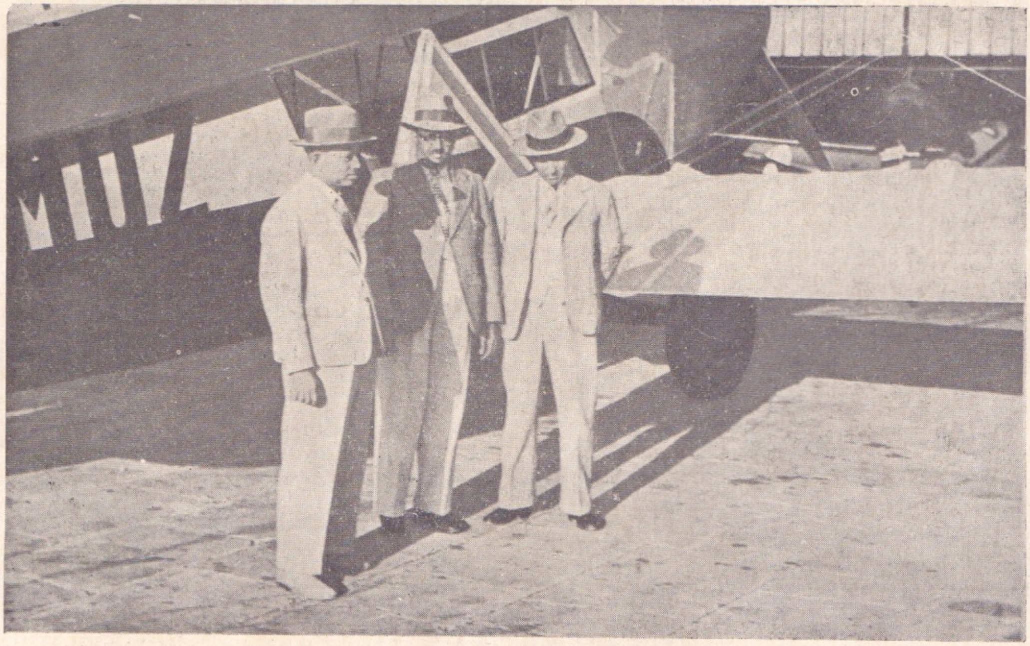
१९५३



मैट्रिकुलेशन परीक्षा के समय श्री हरिकेशव घोष (धरती पर बैठे हुए दाएँ से दूसरे) अपने शिक्षकों तथा सहपाठियों के साथ।



योरप-यात्रा प्रारम्भ करते समय बम्बई में श्री हरिकेशव घोष (बाएँ से छठवें)



हंबर्ग (जर्मनी) के हवाई-अड्डे पर श्री लाल और श्री दासगुप्ता के साथ श्री हरिकेशव घोष (बाईं ओर पहले)



इँगलैंड में श्री सी० डब्ल्यू० सैनफोर्ड के साथ श्री हरिकेशव घोष।



हम्बर्ग (जर्मनी) में श्री बी० एन० दासगुप्ता (इण्डो स्विस कं० के भारतीय प्रतिनिधि) के साथ श्री हरिकेशव घोष।

ही थें, गृहनिर्माण-कला में विशेषज्ञों से भी अधिक ज्ञान था, जो न जाने कितने मकानों, बँगलों, दूकानों आदि के निर्माण में व्यावहारिक रूप से प्रकट है।

टेनिस खेलते थे। बाद में छोड़ दिया था, परन्तु टूर्नामिण्ट देखने जरूर जाते थे। दूसरों को खिलवाने का बहुत शौक था। कोठी में जो टेनिस लॉन था, बहुत ही अच्छा था। श्री हरिभूषण घोष को बहुत उत्साहित करते थे। मुझे भी उनके साथ एक बार और श्री हरिभूषणजी के साथ अनेक बार खेलने का मौका मिला।

पच्चीस वर्ष के संस्मरण; क्या लिखे जायँ, क्या न लिखे जायँ। अब तो जीवन के बचे-खुचे दिनों में:

'प्यारे हरिचन्द की कहानी रह जावैगी।'

दिव्य व्यक्तित्व

सरदार नर्मदाप्रसाद सिंह

घोष बाबू (पटल बाबू) के नाम के पहले 'स्वर्गीय' लिखते हुए हृदय रो उठता है। उच्च कोटि के सफल उद्योगी और व्यवसायी होने के साथ-साथ देश और समाज के कल्याण की भावना, दानशीलता, मित्रों के प्रति सहज आत्मीयता, अपने कर्मचारियों के प्रति सहानुभूति और उदारता आदि गुण उनमें केन्द्रीभूत थे। किसी भी सार्वजनिक कार्य के लिए अर्थ-याचना के लिए जब-जब मैं उनके पास गया, आशा से अधिक धन उनसे प्राप्त हुआ। १९४२-४३ में राजनैतिक कार्यों के लिए जो आर्थिक सहायता उनसे मुझे मिली, वह मेरे जीवन की एक ऐतिहासिक घटना है।

उनके सम्पर्क में आने का प्रथम अवसर मुझे आदर्श बीमा-कम्पनी द्वारा प्राप्त हुआ। वे उसके चेयरमैन हुए और तब मुझे ज्ञात हुआ कि वे कितने ऊँचे थे। कार्य करने की लगन उनमें इतनी अधिक थी कि अस्वस्थता के समय रोग की कम, किन्तु कार्य न कर पाने की अधिक चिन्ता उन्हें रहा करती थी। उनकी जितनी योजनाएँ होती थीं, सदैव विस्तारपूर्वक उनके हृदय-पटल पर अंकित रहती थीं। विश्राम करना तो वे जानते ही नहीं थे।

मेरे तो वे भाई, मित्र और पथ-प्रदर्शक सभी कुछ थे। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, उनके निधन से जो दरार पड़ गई है, उसकी पूर्त्ति होना मेरे जीवन में तो सम्भव नहीं दिखाई देता। लगता है, आज भी वे मुसकराते हुए पूछ रहे हैं—"कहिए सरदार साहब, कैसी तबीअत है, बहुत दिनों के बाद दर्शन हुआ।"

पटल बाबू : एक संस्मरण

ठाकुर श्रीनाथसिंह, भूतपूर्व सम्पादक "सरस्वती"

स्वर्गीय पटल बाबू का स्मरण करते ही मानस-पटल पर एक ऐसी मानव-मूर्त्ति खचित हो उठती है, जो प्रत्यक्ष जगत् से परे की वस्तु प्रतीत होती है। अपने जीवन के सर्वोत्तम १७ वर्ष मैंने उनकी सेवा में व्यतीत किए हैं और इस दीर्घ काल में एक क्षण भी ऐसा नहीं आया, जब मुझे इस अनुभव से वंचित होना पड़ा हो कि मैं उस विशाल वृक्ष की शाखाओं में एक फूल के सदृश खिला हूँ, जिसके मूल में पटल बाबू ने अपने महान् व्यक्तित्व को मिला दिया है। जीवन के रंगमंच पर स्वयं अभिनेता के रूप में उतरने के बजाय वे आड़ में रहकर उसका सफलतापूर्वक संचालन करने में ही अधिक सुख का अनुभव करते थे। अपने निज के लिए उन्हें मान या प्रसिद्धि की जरा भी इच्छा न थी; परन्तु अपने सहयोगियों और सहायकों को वे उन्नति के शिखर पर चढ़ते हुए देखना चाहते थे और इसके लिए जो कुछ भी कर सकते थे, करने को तैयार रहते थे।

आज जब उनके आकस्मिक स्वर्गवास के कारण व्यथा से बोझिल मन लेकर मैं उनके संस्मरण लिखने बैठा हूँ, मेरे सामने वे सत्रहों वर्ष रंगीन चित्रपट की भाँति अंकित हो-हो उठते हैं। ओफ! वे दिन कितने सुन्दर थे!

उनके व्यक्तिगत परिचय का सौभाग्य पहले-पहल मुझे अगस्त सन् १९२७ में प्राप्त हुआ, जब उन्होंने मुझे 'बालसखा' का सम्पादक नियुक्त किया। उस समय उनके मुख से जो शब्द निकले थे, आज भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। उन्होंने कहा था—"बालसखा को तुम बनाओगे, तो 'बालसखा' तुम्हें बनावेगा।" उनके इस एक वाक्य से मुझे इतनी प्रेरणा मिली कि मैं जी-जान से 'बालसखा' के सम्पादन-कार्य में जुट गया।

पंजाब टेक्स्ट बुक कमेटी 'बालसखा' की १००० प्रतियाँ खरीदती थी। परन्तु मैंने जब 'बालसखा' में राष्ट्रीय कविताएँ और नेताओं के चरित छापने प्रारम्भ किए, तो उसने आश्वासन माँगा कि 'बालसखा' में आगे ऐसी रचनाएँ नहीं छापी जायँगी। पटल बाबू के कमरे में इस सम्बन्ध में आदेश लेने जब मैं पहुँचा, तो देखा कि उनका चेहरा गम्भीर है। मैं डरा कि मुझसे कोई भारी भूल हुई है; पर तुरन्त ही उन्होंने मुझे निश्चिन्त कर दिया। बोले—"तुम्हारा कोई दोष नहीं है, प्रत्येक भारतीय को अब निर्णय करना पड़ेगा कि वह क्या करे, क्या न करे।"

पटल बाबू पंजाब टेक्स्ट बुक कमेटी को यह आश्वासन न दे सके कि 'बालसखा' में आगे राष्ट्रीय कविताएँ और नेताओं की जीवनियाँ नहीं छपेंगी। परिणाम यह हुआ कि पंजाब टेक्स्ट बुक कमेटी ने 'बालसखा' लेना बन्द कर दिया। फिर तो हम बिलकुल निश्चिन्त हो गए और 'बालसखा' के राष्ट्रीय रूप को स्वयं पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इतना पसन्द किया कि उसे अपनी पुत्री इन्दिरा नेहरू के नाम जारी करने की आज्ञा दी और स्वीजरलैंड से लौटने पर इसमें बच्चों के मनोरंजन के कई लेख लिखे।

'बालसखा' का काम मैं प्रायः एक सप्ताह में समाप्त कर देता था और पटल बाबू से और काम माँगता था। इससे वे बहुत प्रसन्न होते

Important

थे और उनके पास जो भी साहित्यिक फुटकर काम होता था, मुझे बुलाकर दे देते थे। इस तरह मैं उनके निजी पत्र-व्यवहार से लेकर पाठ्य पुस्तकों के निर्माण करने तक के कामों में योग देने के लिए बुलाया जाने लगा और उनके अधिकाधिक सम्पर्क में आता गया। एक समय तो ऐसा आया, जब इंडियन प्रेस से प्रकाशित होनेवाले प्रत्येक पत्र-पत्रिका पर सम्पादक के रूप में मेरा नाम छपने लगा, मुझे एक हिन्दी स्टेनोग्राफर और टाइपिस्ट दिया गया, जिससे मैं तेजी से सब काम कर सकूँ। पटल बाबू मुझे लम्बी यात्रा में अपने साथ ले जाने लगे, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेने के लिए मुझे भेजने लगे और एक बार तो मुझे एक महीने की छुट्टी और काफी रुपया देकर कलकत्ता भेजा कि मैं वहाँ रहकर बँगला और अँगरेजी के लेखकों तथा पत्रकारों से सम्पर्क स्थापित करूँ और पत्रकारिता के विषय में अपना ज्ञान और अनुभव बढ़ाऊँ।

मैं नहीं कह सकता कि मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति को इतना आदर और स्नेह उन्होंने क्यों प्रदान किया। पर शायद उनका यह स्वभाव ही था। प्रत्येक व्यक्ति की, जो साहित्य-सेवा करने का अवसर चाहता था, वे सहायता करने को तैयार रहते थे।

किसी-न-किसी काम में लगे रहना उन्हें बहुत पसन्द था। रात-दिन में लगभग १६ घंटे काम करना उनके लिए मामूली बात थी। उनकी मेज पर कागज-पत्र सदैव बिखरे रहते थे और प्राय: वे अकेले अधिक रात तक काम में व्यस्त देखे जाते थे। उनमें संगठन, व्यवस्था और दूसरों से काम लेने की अद्भुत शक्ति थी। गँवार से वे ठेठ देहाती की तरह देहाती भाषा में बातें करते थे। उनकी स्मरण-शक्ति अद्भुत थी। प्रेस के किस कर्मचारी को क्या काम सौंपा गया है, उन्हें याद रहता था और वे उसको याद दिलाते रहते थे।

यों तो वे एक महान् और सफल उद्योगपति थे, परन्तु वास्तव में उनका जीवन एक श्रमिक का जीवन था। घड़ी की सुई के समान वे अपना सब काम नियमित रूप से करते थे। सुबह से शाम तक उनके पास मिलने के लिए आनेवालों का ताँता लगा रहता था, जब जो चाहे उनके पास सीधा पहुँच सकता था। किसी को कोई रोक न थी, पर मिलने आनेवालों के कारण उनके काम में बाधा न पड़ती थी। वे उनसे हँसते-बोलते भी जाते थे और अपना काम भी करते जाते थे।

उनके जीवन-पथ में कोई घटनाएँ न थीं, उनके जीवन-नाटक में कोई पट-परिवर्तन न था। जिस प्रकार मंदिर में देवता या शरीर में प्राण रहता है, उसी प्रकार वे अपने विविध व्यावसायिक कार्य-केन्द्रों में व्याप्त थे। रचनात्मक कार्य ही उनके जीवन का ध्येय था, वही आनन्द। एक मिनट भी वे व्यर्थ नहीं जाने देते थे।

अच्छी पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं को खरीदना और पढ़ना उनका एकमात्र मनोरंजन था। दिन भर के काम के बाद, वे चाहे जितना थके हों, बिना कुछ पढ़े सोते नहीं थे। कभी-कभी तो वे सोने से पहले ३-४ घंटा पढ़ते थे। यही कारण था कि चौबीसों घंटे अपने व्यापारिक कार्यों में डूबे रहने पर भी वे उन प्रोफेसरों, लेखकों या सम्पादकों से, जिनका काम ही अध्ययन है, प्रत्येक विषय पर अधिकारी विद्वान् की भाँति बातें कर सकते थे।

वे ऐसे व्यापारी न थे, जो अपने व्यापार के

पीछे जीवन के उच्च सिद्धान्तों को गँवा बैठते हैं। प्रत्येक कार्य में वे अपने राष्ट्रीय दृष्टिकोण को नहीं छोड़ते थे। बड़ी से बड़ी आर्थिक हानि उन्हें सह्य थी, परन्तु राष्ट्रीय चेतना का अनादर उन्हें कदापि सह्य नहीं था। अपने प्रकाशनों में किसी ऐसे सरकारी दबाव को, जिससे राष्ट्रीयता को ठेस पहुँचे, वे पसन्द नहीं करते थे। पंजाब टेक्स्ट बुक कमेटी ने जब पंडित जवाहरलाल नेहरू का जीवन-चरित छापने के कारण 'बालसखा' खरीदना बन्द कर देने की धमकी दी, तब उन्होंने उसकी परवा नहीं की। 'सरस्वती' का स्वराज्य अंक प्रकाशित करने के कारण उत्तरप्रदेशीय अँगरेजी सरकार के शिक्षा-विभाग ने इंडियन प्रेस की पाठ्य पुस्तकें अस्वीकृत कर दीं, तब इससे भी वे विचलित नहीं हुए। कई एक राजनैतिक क्रान्तिकारी इंडियन प्रेस में नियमित वैतनिक कर्मचारी के रूप में आश्रय पाए हुए थे। उनमें श्री जितेन्द्रनाथ सान्याल, जो लाहौर षड्यन्त्र केस में सरदार भगतसिंह के साथ गिरफ्तार हुए थे और श्री विद्याभास्कर प्रमुख थे। स्थानीय अधिकारियों ने बहुत चाहा कि ये व्यक्ति पृथक् कर दिए जायँ, पर पटल बाबू ने उनकी एक नहीं सुनी। इंडियन प्रेस के फाटक के सामने इन व्यक्तियों की देखभाल के लिए बराबर सी० आई० डी० का आदमी बैठा रहता था। इंडियन प्रेस के पास ही कम्पनी बाग में जब श्री चन्द्रशेखर 'आजाद' पुलिस की गोली से मारे गए और उसके बाद पुलिसवाले उनके आफिस में कहीं को टेलीफोन करने के लिए आये, तब पटल बाबू ने उन्हें अपना टेलीफोन इस्तेमाल नहीं करने दिया।

पटल बाबू बहुत ही उदार थे। मत-स्वातंत्र्य का पूर्ण आदर करते थे। अपने प्रेस के कर्मचारियों से केवल इसलिए कि वे उनसे भिन्न मत रखते हों, वे कभी नाराज न होते थे। अपने पत्र-सम्पादकों को वे अपने से भिन्न राय रखने और उसे निर्भीकतापूर्वक प्रकट करने की पूर्ण छूट देते थे। आज जबकि बीती बातें एक-एक करके मेरे सामने आ रही हैं, मुझे लगता है कि मैंने उन्हें काफी तंग किया था। मैंने उनके प्रेस में कर्मचारियों की यूनियन बनाई, उन्हें उनके विरुद्ध संगठित किया और उनसे लड़ने को उभारा। प्रेस के आँगन में इन यूनियनों की बैठकें करवाईं, जिनमें स्व० श्रीमती कमला नेहरू, श्रीमती सुचिता कृपलानी, श्रीमती प्रभा बनर्जी, डाक्टर जेड अहमद आदि को भाषण देने को बुलवाया, प्रेस में हड़तालें करवाईं। इतना ही नहीं, 'सरस्वती' और 'देशदूत' के सम्पादक के रूप में मैंने उनके और उनके अत्यन्त प्रिय मित्रों के मत के विरुद्ध कटु से कटु लेख प्रकाशित किए। परन्तु उन्होंने किसी बात का कभी बुरा नहीं माना। जब कोई शिकायत करता, वे यही कहते—"अच्छा, मैं श्रीनाथसिंह को समझा दूंगा।" और वे मुझे बुलाकर घंटों उपदेश देते और जब मैं उनसे विवाद करने लगता, कहते—"अच्छा, बाबा, जाओ, तुम्हारे जी में जो आवे, करो।"

एक बार 'सरस्वती' में छपे एक लेख के कारण 'सरस्वती' पर एक प्रतिष्ठित पुरुष की ओर से मानहानि का मुकदमा चलाने की नोटिस आई। पटल बाबू ने मुझे बुलाया। मैंने समझा, आज बहुत डाँटेंगे। मुझे कुछ डरा-सा देखा, तो मुसकराए। बोले—"घबराओ मत, मेरी रक्षा का हाथ तुम्हारे ऊपर से कभी नहीं हटेगा।" आज जब उनकी इन बातों का स्मरण करता हूँ, तो हृदय रो उठता है।

मेरे ऊपर 'सरस्वती' के एक सम्पादक और

थे, श्रद्धेय पंडित देवीदत्त शुक्ल। उन्हें मैं अपने पूज्य गुरु के समान मानता था। मेरे उनके बीच में अगर कोई मतभेद होता था, तो केवल इतना ही कि मेरे लेखों को कुछ और तीक्ष्ण होना चाहिए था और निश्चय ही जब वे संशोधन करते थे, उन्हें और भी तीक्ष्ण बना देते थे। इससे अनेक प्रभावशाली लोग, जो पटल बाबू के मित्र थे और उन लेखों की चपेट में आ जाते थे, बहुत घबरा उठते थे और पटल बाबू से कहते थे—"इन सम्पादकों को हटाओ।"

पटल बाबू सब सुनते, पर हम लोगों से उनका जिक्र तक न करते। क्रमशः इन यूनीवर्सिटी के प्रोफेसरों और अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों ने हमारे विरुद्ध उनका कान इतना भरा कि वे हमसे उन लेखों में से एक के लिए जवाब-तलब करने को तैयार हो गए।

हम लोग बुलाए गए। पटल बाबू ने पंडित वेंकटेशनारायण तिवारी लिखित "हरिऔध का बुढ़भस" शीर्षक लेख दिखाकर कहा—"एक वयोवृद्ध साहित्यकार के विरुद्ध ऐसा लेख छापना कदापि उचित नहीं है। इसके लिए आप लोग 'सरस्वती' में खेद प्रकट कीजिए और 'हरिऔध' से माफी माँगिए।" हम लोगों ने लेख छापने के अपने तर्क उपस्थित किए। कहा—"सत्याग्रही देवियों को इन्होंने इस कविता की 'नायिका' बना डाला, यह बुढ़भस नहीं तो क्या है?"—"कुछ भी हो", पटल बाबू ने कहा—"मैं उन लोगों से वादा कर चुका हूँ—अतएव या तो खेद प्रकट करना होगा या मैं 'सरस्वती' का प्रकाशन बन्द कर दूँगा।" वे गम्भीर हो गए। हम लोग अपने कमरे में चले आये। अब क्या हो? हम भारी संकट में पड़े। हमने सोचा, यदि हम किसी प्रकार धूनी बाबू को अपने पक्ष में कर लें, तो अब भी हमारी रक्षा हो सकती है। हम जानते थे कि अब धूनी बाबू ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो पटल बाबू के निर्णय के विरुद्ध हमारी रक्षा कर सकते हैं।

धूनी बाबू औघड़दानी शंकर की भाँति भावना-प्रधान व्यक्ति हैं। शरण में आये की रक्षा के लिए तैयार हो जाना उनका स्वभाव है। सो हम लोग उनके कमरे में जाकर मन मलीन कर चुपचाप खड़े हो गए।

"क्या बात है?" उन्होंने मृदु स्वर से पूछा। हमने कहा—"यूनीवर्सिटी के सारे प्रोफेसर हमारे पीछे पड़े हैं। जो कुछ भी हम 'सरस्वती' में छापते हैं, उसी की पटल बाबू से शिकायत करते हैं। अब कहते हैं, माफी माँगो।"

"माफी?" धूनी बाबू ने जरा उग्र होकर कहा—"हमारे सम्पादक माफी कभी नहीं माँग सकते।"

हम लोग यह वरदान पाकर अपने कमरे में वापस चले आये।

फिर पटल बाबू ने उन प्रोफेसरों को कैसे शान्त किया, हम नहीं जानते।

छोटे भाई धूनी बाबू के प्रति पटल बाबू के हृदय में इतना स्नेह था कि उसकी मिसाल नहीं मिलती। उन्हें मामूली बुखार भी आ जाता था, तो पटल बाबू चिन्तित हो उठते थे। चाहे जितनी हानि हो, चाहे जो बने-बिगड़े, धूनी बाबू का मान वे रखते थे। उनके इस भ्रातृस्नेह को, प्रेस के हम प्रायः सभी कर्मचारी जानते थे और संकट के समय इससे पूरा लाभ उठाते थे।

पटल बाबू कान के कच्चे नहीं थे। कोई किसी की उनसे लाख शिकायत करे, वे ध्यान न देते थे। परन्तु वे शीलवान् बहुत थे और किसी के

आग्रह को वश चलते अस्वीकार न करते थे। अपने इसी शील के कारण वे बहुत ही लोकप्रिय थे। हर कोई उन्हें अपना मित्र समझता था।

कभी-कभी मुझसे वे अपने सेक्रेटरी का भी काम लेते थे। अपने मित्रों और विरोधियों के पत्र वे मुझे पढ़ने को देते थे और उनका उत्तर मुझसे लिखवाते थे। इन पत्रों को जब मैं पढ़ता था और पटल बाबू के उत्तरों पर जब विचार करता था, तब मैं दंग रह जाता था। उच्च विचार, तर्क-माधुर्य, सत्य और शील सभी कुछ उनके उत्तरों में उमड़ता चला आता था। कड़ी से कड़ी बात का उत्तर वे मृदु से मृदु वाक्यों में दिलाते थे।

एक बार स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने गुस्से से भरा एक पत्र उन्हें लिखा था। लालाजी की पुस्तक "दुःखी भारत" जो लगभग ६०० पृष्ठों की थी और जिसका मैं ही, पटल बाबू की आज्ञा से, हिन्दी अनुवाद कर रहा था, इंडियन प्रेस ने एक महीने के अन्दर छापकर प्रकाशित कर देने का वादा किया था। १५ दिन बीत गए थे और पुस्तक की कम्पोजिंग भी न शुरू हुई थी। लालाजी को विश्वास नहीं रह गया था कि पुस्तक समय पर निकल सकेगी। इसी से उन्होंने कड़ा पत्र लिखा था। पटल बाबू ने उत्तर दिया था—"इसका हमें खेद है कि इससे पहले आपके निकट हमें अपनी कार्यक्षमता प्रमाणित करने का अवसर नहीं मिला, नहीं तो आपको इतनी चिन्ता न होती।" इस उत्तर की लालाजी ने बहुत प्रशंसा की और जब ठीक तिथि पर उनके हाथ में पुस्तक पहुँच गई, तब तो वे बहुत ही प्रसन्न हुए।

पटल बाबू अपने व्यवसाय को इस तरह विकसित करना चाहते थे कि वह राष्ट्रीय नव-निर्माण में सहायक हो। केवल धनोपार्जन उनका ध्येय न था। प्रेस-संचालक और प्रकाशक के नाते वे ऐसी योजनाएँ बनाते रहते थे, जिससे जनता को अच्छी से अच्छी पुस्तकें कम-से-कम मूल्य में मिल सकें। इसी लिए उन्होंने जर्मनी से पुस्तकें छापनेवाली रोटरी मशीन मँगाई थी, जो उत्तरप्रदेश में पहली थी। इस मशीन को खरीदने वे स्वयं जर्मनी गये थे और इसी सिल-सिले में उन्होंने योरप की यात्रा की थी।

हमारी प्रार्थना पर उन्होंने तत्कालीन योरप पर बहुत ही रोचक लेखमाला लिखी थी। अपने साथ वे बहुत से चित्र लाए थे, जिनमें से अधिकांश उक्त लेखमाला के साथ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुए थे। वे लेख उन्होंने अँगरेजी में लिखे थे, जिनका हिन्दी अनुवाद करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। उन लेखों का अनुवाद करते समय मुझे लगता कि मैं भी पटल बाबू के साथ योरप की सैर कर रहा हूँ।

जब कभी वे अनुवाद मैं उन्हें दिखाने ले जाता वे मुझे और भी बहुत सी दिलचस्प बातें बताते, जो उन लेखों में न होती थीं। इन्हीं बातों के सिलसिले में उन्होंने हिटलर से अपनी भेंट की भी कहानी सुनाई थी। जर्मनी के जिस कार-खाने से उन्होंने उक्त मशीन खरीदी थी, उसी के स्वामी ने हिटलर से उनकी भेंट कराई थी।

सन् १९४० में मैंने पटल बाबू से 'दीदी' नाम की अपनी निजी पत्रिका प्रकाशित करने की अनुमति माँगी, जो उन्होंने सहर्ष दे दी। उन्होंने 'दीदी' को चार वर्ष तक इंडियन प्रेस में मौजूद अच्छे से अच्छे ब्लाक मुफ्त दिए और एक पृष्ठ का विज्ञापन भी दिया। भेंट होने पर वे 'दीदी' के विषय में बराबर पूछते और बहु-मूल्य सलाहें देते। चार वर्ष बाद जब 'दीदी'

स्वावलम्बिनी हो गई, मैंने उनसे इंडियन प्रेस से पृथक् होने की अनुमति माँगी और उन्होंने मुझे आशीर्वाद तथा शुभ कामनाओं के साथ विदा किया।

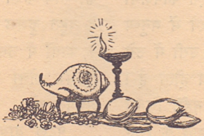
इसके वर्षों बाद जब मैं अपने निजी कामों में व्यस्त हो गया था और उन्हें सर्वथा भूल गया था, एक दिन क्या देखता हूँ कि पटल बाबू एक साहित्यिक मित्र के साथ मेरे छोटे-से घर के द्वार पर आकर खड़े हैं और वे साहित्यिक मित्र पुकार रहे हैं--"श्रीनाथसिंह, पटल बाबू!" मैं घबराया हुआ दौड़ा कि क्या बात है। मैंने उनका अभिवादन किया और कहना चाहता था, पर कह न सका कि मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो आप मेरे घर पर पधारे।

पटल बाबू ने कहा---"कोई खास बात नहीं है। इधर से जा रहा था। मालूम हुआ कि यह तुम्हारा घर है, तो रुक गया।"

वही सहज मुसकान थी, वही स्नेहभरी गम्भीर मुख-मुद्रा। पर स्वास्थ्य वह न रह गया था। शरीर बहुत ही दुर्बल हो उठा था। यह उनके स्वर्गवासी होने के लगभग दो साल पहले की घटना है। मैंने 'सरस्वती' आदि के बारे में पूछा तो बोले--"मैं सोचता हूँ कि किसी पत्र के ठीक संचालन के लिए यह आवश्यक है कि उसका संपादक और स्वामी एक ही व्यक्ति हो।"

मुझे लगा कि मैंने उन्हें जो बहुत तंग किया था, उसी का यह मृदु उलाहना था। मैंने कोई प्रतिवाद नहीं किया और बहुत दूर तक उनके पीछे-पीछे चलकर उस स्थान तक गया, जहाँ वे वास्तव में जाने के लिए उस मार्ग से निकले थे।

उनके जैसे महान् पुरुष के निकट सम्पर्क में रहकर काम करने का मुझे जो अवसर मिला, उसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ। यद्यपि उनका क्षणभंगुर शरीर इस जगत् में नहीं है; परन्तु जो उनके सम्पर्क में आ चुके हैं, उनके स्मृति-पट पर वे आज भी अमर हैं और मेरा तो यह हाल है कि सामने जब कभी कोई संकट उपस्थित होता है, उनका स्मरण करता हूँ, तो उससे लड़ने का बल आ जाता है। वे अपने आपमें पूर्ण थे और उस सूर्य के समान थे, जिससे अनेक चन्द्रमा और ग्रहमण्डल प्रकाशित होते रहते थे।



सौजन्य-मूर्त्ति पटल बाबू

डॉ० श्रीउमेश मिश्र

मनुष्य के जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्र हैं। अपनी योग्यता के अनुसार प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करना ही जीवन को सफल बनाना है। पूर्वजन्मों के सुकर्मों के कारण मनुष्य में योग्यता के बीज, संस्कार रूप में, जन्म के साथ-साथ उसके अन्तःकरण में वर्त्तमान रहते हैं। सुअवसर की प्राप्ति से वे बीज अंकुरित होकर क्रमशः अपनी योग्यता का परिचय देते हैं। नैसर्गिक योग्यता के अतिरिक्त भी योग्यता, विद्या और बुद्धि के बल से मनुष्य प्राप्त कर लेता है। इसमें आयास की अपेक्षा होती है। इसलिए आगन्तुक योग्यता पौरुष पर विशेष निर्भर होती है। पौरुष की उन्नति और अवनति से योग्यता में भी उन्नति और अवनति देख पड़ती है। किन्तु आयास के बिना भी जीवन की प्रत्येक अवस्था में नैसर्गिक योग्यता का पूर्ण परिचय हमें मिलता है।

जिस प्रकार क्रमिक विकास के द्वारा कोरकावस्था से निकलकर अपने मनोहर स्वरूप तथा सौरभ का परिचय पुष्प देता है, उसी प्रकार मनुष्य के गुणों का परिचय हमें उसके विकसित कार्यों के द्वारा प्राप्त होता है। ऐसे कार्यक्षेत्रों में अपनी योग्यता को विकसित करने में मनुष्य अपने जीवन को सफल समझता है, उसी में उसे एक अलौकिक आनन्द का अनुभव होता है। इसमें उसे आयास नहीं, थकावट नहीं, चिन्ता नहीं, व्यग्रता नहीं। दूसरों को दिखाने के लिए नहीं, अपनी प्रशंसा सुनने के लिए नहीं, और कर्त्तव्यबुद्धया भी वह इन कार्यों को नहीं करता है; किन्तु उसका स्वभाव ही उसे उस ओर ले जाता है। उसके बिना वह क्षण भर भी चैन से नहीं रह सकता है। उसके करने में उसे नैसर्गिक सुख का, आनन्द का आस्वादन मिलता है। इसी में मनुष्य को तन्मयता का असीम चमत्कार देख पड़ता है। यही जीवन का चरम लक्ष्य है। यही वस्तुतः पौरुष और पुरुषार्थ है।

लगभग तीस वर्ष हुए, स्वर्गीय पटल बाबू के साथ हमारा सबसे प्रथम परिचय बेलवेडियर प्रेस के प्रांगण में हुआ था। प्रथम दर्शन ही में मुझे इनके उदार चरित का आभास मिला। इनके साथ मेरा चिरन्तन परिचय रहा हो, ऐसा एक ही क्षण में मुझे भान होने लगा। उनकी क्रमिक विकसित एवं सर्वतोमुखी बुद्धि का परिचय तत्क्षण मुझे मालूम होने लगा। क्रमशः हम दोनों का परिचय बढ़ने लगा और अनेक क्षेत्रों में उनकी कार्यकुशलता को विभिन्न दृष्टिकोण से देखने का सुअवसर मुझे मिला। जितना कार्यभार उन्हें रहता था, उतना ही शान्त होकर वह अपने कार्य का सम्पादन करते थे। उनमें क्रोध आता था, किन्तु कर्त्तव्य के सामने उसी क्षण वह विनम्र हो जाते थे। अपने परिजनों को कार्य करने की क्षमता का प्रोत्साहन देने में वे बहुत कुशल थे। यद्यपि विशेषरूप से छपाई के कार्यों में उनका जीवन व्यतीत हुआ; किन्तु विभिन्न क्षेत्रों में भी उनकी व्यापारिक दृष्टि अद्भुत थी।

पटल बाबू में सौजन्य तथा सौहार्द देख पड़ता था। मित्रों, आगन्तुकों एवं अपने परिजनों के साथ उनका व्यवहार बहुत ही प्रिय तथा विचारपूर्ण रहता था। लोग उनसे अपने व्यावहारिक

कार्यों के सम्बन्ध में सलाह लेते थे । कार्य में व्यग्र रहने पर भी पटल बाबू ऐसे अवसर पर बहुत ही विचारशील होकर लोगों को सद्विचार देने में कभी अवहेलना या आलस्य नहीं दिखाते थे।

अपने कार्य के सम्पादन में उन्हें कदापि आलस्य एवं थकावट नहीं मालूम होती थी। शारीरिक कष्ट रहने पर भी कार्यक्षेत्र में उन्होंने कभी किसी प्रकार की बाधा का अनुभव नहीं किया। सब दिनों की भाँति उस समय भी पूर्ववत् अपने मंच पर सुखासीन होकर उसी चिरपरिचित क्षमता से कार्य करते हुए वे सदैव देख पड़ते थे। उनकी कार्यपरायणता को देख-कर कभी-कभी मैं क्षुब्ध रह जाता था और अपने मन में उनकी निपुणता की प्रशंसा करता था।

परिस्थितियों को समझने में, तदनुरूप कार्य करने में तथा प्रत्येक कार्य में नवीनता दिखाने में उनकी बुद्धि बहुत ही विकसित थी। दीर्घसूत्रता एवं आलस्य तो उन्होंने जाना ही नहीं ।

गार्हस्थ्य जीवन में एवं अपने भाइयों में जो प्रेम तथा सद्व्यवहार उन्होंने दिखाया, वह आदरणीय एवं आदर्श कहा जा सकता है। अपनी सद्बुद्धि और सद्व्यवहार से भ्रातृप्रेम को बढ़ाते हुए उन्होंने जो इंडियन प्रेस की सेवा की है और छपाई की कला को अग्रसर किया है, यह सबों के लिए उपादेय है। उनमें व्यग्रता कभी नहीं देख पड़ती थी। सभी कार्यों का स्वाभाविक प्रेम के साथ अनायास सम्पादन करने में उन्हें एक अलौकिक आनन्द मिलता था।

वस्तुतः यह एक वीर पुरुष थे। अपने पौरुष पर सदैव निर्भर रहते थे। कार्य करना और उसमें चातुर्य्य देखना इन्हें बहुत ही प्रिय था। उन्हें इसमें एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होता था और उन्होंने इसी आनन्द में अपने जीवन को सफल बनाया। रुग्णावस्था में भी जिस निपुणता से अपने कार्य को करने में उन्हें जो आनन्द मिलता था, वह अनुकरणीय है। ऐसे पुरुष बहुत नहीं होते और प्रायः ये दीर्घ-जीवी भी नहीं होते ।



अविस्मरणीय पटल बाबू

पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

१८ मार्च १९५३ की प्रातःबेला। सदा की भाँति उस दिन भी मैं टहलने के लिए अपने घर से निकला। परन्तु राजमार्ग के प्रथम चौराहे पर ही इंडियन प्रेस के एक परिचित कर्मचारी ने मुझे देखते ही, निकट आकर कहा—'बड़े साहब नहीं रहे।'

'कब?' मैंने हतप्रभ होकर पूछा।

'कल—१७ मार्च '५३ को—सन्ध्या समय पौने पाँच बजे।'

मेरा हृदय भर आया। यद्यपि पिछले कुछ महीनों से पटल बाबू कलकत्ते में चिकित्सा करा रहे थे और उनकी दशा गंभीर भी थी; किन्तु कल संध्या समय पाँच बजे प्रेस से आते समय तक ऐसा कोई संवाद कलकत्ते से प्राप्त नहीं हुआ था, जिससे पटल बाबू की अन्तिम घड़ियों का आभास मिल सकता। उक्त सज्जन से ही विदित हुआ—'लगभग छः बजे यह निधन-संवाद टेलीफोन द्वारा प्राप्त हुआ था और रात में ही उनके परिवार के सदस्य कलकत्ते चले गये हैं। प्रेस आज बन्द रहेगा।'

यह दु:संवाद पाकर मैं फिर टहलने नहीं जा सका। चुपचुप घर लौट आया। रह-रहकर पटल बाबू की स्मृतियाँ मेरे मानस-क्षितिज पर बिजली की तरह कौंधने लगीं। उनकी जो निकटता मुझे प्राप्त थी, उनका जो स्नेह मुझे प्राप्त था, वह किसी आत्मीय-जैसा ही था। यही कारण था कि रह-रहकर उनकी स्मृतियाँ मेरी आँखों को गीला कर बैठती थीं।

दो तिथियाँ मेरे सामने झूल उठीं : २७ जनवरी, १८९९ और १७ मार्च, १९५३। एक जन्म-तिथि और दूसरी अवसान-तिथि! केवल ५३ वर्ष की आयु पाकर ही पटल बाबू का प्रभावशाली व्यक्तित्व इस संसार में आया था। कदाचित् यही कारण था कि उन्होंने सदा दूसरों के कल्याण का ध्यान रक्खा और भरसक कभी किसी परिचित को निराश नहीं किया। उनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। वह जहाँ पहुँच जाते, सम्मान की उन पर वर्षा होने लगती। इसके दो कारण थे : एक तो वह इतने उदार थे कि न जाने कितनी संस्थाओं, कितने परिचितों और गरीब छात्रों के लिए उनकी सहायता का स्रोत सदा प्रवाहित रहता था, दूसरे वह इतने मधुरभाषी थे कि शायद ही कभी किसी को उनकी वाणी से कष्ट पहुँचा हो अथवा निराशा हुई हो।

पटल बाबू के साथ इंडियन प्रेस का स्वर्ण अध्याय संयुक्त है। उन्होंने अपने बुद्धिकौशल, घोर परिश्रम और उदार स्वभाव से इंडियन प्रेस का कार्यक्षेत्र दिनोंदिन व्यापक बनाने में कुछ उठा नहीं रक्खा। उन्हीं के कार्यकाल में इंडियन प्रेस से अनेक प्रथम श्रेणी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। 'सरस्वती' और 'बाल-सखा' का प्रकाशन यों तो पहले से ही हो रहा था; किन्तु इनका सर्वांगीण विकास पटल बाबू के ही कार्यकाल में हुआ और साप्ताहिक 'देशदूत' सचित्र कहानी पत्रिका 'मंजरी', अँगरेजी साप्ताहिक 'ओरियण्ट' आदि पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी आपके कार्यकाल की चिरस्मरणीय घटनाएँ हैं। इन पत्र-पत्रिकाओं की सेवाएँ

अपने-अपने कार्यक्षेत्र में उन्हीं के संचालकत्व में सदा के लिए उल्लेखनीय बन गईं।

उतरती अवस्था में भी पन्द्रह-सोलह घण्टे तक कार्यव्यस्त रहना उनके लिए साधारण बात थी। घोर परिश्रम और प्रखर प्रतिभा का सम्मिश्रण ही उनकी अपूर्व सफलता का मेरुदण्ड था। यों तो उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी; किन्तु उस प्रतिभा की दो प्रमुख धाराएँ थीं—एक तो मुद्रण-कला के आधुनिकतम शिल्प का अपने इंडियन प्रेस में प्रयोग करने की अदम्य लगन और दूसरी भवन-निर्माण-कला की गहरी परिष्कृत रुचि। इनके अतिरिक्त पुस्तक-लेखन, अनुवाद और पत्र-सम्पादन में भी पटल बाबू गहरी दिलचस्पी लेते थे।

कुछ लोगों की धारणा थी कि इतने अधिक कार्यव्यस्त रहकर पटल बाबू अपने प्रेस से प्रकाशित होनेवाली पत्रिकाओं को शायद ही कभी ध्यानपूर्वक पढ़ते हों। ऐसी धारणा का शायद एक कारण था : संपादकीय अधिकारों में हस्तक्षेप करने की उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। किन्तु ऐसी धारणा सर्वथा निर्मूल थी। अत्यधिक कार्यव्यस्त रहने पर भी अपने तत्त्वावधान में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं को वह ध्यानपूर्वक देखा करते थे और अवसर पड़ने पर सम्पादकों से आवश्यक पूछ-ताछ भी करते थे। इस संबंध में एक संस्मरण मैं कभी भूल नहीं सकता, जो पटल बाबू की पत्र-संचालन की सजगता का ज्वलन्त प्रमाण है।

अक्टूबर १९४८ की बात है। उस समय इन पंक्तियों का लेखक 'मंजरी' का सम्पादक था। नवम्बर की 'मंजरी' का अंक छपकर तैयार हो रहा था। मैं अपनी मेज पर बैठा संपादन-कार्य कर रहा था कि सहसा पटल बाबू का आह्वान सुनाई पड़ा—'चतुर्वेदीजी!'

इंडियन प्रेस का नवनिर्मित हाल इस ढंग से उन्होंने बनवाया है कि वह अपनी कुर्सी पर बैठे-बैठे ही प्रमुख कर्मचारियों को आवाज देकर सहज ही बुला लेते थे। किन्तु इस आह्वान के स्वर में सदा की भाँति मधुरता नहीं, एक तीक्ष्णता थी।

मैं फौरन उनके सामने जा पहुँचा। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि नवम्बर की 'मंजरी' के मुद्रित फार्म उनकी मेज पर रखे हुए हैं। उनमें से पहला फार्म उठाकर उन्होंने मेरे सम्पादकीय नोट की ओर संकेत करते हुए कहा—'यह सब आपने क्या लिख डाला है?' उनका स्वर अब तक तीक्ष्ण ही था।

'सम्पादकीय नोट है।' मैंने कहा—'प्रकाशकों द्वारा कथाकारों का जो शोषण किया जा रहा है, उसी पर प्रकाश फेंका गया है।'

'प्रकाशकों पर आक्षेप करने का अर्थ है, संस्थाओं पर आक्रमण करना। मैं संस्थाओं पर आक्रमण नहीं करना चाहता, कारण मैं भी उन्हीं की जाति का हूँ—मैं भी प्रकाशक हूँ।'

यह पहला अवसर था, जब इंडियन प्रेस के अपने किसी कार्य के संबंध में पटल बाबू की त्योरियाँ मैंने चढ़ी हुई देखीं। ऐसे अवसरों पर मैं सचेष्ट रहने पर भी संपूर्ण रूप से नियंत्रित नहीं रह पाता। कह दिया मैंने—'क्षमा कीजिए, कुछ संस्थाएँ ऐसी भी होती हैं, जिन पर कभी आक्षेप न किए जाने की बात से मैं सहमत नहीं हो सकता।'

प्रखर प्रतिभा के धनी और गहन-गम्भीर पटल बाबू जैसे पत्र-संचालक को मेरी भावनाएँ समझते देर नहीं लगी। उनके स्वर की तीक्ष्णता कुछ कम हो गई। उन्होंने कहा—'ओह! मेरा मतलब आप नहीं समझे! अच्छा, कल

सुबह आठ बजे आप कोठी (निवासस्थान) पर आइए। सम्भव है, उस समय आप मेरा दृष्टिकोण समझ सकें।'

'अच्छा!' कहकर मैं अपनी मेज पर जाकर काम करने लगा।

मेरे स्वभाव की यह एक कमजोरी ही कही जायगी कि मैं किसी भी अप्रत्याशित घटना का सामना करते समय उग्रता और उतावली में बह जाता हूँ। फिर कुछ समय बीत जाने पर मैं उसी का विश्लेषण करता हूँ और बहुधा अपनी उग्रता तथा उतावली पर पश्चात्ताप भी कर लेता हूँ। इस घटना से भी मैं क्षुब्ध हो उठा। बहुत देर तक सोचता रहा कि मेरे उत्तरों से शायद पटल बाबू को आज कष्ट पहुँचा है। परन्तु प्रत्यंचा से छूटे बाण की तरह अब उन उत्तरों को वापस नहीं किया जा सकता था।

दूसरे दिन सुबह ठीक आठ बजे मैं पटल बाबू की आज्ञानुसार उनकी कोठी पर जा पहुँचा। कोठी के सामने मुसकराते उपवन के बीच एक छोटी-सी मेज के चारों ओर कुछ कुर्सियाँ पड़ी थीं, जिनमें से एक पर पटल बाबू आसीन थे और समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। सूर्य की स्वर्णिम किरणों के बीच उनका उन्नत ललाट दूर से ही चमक रहा था। निकट पहुँचकर मैंने नमस्कार कर उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया।

अभिवादन स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा--'बैठिए।' और अखबार दूसरी कुर्सी पर रखते हुए बोले--'देखिए, आपको अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ देखकर मुझे प्रसन्नता होती है। आचार्य द्विवेदीजी की भाँति आप अपना स्थान बना सकें, तो मुझसे अधिक प्रसन्नता शायद ही किसी को हो। परन्तु सिद्धान्तों की रक्षा के साथ संचालक की रक्षा भी आप कर सकें, तो अच्छा हो।'

कल की तीक्ष्णता और आज की मधुरता देखकर मैं स्तब्ध रह गया! रोष के स्थान पर यह सन्तोष देख, मैंने परिस्थिति को समझ लेने की चेष्टा करनी चाही--'तो क्या उस संपादकीय नोट से आपकी स्थिति......?'

मैं बात पूरी भी नहीं कह सका कि पटल बाबू मुसकराते हुए बोले--'हाँ, मेरी स्थिति संकटापन्न हो उठेगी। जहाँ यह अंक प्रकाशित हुआ कि स्थानीय प्रकाशकों की दौड़ मेरे पास प्रारंभ हो जायगी, और वे यही समझेंगे कि मेरी ही प्रेरणा से यह संपादकीय नोट लिखा गया है। तब मैं किस-किसको क्या-क्या उत्तर दूँगा?'

'आपको व्यक्तिगत कष्ट पहुँचाने की तो मैंने कभी कल्पना भी नहीं की। यदि मैं आपको सन्तोष नहीं दे सकता, तो कष्ट क्यों दूँगा?'

'तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आप अपने इस संपादकीय नोट को प्रकाशित न होने दें। उसे रोक लें और अन्य कोई नोट लिखकर आज ही प्रेस में दे दें।'

'जी, अच्छा। मैं अभी जाकर दूसरा नोट लिखकर दे दूँगा।'

इसी बीच उनकी मेज पर चाय आ चुकी थी। मुझसे कहा--'आप भी चाय पीजिए।'

मैंने चाय पीकर पटल बाबू से विदा ली और 'श्रमजीवी कथाकारों की समस्याएँ' शीर्षक दो पृष्ठव्यापी अपना संपादकीय नोट रोककर उसके स्थान में दूसरा नोट प्रेस में दे दिया। उक्त नोट अब तक मुद्रित रूप में मेरे पास सुरक्षित पड़ा है; किन्तु मैंने आज तक उसे कहीं प्रकाशित नहीं कराया।

इस घटना में पटल बाबू की सजगता, गम्भीरता और व्यावहारिक कुशलता की गहरी

[पृष्ठ १६४ देखिए

पटल बाबू की भवन-निर्माण-कला

श्री 'कलाकुमार'

आज पटल बाबू की भवन-निर्माण-कला की परिष्कृत रुचि की साक्षी देनेवाले भवनों पर मेरी दृष्टि पड़ती है, तो पटल बाबू की वह मूर्त्ति मेरी आँखों में झूल उठती है, जिसे मैं अनेक बार प्रातःबेला में कितने ही भवन बनवाते समय उनकी देखरेख करने में व्यस्त देख चुका था। मुद्रण-कला के बाद यदि किसी कला में उनकी गहरी रुचि थी, तो वह यही भवन-निर्माण-कला थी।

इंडियन प्रेस के कार्यालय का नवनिर्मित हाल न केवल भवन-निर्माण-कला की आधुनिकतम परिष्कृत रुचि का साक्षी है, प्रत्युत उसके निर्माण की पृष्ठभूमि पर प्रबन्ध-पटु पटल बाबू की कार्य-प्रणाली के सुचारु संचालन की सुविधा भी अपना अस्तित्व रखती है। इसकी दीवारों पर, इसके स्तंभों पर अथवा इसकी छत पर कहीं किसी सजावट का कोई चिह्न नहीं है और सादगी का ही समावेश है; किन्तु सुविधा की दृष्टि से इस हाल का अपना विशेष स्थान है।

प्रेस के भीतरी भाग की पुनर्रचना भी पटल बाबू ने आधुनिक ढंग पर कराने में अपने उस अनुभव और अवलोकन की छाप लगा दी है, जो उन्होंने योरप-भ्रमण में बटोरा था।

भवन-निर्माण-कला की पटल बाबू में सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। उन्होंने इसकी पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त की थी और इस कार्य में उन्हें सदा आनन्दानुभव होता था। उनकी इसी प्रवृत्ति का यह परिणाम है कि इलाहाबाद के जिन सुनसान भागों में कभी गहरा सन्नाटा छाया रहता था, जहाँ साधारणतः आने-जाने में लोगों को भय लगता था अथवा जहाँ अरहर के खेतों में शृगाल बोला करते थे, वहाँ आजकल भव्य भवन खड़े मुसकरा रहे हैं और वहाँ का वातावरण दर्शनीय हो उठा है।

जवाहरलाल नेहरू मार्ग पर किले की ओर जब कभी मैं प्रातःबेला में टहलने जाता हूँ, तब नेहरूजी के आनन्द भवन से लगभग दो फलाँग बढ़ने पर बाईं ओर खड़ी हुई एक-से आकार-प्रकार की अनेक भव्य इमारतें सहसा मुझे अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। इन इमारतों को देखते ही मुझे पटल बाबू का ध्यान आ जाता है और मेरा हृदय भर आता है।

कितने मनोयोग से और रुचिपूर्वक पटल बाबू ने इन इमारतों का निर्माण कराया था, इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। प्रातःबेला में नित्य टहलने की मेरी आदत है। इसी सिलसिले में अनेक बार मैंने अपनी आँखों पटल बाबू को इन इमारतों के निर्माण-कार्य का अवलोकन और निरीक्षण करते देखा है। क्या प्रेस-कर्मचारियों और क्या राजगीरों या कारीगरों से वह बढ़िया कार्य यथासंभव शीघ्र करा लेने का मानो जादू जानते थे।

इसी जवाहरलाल नेहरू मार्ग पर थोड़ा और आगे बढ़ते ही रेलमार्ग के निकट, एक छोटे से तालाब के तट पर, जहाँ कुछ दिनों पहले सर्वथा सूना आलम सायँ-सायँ किया करता था, आज जो भव्य इमारतें खड़ी हैं और जिनमें अनेक परिवार चैन से रहते हैं, उनके निर्माता पटल बाबू ही थे।

संध्या समय जब कभी किसी आवश्यक कार्य से सिविल लाइंस जाना पड़ता है, तब वहाँ भी सरदार वल्लभभाई मार्ग पर एक छोर से दूसरे छोर तक आधुनिक ढंग की इमारतें देखकर मेरा मन भर आता है। सिविल लाइन्स की इन इमारतों में आधुनिक ढंग की विभिन्न दूकानों की चकाचौंध किसी भी दर्शक को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। इन दूकानों में जहाँ आधुनिक रंगीनियाँ नजर आती हैं, वहीं इनके ऊपरी हिस्से में मध्यवर्ग के अनेक सभ्य और सुसंस्कृत परिवार रहते हैं। सिविल लाइंस-जैसे महँगे क्षेत्र में मध्य वर्ग के परिवारों को निवास-स्थान मिलना आकाश-कुसुम ही था। किन्तु पटल बाबू की सूझ-बूझ द्वारा यह समस्या भी बहुत कुछ हल हो गई। इन इमारतों में जो दूकानें हैं, उनका नाम ही 'घोष बाजार' पड़ गया है। इन्हीं इमारतों में आधुनिक ढंग का चलचित्र-गृह 'प्लाजा' भी है।

केवल इमारतें बनवा देने से ही पटल बाबू को सन्तोष नहीं हो जाता था। उन इमारतों में रहनेवाले परिवारों अथवा दूकानदारों की सुविधा का भी वह बड़ा ध्यान रखते थे और यथासंभव उनकी कठिनाइयाँ दूर करके ही सन्तुष्ट होते थे।

भवन-निर्माण-कला में पटल बाबू की इतनी रुचि थी कि परिचितों के आग्रह पर वह न केवल उन्हें एतद्विषयक परामर्श दिया करते, प्रत्युत अपने अमूल्य समय का कुछ भाग भी सहर्ष खर्च कर क्रियात्मक सहयोग देकर प्रसन्नता का अनुभव करते थे।

अविस्मरणीय पटल बाबू

[पृष्ठ १६२ का शेष]

छाप है। संचालक होने के नाते उनकी आज्ञा का पालन मुझे करना ही पड़ता; परन्तु उन्होंने सीधी आज्ञा न देकर मुझे अपनी संभाव्य कठिनाइयाँ बतलाकर ही अपनी इच्छा प्रकट की। दूसरों की प्रतिभा को परखने और उसका सम्मान करने की ऐसी क्षमता बहुत कम पत्र-संचालकों में पाई जाती है।

'सरस्वती' के सम्पादन का भी पटल बाबू यथेष्ट ध्यान रखते थे। गत वर्ष कलकत्ते से जब स्वस्थ होकर लौटे, तो भेट होने पर उन्होंने सबसे पहले 'सरस्वती' की सम्पादन-संबंधी बातें ही मुझसे पूछीं।

मेरे पुत्र के विवाहोपलक्ष्य में दिए गए प्रीति-भोज में जब मैंने उन्हें ससंकोच निमंत्रण दिया और सम्मिलित होने का आग्रह किया, तो सहर्ष स्वीकृति दे दी और अपने अनुज बाबू हरिप्रसन्न घोष एवं ज्येष्ठ पुत्र श्री देवप्रसाद घोष के साथ प्रीतिभोज में सम्मिलित होकर मुझे अनुगृहीत किया।

'मंजरी' का प्रकाशन जब इंडियन प्रेस द्वारा बन्द कर दिया गया, तब प्रेस से मेरे पृथक्करण का प्रश्न सामने आया; किन्तु पटल बाबू ने मुझे पृथक् नहीं किया। प्रेस का साहित्यिक कार्य वह मुझसे लेते रहे। कालान्तर में श्री बख्शीजी के साथ मुझे भी 'सरस्वती' का सम्पादक नियुक्त कर उन्होंने अपनी उदारता का परिचय दिया।

इतनी आत्मीयता और निकटता का मेरा संबंध जिन पटल बाबू के साथ रहा हो, उनके अवसान पर मेरा परितप्त हो उठना सर्वथा स्वाभाविक था। उनका व्यक्तित्त्व मेरे लिए अविस्मरणीय है।

मिलनसार पटल बाबू

श्री रामेश्वर गुरु, एम० ए०

पटल बाबू का नाम हरिकेशव घोष के रूप में बहुत वर्षों पहले सुना था। स्वर्गीय पूज्य पिताजी पंडित कामताप्रसाद गुरु का संबंध इंडियन प्रेस से बहुत पुराना था और पटल बाबू से नियमित रूप से उनका पत्र-व्यवहार हुआ करता था। स्वर्गीय चिन्तामणि घोष की परम्परा श्री हरिकेशव ने बड़ी खूबी के साथ निबाही और पूज्य पिताजी को उसी सम्मान और गुरु-भाव से देखते रहे, जिस रूप में स्वर्गीय चिन्तामणि घोष देखते थे। "डियर पंडितजी" के साथ पत्र का आरंभ करते थे और बड़ी नम्रता और सौजन्य के साथ पत्र समाप्त करते थे।

उस समय तक मैंने हरिकेशव घोष के दर्शन नहीं किए थे और इंडियन प्रेस के अधिष्ठाता और जनरल मैनेजर के रूप में ही उन्हें जानता था। 'पार्वती और यशोदा' तथा 'पद्य-समुच्चय' दो पुस्तकें पिताजी की इंडियन प्रेस से प्रकाशित हुई थीं। नागरी प्रचारिणी सभा के प्रकाशनों का मुद्रण और वितरण-भार जब इंडियन प्रेस ने लिया, तब व्याकरणों का प्रकाशन भी इंडियन प्रेस का उत्तरदायित्व बना। इन्हीं तथा इनसे संबंध रखते हुए प्रिय और अप्रिय प्रसंगों पर पूज्य पिताजी का पत्र-व्यवहार पटल बाबू से होता रहता था; पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि पूज्य पिताजी और पटल बाबू के आत्मीय संबंधों में कोई फर्क पड़ा हो।

पूज्य पिताजी के निधन के पश्चात् मैं एक कार्यवश प्रयाग गया और झिझकते-झिझकते पटल बाबू से मिलने गया। बड़े आदमियों से और विशेषकर सम्पत्ति के बड़प्पनवालों से मिलने में मुझे डर-सा लगता है। जहाँ तक बन पड़ता है, मैं उनसे दूर ही रहता हूँ। परन्तु पटल बाबू से जब मिला, तब ऐसा कुछ लगा कि काफी पुराने आत्मीय संबंध की पृष्ठभूमि पर इंडियन प्रेस के जनरल मैनेजर मुझसे बातें कर रहे हैं। इसके पूर्व कि मैं और कोई बातचीत करूँ, उन्होंने काफी समय तक घर, कुटुम्ब और जीविका-संबंधी प्रश्न पूछे और संतोष प्रकट किया कि मैं पूज्य पिताजी की परम्परा पर चलने का प्रयत्न कर रहा हूँ। कई बार उन्होंने कहा कि निस्संकोच उनसे सहयोग लेना चाहिए। मैंने उनसे कहा कि 'पार्वती और यशोदा' नामक पिताजी की पुस्तक का पुनर्प्रकाशन मैं करना चाहता हूँ और अनुमति मिल जाती, तो अच्छा होता। उन्होंने बिना किसी हिचक के सहर्ष अनुमति दे दी। साधारण शिष्टाचार के जितने भी नियम-उपनियम होते हैं, उनका पालन करते हुए पटल बाबू ने आग्रह किया कि मैं जब कभी प्रयाग आऊँ, उनसे अवश्य मिला करूँ। आध घंटे की मुलाकात काफी संतोषजनक और आत्मीयता भरी रही।

दूसरी मुलाकात पटल बाबू से अंतिम मुलाकात थी। मेरी आंतरिक इच्छा थी कि मैं इंडियन प्रेस से साहित्यिक संबंध स्थापित किए रहूँ और पूज्य पिताजी के संबंध को अपने जीवन में भी चलाए चलूँ। पटल बाबू से मैंने पत्र-व्यवहार किया। पत्र देने की देर कि उत्तर आया और वह भी बड़ी अनुकूल और सहृदय

भाषा में। दो-तीन 'आफर' उनके पत्र में थे और सभी अनुकूल और अच्छे। साहस और शौर्य पूर्ण एक अँगरेजी उपन्यास भी भिजवाया कि मैं उसका अनुवाद करूँ। इसी बीच कुछ ऐसी परिस्थितियाँ आईं कि पत्र-व्यवहार का क्रम ढीला पड़ गया। मैं अन्य उलझनों में फँस गया और हिंदी में किया हुआ अनुवाद ज्यों का त्यों रखा रह गया। उन्होंने आग्रह किया था कि पुस्तकों के संबंध में मैं निस्संकोच सुझाव और सलाह देता रहूँ। यह कार्य भी मैं इच्छा रहते हुए भी पूरा-पूरा नहीं कर सका और आज जब ये संस्मरण लिखने बैठा हूँ, तब सोचता हूँ कि काश, ये सब कार्य उनके सामने कर उन्हें मैं सन्तुष्ट कर सकता और उनका आत्मीय तथा स्नेह-भाजन बन सकता। पर अब तो पश्चात्ताप-मात्र हाथ रह गया है।

मेरा परिचय बहुत ही थोड़ा और काफी हलका था, फिर भी इतने थोड़े परिचय में भी मैं पटल बाबू के मनुष्य और इंसान को नजदीक से देख सका, इसका मुझे संतोष है।

कर्मयोगी पटल बाबू

पं० ज्वालादत्त शर्मा

स्वर्गीय चिन्तामणि घोष एक युगान्तकारी मानव थे। उन्होंने बहुत साधारण स्थिति से ईर्ष्या-योग्य स्थिति सीधे हाथ और सच्चे मार्ग से प्राप्त की थी। स्वर्गीय आचार्य द्विवेदीजी का उनसे बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध था। एक बार मैं किसी विशेष कारण से प्रयाग गया था। उस समय पहली बार प्रेस जाकर उनसे मिला। आँखों से उन्हें कम दिखाई देने लगा था।

वर्त्तमान 'बालसखा'-सम्पादक से उसी समय प्रथम परिचय हुआ था। स्वर्गीय भट्टजी उस समय 'बालसखा'-सम्पादक थे। मैं उनसे बहुत पहले से परिचित था। उन्होंने ही घोष बाबू से मेरा परिचय कराया था।

पटल बाबू अपने पिता की समस्त विभूतियों का प्रतिनिधित्व करते थे। काम के पीछे वे अपने स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं करते थे। इस बात में उन्होंने अपने पिता का अनुकरण नहीं किया। स्वभाव में वही मृदुता और उदारता थी। काम करने की उनको भी अधिक लगन थी और इस रूप में कि बूढ़े बाबू ने नीचे से ऊपर चढ़ने का भयंकर मार्ग तय किया था और ये तो मुंह में चाँदी का चम्मच लिये पैदा हुए थे, फिर भी परिश्रम करने में उन्होंने साधारण स्थिति के लोगों को भी नीचा दिखा दिया था। उनकी माताजी के देहान्त होने पर बूढ़े बाबू ने अपने शरीर और मन की देख-भाल के लिए बहुत उत्तम प्रबन्ध किया था। पटल बाबू इस मामले में असावधान थे। कहीं उन्हें काम की उन्नति के साथ शरीर की रक्षा की भी बूढ़े पिताजी की तरह चिन्ता होती, तो उनके परिवार और मित्रों को असमय में इस रत्न के छिन जाने का दुःख न झेलना पड़ता।

कोई ३ वर्ष हुए, वे अपनी चिकित्सा के लिए बम्बई के सुप्रसिद्ध मधुमेह-चिकित्सक डाक्टर बार्क जी० पण्डितजी के यहाँ आये थे। मुझे उनका यही अन्तिम दर्शन था। उनके जाने के बाद मैंने डा० पण्डित साहब से पूछा, तो उन्होंने यही बताया कि दवा तो अपना काम करती है; किन्तु बाबू साहब इस रोग में जितना विश्राम लेना चाहिए, नहीं लेते और काम के लिए इधर-उधर लंबी यात्राएँ भी करते रहते हैं। इतना काम करके स्वस्थ आदमी भी थक जाया करता है, फिर इस रोग में रोगी का थक जाना बहुत घातक है। वही हुआ। काम करते-करते कर्मयोगी चला गया।

श्रद्धा के दो पुष्प

श्री कमलाशङ्कर सिंह

पटल बाबू का पार्थिव शरीर अब हमारे साथ नहीं रहा। उनका वरद हस्त हमारे कन्धों पर थपकियाँ नहीं दे सकेगा। उनके सहज स्नेह की शीतल छाया अब लुप्त हो गई। आज हम उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे हैं। कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि क्या, कैसे, कुछ कहूँ? कितनी ही बिखरी-सी बातें याद आ रही हैं; कितने ही प्रसंग एक-एक करके आँखों के आगे नाच रहे हैं। उन सबको मैं कैसे झिलमिलाते शब्दों में उतारूँ? उनका गोरा रंग, मुख पर शान्ति और दृढ़ता की छाप, नेत्रों में दूर तक देखनेवाली भेदक दृष्टि, व्यवहार में सरलता और गति, स्वच्छ मन तथा गहरी सहानुभूति का भाव, पटल बाबू के सजीव व्यक्तित्व का चित्र क्या कभी आँखों के सामने से हट सकेगा?

कुछ चित्रों के सम्बन्ध में पटल बाबू ने मुझे प्रयाग बुलाया था। यहाँ आकर मैं उनके अतिथि-गृह में ठहरा। आलस्य से मुझे प्रीति है, यह भी पटल बाबू सुन चुके थे। जाड़े के दिन थे। मैं आलस्य के साथ रजाई में लिपटा हुआ पड़ा था। गर्मी हो चाहे बरसात, मैं सुबह आठ बजे के पहले उठना उचित नहीं समझता। आलस्य के साथ पड़े रहने में ही मुझे सुख और शान्ति मिलती है। शरद ऋतु में तो कभी-कभी नौ-दस बज जाते हैं और मैं पलंग पर पड़े-पड़े ही अपने मित्रों को अपने आलस्य का परिचय दिया करता हूँ। ठीक साढ़े पाँच बजे प्रातः पटल बाबू अतिथिगृह में प्रवेश करते ही मुझसे पूछ बैठे—'कहो भाई, अच्छी तरह सोए? नींद लगी या नहीं?'

मैं बड़े अजमंजस में पड़ गया। क्या उत्तर देता? मेरे सोने का असली समय तो वही था पर आदर की भावना से मेरा सिर झुक गया। मैंने प्रणाम किया और आलस्य को दूरकर शीघ्र हाथ-मुँह धोकर सचेत हो गया। आलस्य पटल बाबू से दूर रहता, और जब तक वह मेरे सामने रहते, मैं भी उससे विरक्त रहता। पटल बाबू से काम करने की बड़ी प्रेरणा मिलती। सुबह वहीं पटल बाबू चाय मँगा लेते और मेरे साथ चाय पीते-पीते ही चित्र-सम्बन्धी अनेक आवश्यक बातें कर लेते।

मैं उनके अतिथिगृह में तीन-चार मास तक ठहरा। जब तक मैं वहाँ रहा, यही प्रतिदिन का नियम था। पटल बाबू अपने अतिथियों के आराम की छोटी-छोटी बातों के प्रति भी सजग रहते। जितना ध्यान वह मेरे आराम का रखते थे, मुझे बड़ा अटपटा लगता था। एक रात मैं घूमकर देर से लौटा। कोठी के फाटक बन्द हो गए थे। चौकीदार को फाटक खोलने के लिए मैंने आवाज दी। फाटक खुलने पर भी उनका कुत्ता एक ऐसा जागरूक प्रहरी था कि उसके कारण अतिथिगृह तक मेरा पहुँचना कठिन हो गया। पटल बाबू नीचे ही बरामदे की कोठरी में कुर्सी पर बैठे कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। वह नित्य ही ११-१२ बजे रात तक एक विद्यार्थी की भाँति अध्ययन किया करते थे। संकोचवश मैं नहीं चाहता था कि पटल बाबू यह जान लें कि मैं रात में घूमकर ११-१२ बजे लौट रहा हूँ। इसलिए उनके कुत्ते के शोर से मुझे अधिक घबराहट थी।

अतिथि-गृह में पैर रखते ही नौकर ने भोजन के लिए पूछा। भोजन-गृह जाते समय उस कोठरी का दरवाजा बिलकुल सामने पड़ता है, जहाँ पर पटल बाबू पढ़ रहे थे। इसलिए मैंने नौकर से झूठ कह दिया कि मैंने भोजन कर लिया है। मेरे आश्चर्य का ठिकाना उस समय नहीं रहा, जब नित्य की भाँति पटल बाबू सुबह मिले और नींद के सम्बन्ध में पूछने के बाद ही बोल उठे कि कल रात में भोजन क्यों नहीं किया? मैं कुछ लज्जित हुआ और फिर झूठ बोला कि भोजन कल मैंने लीडर प्रेस में एक मित्र के यहाँ किया था।

उस दिन से जब कभी मैं रात्रि में घूमकर देर से लौटा, मैंने अपना भोजन सदैव अपने कमरे में सुरक्षित रखा हुआ पाया। ऐसे अनुभवी व्यक्ति की सूझ-बूझ की जितनी भी सराहना की जाय, थोड़ी है।

पटल बाबू अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को मूल्यवान् समझते थे। उन्हें दूसरे के समय का भी अधिक ध्यान रहता था। एक बार मुझे प्रेस में एक अधिकारी ने बुला भेजा। मैं जाकर पटल बाबू से जब मिला, तो उन्होंने उस अधिकारी को समझाया कि इस प्रकार के छोटे कामों के लिए कलाकारों को नहीं बुलाना चाहिए। उनके समय की बड़ी कीमत होती है। मुझे मोटर पर शीघ्र वापस भेज दिया। जब कभी उनको किसी आवश्यक कार्य से मुझे बुलाना हो, तो वे मोटर सदैव भेज देते थे। यद्यपि यह बात वह भली भाँति जानते थे कि मैं समय से कोई काम नहीं करता और समय के अधिक बन्धन में रहना मैं पसन्द नहीं करता।

इस प्रकार मैं उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आया और उनकी दिनचर्या और कार्य-शैली को निकट से देखने का मुझे मौका मिला। पटल बाबू प्रातः-काल पाँच बजे से रात में ११-१२ बजे तक काम करते रहते थे। एक पल भी अपनी आयु का उन्होंने व्यर्थ नहीं खोया। अपने व्यापारिक कार्यों से छुट्टी पाते ही पुस्तकें पढ़ने में समय व्यतीत करते। कोठी में ऊपर, जहाँ वह रात्रि में सोते थे, मुझे ले जाकर वह स्थान दिखलाया। एक चौकी पर रेशमी गद्दा पड़ा हुआ था। चौकी के तीन ओर काठ के सुन्दर रैक थे, जिनमें विभिन्न विषयों की पुस्तकें रखी हुई थीं। तख्त पर टेली-फोन और घड़ी भी थी। ११ बजे रात्रि में वह नीचे से ऊपर सोने के लिए जाते थे और ऊपर जाकर इसी चौकी पर लेटकर पुस्तक पढ़ते-पढ़ते सो जाते थे।

पढ़ने के अतिरिक्त कला के प्रति भी उनकी विशेष रुचि थी। मानसिक आह्लाद के लिए अपने कमरों-बरामदों को सुन्दर चित्रों से सँवार-कर वह रखते थे। उनकी सौन्दर्य-भावना बहुत ही विकसित थी। चित्रकारों के चित्रों को वह बड़े चाव से देखते और उनको देखते-देखते तन्मय हो जाते थे। विदेशों में उन्होंने अनेक 'आर्ट-गैलरियाँ' देखीं और चित्रकारों से भेंट की। यद्यपि वह कूँची और रंगों से कोई चित्र नहीं बना सकते थे, पर चित्रकला को वह खूब समझते थे। एक रंग के समीप दूसरे रंग को किस प्रकार स्नेह या सम्मान से प्रकट करना चाहिए, यह बात वह जानते थे। साधारण से साधारण चित्रकारों का भी वह हृदय से आदर करते थे।

उत्तरप्रदेश के चित्रकारों के प्रति उनकी सहानुभूति विशेषरूप से उल्लेखनीय है। उनके हृदय में किसी के लिए भेदभाव नहीं था। कोई छोटा हो या बड़ा, अपना हो या पराया, स्वजातीय हो या विजातीय, सभी समान रूप से उनके प्रेम

के भाजन थे और सभी के कल्याण के लिए वे प्रयत्नशील रहते थे। चित्रकारों के संगठन की चर्चा वह प्रायः करते और उनको मिल-जुलकर काम करने की सलाह देते थे। अच्छे चित्रों के प्रकाशन के लिए वे बराबर तैयार रहते थे। प्रसिद्ध चित्रकार श्री हल्दार और श्री मजूमदार के चित्रों की चित्रावलियाँ उन्होंने प्रकाशित कीं और उनकी इच्छा थी कि सांस्कृतिक ग्रन्थों पर विशेष रूप से चित्रावलियाँ तैयार की जायँ। कादम्बरी, मेघदूत, शकुन्तला आदि पर चित्रावली तैयार करने के लिए उन्होंने मुझे आज्ञा दी थी। उनका कहना था कि एक अच्छा चित्र हजारों की संख्या में छापकर लोक-सुलभ बनाया जा सकता है। बहुत कम ऐसे लोग हैं, जिन्हें मूल चित्रों के संग्रह में रुचि है, इसलिए कला के प्रचार के लिए चित्रों का प्रकाशन आवश्यक है। जब कोई प्रकाशक इस प्रकार साहित्य या कला की श्रेष्ठ कृति प्रकाशित करता है, तो उसे उचित गर्व का अनुभव होता है।

चित्रों के निर्माण के लिए पटल बाबू की एक योजना थी। चित्रकारों को चित्र बनाने के लिए उत्साहित करने और उनके चित्रों की बिक्री तथा प्रचार के लिए एक समिति बना दी जाती। चित्रों के तैयार होते ही यह समिति चित्रों का उचित मूल्य निर्धारित कर आधी कीमत चित्रकारों को तत्काल दे देती, जिससे उनकी चित्रकारी में आर्थिक रुकावट न आने पाती। चित्रों का प्रचार किया जाय और उनकी बिक्री के बाद आवश्यक खर्च के लिए आय से कुछ प्रतिशत काटकर बाकी सब मूल्य चित्रकारों को दे दिया जाय।

चित्रों के प्रदर्शन के लिए सिविल लाइंस, प्रयाग में एक बड़ा कमरा देने का उनका विचार था। इस प्रदर्शन-कक्ष का उद्घाटन प्रसिद्ध कलाकार नन्दलाल बोस द्वारा कराने की बात चल रही थी। चित्रकला को अत्यधिक लोक-प्रिय बनाने के लिए उनका विचार था कि विवाह तथा विशेष शुभ अवसरों और उत्सवों पर चित्र, चित्रावली इत्यादि भेंट करने की प्रथा चलाई जावे।

देशी आकृति के शय्यासन, कुर्सियाँ, मिट्टी के खिलौनों तथा साड़ियों के किनारों में भारतीय अलंकरण होने की बात वह कहते थे। किसी समय सारा देश अपने ही रूपों और अलंकरणों से भरा हुआ था। विदेशी संस्कृति ने आकर उन्हें चाट लिया। शनैः शनैः फिर उनका उद्धार करना होगा।

चित्रकारों को सामूहिक रूप से सहायता करने की लगन उनमें थी ही, व्यक्तिगत रूप से भी वे चित्रकारों की सहायता बराबर किया करते थे। जब तक वे हमारे बीच थे, मैंने बराबर यही अनुभव किया कि मेरे काम में यदि पैसे के कारण कभी रुकावट पड़ी, तो पटल बाबू तो हैं ही। पटल बाबू के कोष में 'नहीं' शब्द था ही नहीं। यहाँ तक कि एक बार मैंने उनसे कहा—"पटल बाबू! बिना माडेल के आधार के हम लोग जो रेखाएँ खींचते हैं, वे भले ही भावपूर्ण अधिक हों; किन्तु शारीरिक ज्ञान तो अपूर्ण ही रहता है।" पटल बाबू यह सुनते ही बोल उठे—"माडेल का प्रयोग तुम अवश्य करो। यदि सुलभ हो, तो उसका सारा खर्च मैं दूँगा।"

दुर्गा-पूजा के अवसर पर दशमी के दिन मैंने एक चित्र उनको भेंट किया। उस चित्र को देखते ही वह विभोर हो गए और उसे अपनी प्रिय संकलित वस्तुओं की बीच उन्होंने रखा।

मैं नहीं जानता कि इस समय हमारे प्रान्त में और भी कोई ऐसा कलाप्रेमी व्यक्ति है, जो इस प्रकार कलाकारों का आदर करता हो और उनकी कृतियों को लोकप्रिय बनाने की लगन उसमें हो।

प्रचुर प्रतिभा-सम्पन्न श्री हरिकेशव घोष

श्री हीरालाल खन्ना, एम० एस-सी०

मैं जब कायस्थ पाठशाला, इलाहाबाद की इण्टरमीजिएट कक्षा में पढ़ता था, उस समय 'हिन्दुस्तान-रिव्यू' में अंतिम प्रूफ पास करने का काम मुझको मिल गया था। उसके द्वारा मुझे मास में १० रु० से लेकर १५ रु० तक आय हो जाती थी। यह काम मेरे सहपाठी श्री अखौरी भोलानाथजी—आत्मीय स्वर्गीय डॉ० सच्चिदानन्द सिन्हा—की कृपा से मिल गया था। अधिक आर्थिक आवश्यकता के कारण उक्त डॉ० साहब का एक सिफारशी पत्र लेकर में इण्डियन प्रेस के मालिक तथा व्यवस्थापक स्वर्गीय श्री चिंतामणि घोष के निवास-स्थान पर सकुचाता हुआ पहुँचा। द्वार पर एक आठ-नौ वर्ष के सुन्दर बालक से मेरी भेंट हुई। थोड़ी बातचीत होने के उपरान्त उस हँसमुख बालक ने एक अधेड़ कार्यव्यस्त महानुभाव के सम्मुख मुझे बड़े प्रेम से पहुँचा दिया। वे सज्जन पत्रों के ढेर को तरतीब में रख रहे थे। मैं लगभग १० मिनट तक चुपचाप उनके सामने बैठा रहा, तब कहीं उन्होंने मेरी ओर ध्यान दिया और मेरे आने का प्रयोजन जानना चाहा।

मैंने बड़े संकोच से सिनहा साहब का पत्र उनको दिया। उन्होंने पत्र पढ़कर पूछा—"तुम 'हिन्दुस्तान-रिव्यू' के प्रूफ पास किया करते हो ?"

मैंने उत्तर दिया—"जी हाँ। मैं कायस्थ पाठशाला का छात्र हूँ और 'हिन्दुस्तान-रिव्यू' का प्रूफ पास किया करता हूँ। मुझे दो आने पन्ने के हिसाब से आय हो जाती है। बड़ी कृपा हो, यदि आप भी मुझसे कुछ इसी प्रकार का कार्य ले सकें।"

उन्होंने मुझसे कुछ और पूछताछ की और फिर कभी आने को कहा।

यह बालक ही हमारे चरित्र-नायक पटल-बाबू हैं। उन्हीं की कृपा से मुझे आगे चलकर इण्डियन प्रेस से भी काम मिलने लगा। इस प्रकार प्रेस से मेरे सम्पर्क का प्रारम्भ हुआ। फिर तो आगे चलकर यह सम्पर्क घनिष्ठ से घनिष्ठतर होता गया।

पहले मैं कायस्थ पाठशाला का और फिर म्योर कालेज का छात्र रहा। वहाँ से बी० एस्-सी० पास करने के बाद सी० ए० वी० हाई-स्कूल, इलाहाबाद में विज्ञान का अध्यापक हो गया। ऐसा बिरला ही कोई सप्ताह होता था, जब मेरा पटल बाबू से साक्षात् न होता हो। अध्यापन-कार्य करते हुए जब मैं एम० एस्-सी० पास हो गया, तब सेण्ट जांस कालेज, आगरा में प्रोफेसर होकर चला गया। मैं सन् १९२२ में बोर्ड ऑफ हाईस्कूल एण्ड इण्टरमीजिएट एजुकेशन का सदस्य हुआ। उसकी कमिटियों की बैठकों में मेरा इलाहाबाद आना-जाना बराबर होता रहा और पटल बाबू के सम्पर्क में आने का अधिक अवसर मिला।

सन् १९२३ में उन्होंने मुझसे एक अंकगणित की पुस्तक लिखने का आग्रह किया। वे उसका प्रकाशन करना चाहते थे। स्वार्थ से प्रेरित होकर मैं इसके लिए तैयार हो गया; किन्तु निकट भविष्य की एक घटना ने मुझे उक्त पुस्तक लिखने से रोक दिया। लखनऊ डिवीजन के स्कूल-इन्सपेक्टर श्रीयुत वैदरल भूगोल के प्रगाढ़ पंडित थे। उनकी विद्वत्ता सर्वमान्य

थी। बोर्ड की अगली बैठक में 'केरीक्यूलम कमिटी' के संयोजक-पद से उनका त्यागपत्र पेश हुआ। उसमें उन्होंने संकेत किया कि वे भूगोल पर एक पुस्तक लिखना चाहते हैं, अतः उस समिति का सदस्य रहना, जो उस पुस्तक पर विचारकर निर्णय करेगी, उनके लिए उचित न होगा। इस अनुकरणीय उदाहरण ने मुझे बहुत प्रभावित किया और मैंने निश्चय कर लिया कि या तो मैं बोर्ड की सदस्यता करूँ या पुस्तकें लिखूँ। जब मैंने अपना यह विचार पटल बाबू पर प्रकट किया, तो उन्होंने इसका स्वागत किया। फिर उन्होंने मुझसे कभी कोई पुस्तक लिखने को नहीं कहा। इस घटना का उल्लेख उन्होंने अपने उस लेख में किया है, जो मुझे भेंट किए गए अभिनंदन-ग्रंथ में मुद्रित है।

पटल बाबू का मेरा साथ अनेक क्षेत्रों में रहा है। मैं प्रायः इलाहाबाद में उन्हीं के यहाँ ठहरता रहा हूँ। इस प्रकार भिन्न-भिन्न दृष्टि-कोणों से मेरा उनका घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। कठिन से कठिन गुत्थियों को शीघ्र से शीघ्र सुलझाने में उनका ऐसा सिद्धहस्त मेरी जान में तो नहीं है। किसी समस्या की गहराई में वे तुरन्त पहुँच जाते थे और उसके सुलझाने का ऐसा सुगम मार्ग निकाल लेते थे कि उनके साथी और मित्र चकित हो जाते थे।

पटल बाबू के सदृश उदार, क्रियाशील और सच्चे मित्र का मिलना असम्भव है। उनके साथ बैठना, उनसे बातें करना और उनकी कार्य-कुशलता को देखना एक शिक्षा थी। वे जिस कार्य में हाथ डालते थे, उसकी सफलता के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते थे। वे अपने कार्य-क्षेत्र में छोटे से छोटे ब्योरे पर पूर्णतया विज्ञ रहते थे। इसके उदाहरण-स्वरूप मैं एक घटना का उल्लेख कर देना उचित समझता हूँ।

सन् १९३८ में वे मेरे यहाँ कानपुर में ठहरे हुए थे। मेरा पुत्र, जो प्रयाग विश्वविद्यालय का स्नातक हो चुका था, व्यवसाय करना चाहता था। मैंने पटल बाबू से अनुरोध किया कि वे नंदलाल को कुछ उपदेश दें, जिसके आधार पर वह व्यापार में कुछ सफलता प्राप्त कर सके। उन्होंने बड़े प्रेम से उससे कहा—"नंदो, यदि तुमको अंकों से प्रेम हो जाय, तो तुम किसी काम में असफल नहीं हो सकते।"

मैंने कहा—"पटल बाबू, मैं इसका अर्थ नहीं समझा।"

उसी समय अपने सूटकेस से एक सुन्दर जिल्दवाली कापी निकालकर उन्होंने कहा—"अब आप मुझसे मेरे किसी काम के पूर्ण ब्योरे को पूछिए। मैं आपको निश्चित उत्तर दूँगा। मैं यह भी बतला सकूँगा कि मेरे अमुक मकान में इस महीने में कितनी बिजली खर्च हुई है। मैं समय-समय पर इस कापी के पन्ने उलट-पुलटकर देखा करता हूँ।"

मैं अनायास पूछ बैठा—"डाक्टर ईश्वरी प्रसाद के इतिहास पर आपने अब तक कितनी रायल्टी दी है?"

उनके उत्तर से मैं अवाक् रह गया।

उनमें एक विशिष्ट गुण यह भी था कि उनके संसर्ग में यदि कोई एक बार आया, तो उन्होंने जीवन-पर्यन्त बड़े प्रेम और उदारता से उसके संबंध को निबाहा। बिरला ही कोई होगा, जो उनके पास गया हो और आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने उसकी सहायता न की हो।

कार्य में व्यस्त रहना ही उनका एक व्यसन था। मित्रगण जब-जब उनसे इतना अधिक

काम न करने का अनुरोध करते, तो वे हँसकर उत्तर देते थे—"मैं समय कैसे काटूँ?" परिमाण से अधिक काम करते रहने से वे कभी-कभी अस्वस्थ हो जाते थे। किन्तु स्वस्थ होते ही वे संबंधियों और मित्रों के मना करते रहने पर भी फिर कार्य करने में तत्पर हो जाते थे।

स्वर्गीय प्रो० सुरेन्द्रनाथ देव पटल बाबू के श्वशुर और मेरे गुरु थे। वे प्रायः उनको समझाया करते थे कि "अति अच्छी नहीं होती।" किन्तु वे तो उसको हँसकर टाल दिया करते थे। प्रो० देव को हम लोग प्रेम से छोटे बाबू कहकर पुकारा करते थे। वे और मैं एक बार कलकत्ते में एक साथ एक ही कमरे में ठहरे हुए थे। उन दिनों पटल बाबू बीमार थे। उन्होंने मुझसे कहा—"पटल तुम्हारा मित्र है और तुम्हारा आदर करता है। तुम उसको समझाओ कि क्षमता से अधिक काम न किया करे।"

रोना इसी बात का है कि बीमारी की अवस्था में तो वे हम लोगों के आग्रह पर अवश्य आश्वासन दे देते थे कि अब अधिक परिश्रम न करेंगे; किन्तु स्वस्थ हो जाने पर उस बात पर विशेष ध्यान न देकर अधिक से अधिक कार्य में व्यस्त हो जाते थे। इन सब बातों का ध्यान कर दिल बैठ जाता है और मुँह से एक आह निकलती है।

संकट-मोचन पटल बाबू

पं० गौरीशंकर मिश्र, अध्यक्ष, जिला बोर्ड, गोरखपुर

पटल बाबू आज हमारे बीच में नहीं हैं। परन्तु उनकी असीम उदारता, मुसकराती सहानुभूति, अदृश्य दानशीलता और स्तुत्य मानवता, रह-रहकर हमारे नेत्रों में उनका जीता-जागता, हँसता चित्र खड़ा कर देती है।

हमारी और पटल बाबू की भेंट, हमारे मित्र पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी द्वारा सन् १९२७ में हुई थी। उस समय मैं प्रयाग में ही था। सन् १९३१ में अपने स्वर्गीय पूज्य पिता को खोकर प्रयाग से मुझे गोरखपुर आ जाना पड़ा। घर के मुखिया के स्वर्गवास से परिवार के निश्चिन्त युवक कैसे भयंकर शून्य में पड़कर, सर्वांगशून्यता का पग-पग पर अनुभव करते हैं, मुझे आज याद आ रहा है।

श्री पटल बाबू के प्रोत्साहन से मैंने दर्जनों पुस्तकें लिखीं। सन् १९४१ में मैं अस्वस्थता का शिकार हुआ, मेरी पारिवारिक कठिनाइयों की लड़ी-सी बँध गई। मुझे चक्कर की बीमारी थी। उसी बीमारी में घरेलू चक्कर भी मुझे भयंकर रूप से चकराने लगे। ऐसी परिस्थिति में श्री पटल बाबू ने मेरा हाथ बँटाया। श्री पटल बाबू मेरी पुस्तकें छपवाकर मेरी आर्थिक कठिनाइयों को हल करते। मुझे खूब स्मरण है, एक बार कुछ छपाई के रुपए मैं दे नहीं पाया। मुझसे रुपया माँगा गया। मैंने तत्काल रुपया देने में असमर्थता प्रकट की। उन्होंने झट उस तमाम रुपए को चुकता मानकर हिसाब बना दिया। हमारे वह संकट-मोचन मित्र थे, और हमारे ही क्या, सैकड़ों की वह गुप्त सहायता करते थे।

हिन्दी-साहित्य के वह अनुपमेय सेवक थे। हजारों को उन्होंने हिन्दी की ओर खींचा और साहित्यिक बनाया। देश के वह प्रगाढ़ भक्त थे। देश की उन्नति में वह हर क्षेत्र में सक्रिय भाग लेकर संलग्न रहते थे। आपदग्रस्तों को उबारना उनका मनोरंजन था। इण्डियन प्रेस के वह प्राण थे। उनमें ऐसा आकर्षण था कि विरोधियों तक को उनके समक्ष झुका देता था।

"जाकी यहाँ चाहना है, वाकी वहाँ चाहना"

पं० रूपनारायण पाण्डेय, भूतपूर्व 'माधुरी'-सम्पादक

कुछ ऐसे असाधारण या लोकोत्तर पुरुष होते हैं, जिनके सम्पर्क में आनेवाला व्यक्ति बरबस उनकी ओर आकृष्ट हो जाता है। उनकी कुछ विशेषताएँ अथवा सद्गुण ही इसका कारण हुआ करते हैं। हमारे स्वर्गीय पटल बाबू ऐसे ही नर-रत्न थे। उनका अभाव उनके सम्पर्क में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए आत्मीय-वियोग के समान हृदय-विदारक शोकप्रद दुर्घटना है, इसमें सन्देह नहीं। उनके सद्गुणों का सम्पूर्ण चित्र, उनका स्मरण करते ही, आँखों के आगे अंकित हो जाता है और हृदय से एक आह निकल पड़ती है। इस स्वार्थपरायणता और दंभ के युग में उनके समान उदार, सभाचतुर, प्रत्युत्पन्नमति, अनोखी सूझ-बूझवाला, क्षमाशील, मधुरभाषी, परोपकारपरायण, निरभिमान किंतु स्वाभिमानी, स्वावलम्बी, सद्व्यवहारनिपुण पुरुष बहुत कम देख पड़ते हैं।

उनमें उन्नति की अपूर्व लगन थी। उन्होंने इंडियन प्रेस की अभूतपूर्व उन्नति की, अनेक नए उद्योगों की स्थापना की। भारत के प्रत्येक बड़े नगर में ब्रांच-बुकडिपो खोले। उनमें हिन्दी का प्रेम, हिन्दी की उन्नति और प्रचार-प्रसार की आकांक्षा उतनी ही थी, जितना अपनी मातृ-भाषा बँगला का प्रेम और उसके प्रसार-प्रचार की अभिलाषा। यह प्रवृत्ति उनमें पैतृक थी। उन्होंने अपने पिता श्री चिन्तामणि घोष के समान ही, बल्कि उनसे भी अधिक, हिन्दी के उत्तमोत्तम ग्रंथ प्रकाशित किए, हिन्दी के लेखकों को सम्मानित किया, उनका उत्साह बढ़ाया, हिन्दी के सेवकों को आड़े वक्त पर आर्थिक सहायता दी। फिर भला, हिंदी जगत् उनको कैसे जल्दी भुला सकता है?

मेरा भी पटल बाबू से पुराना सम्बन्ध था। प्रातःस्मरणीय श्री चिन्तामणि घोष महोदय के समय में मैंने प्रयाग में रहकर कई वर्ष तक इंडियन प्रेस की सेवा की थी। मेरे द्वारा अनूदित अनेक पुस्तकें इंडियन प्रेस से प्रकाशित हुई हैं। यह सिलसिला—मेरे लखनऊ चले आने पर भी—बराबर जारी रहा। पटल बाबू बराबर मेरा खयाल रखते थे। चिन्तामणि बाबू ने मुझे संस्कृत महाभारत का हिन्दी में अनुवाद करने का काम सौंपा था। कई वर्षों में मैं केवल १२ पर्वों का अनुवाद कर पाया। इसी अवसर में "माधुरी" के सम्पादन का कार्यभार ग्रहण करने के कारण अवकाश का अभाव होने से, साथ ही महाभारत के नीरस युद्ध का वर्णन लगातार आने के कारण, मेरा जी ऊब गया और अनुवाद का काम आगे न बढ़ सका। अन्त को मैंने जाकर पटल बाबू से सब हाल कहकर प्रार्थना की कि यदि शेष पर्वों का अनुवाद किसी और से करा लिया जाय, तो बड़ी कृपा होगी। अब पटल बाबू की महानुभावता और सौजन्य देखिए। मेरे एक काम से इनकार का खयाल न करके उन्होंने मेरी प्रार्थना ही नहीं स्वीकार कर ली, प्रत्युत् उसी दिन दूसरा, मेरी रुचि का काम (शरत्ग्रंथावली का अनुवाद) करने को दे दिया।

पटल बाबू के बड़े एहसान मेरे ऊपर हैं। मैं उनका परम कृतज्ञ हूँ। कई बार आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने मुझे कई-कई सौ रुपए पेशगी देकर मेरी सहायता की। काम में यदा-कदा

विलम्ब होने पर भी कभी उन्होंने मुझे उपालंभ नहीं दिया। मैं जब उनसे मिलने जाता था, तब लाख कार्यव्यस्त होने पर भी वह मुझे फौरन अपने पास बुला लेते थे और एक आत्मीय की तरह कुशल-क्षेम पूछते थे।

एक बार उन्होंने एक पुस्तक के बारे में मेरी सम्मति पूछी। पुस्तक प्रकाशनार्थ आई थी और एक प्रसिद्ध लेखक की थी। वास्तव में वह एक साधारण कोटि की पुस्तक थी—"कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा; भानुमती ने कुनबा जोड़ा" का प्रत्यक्ष नमूना थी।

मैं बड़े असमंजस में पड़ा। क्या कहूँ? पटल बाबू कुशाग्रबुद्धि थे। मेरे असमंजस को ताड़ गए। बोले—"मैं आपसे पुस्तक के बारे में पूछता हूँ, लेखक के बारे में नहीं। आप-निस्संकोच होकर सम्मति दीजिए। मैंने कई लोगों से पूछा, पर उन्होंने लेखक का नाम देखकर सम्मति दी, पुस्तक को देखकर नहीं। मेरा खयाल कुछ ऐसा ही है। इसीसे अब आप-से पूछ रहा हूँ।" तब मैंने पटल बाबू से स्पष्ट और सत्य बात कह दी। पटल बाबू बहुत प्रसन्न हुए। बोले—"तब तो इस पुस्तक के बारे में मेरा खयाल सही निकला। पुस्तक केवल टके कमाने के लिए तैयार की गई है।"

इधर कई वर्षों से पटल बाबू से मेरी भेंट नहीं हुई थी; पर वह मुझे भूले नहीं थे। बीमारी की दशा में भी गत दिसम्बर में उनका एक पत्र मुझे मिला था, जिसमें उन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी कि कलकत्ते की शाखा इंडियन पब्लिशिंग हाउस के लिए कुछ अनुवाद वह कराना चाहते हैं। यही पत्र मेरे लिए उनका अन्तिम स्मारक है। शोक है कि फिर वह मेरे पत्र का उत्तर देने के पहले ही इस मर्त्यलोक को छोड़ गये।

किसी ने सच कहा है—

"जाकी यहाँ चाह ना है, वाकी वहाँ चाह ना है;
जाकी यहाँ चाहना है, वाकी वहाँ चाहना।"

किन्तु यह सोचकर धैर्य धारण करना ही पड़ता है कि काल से किसी का वश नहीं चलता—काल को कोई टाल नहीं सकता। भगवान् राम और भगवान् कृष्ण को भी देहत्याग करना ही पड़ा।

पटल बाबू भी एक विभूति थे। आजन्म कर्त्तव्य का पालन कर परमपिता की गोद में पहुँच गये, उस महाज्योति में लीन हो गये। उनकी पांचभौतिक देह अवश्य नहीं रही; किन्तु उनकी शक्ति का नाश नहीं हो सकता। मुझे विश्वास है, उनकी वह अदम्य शक्ति उनके भाइयों और वंशधरों में परिव्याप्त होकर उनके प्रिय प्रतिष्ठानों और अनुष्ठानों की उत्तरोत्तर उन्नति करती रहेगी।



पटल बाबू की कीर्त्तिकाया

पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', बी० ए०

पटल बाबू इंडियन प्रेस के प्राण थे। जो दशा प्राण के चले जाने पर शरीर की होती है, वही उनके वियोग में इंडियन प्रेस की है। इंडियन प्रेस से भी अधिक शोचनीय अवस्था तो उस विशाल परिवार की है, जीवन-समुद्र में जिसकी नाव खेनेवाले वे कुशल नाविक थे। सबको असहाय छोड़कर, सबको रुलाकर, निष्ठुरता के प्रति नवीन प्रणय बढ़ाकर आज वे न जाने कहाँ चले गये।

मैंने अगस्त सन् १९२५ में साहित्यिक परामर्शदाता के रूप में इंडियन प्रेस में प्रवेश किया था। सन् १९३० के मार्च मास तक मैं इस पद पर काम करता रहा। इस अवधि के भीतर पटल बाबू की सहृदयता, सज्जनता, उदारता, कार्यकुशलता एवं सर्वप्रियता से परिचित होने के अनेक अवसर मेरे सामने आये। उनकी सम्पूर्ण कार्यावली को दृष्टि के सामने रखकर आज यह मुक्त कंठ से कहा जा सकता है कि एकमात्र अपनी ईमानदारी, सच्चाई, परिश्रमशीलता आदि के आधार पर इंडियन प्रेस जैसी बड़ी संस्था खड़ी कर लेनेवाले स्वर्गीय श्री चिन्तामणि घोष जैसे योग्य पिता के वे योग्य पुत्र थे। यदि वे चाहते, तो अपनी उच्च शिक्षा पूर्ण करके उच्च सरकारी पदों पर पहुँच सकते थे; किन्तु प्रेस के लिए उनका यह त्याग मात्र था कि उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया अथवा दूरदर्शी पिता की इच्छाओं के सामने सिर झुका दिया। उनमें शासन करने की बड़ी विलक्षण क्षमता थी और वे अपने व्यवहारों से निरन्तर प्रमाणित करते रहते थे कि वही शासक शासित पर सबसे अधिक टिकाऊ प्रभाव डालने में समर्थ होता है, जिसके मूल में सेवा की भावना और सच्चे प्रेम का निवास रहता है। पिता और अग्रज से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त इंडियन प्रेस के व्यवसाय को उन्होंने अपनी अपूर्व संगठन-शक्ति के द्वारा चरम बिन्दु पर पहुँचा दिया।

पटल बाबू के कार्यकाल में इंडियन प्रेस का कारबार इतना अधिक बढ़ने पर भी उनके असद्व्यवहार का एक भी उदाहरण प्रकाश में न आ सका। कारण यह था कि स्व० चिन्तामणि घोष से उन्हें पैतृक सम्पत्ति के रूप में वह सुसंस्कृति, सुरुचि और उच्चादर्शानुरक्ति प्राप्त थी, जो साहित्यकारों का सम्मान करने के लिए उन्हें निरन्तर प्रेरणा देती रहती थी। द्विवेदीजी के प्रति उनके हृदय में अपार श्रद्धा थी। बाबू पदुमलाल बख्शी और पं० देवीदत्त शुक्ल के प्रति उनमें ममता तक पहुँचनेवाला स्नेह था। उन्हीं के कार्यकाल में द्विवेदीजी को पेंशन दी गई और उन्हीं के सौजन्य और सद्भाव का यह परिणाम है कि पं० देवीदत्त शुक्ल को भी पेंशन मिल रही है। पं० सुमित्रानन्दन पंत की प्रथम काव्य-पुस्तक 'पल्लव' को प्रकाशित करने तथा विविध रूपों में उन्हें प्रोत्साहन देने का श्रेय उन्हीं को मिलेगा। उनके सहयोग से हिंदी के जिन अगणित लेखकों को अपने विकास में सहायता मिली है, उनकी संख्या बहुत बड़ी है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि अपना एक सच्चा सुहृद और सहायक खोकर आज वे भी उसी प्रकार व्यथित और पीड़ित होंगे, जिस प्रकार स्वयं उनके कुटुम्बीजन हैं।

इन पंक्तियों का लेखक पटल बाबू के स्नेह और सद्व्यवहार के लिए स्वयं भी आभारी है और उसके हृदय में उनकी स्मृति जीवन के अंतिम क्षण तक अंकित रहेगी। मेरी जिस परि-स्थिति में अन्य कोई भी प्रकाशक मेरी दुर्बलता से लाभ उठाता, उससे परिचित होकर भी उन्होंने उदारता ही का परिचय दिया तथा मेरे उस वेतन-क्रम को स्वीकार किया, जिसके लिए वे कदापि बाध्य नहीं थे। मैंने अपने जीवन में केवल छः वर्षों तक नौकरी की और इंडियन प्रेस से अलग होने के पहले मैंने उन्हें एक पत्र में लिखा था कि संभवतः भविष्य में मैं कहीं कोई नौकरी नहीं करूँगा, क्योंकि मुझे आशा नहीं है कि आप जैसे उदार और विशाल हृदयवाले व्यक्ति के सहयोग में मुझे कार्य करने का अवसर मिलेगा। और मैंने पिछले तेईस वर्षों तक कहीं कोई नौकरी स्वीकार नहीं की, इसका प्रधान कारण यही है कि हिंदी प्रकाशन के क्षेत्र में अभी तक ऐसी परिस्थितियों का विकास नहीं हुआ है कि पटल बाबू के ढंग के उच्च कोटि के कार्याधिकारी अधिक संख्या में मिल सकें।

पटल बाबू पहले बहुत स्वस्थ थे। मुझे जान पड़ता है कि प्रेस को उत्तरोत्तर प्रगति देने के उत्साह ने उन्हें शक्ति से अधिक परिश्रम करने की प्रेरणा दी और वही परिश्रम उनके रोग का जनक हो गया। इधर अनेक वर्षों से उनके प्रफुल्ल मुख-मण्डल का सहज सौन्दर्य क्षीण होने लगा था। ऐसा होने पर भी वे अधिक परिश्रम करते ही रहते थे। कारण यह था कि प्रेस की परिवर्द्धित और विस्तृत कार्यावली को जितनी बारीकी से वे समझ सकते थे, उतनी बारीकी से समझना अन्य किसी के लिए संभव नहीं था। फलतः डाक्टरों के मना करने पर भी वे आवश्यक पथ-प्रदर्शन करने के लोभ का संवरण नहीं कर सकते थे। वह परिश्रम कितना घातक हो गया, उसके लिए पटल बाबू की जीवन-हानि के रूप में आज कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है, इसका अनुभव आज पटल बाबू के वियोग में संतप्त प्रत्येक हृदय को हो रहा है।

पटल बाबू सदा के लिए चले गये; सहज भाव से मुसकराती हुई उनकी आकर्षक मूर्त्ति अब सदैव के लिए आँखों से छिप गई, फिर भी उनकी कीर्त्तिकाया तो अजर और अमर ही रहेगी। उन्होंने इंडियन प्रेस के पूर्वाधिकारियों से गौरवमयी परम्पराएँ प्राप्त कीं; उनके सहारे कार्य करके वे अपूर्व सफलता की ओर अग्रसर हुए। आज जब वे इस संसार में नहीं हैं, हमें इसी से संतोष करना पड़ेगा कि उन पूर्व परम्पराओं के अतिरिक्त वे स्वयं भी परिश्रम, लगन, उत्साह, सत्य व्यवहार आदि की परम्पराएँ छोड़ गये हैं। उनके उत्तराधिकारियों के लिए कार्य उतना कठिन नहीं है, जितना वह पटल बाबू अथवा उनके पूर्ववर्त्ती संचालकों के लिए था। यदि वे उन्हीं के दिखाए हुए मार्ग पर चलेंगे, उनके द्वारा निर्दिष्ट आदर्शों से अपना सम्बन्ध नहीं तोड़ेंगे, तो इंडियन प्रेस के भविष्य को वे और अधिक उज्ज्वल बना सकेंगे, इसमें संदेह नहीं।

***

मैं उन्हें भूल नहीं सकता

प्रिंसपल सद्गुरुशरण अवस्थी, एम० ए०

लोग मिलते हैं और भूल जाते हैं। वस्तुएँ प्राप्त होती हैं और विलीन हो जाती हैं। परन्तु वह व्यक्ति और वह वस्तु धन्य है, जो जाने के बाद भी भुलाए नहीं भूलती।

महत्त्व की परिभाषा उसकी प्रेरणा की व्यापकता है। अधिक से अधिक संख्या के हृदयों में जो राग और उल्लास उत्पन्न करता रहता है, वही मानवता का उदात्त रूप है। वृक्ष की कितनी असंख्य छोटी-बड़ी शिराएँ थीं और वे भूमि के कितने विस्तृत भाग से बिंधी थीं, यह तभी ज्ञात होता है, जब वृक्ष पृथ्वी पर गिरता है। बड़े वृक्ष थके हुए यात्रियों को घनी छाया ही नहीं देते, अधिक से अधिक संख्या में गगन-विहारी पक्षियों को भी प्रश्रय देते हैं और उनके नीड़ों का बोझ भी साधे रहते हैं। बड़प्पन की टीका वाणी का उत्तरदायित्व और लेखनी की कृतज्ञता है। महत्त्व का साक्षात्कार और विभूति का अभिज्ञान अनभूति का शृंगार समझना चाहिए। जिसने स्वर्गीय पटल बाबू का साथ किया है, वह उनके अनेक गुणों को कभी भूल नहीं सकता।

इन पंक्तियों के लेखक का यह दावा तो नहीं है कि पटल बाबू के वह बहुत निकट रहा है; परन्तु उसने उनके अनेक शील-सम्पन्न व्यवहारों को परखा है और उन पर मुग्ध हुआ है। उनका जीवन खुला संस्कार था। उसमें कोई भी झाँक सकता था। उनके समझने में देर नहीं लगती थी, और उन्हें भी परिस्थितियों और व्यक्तियों के ताड़ने में विलम्ब नहीं होता था। उनका ज्ञान इतना पैना, उनकी अभिरुचि इतनी व्यापक, उनका शील इतना सर्वप्रिय, उनका व्यवहार इतना सुलझा हुआ, सम्पर्क इतना मृदुल, नरम, मीठा और सुगंधित था कि कोई विरला ही अभागा होगा, जो उनके प्रति रूखा रह सके। वे विरोध को अवसर नहीं देते थे। किसी में द्वेष के जागरण का अवकाश, उनके चलते हुए, उनमें नहीं मिल सकता था। वे खोकर भी मित्र बनाना जानते थे और मित्र बनाकर वे सब कुछ खो देने के लिए तनिक भी न हिचकते थे।

अपने पैतृक व्यवसाय के अतिरिक्त भी वे न जाने कितने और व्यवसायों में पारंगत थे। जिस काम में वे हाथ डालते थे, उसका महत्त्व और उसकी शोभा बढ़ जाती थी। धनोपार्जन उनके बुद्धि-वैभव का विनोद था। सफलता उनकी व्यवसाय-कला को छूकर धन्य होती थी। अर्थोपार्जन के अनेक शुद्ध उपायों में उनकी बुद्धि साधनों का विस्तार करने में कलात्मक रमणता अनुभव करती थी, धन पर टकटकी लगानेवाले के बोझ से दबती नहीं थी। उनके सब व्यापारों में बड़प्पन की गरिमा थी, अमीरी की ठसक नहीं। मिलते समय की उनकी खुलावट में जाते समय की आत्मीयता सामने दिखाई देती थी।

इंटरमीजिएट बोर्ड में रहकर मैंने बड़े से बड़े, एक से एक धनिक प्रकाशकों को देखा। पुस्तकों को रखवाने के लिए उनकी दीनता भी देखी और विफल होने पर नाना प्रकार के आरोप करते हुए भी सुना। संसार के सभी क्षेत्रों में जो तिकड़म चलता है, उसका व्यवहार भी देखा। परन्तु जो ऊँची व्यवहार-पद्धति मैंने पटल बाबू में देखी, वह अद्वितीय थी। एकांत से एकांत

में उन्होंने मुझसे कभी किसी प्रकाशक अथवा सदस्य के प्रतिकूल कुछ भी नहीं कहा। मेरी कृतियों के वे बड़े पुराने प्रकाशक थे और पाठ्य पुस्तकों को छापकर उन्होंने मुझे पर्याप्त धन भी उपार्जित कराया; परन्तु उन्होंने कभी किसी पुस्तक के लिए मुझसे कोई भी संकेत नहीं किया। यह बड़ी भारी बात है, जब कि मैं उनका इतना आभारी था कि उनकी बात टालना मेरे लिए कठिन था।

प्रायः सभी साहित्यिक मित्र यह जानते हैं कि पटल बाबू अच्छे साहित्य-पारखी थे। किसी भी साहित्यिक कृति को थोड़ा इधर-उधर देखकर वह उसके सम्बन्ध में नितांत उचित धारणा बना लिया करते थे। उसके मर्म को वह खूब समझ लेते थे। सभी साहित्यकारों से उनका परिचय था और सभी की योग्यता को वे समझते थे। उनमें उग्रता के बिना ही नेतृत्व की प्रेरणा थी। उनकी बुद्धि में बहुज्ञता का बोझ न था, परन्तु वे बहुज्ञ थे। लोग कर्त्तव्य-बुद्धि से कार्य करते हैं अथवा जीवन की आवश्यकताओं के लिए कार्य में रत होते हैं; परन्तु पटल बाबू कार्य के एकांत स्वरूप में रमण करना जानते थे, वे उसमें आनन्द अनुभव करते थे।

सार्वजनिक जीवन को व्यष्टि में घुला-मिला देना और व्यष्टि की महत्त्व-वृद्धि में समष्टि विचरे और समष्टि की समवेत चेतना में व्यष्टि निश्चिंत रहे, यह जो व्यक्तियों और समाज का सोहाग-वर्तन है, यह स्वयं एक कला है। विरलों को ही यह कला आती है। पटल बाबू इसमें सफल प्रयोग थे। मेरे प्रति उनका सौहार्द अक्षुण्ण था। ऐसे व्यक्ति को पाकर मैं धन्य था। मैं उन्हें भूल नहीं सकता।



अक्लान्तकर्मा के कर्म-जीवन का अवसान

पं० ठाकुरदत्त मिश्र

दर्शन-शास्त्र में कर्मयोग का बड़ा माहात्म्य है। योगिराज श्रीकृष्ण ने वीरपुंगव अर्जुन को उपदेश देते हुए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि मनुष्य को किसी भी अवस्था में अकर्मण्य न होना चाहिए। उसे विषयों में अनासक्त होकर तथा फल की कामना से रहित होकर निरन्तर कर्म में संलग्न रहना चाहिए। स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष के जीवन के सम्बन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण की यह वाणी घटित होती है या नहीं और 'गीता' में जिस कर्मयोग का प्रतिपादन किया गया है, उसके सिद्धान्तों के अनुसार उन्हें कर्मयोगी कहा जा सकता है या नहीं, इस विषय का निर्णय करने में तो केवल दर्शन-शास्त्र का वही अधिकारी विद्वान् समर्थ हो सकता है, जिसे स्वर्गीय श्री घोष महोदय के निकटतम सम्पर्क में रहने का अवसर मिला हो, साथ ही जिसमें शास्त्रीय तथा लौकिक दृष्टिकोण से उनके जीवन का विश्लेषण करने की क्षमता हो। लेखक तो अपने परिमित ज्ञान के आधार पर उनके सम्बन्ध में केवल यही निर्णय कर पाया है कि वे एक अक्लान्तकर्मा व्यक्ति थे।

लेखक को इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग के साहित्य-विभाग के एक कर्मचारी के रूप में २२ जून सन् १९२६ ई० को स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष महोदय का आश्रय प्राप्त हुआ था। तब से उनके कर्म-जीवन के अवसान के कुछ मास पूर्व तक इसे उनके सम्पर्क का सुख प्राप्त रहा। प्रायः छब्बीस वर्ष के इस दीर्घ काल में इसे कदाचित् ही कोई ऐसा अवसर मिला होगा, जबकि इसने स्वर्गीय श्री घोष महोदय को क्लान्ति का अनुभव करके अकर्मण्य बैठे देखा हो। इधर कुछ वर्ष से उनका स्वास्थ्य बहुत ही क्षीण हो गया था। चिकित्सकों के मत के अनुसार पूर्ण रूप से आरोग्यता प्राप्त करने के लिए उन्हें व्यावसायिक जीवन से अवकाश ग्रहण कर लेना नितान्त आवश्यक था। परन्तु कर्म का परित्याग करके एक क्षण का भी समय व्यतीत करना उनके लिए बहुत ही कष्टदायक था।

स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष एक असाधारण क्षमता-सम्पन्न व्यक्ति थे। जैसी अनोखी उनकी सूझ थी, वैसी ही अपरिमित उनमें क्रियाशीलता थी। उनमें प्रतिभा और कर्तृत्वशक्ति का एक अपूर्व समन्वय था। यही कारण था, उनमें एक कुशल कलाकार की-सी सृजन-शक्ति के साथ ही एक आदर्श समालोचक की-सी समीक्षा भी समुचित मात्रा में थी। मुद्रण-कला का जहाँ तक सम्बन्ध था, उसके वे विशेषज्ञ थे और कम्पोजिंग से लेकर छपाई तक का कोई भी ऐसा कार्य नहीं था, जिस पर उनका पूर्ण अधिकार न रहा हो। जहाँ तक प्रकाशन-कार्य का सम्बन्ध था, वे केवल एक कुशल और सफल प्रकाशक ही नहीं, वरन् उनमें लेखन और सम्पादन-कला के भी बीज निहित थे।

लेखक को स्वर्गीय श्री घोष महोदय की अधीनता में अनुवादक, सम्पादक तथा प्रूफरीडर के रूप में कार्य करने का अवसर मिला है। इसने 'सरस्वती', 'बालसखा' तथा 'देशदूत' आदि पत्रों के सम्पादकीय विभागों में समय-समय पर कार्य किया है, साथ ही कुछ समय तक इसे हिन्दी-विभाग के प्रधान प्रूफरीडर

के रूप में भी कार्य करना पड़ा है। इन कार्यों की व्यवस्था के सम्बन्ध में इसे जब कभी किसी प्रकार की कठिनाई हुई और इसने वह कठिनाई उनके समक्ष उपस्थित की, तब उन्होंने बहुत ही कुशलतापूर्वक उसको सरल कर दिया।

लेखक को पहले-पहल स्वर्गीय श्री घोष महोदय के निकटतम सम्पर्क में रहकर कार्य करने का अवसर सन् १९२७ ई० के दिसम्बर मास में मिला। उस मास में 'सरस्वती' का एक वार्षिक अंक प्रकाशित होने जा रहा था। प्रेस-सम्बन्धी एक अन्य आवश्यक कार्य में संलग्न रहने के कारण पंडित देवीदत्तजी शुक्ल उस अंक के सम्पादन में सहयोग नहीं प्रदान कर सके। श्री बख्शीजी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था, अतएव वे कार्यालय में नहीं आ पाते थे। इसके परिणामस्वरूप उस अंक की छपाई लेखक की ही देख-रेख में हुई और उसके सम्बन्ध में लेखक को प्रायः प्रतिदिन स्वर्गीय श्री घोष महोदय से परामर्श करना पड़ता था। लेखों तथा चित्रों की सजावट का उनका अपना एक विशेष ढंग था और वह बहुत ही सुरुचिपूर्ण था।

स्वर्गीय श्री घोष महोदय ने प्रान्तीय सरकार के सहयोग से 'हल' नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित किया था, जिसके सम्पादक ठाकुर श्रीनाथसिंहजी थे। इस पत्र के द्वारा ग्रामवासियों की उन्नति से सम्बन्ध रखनेवाले बहुत ही उपयोगी साहित्य का प्रचार हुआ। आपने 'देशदूत' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी प्रकाशित किया था। प्रारम्भ में इस पत्र के सम्पादकीय विभाग में लगभग एक वर्ष तक लेखक को कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ था। इस पत्र की भी सजावट तथा विषयों के संकलन आदि के सम्बन्ध में स्वर्गीय श्री घोष महोदय से सम्पादकों को बहुत अधिक सहायता प्राप्त हुआ करती थी। सम्पादकीय कार्यों में वे अधिकतर रुचि प्रदर्शित किया करते थे या तो पत्र या पत्रिका के विशेषांक के अवसर पर या उसके प्रकाशन के प्रारम्भ में, और उन अवसरों पर जो सुरुचिपूर्ण सुझाव दिया करते थे, वे उनकी सम्पादन-कला की अपार कुशलता तथा लोकरुचि को परखने के अपार ज्ञान के परिचायक होते थे।

स्वर्गीय श्री घोष महोदय की सबसे बड़ी विशेषता थी उनकी असाधारण वाक्-पटुता। मनुष्य को अपनी बातों से प्रभावित करके उसे अपने अनुकूल बना लेने की उनमें अपार क्षमता थी। वे अपने इस कौशल का प्रयोग बहुधा ऐसे अवसरों पर किया करते थे, जब किसी को कोई कार्य करने की अनिच्छा होती थी; किन्तु उससे वह कार्य लेना प्रेस के हित की दृष्टि से अनिवार्य रूप से अपेक्षित होता था।

'लीडर' और 'भारत' के सफल सम्पादक स्वर्गीय पण्डित केशवदेव शर्मा ने एक बार स्वर्गीय घोष महोदय की प्रशंसा करते हुए कहा था—"पटल बाबू में मैंने एक अपूर्व प्रकार की शक्ति देखी। किसी-किसी समय वे कर्मचारियों की भूलों पर बहुत ही उग्र रूप धारण कर लेते हैं और उनकी मुख-मुद्रा बहुत ही क्रोधपूर्ण हो उठती है। परन्तु उसके बाद ही उनके मुख पर मधुरता भी आ जाती है, और जो लोग उनके पास बैठे होते हैं, उनसे वे मुसकरा-मुसकराकर बातें भी करने लगते हैं। इनकी उस मुसकराहट और मधुर वार्त्तालाप में इस बात का आभास तक नहीं मिल पाता कि अभी-अभी ये एक व्यक्ति को उग्र रूप से डाँट रहे थे। उग्रता और मधुरता का यह समन्वय साधारणतः विरले ही लोगों में देखने में आता है।"

स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष का घर का नाम पटल बाबू था। उनका यह नाम इतना अधिक प्रसिद्ध हो गया था कि लिखा-पढ़ी के काम के अतिरिक्त वह पटल बाबू के ही नाम से विख्यात थे। स्वभाव के वे मधुर और कोमल थे। परन्तु जिस प्रकार अग्नि अथवा सूर्य के ताप के कारण स्वभाव से शीतल होने पर भी जल में उष्णता आ जाती है, ठीक उसी प्रकार निरन्तर अनुराग-पूर्वक कार्य में संलग्न रहनेवाले पटल बाबू भी व्यक्ति विशेष की असावधानी के कारण कार्य की धारा में व्याघात पड़ते देख, गर्म हो जाया करते थे।

उनमें दया-दाक्षिण्य आदि सद्‌गुण प्रचुर मात्रा में थे। किसी को दुःखमय अवस्था में देखकर वे दयार्द्र हुए बिना नहीं रहते थे और उसका दुःख दूर करने के सिवा वे यथाशक्ति सहायता भी किया करते थे। परन्तु पटल बाबू के मन में अपने व्यवसाय को उन्नत बनाने की चिन्ता सदा बनी रहती थी। इस प्रकार वे एक उद्योगशील तथा सफल व्यवसायी पहले थे, और कुछ बाद में।

स्वर्गीय पटल बाबू के व्यवसाय के जितने भी क्षेत्र थे, उनके प्रत्येक विभाग के आय-व्यय पर वे निरन्तर विचार करते रहते थे और जिस किसी विभाग में कुछ घाटा मालूम होता, उसे पूरा करके उस विभाग को उन्नतिशील बनाने के लिए वे सभी उचित साधनों का उपयोग किया करते थे। ऐसे अवसरों पर अपने हृदय की कोमल वृत्तियों को दबाकर प्रायः कठोरता का भी व्यवहार करने की आवश्यकता उन्हें पड़ा करती थी।

एक बार 'देशदूत' के सम्पादकीय विभाग में कार्य करते समय लेखक ने स्वर्गीय पटल बाबू से वेतन-वृद्धि के विषय में बातें कीं। पटल बाबू ने अपनी स्वभाव-सुलभ मुसकराहट मुख पर ले आकर उत्तर दिया—"मैं यह अनुभव करता हूँ कि आपको उचित वेतन नहीं मिल रहा है। परन्तु करूँ क्या, 'देशदूत' में पन्द्रह सौ का घाटा हो रहा है।" इस पर लेखक ने कहा—"मैं तो केवल दस रुपया मासिक बढ़ाने को कह रहा हूँ। इस दस रुपए मासिक की रकम को यदि आप घाटे में और जोड़ देंगे, तो उसका अनुपात अधिक नहीं बढ़ेगा और आपका प्रेस जैसे पन्द्रह सौ का घाटा सह लेता है, वैसे ही दस रुपए का घाटा और सह लेगा।"

लेखक की यह बात सुनकर स्वर्गीय पटल बाबू ठहाका मारकर हँस पड़े और बोले—"जनाब, बूंद-बूंद से ही घड़ा भरता है।"

लेखक के विचार से स्वर्गीय पटल बाबू की सर्वतोमुखी औद्योगिक सफलता का यही सबसे बड़ा रहस्य था। वे सदा कौड़ी-कौड़ी का हिसाब अपने मन में बैठाते रहते थे और एक-एक कौड़ी का उपयोग केवल लाभकारी कार्यों में किया करते थे। उनकी सफलता का दूसरा रहस्य था मनुष्य की कर्तृत्व शक्ति को पहचानने की अद्‌भुत क्षमता। वे कर्मचारियों का चुनाव बहुत ही उत्तमतापूर्वक करते थे और कुछ ऐसे व्यक्तियों को सदा ध्यान में रखते थे, जिनसे विशेष अवसरों पर काम लिया जा सकता था।

अपने कार्य-काल में लेखक दो विषयों में स्वर्गीय पटल बाबू को पूर्णरूप से सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं हो सका—एक था काम का हिसाब और दूसरा समय का हिसाब। लेखक कार्यालय में पहुँचने और कार्यालय से जाने में प्रायः स्वतन्त्र इच्छा का उपयोग करने का अभ्यस्त-सा हो गया था। इसके सिवा अपने प्रतिदिन के कार्यों

का क्रमबद्ध विवरण रखने का भी वह कभी अभ्यास नहीं कर सका। इसके विपरीत स्वर्गीय पटल बाबू को कर्मचारियों के दैनिक कार्य-विवरण का बहुत ही ध्यान रहा करता था। इस प्रकार यह लेखक इंडियन प्रेस के लिए कई दृष्टियों से उपयोगी होने पर भी वहाँ यह अपने लिए कोई स्थान नहीं बना पाया। तो भी जब से स्वर्गीय पटल बाबू से लेखक का सम्पर्क स्थापित हुआ, तब से लेखक का सहयोग बराबर पटल बाबू को मिलता रहा और पटल बाबू का सहयोग लेखक को। पटल बाबू ने जब कभी लेखक के सहयोग की आवश्यकता का अनुभव किया, तब पत्र लिखकर या आदमी भेजकर इसे बुलवाया। लेखक को भी जब कभी आर्थिक कठिनाई हुई, तब वह स्वर्गीय पटल बाबू के पास पहुँचा और पटल बाबू ने भी यथासम्भव उसकी कठिनाई हल की।

लेखक से स्वर्गीय पटल बाबू का जो इतने दिनों का सम्पर्क था, उसमें कितनी ही मधुर और कटु स्मृतियाँ जड़ित थीं। परन्तु उन सभी पर विचार करने पर स्वर्गीय पटल बाबू के हृदय की विशालता का ही परिचय मिलता है। ऐसे कितने ही अवसर आए हैं, जब लेखक ने स्वर्गीय पटल बाबू जैसे वैभवशाली व्यक्ति को उनके कार्यालय का एक तुच्छ कर्मचारी होकर भी अप्रिय भाषा में उत्तर दिया था, परन्तु स्वर्गीय पटल बाबू ने उन अवसरों पर उसे हँसकर टाल दिया था और बाद को उनके व्यवहार में इसे कभी किसी प्रकार की कटुता का आभास तक नहीं हुआ।

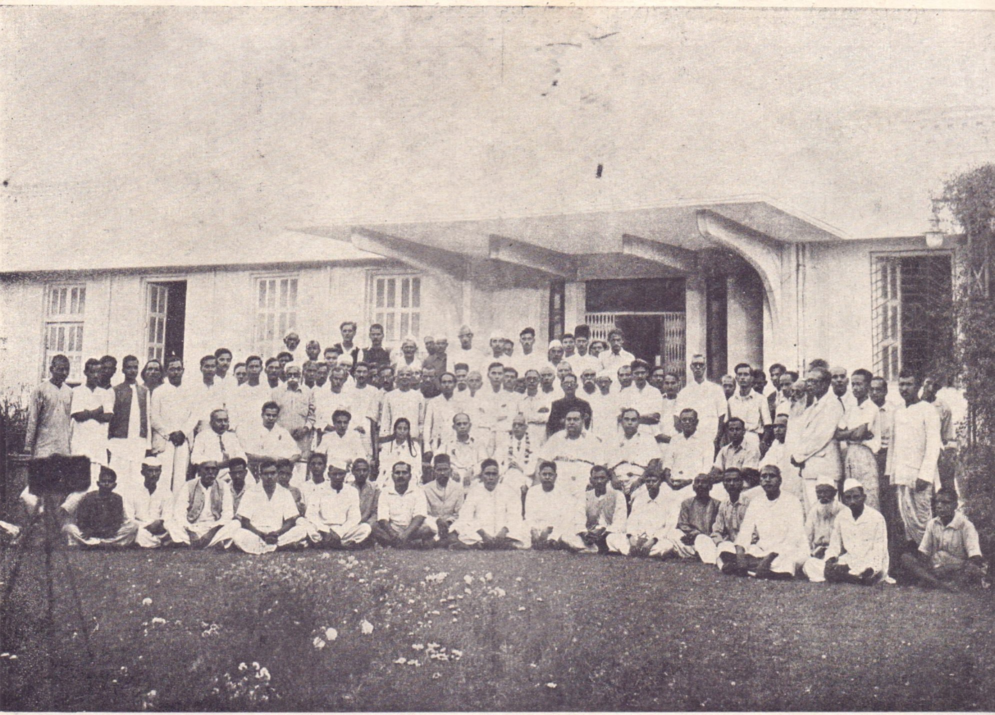
स्वर्गीय पटल बाबू बहुत ही निरभिमान व्यक्ति थे। वे छोटी-से छोटी स्थिति के व्यक्ति के साथ भी मधुरता का व्यवहार करते थे और छोटा से छोटा काम करने में संकोच का अनुभव नहीं करते थे। उन्हें चिढ़ थी केवल अज्ञान और अकर्मण्यता से। वे चाहते थे कि प्रत्येक मनुष्य अधिक से अधिक कार्य-कुशल तथा बुद्धिमान् बने और जिसमें इस प्रकार की प्रवृत्ति का आभास मिलता, उसे वे बहुत अधिक प्रोत्साहन दिया करते थे। उनसे प्रोत्साहन पाकर कितने ही प्रतिभावान् तथा अध्यवसायशील व्यक्तियों ने बहुत अधिक उन्नति की है।

स्वर्गीय पटल बाबू के इन समस्त सद्गुणों को स्मरण करके हृदय उनके प्रति श्रद्धा से ओत-प्रोत हो उठता है और उनके जैसे अक्लान्तकर्मा व्यक्ति के कर्म-जीवन के अवसान का संवाद पाकर लेखक मर्माहत हुए बिना नहीं रह सका।

प्रथम प्रतिनिधि अधिवेशन, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग, सन् १९३१

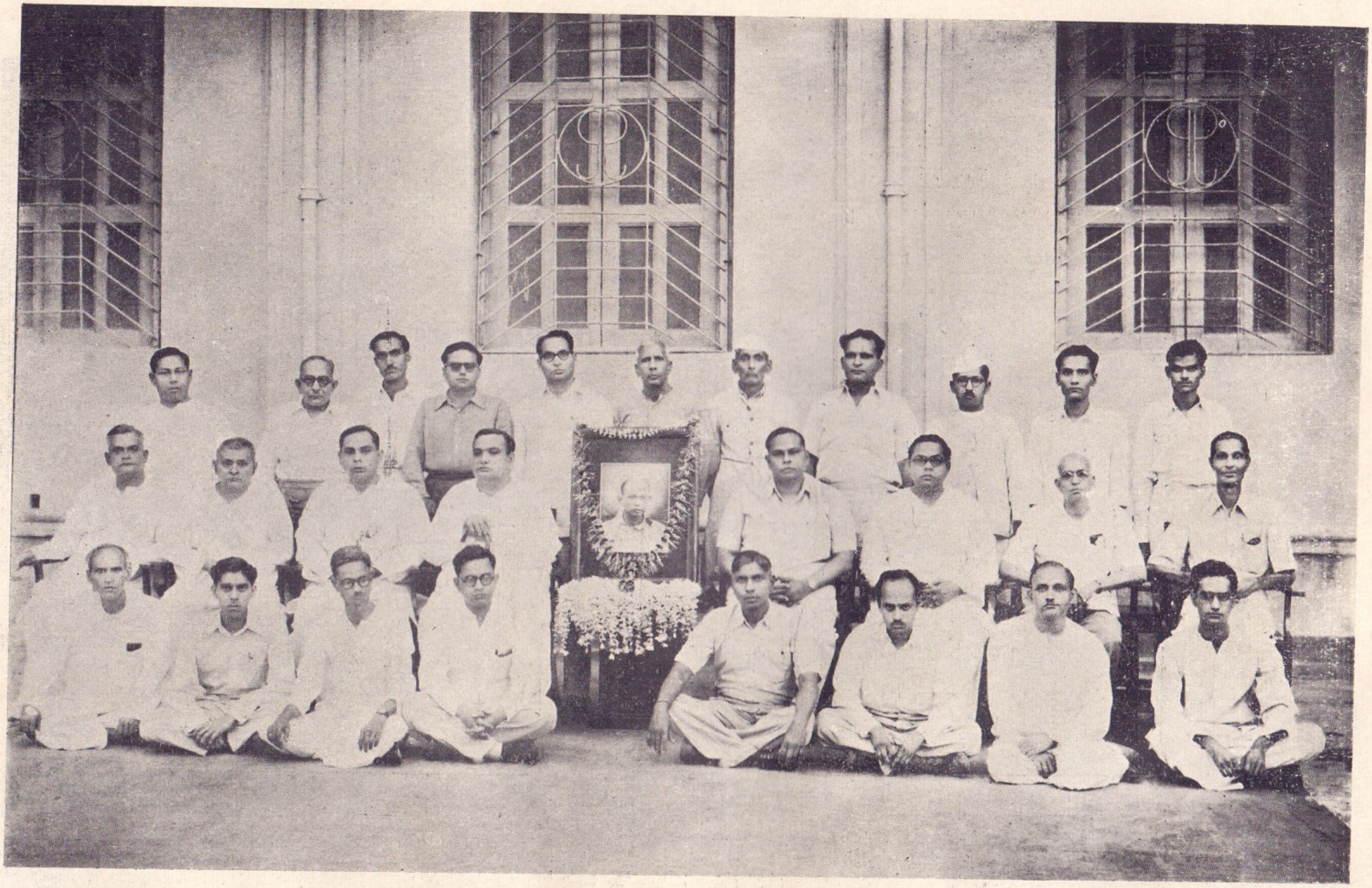


बैठे हुए बाएँ से १. श्री नारायणचन्द्र चटर्जी, २. श्री हरिप्रसन्न घोष (डिपुटी मैनेजर), ३. श्री हरिकेशव घोष (जनरल मैनेजर),
४. श्री हरिनाथ घोष (असिस्टेंट मैनेजर), ५. श्री रामानुजलाल श्रीवास्तव, (जवलपुर)
खड़े हुए बाएँ से १. श्री के० डी० बनर्जी, २. श्री जितेन्द्रनाथ सान्याल, ३. पं० माधवप्रसाद शर्मा, ४. श्री फकीरचन्द मेहरा।



श्री फकीरचन्द मेहरा, बी० ए०, सुपरिण्टेण्डेण्ट, प्रकाशन-विभाग, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग के अवकाशग्रहण पर सन् १९४८ ई० में लिया गया चित्र। बीच में बाईं ओर से पाँचवें जनरल मैनेजर श्री हरिकेशव घोष।

श्री हरिकेशव घोष के श्राद्ध पर लिया गया चित्र

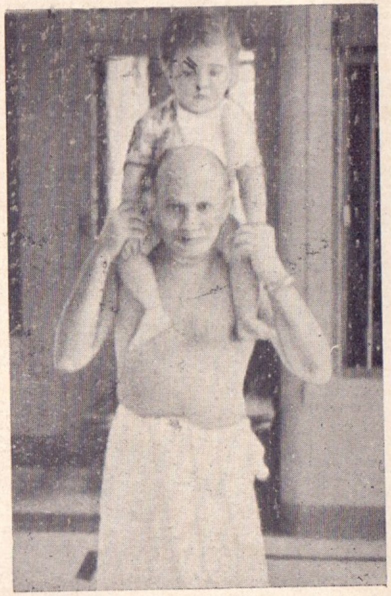


खड़े हुए बाईं ओर से---सर्वश्री एम० बनर्जी, बी० एन० माथुर, एस० पी० टण्डन, आर० पंडित, के० एल० मालिक, बी० एल० शर्मा, आर० एस० लाल, ए० एन० सेठ, एस० एन० मिश्र, एन० जी० बागची, वी० के० चौबे।

कुर्सी पर बैठे हुए बाईं ओर से---सर्वश्री डी० एन० मल्लिक, आर० एम० बोस, एच० एन० घोष (डाइरेक्टर), एच० पी० घोष (मैनेजिंग डाइरेक्टर), एच० एस० घोष (डाइरेक्टर), एच० बी० घोष (डाइरेक्टर), एफ० सी० मेहरा, आर० एल० श्रीवास्तव।

धरती पर बैठे हुए बाईं ओर से---सर्वश्री जी० सी० मित्रा, एन० एस० माथुर, ओ० एस० श्रीवास्तव, ए० के० बोस, एम० प्रसाद, एस० सी० गुप्ता, आर० एस० श्रीवास्तव, जी० पंडित।

बच्चों के साथ श्री हरिकेशव घोष



श्री हरिकेशव घोष अपने अनुज श्री हरिप्रसन्न घोष के दौहित्र पीकू बाबू के साथ।



श्री हरिकेशव घोष अपने कनिष्ठ पुत्र बुलू बाबू के साथ।

दीप-निर्वाण

श्री नर्मदाप्रसाद खरे

आज दीप-निर्वाण हो गया।
जन-जन की आँखों का तारा,
महा शून्य में कहाँ खो गया ?

[१]

उर में स्नेह-सिन्धु लहराता,
दिशि-दिशि में आलोक लुटाता,
स्वयं एक कोने में जलकर
घर-घर अगणित दीप जलाता।
पुण्य-प्राण की प्रेम-प्रभा से
जन-परिजन के प्राण धो गया।
आज दीप-निर्वाण हो गया।

[२]

नक्षत्रों की दीप्ति अमर है,
(पर वह नभ-सुषमा का घर है !)
घर-घर के कुल-दीपक पर ही
घर-घर का जीवन निर्भर है।
ऐसे ही तो एक दीप से,
अरे लोक-कल्याण हो गया !
आज दीप-निर्वाण हो गया।

[३]

जो न आँधियों से डरता था,
जाग्रति-ज्योति सदा झरता था,
जो निष्कम्प व्रती-सा जलकर
जन-मन को ज्योतित करता था।
जिसकी कनक-किरण से घर-घर
एक स्वर्ग निर्माण हो गया।
आज दीप-निर्वाण हो गया।

[४]

जिसने ज्योति लुटाना जाना,
सदा स्नेह को ही धन माना,
जीवन की उज्ज्वलता में ही
जग के जीवन को पहचाना।
जीवन की आलोक-रश्मियाँ
जन-जीवन में विहँस बो गया।
आज दीप-निर्वाण हो गया।

[५]

जिसने केवल जलना जाना,
स्नेह-प्रेम पर पलना जाना,
दृढ़ विश्वासों के संबल पर
जीवन-पथ पर चलना जाना।
सहसा निठुर 'प्रभञ्जन' द्वारा
काल-अंक में हाय सो गया !
आज दीप-निर्वाण हो गया।

मेरे सहपाठी

श्री बेनीप्रसाद अग्रवाल, एम० ए०, एल-एल० बी०

यद्यपि श्री हरिकेशव घोष (पटल बाबू) अब इस संसार में नहीं रहे, परन्तु उनकी स्मृति हमारे सामने है। हम उन्हें कई कारणों से नहीं भूल सकते। पटल बाबू से हमारा व्यक्तिगत और पारिवारिक दोनों प्रकार का सम्बन्ध रहा है। व्यक्तिगत रूप से हम पटल बाबू को उस समय से जानते हैं, जब हम और वे एफ० ए० कक्षा में मनोविज्ञान साथ-साथ पढ़ते थे। उस समय हम दोनों में से किसी को यह ध्यान न था कि किसी दिन प्रकाशन एवं मुद्रण-व्यवसाय में हमारी और उनकी घनिष्ठता होगी। संयोगवश हम दोनों ही उत्तरप्रदेश के प्रकाशक-संघ में सम्मिलित हुए और कई वर्षों तक पटल बाबू इसके सभापति और मैं उप-सभापति रहा।

व्यक्तिगत सम्बन्ध से बढ़कर हमारा और पटल बाबू का पारिवारिक सम्बन्ध रहा। उनके पिता श्री चिंतामणि घोष तथा हमारे परपिता श्री द्वारकाप्रसाद कटरा में पड़ोस के ही मकान में रहते थे। हमारे बड़े भाई श्री बेनीमाधव अग्रवाल (लल्लू बाबू) पटल बाबू की चर्चा करते समय एक दिन कह बैठे कि बाल्यावस्था में पटल बाबू कुछ उदासीन रहा करते थे। लोगों से मिलने-जुलने की रुचि उनमें बहुत कम थी। परन्तु आगे चलकर जब वही पटल बाबू उत्तरप्रदेश के एक प्रमुख मुद्रक एवं प्रकाशक के रूप में हमारे सामने आते हैं, तब उनका स्वभाव बदल जाता है। उनका जीवन बहुत ही सामाजिक और लोकप्रिय हो जाता है। उनकी व्यावसायिक प्रतिभा और नई-नई योजनाओं की अभिरुचि यह सिद्ध कर देती है कि उनके बाल्यावस्था के उदासीन जीवन में कार्य-कुशलता की एक बहुत बड़ी आभा छिपी हुई थी।

प्रकाशक-संघ की कार्यवाहियों में हमारा उनका घनिष्ठ सम्पर्क रहा। वे इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि छोटे से छोटे प्रकाशक को संघ में स्थान दिया जाय और उसके हितों की रक्षा की जाय। प्रकाशक-संघ को एक ठोस एवं चिरस्थायी संस्था बनाकर हम पटल बाबू की इस अभिलाषा को पूरा कर सकते हैं। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि पटल बाबू एक उच्च कोटि के सफल व्यवसायी थे।

भवन-निर्माण में उनकी रुचि इतनी अधिक थी कि प्रतिवर्ष वे कितने ही नए मकान बनवाते रहते थे। 'घोष मार्केट' उनकी इस स्मृति का एक उदाहरण है। व्यवसाय और निर्माण दोनों कार्यों में उनके योरपीय भ्रमण का प्रतिबिम्ब है। इन दोनों क्षेत्रों में वे नवीनतम शैली के समर्थक थे।

पटल बाबू व्यावसायिक क्षेत्र में कुछ ऐसी बातें छोड़ गए हैं, जिनसे हम शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। मुद्रण एवं प्रकाशन के अतिरिक्त गृह-व्यवसाय में भी उनकी अभिरुचि थी। वे नई बातों की खोज में प्रायः रहा करते थे। जिस कार्य में वे लगते थे, उसकी सफलता के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा देते थे। उदासीनता एवं ढिलाई से कार्य करने के वे सर्वथा विरुद्ध थे। उनकी इस कार्य-कुशलता की याद हमारे लिए एक स्थायी वस्तु है।

प्रतिभावान पटल बाबू

पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा, एम० ए०, एल-एल० बी०

यद्यपि श्री हरिकेशव घोष के ख्यातनामा पिता और इंडियन प्रेस के संस्थापक स्वर्गीय श्री चिन्तामणि घोष की संगठन शक्ति, व्यावसायिक योग्यता और निस्पृहता के सम्बन्ध में मैं बहुत पढ़ और सुन चुका था; परन्तु उस कुटुम्ब से मेरा कोई सम्पर्क न था। श्री हरिकेशव घोष से मेरा परिचय एक विवाद से प्रारम्भ हुआ। अब से २०, २५ वर्ष पहले जब मैं बनारस नगरपालिका के चुंगी-विभाग का अधिकारी था, हम लोगों का इंडियन प्रेस की काशीस्थित शाखा द्वारा देयकर के सम्बन्ध में समय-समय पर मतभेद हो जाता। प्रेस के स्थानीय अधिकारियों से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध इस मतभेद को दूर करने में सहायक न होता। नतीजा यह होता कि नियमों से बाध्य होकर उन्हें नगरपालिका द्वारा निश्चित रकम अदा करनी पड़ती।

इस कठिनाई के निराकरण के लिए श्री हरिकेशव घोष (पटल बाबू) एक बार नगरपालिका के कार्यालय में उपस्थित हुए और हम लोगों का अँगरेजी भाषा में देर तक विवाद हुआ। वह अँगरेजों के लहजे में अच्छी अँगरेजी बोलते थे। वह प्रश्न किस प्रकार हल हुआ, इसका तो मुझे ध्यान नहीं; परन्तु उस विवाद द्वारा एक चतुर और प्रतिभावान् व्यवसायी तथा एक सहृदय और आकर्षक व्यक्तित्ववाले महानुभाव से मेरे परिचय की नींव पड़ी।

श्री लल्लीप्रसाद पाण्डेय उन दिनों काशी में निवास करते थे और हम लोग प्रायः प्रतिदिन एक-दूसरे से मिलते थे। उनके साथ घोष महोदय तथा उनके भाई से, उनके काशी आने पर, भेंट होती। दो-चार बार मेरे स्थान पर भी उनका आगमन हुआ। मैं भी प्रयाग जाने पर, कुछ मिनटों का समय निकालकर, उनसे मिलने जाता। मैंने उन्हें सदा कार्यरत पाया। समय को सभी लोग अमूल्य कहते हैं, परन्तु उसका महत्त्व जितना वह समझते थे, उतना मैंने अन्य किसी व्यक्ति को समझते नहीं देखा। इसी के साथ वह अपने व्यवहार में निरन्तर सौजन्य प्रदर्शित करते। इतने बड़े कार्य के संचालन में कठिनाइयाँ प्रायः उपस्थित होती थीं; परन्तु वह कभी व्यग्र न होते और युक्ति तथा दूरदर्शिता से अपना कार्य निभाते। कर्मचारियों की हड़ताल और उपद्रवपूर्ण व्यवहार के समय भी उन्होंने धैर्य और सौजन्य का परित्याग नहीं किया। वह किसी कार्य को दूसरे दिन के लिए नहीं टालते थे और अन्य व्यवसायियों की भाँति, किसी के पावने को चुकाने में हीला-हवाला नहीं करते थे। इंडियन प्रेस के इस व्यवहार के कारण पुस्तक-लेखक अन्य प्रकाशकों की अपेक्षा इसी प्रेस से सम्बन्ध रखने में अधिक सुविधा अनुभव करते थे। वह केवल सफल व्यवसायी ही नहीं थे, बल्कि छपाई की कला के सभी अंगों को भलीभाँति जानते थे। इस कार्य का आधुनिकतम ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्होंने विदेश-यात्रा की और नई मशीनों को अपने कार्यालय में स्थापित करके इंडियन प्रेस को छपाई के कार्य में अग्रणी बनाया। हिंदी की सेवा के लिए यह प्रेस सदा से प्रसिद्ध है। हरिकेशव बाबू ने उस परम्परा का निर्वाह ही नहीं किया, प्रत्युत उसमें बहुत उन्नति की और आज भी इंडियन प्रेस अपनी पत्र-पत्रिकाओं और

अगणित ग्रन्थों द्वारा राष्ट्रभाषा का भांडार भर रहा है।

पटल बाबू की संगठन-शक्ति इंडियन प्रेस तथा अन्य व्यापारिक संस्थाओं तक ही सीमित न थी; परन्तु गृहस्थी के प्रबन्ध में भी उसका आभास मिलता था। वह घर के प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं का ध्यान रखते और बालकों की शिक्षा-दीक्षा आदि के सम्बन्ध में भी पूछताछ करते। अतिथि-सत्कार में वह कोई कमी न रहने देते और महत्त्वपूर्ण कार्यों में इतने व्यस्त रहने पर भी अतिथियों की व्यवस्था की देखरेख स्वयं करते। मैंने एक-दो बार उनका आतिथ्य ग्रहण करके उनके इन सद्गुणों का परिचय प्राप्त किया था।

पटल बाबू को अपने भाइयों से विशेष प्रेम था और भाई भी उन पर पितृतुल्य श्रद्धा रखते थे। इस प्रकार 'परस्परं भावयन्तः' यह परिवार और इसके विविध व्यवसाय उत्तरोत्तर उन्नति करते रहे। राष्ट्रनिर्माण की इस घड़ी में उनकी विशेष आवश्यकता थी। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि यदि वह जीवित रहते, तो पंचवर्षीय योजना को आगे बढ़ाने में वह बहुत बड़ा भाग लेते।

उनके स्वभाव में एक बड़ी कमी थी कि वह आराम का मूल्य नहीं समझते थे। कार्य में ही उन्हें आनन्द मिलता और सृजन में ही उन्हें जीवन की पूर्णता लक्षित होती थी। कार्याधिक्य से शरीर की शक्ति का जो ह्रास होता है, उसकी पूर्ति की ओर उनका ध्यान कभी नहीं गया। बाहर से अपरिमित दीखनेवाली शक्ति की भी सीमा है। धीरे-धीरे उनका शरीर क्षीण होने लगा; परन्तु उन्होंने इसकी चिन्ता नहीं की। अन्त में भावी होकर रही और अकाल में ही देश एक सहृदय, उदारचित्त, प्रतिभावान एवं अनुपम संगठन-शक्ति-सम्पन्न जनसेवी की सेवाओं से वंचित हो गया। उनका जीवन बहुत अंशों में आदर्श जीवन था, जिससे हम बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

हाय ! हरिकेशव बाबू !

श्री मन्मथनाथ गुप्त, संपादक 'बाल-भारती'

आज हिन्दी का प्रकाशन बहुत उन्नत अवस्था में है। उन्नत अवस्था में इस अर्थ में कि वह २०-२५ वर्ष पहले जिस अवस्था में था, उससे बहुत आगे बढ़ चुका है। हम यह तो याद करते हैं कि अमुक-अमुक लेखक ने हिन्दी का निर्माण किया, पर यह कहने या बताने की परिपाटी नहीं है कि अमुक-अमुक प्रकाशक ने इस प्रकार हिन्दी भाषा को आगे बढ़ाया। यह बात सच है कि प्रकाशन प्रकाशकों का व्यवसाय है, और वे उससे उसी प्रकार धन उपार्जन करते हैं, जिस प्रकार मिल-मालिक या अन्य पूंजीपति करते हैं। ऐसे तो फिर लेखक भी लेखन को अपना व्यवसाय बनाए हुए हैं; पर इससे उनकी सेवा कम नहीं हो जाती। मैं यह कदापि नहीं कहता कि हिन्दी साहित्य की उन्नति में लेखकों और प्रकाशकों की सेवाएँ एक प्रकार की हैं। नहीं, ऐसा नहीं है। लेखक और प्रकाशक का सम्बन्ध बहुत कुछ पूंजीपति और मजदूर का सम्बन्ध है, और मजदूर तथा पूंजीपति के सम्बन्ध में जो बुराइयाँ हैं, लेखक और प्रकाशक के सम्बन्ध में भी वे बुराइयाँ देखी जा सकती हैं।

एक अर्थ में तो ये बुराइयाँ लेखक और प्रकाशक के क्षेत्र में और भी अधिक हैं। जो भी हो, यह स्थान उन पर विचार करने का नहीं है। पूंजीवाद के सबसे बड़े विरोधी भी इस बात को मानते हैं कि जब सामन्तवाद के बाद पूंजीवाद आया था, तो वह एक प्रगतिशील शक्ति के रूप में आया था और उसके कारण समाज की उत्पादक शक्तियों को बहुत लाभ पहुँचा था। इसी प्रकार जब हमारे यहाँ पहले-पहल छपाई और प्रकाशन व्यवसाय का आरम्भ हुआ, तो उसने साहित्य के प्रसार और प्रचार में बहुत बड़ा हाथ बँटाया।

मैं समझता हूँ कि इण्डियन प्रेस ने उत्तर भारत में शिक्षा और साहित्य के कार्य में जैसा हाथ बँटाया, जिस प्रकार उसने 'सरस्वती' ऐसी पत्रिका को उत्पन्न किया और चलाया, श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी ऐसे सम्पादक और गद्य के आचार्य को एक योग्य वाहन दिया, प्राचीन साहित्य का प्रकाशन किया, वह इतनी बड़ी सेवा है, जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। जिन दिनों श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के सम्पादक थे, उन दिनों 'सरस्वती' न केवल एक पत्रिका थी, न केवल वह हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका थी, बल्कि वह इतिहास निर्माण कर रही थी। कितने ही आज के बड़े लेखकों ने उससे अनुप्रेरणा ली और कितने हृदयों में हिन्दी साहित्य के लिए प्रेम उत्पन्न हुआ। खड़ी बोली की विजय में 'सरस्वती' ने तथा उसके इतिहास-प्रसिद्ध सम्पादक तथा लेखकों ने जो हाथ बँटाया, वह हिन्दी के लिए बहुत महत्वपूर्ण प्रमाणित हुआ। हमारे कुछ इतिहासकार इस बात को नहीं समझते कि व्रजभाषा पर खड़ी बोली की विजय और अन्तिम रूप से खड़ी बोली का हिन्दी का एकमात्र गद्य रूप स्वीकृत होना कितनी बड़ी बात रही।

मुझे ऐसा कहने में कोई भी हिचकिचाहट नहीं है कि हिन्दी की उन्नति में इण्डियन प्रेस ने एक ऐतिहासिक भाग अदा किया। अब तो हिन्दी साहित्य का केन्द्र ही उत्तरप्रदेश से हट

गया है। यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि हिन्दी के राष्ट्रभाषा रूप में स्वीकृत हो जाने के बाद राजधानी का हिन्दी का सर्वप्रधान केन्द्र होना आश्चर्य की बात नहीं है; पर इसके पहले जब उत्तरप्रदेश हिन्दी का केन्द्र था, उस समय इण्डियन प्रेस तथा इसके मालिकों ने हिन्दी की अपार सेवाएँ कीं। न मालूम कितने ही अच्छे पत्र इण्डियन प्रेस से प्रकाशित हुए, कितने मौलिक ग्रन्थ इसी प्रेस से निकले। 'महाभारत' जैसे ग्रन्थ का अनुवाद निकालना इण्डियन प्रेस का ही काम था।

जब से इण्डियन प्रेस से मेरा प्रत्यक्ष परिचय हुआ, तब से मैं श्री हरिकेशव घोष को जानता हूँ। लेखकों से वे हमेशा बड़े प्रेम से मिलते थे, और जहाँ तक व्यक्तिगत सम्बन्ध का प्रश्न है, उनसे बढ़कर शिष्ट और भद्र व्यक्ति कोई नहीं हो सकता। मैं जब भी उनसे मिला, बहुत प्रभावित हुआ। उनके दिमाग में हमेशा कोई न कोई ऊँची योजना फिरा करती थी, और इससे भी बड़ी बात यह है कि वे उसे कार्यरूप में परिणत करने का साहस रखते थे।

अब मैं एक व्यक्तिगत बात पर आऊँगा। यद्यपि इण्डियन प्रेस एक बहुत छोटी पूंजी लेकर सामने आया, पर धीरे-धीरे यह एक विराट् प्रकाशन-संस्था का वाहन बन गया। इसलिए उसमें स्वाभाविक रूप से वे बातें भी आ गईं, जो ऐसी संस्थाओं के लिए स्वाभाविक हैं। जिन दिनों भारत परतंत्र था, उन दिनों मैं एक छोटा-सा श्रमिक कार्यकर्त्ता भी था, और उस नाते इण्डियन प्रेस के मजदूरों की ओर से उनकी हड़ताल में भाग लेने का मौका लगा। मुझे उस हड़ताल के ब्योरे में जाने की आवश्यकता नहीं। मैं इस अवसर पर इतना ही बताना चाहता हूँ कि यद्यपि हरिकेशव बाबू यह जानते थे कि उनके प्रेस की हड़ताल में मैं मजदूरों की ओर से संगठन आदि कर रहा हूँ, तो भी बाद को इण्डियन प्रेस से प्रकाशित 'देशदूत' के लेखक के नाते जब मैं उनसे मिला, तो उन्होंने मुझसे उसी प्रकार भद्र व्यवहार किया, जैसा वे बराबर किया करते थे। इसे शायद व्यवहारकुशलता कहकर उड़ा देने की चेष्टा की जाय, पर यह छोटी बात नहीं है। सभी लोग यदि इस प्रकार निस्पृह, न सही भीतर से, पर ऊपर से निस्पृह होकर कार्य करें, तो दुनिया कितनी अच्छी हो जाय!

एक और घटना यों है कि जिस समय मैं जेल में था, उस समय इण्डियन प्रेस के एक कर्मचारी भी मेरे साथ जेल में रहे। वे भी मेरी तरह एक वामपक्षी कार्यकर्त्ता थे। मुझे उनसे बराबर यह मालूम होता रहा कि यद्यपि हरिकेशव बाबू किसी भी प्रकार उनके परिवार का भार अपने ऊपर लेने के लिए बाध्य नहीं थे, फिर भी जब-तक मेरे मित्र जेल में रहे, तब तक हरिकेशव बाबू की ओर से उनके परिवार को एक मासिक सहायता मिलती रही। मैं इस बात से बहुत अधिक प्रभावित हुआ, और आज तक मेरे मन पर उसकी बड़ी मधुर छाप है। वह इस कारण कि हमारे साथ और-और संस्थाओं से आए हुए कितने ही लोग थे, पर उनके परिवारों को कोई सहायता देनेवाला नहीं था। उन दिनों बहुत कम लोग यह विश्वास करते थे कि स्वतंत्रता जल्दी आनेवाली है, विशेषकर लोग वामपक्षियों से बहुत बचा करते थे। ऐसी अवस्था में जेल में गये हुए अपने एक कर्मचारी के परिवार को एक महीना नहीं, दो महीना नहीं, वर्षों तक सहायता करते रहना उदार हृदय की बात थी। हरिकेशव बाबू या इण्डियन प्रेस के मालिक उनकी

किसी प्रकार की सहायता करने के लिए मजबूर नहीं थे। उन्होंने जो कुछ किया, वह आंशिक रूप से देशभक्ति और आंशिक रूप से शायद अपने पुराने कर्मचारी के प्रति उदारता के कारण किया।

ऐसी कितनी ही घटनाएँ घटीं। क्या मैं बहुत से पुराने इतिहास में जाऊँ? उत्तर भारत के स्वनामधन्य क्रान्तिकारी श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल का मैं हवाला देना नहीं चाहता, पर मुझे जहाँ तक याद है, हरिकेशव बाबू शचीन्द्रनाथ ऐसे क्रान्तिकारियों की हर तरह से सहायता करते थे और यह चेष्टा करते थे कि वे अपने कार्य में सफल रहें।

मैं हरिकेशव बाबू से व्यक्तिगत रूप से बहुत घनिष्ठ नहीं था, पर मैं यह मानता हूँ कि वे बराबर अच्छे विचारवाले लेखकों तथा कार्यकर्त्ताओं को सहायता देने के लिए तैयार रहते थे। मैं फिर एक बार कहता हूँ कि इस प्रशस्ति से यह निष्कर्ष कदापि न निकाला जाय कि प्रकाशन और लेखन का जो रूप इस समय मौजूद है, उसका मैं समर्थक हूँ या उसे किसी भी प्रकार अपरिवर्तनीय मानता हूँ।

प्रकाश की किरण

श्री प्यारेलाल यादव

प्रकृति का अटल नियम है कि जो सूर्य्य उदय होते ही समस्त लौकिक कर्मों का दाता रहता है और संसार जिसकी अर्चना करता और अर्घ्य देता है, वही सन्ध्या समय म्लान मुख होकर अस्त हो जाता है। मनुष्य-जीवन की भी स्थिति ऐसी ही है।

आज शोक-विह्वल हो, सजल नयनों से लिखना पड़ता है कि उसी नियमवश बड़े साहब (पटल बाबू) को महाप्रस्थान करना पड़ा।

मैं उनके सम्पर्क में सन् १९३५ से बराबर रहा। पहले मैं कम्पोजिंग और प्रूफ-रीडिंग-विभाग में था। परन्तु उनकी तेज निगाहों से मैं न बच सका और उन्होंने मुझे प्रिंटिंग-विभाग में लाकर सारा काम सिखलाकर प्रिंटर के पद पर आसीन किया। मुझ पितृविहीन और गुरुविहीन के लिए उन्होंने पिता और गुरु दोनों का कार्य किया। उनकी ये विशेषताएँ कभी भुलाई नहीं जा सकतीं कि आदमियों के चुनाव करने में वे बेजोड़ थे।

एक क्षण भी बड़े साहब कभी बेकार न जाने देते थे। जिस कार्य को हाथ में लेते थे, उसे पूरा करके ही छोड़ते थे। लगन के इतने पक्के थे कि निराश या विफल होते मैंने उन्हें कभी नहीं देखा।

जिस समय वे प्रेस में आ जाते थे, लोगों में उत्साह की लहर बहने लगती और कर्मचारी विद्युत्-गति से कार्य करने लगते। अत्यधिक कार्य का बोझ वहन करते हुए भी वे कर्मचारियों के दुख-सुख बराबर सुना करते और उनकी यथासभव सहायता भी करते थे।

विशालहृदय पटल बाबू

श्री गुरुभक्तसिंह 'भक्त'

अचानक 'अमृत बाजार पत्रिका' में श्री पटल बाबू का निधन पढ़कर मेरे हृदय को जो आघात पहुँचा, उसे मैं व्यक्त नहीं कर सकता। ऐसा मालूम हुआ, मानो अपने एक बड़े भाई का साया सर से उठ गया और मैं स्तब्ध-सा रह गया।

पटल बाबू के परिवार से मेरा सम्बन्ध सन् १९०८ ई० से है, जब उनके स्वर्गीय पिता श्री चिंतामणि घोष जीवित थे। उनसे कई बार निकट से मिलने का तथा बातचीत करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो चुका था। मैं तभी से उनके चरित्र-बल से बड़ा प्रभावित था। उनकी कार्यकुशलता तथा व्यावहारिक पवित्रता की एक बात मुझे याद है। उनके प्रेस में कई हजार तिरंगे चित्र उत्तम आर्टपेपर पर छपे। उनका नियम था कि वे हर काम के पूरा हो जाने पर उसे स्वयं देखते थे। इसी प्रथा के अनुसार उन्होंने उन छपे चित्रों को भी देखा। रंगों के बैठाने में कहीं सुई की नोक भर कसर रह गई थी। बस, वे फोरमैन पर बहुत बिगड़े। 'क्या मेरे प्रेस की बदनामी कराओगे? तुरन्त इन सब चित्रों को मेरे सामने जला दो। कोई बाहर का आदमी जानने या देखने न पाए।' उन्होंने हजारों रुपयों का नुकसान उठाना गवारा किया; परन्तु इंडियन प्रेस की उत्तम छपाई के नाम पर आँच नहीं आने दी। ऐसे ही सुयोग्य महापुरुष की संतान पटल बाबू थे।

पटल बाबू से हमारा काफी घनिष्ठ सम्बन्ध था। धूनी बाबू तथा अन्य भाइयों से भी मेरा भाईचारा-सा है। जब कभी मैं प्रयाग जाता, पटल बाबू ही के निवासस्थान पर ठहरता। किसी और जगह ठहरने पर उलाहना सुनना पड़ता।

इस घटना के थोड़े दिन पूर्व जब पटल बाबू प्रयाग में थे, मैं उनसे उनके बँगले पर मिला था, घंटों इधर-उधर की बातें होती रहीं। मुझे क्या मालूम था कि यही अंतिम भेंट है। उनका सुगठित शरीर, लम्बा कद, गौर वर्ण, सदा मुसकराते हुए होंठ और मिष्ट भाषण मुझे बार-बार याद आता है और उनका भव्य रूप मेरी आँखों के सामने खड़ा हो जाता है।

व्यापारी होते हुए भी ऐसा शीलवान व दयालु व्यक्ति मुझे अभी तक कोई और नहीं मिला। जिनसे जरा भी परिचय हो जाय, उनको वे हर प्रकार से सहायता देने के लिए तैयार रहते और जिनको वे मित्र समझते, उनके लिए तो सब-कुछ त्याग करने पर बे तुल जाते थे। मैं भी अपने निजी मामलों में उनसे सदा सलाह लेता रहा हूँ और जिन बातों के लिए मैंने उनसे कहा, उन्होंने कभी 'ना' नहीं किया। मेरी सर्वप्रथम काव्य-पुस्तक 'सरस सुमन' उन्होंने अपनी ही देखरेख में छपवाई थी। वह ऐसा सुन्दर प्रकाशन था कि उसकी धूम मच गई। मेरी 'वंशी ध्वनि' भी उन्होंने अपने ही प्रेस में छपवाई। वे मेरे साथ बड़ी उदारता का व्यवहार करते रहे और मैं उनका बड़ा स्नेहपात्र रहा। मैं उनका आभार कभी न भूलूंगा।

वे बड़े कर्मठ जीव थे। वैभव और लाड़-प्यार में पले होने पर भी उन्हें आलस्य तथा विलास से घृणा थी। वे दिन-रात काम में लगे रहते। प्रेस के हर विभाग का काम वे स्वयं

देखते, नए-नए उद्योग-धंधों की गोटी बिठाते, दिन-रात व्यापार में उन्नति के मार्ग ढूंढ़ते और रात में जब सोने जाते, तब आधी रात तक पुस्तकों का अध्ययन करते। इसी तपस्या का फल यह हुआ कि लक्ष्मी को पैर तोड़कर उनके घर बैठना पड़ा और उन्होंने अपने परिवार को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया।

मैंने देखा है, उनके कर्मचारीगण यों तो अन्य भाइयों के केवल भय से काम करते थे; परन्तु पटल बाबू की विशालता, सहृदयता तथा उदारता उनके हृदय में आदर उत्पन्न करती थी और वे स्नेह से प्रेरित होकर तन-मन-धन से अपने कर्त्तव्य के पालन में संलग्न रहते थे। श्री हरिकेशव घोष सभी की निष्ठा व श्रद्धा के पात्र थे।

सादगी उनके जीवन का लक्ष्य था। उन्हें आप केवल स्वच्छ खद्दर के कुरते और पाजामे में बहुधा घूमते हुए देख सकते थे। दिखावा और अभिमान उनको छू नहीं गया था। सरलता व सच्चाई उनकी सफलता की कुंजी थी।

वे मानव नहीं, देवता थे और इसी से हम सबको दुखी छोड़कर देवलोक को चले गये।

उच्चाकांक्षी पटल बाबू

श्री बेनीप्रसाद टण्डन

श्री हरिकेशव घोष 'पटल बाबू' नाम से अधिक प्रसिद्ध थे। आप प्रयाग के प्रमुख नागरिक थे। उनके गौरव से आकर्षित होकर मैं उनके निकट संपर्क में छः-सात वर्ष पूर्व आया। वे बहुधंधी होते हुए भी अध्ययनशील और विद्यानुरागी थे। प्रतिदिन नियमित रूप से कुछ-न-कुछ अध्ययन अवश्य करते रहते थे। अनेक भाषाओं की विभिन्न पत्रिकाओं का वे संचालन करते थे। व्यावसायिक विषयों के अतिरिक्त अन्य बातों का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। सूक्ष्म बुद्धि के कारण वे किसी भी विषय को सरलता से आत्मसात् कर लेते थे।

वे बड़े परिश्रमी और उच्चाकांक्षी थे। उसी में उन्हें आत्मतोष मिलता था। श्रांति का वे शायद ही कभी अनुभव करते रहे हों। अथक परिश्रम भी उनके असामयिक शरीरपात का एक कारण है। पिताजी की मृत्यु के बाद उन्होंने जिस प्रकार व्यापार की सर्वतोमुखी उन्नति की, वह सराहनीय है। उन्होंने मशीन और भवन-निर्माण को 'हाबी' बना लिया था। इन कुछ वर्षों के बीच उन्होंने जो मकान आदि बनवाए, वे उनकी सुरुचि और लगन के नमूने हैं।

पटल बाबू से बातचीत करना एक आनन्दपूर्ण कार्य था। धन और मान होते हुए भी वे विनयशील और सहृदय थे। मुक्त हृदय से वे रुचि के साथ बात करते थे। व्यक्तिगत परेशानियों अथवा अशान्ति को वे कभी प्रकट न होने देते थे। सदा परामर्श देने और उलझनों को सुलझाने में तत्पर रहते थे। इसके लिए शारीरिक या आर्थिक कष्ट कभी बाधक न होते थे। वे मृदुभाषी, किन्तु स्पष्ट वक्ता थे। चित्त को सहज ही आकर्षित कर लेना उनका विशेष गुण था, जिससे मिलनेवाले पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ जाती थी। व्यवहार में साफ, ईमानदार और निश्छल थे।

उनका रहन-सहन सामान्य तथा आडम्बर-शून्य था। वे एक धर्मनिष्ठ प्राणी थे। भाइयों से विशेष स्नेह करते थे और अभिभावक होकर उनकी देख-भाल अच्छी तरह करते थे। राजनैतिक जीवन से दूर रहकर भी राष्ट्रीय कार्यों में वह भरसक सहायता करते थे। वे उदार स्वभाव के सरल व्यक्ति थे। लोकहित के कार्यों में कभी पीछे न रहते थे। किसी को निराश करना वे संभवतः जानते ही न थे।

इन थोड़े वर्षों का पटल बाबू का साथ कभी भूला नहीं जा सकता। उनके अभाव की छाया निःसन्देह सदा साथ रहेगी।

पुरुषश्रेष्ठ हरिकेशव घोष

श्री क्षितीन्द्रमोहन मित्र, संचालक और सम्पादक 'माया'

मुझे सख्त अफसोस है कि हरिकेशव बाबू जैसे पुरुष-श्रेष्ठ से मेरी मित्रता बहुत थोड़े ही समय तक रही। दुर्भाग्यवश ऐसे महान् व्यक्ति से मित्रता जोड़कर अधिक सीखने का अवसर मुझे नहीं मिला। यह कौन नहीं जानता कि एक निःस्वार्थ और निरभिमान, भले व्यक्ति का सत्संग कितना आनन्ददायक होता है। बड़े भाग्य से ऐसे व्यक्ति का संसर्ग मिलता है। उनके जैसे व्यवहारकुशल, अनुभवी और बुद्धिमान्, जो सचाई और ईमानदारी की जीवित प्रतिमा थे, इस संसार में बिरले ही मिलेंगे। ऐसे व्यक्ति से घड़ी भर बात करना भी सांसारिक शिक्षा का कोश प्राप्त करना था।

मुझे क्या पता था कि हरिकेशव बाबू इतने अच्छे व्यक्ति हैं, उनका हृदय इतना उच्च और सहानुभूतिपूर्ण है और वे निःस्वार्थ भाव से दूसरों को लाभ पहुँचाने में सुख का अनुभव करते हैं। उनका जीवन-दीप बुझने के कुछ ही मास पूर्व उनको पहचान पाया था, इसीलिए और भी दुःख होता है। मैं चाहता तो २२ वर्ष पहले से उनको जानने का सौभाग्य प्राप्त करता। वास्तव में उनकी मृत्यु से मुझे गहरा धक्का लगा, क्योंकि उनसे घनिष्ठता बढ़ाते समय मैंने कुछ आशाएँ की थीं––कई सपने देखे थे। मुझे क्या पता था कि मेरे ये सपने इस तरह चूर-चूर हो जायँगे!

अब मुझे लगता है कि अगर मैं अपने व्यापार में सफलता प्राप्त करने के पहले ही उनसे मित्रता कर पाता, तो मैं बहुत लाभान्वित होता––उनके असाधारण व्यापारिक अनुभव और उपदेश से मुझे काफी शिक्षा मिल जाती और मैं अधिक तरक्की करने में सफल होता। उनका व्यवहार देखकर हर घड़ी हमें शिक्षा मिलती रहती थी कि लोगों से मेल-जोल किस तरह बढ़ाना चाहिए, मित्रता किस तरह निभानी चाहिए, लोगों का सहयोग किस तरह पाना चाहिए। थोड़े ही दिनों के लिए सही, पर उनसे मेरी ऐसी घनिष्ठता हो गई थी, जैसी अब तक किसी से नहीं हुई थी। इसीलिए गत १९ मार्च को अखबार खोलने पर जैसे ही मेरी नजर हरिकेशव बाबू के निधन-समाचार पर पड़ी, मेरा हृदय शोक से भर आया। मैं एक आत्मीय जन की भाँति उनके आरोग्य की कामना कर रहा था। इसका एक कारण यह भी था कि मैंने जल्दबाजी और निर्बुद्धिता से एक धन्धे में काफी रुपया लगा दिया था। इसका पता लगते ही हरिकेशव बाबू एक स्वजन और शुभचिन्तक की भाँति उन रुपयों के उद्धार की कोशिश में लग गए थे। उनकी प्रतिष्ठा और उनके व्यक्तित्व के प्रभाव से उन रुपयों के वसूल होने की संभावना थी और शायद इसीलिए उनका स्नेह इधर मेरे लिए अमूल्य हो गया था। इस बात को स्वीकार करने में मुझे इस समय लज्जा का अनुभव हो रहा है, पर उनकी यादगार के समय इसे छिपाना मुझे ठीक नहीं जँचता।

सन् १९३१ का फरवरी महीना था। 'माया' का प्रकाशन मेरे लिए असम्भव हो रहा था। कर्ज अदा न होने के कारण कई लोगों ने मुझ पर नालिश ठोंक दी थी। 'माया' के प्रकाशन के पहले से ही राजर्षि टंडनजी की कृपादृष्टि मुझ पर थी। परिस्थिति के घोर निराशापूर्ण

होने से उन दिनों मैंने लोगों से मिलना-जुलना एकदम छोड़ दिया था। कई मुकदमों और गिरफ्तारी के वारंट की वजह से मैं बुरी तरह घबरा गया था। एक दिन शाम के झुटपुटे में मैं टंडनजी के घर गया और सारी स्थिति उन्हें साफ-साफ बता दी। 'माया' के प्रकाशन के पहले से ही वे मेरी सफलता में सन्देह करते थे और कम पूँजी के कारण शीघ्र ही ऐसी विकट परिस्थिति के आने की चेतावनी भी दे चुके थे। पर उस दिन टंडनजी ने मेरा तिरस्कार नहीं किया। वे देर तक विचारमग्न रहे। इस बीच मैं बड़बड़ाता रहा—"माया' में इतना पैसा लगाया, इतनी मेहनत भी की, अब अगर यह बन्द हो जायगी, तो मुझे बेहद दुख होगा। अगर कोई इसे लेकर चलाता रहता, तो मुझे आन्तरिक संतोष होता।"

टंडनजी ने मुझसे कहा—"आप कल सबेरे दस बजे आ जाइए। मैं आपको इंडियन प्रेस के घोष बाबू के पास ले चलूंगा। शायद वे आपकी कोई मदद कर सकें।"

दूसरे दिन दस बजे वे अपनी फोर्ड मोटर पर मुझे इंडियन प्रेस ले गए। हरिकेशव बाबू ने बड़ी खातिर से हमें बैठाया। तब टंडनजी ने हिन्दी में पत्रिका प्रकाशित कर सफलता का स्वप्न देखने के मेरे पागलपन के बारे में उन्हें सब कुछ बताया और अनुरोध के स्वर में बोले—"घोष बाबू, आप इनकी 'माया' को लेकर चलाइए न! हिन्दी में एक कहानी-पत्रिका की आवश्यकता जरूर है और अच्छी निकलने पर पत्रिका चल भी सकती है।"

हरिकेशव बाबू ने मुझसे पूछा—"माया' कितनी छापते हैं आप?"

मैंने कहा—"शुरू में दो हजार छापता था, अब डेढ़ हजार छाप रहा हूँ।"

उन्होंने पूछा—"ग्राहक कितने हैं और सब मिलाकर कितनी कापियाँ बिक जाती हैं?"

मैंने बताया—"ग्राहक पौने तीन सौ के लगभग हैं और रेलवे के स्टाल और शहर के अखबार-विक्रेताओं के द्वारा भी तीन-साढ़े तीन सौ प्रतियाँ बिक जाती हैं।"

मेरी बात के समाप्त होते-न-होते टंडनजी ने कहा—"घोष बाबू, आपको इस नौजवान को मुसीबत से बचाने के बारे में कुछ-न-कुछ सोचना जरूर है। यह कर्ज नहीं चुका पा रहे हैं।"

हरिकेशव बाबू ने मुझसे पूछा—"कितना कर्ज होगा आपका?"

मैंने कहा—"ग्यारह-बारह सौ रुपया!"

हरिकेशव बाबू बोले—"आप कल दो बजे सब बहीखाते लेकर आ जाइए मेरे पास।"

टंडनजी ने कुर्सी से उठते हुए कहा—"घोष बाबू, जो कुछ भी आपसे बन सके, आप इस नौजवान की सहायता कीजिए।"

हरिकेशव बाबू ने कहा—"हाँ-हाँ, मैं ले लूँगा इनकी पत्रिका।"

इससे पहले हरिकेशव बाबू से मेरी कोई जान-पहचान नहीं थी। पर सिर्फ टंडनजी की सिफारिश से उनका हृदय पिघल गया और वे 'माया' को लेने के लिए तैयार हो गए थे। इसमें शक नहीं कि 'माया' लेकर वे उसे प्रकाशित करने की जरूरत नहीं समझते थे और न उन्हें इसमें कोई दिलचस्पी ही थी। उनके चेहरे से मुझे लगा कि वे सिर्फ मेरा कर्ज चुकाने के लिए ही यह सब कर रहे थे। मुझे लगा कि वे मुझे दुश्चिन्ता और जेल से जरूर बचा लेंगे। सच कहता हूँ, उस समय उनकी ऐसी उदारता देखकर कृतज्ञता से मेरी आँखें छलछला आई थीं।

पर मैं दूसरे दिन उनके पास नहीं गया। 'माया' को हमेशा के लिए किसी को दे देने में मेरी छाती फटती थी। 'माया' प्रकाशित होने की रत्ती भर भी आशा नहीं रह गई थी, फिर भी मेरा मन नहीं होता था कि मैं उसे किसी दूसरे को दे दूँ।

फिर एक-एक कर लम्बे बीस साल बीत गए। हरिकेशव बाबू ने मुझ पर दया दिखाई थी, शायद इसीलिए या पता नहीं क्यों, मैं इस बीच उनसे नहीं मिला। हम लोग कभी एक-दूसरे के सामने नहीं पड़े। कोई आवश्यकता भी नहीं थी। मैं अपने काम में तरक्की तो करता जा रहा था, पर निर्बुद्धितावश अपने को समाज से बहिष्कृत और एकान्तवासी बना चुका था।

एकाएक सन् १९५१ के नवम्बर महीने में कागजवालों की एक दावत में हरिकेशव बाबू से मेरी भेंट हो गई। उन्होंने बड़ी दिलचस्पी से मुझसे बातें कीं। बातचीत से पता चला कि वे मेरे बारे में बहुत कुछ खोज-खबर रखते हैं। उस दिन के बाद हम दोनों अकसर मिलते रहे। एक बार वे किसी काम से मेरे दफ्तर में भी आये और घूम-फिरकर प्रेस देख गए। फिर कई बार वे मेरे घर भी आये। सन् १९५२ के अगस्त महीने तक हमारी घनिष्ठता काफी बढ़ गई। दिन पर दिन मैं देखता रहा कि वे कितने निःस्वार्थ हैं। किसी कठिनाई की बात मालूम होने पर वे फौरन मदद के लिए तैयार हो जाते थे—चाहे उन्हें कितनी ही असुविधा हो। सभी से उनका व्यवहार ऐसा ही मधुर होता था।

मैंने एक पुस्तक में पढ़ा था कि जो व्यक्ति दुनिया में तरक्की करता है, वह निःस्वार्थ भाव से दूसरों की मदद करके सबसे मित्रता बढ़ाता है। हरिकेशव बाबू के व्यवहार को देख-देखकर मुझे अकसर उस पुस्तक की बातें याद आ जाती थीं, और मैं सोचने लगता कि इसमें आश्चर्य ही क्या कि ऐसा व्यक्ति कुछ ही वर्षों में व्यापार में इतनी सफलता प्राप्त कर सका! इसीलिए न उनकी इतनी इज्जत है और प्रत्येक व्यक्ति उनकी प्रशंसा करता है! भला सचाई, ईमानदारी और व्यापार-बुद्धि में उनकी जोड़ का व्यक्ति कहाँ मिलेगा!

उनसे मुझे अनेक शिक्षाएँ मिलीं। उनके सुन्दर चेहरे पर सदा मुसकान खिली रहती थी और किसी से साक्षात् होने पर उनकी इस मधुर मुसकान से सारे वातावरण में जादू की भाँति सद्भावना और मैत्री-भाव फैल जाता था। कैसे मित्रता करनी चाहिए, कैसे उसे बनाए रखना चाहिए और कैसे सहयोग प्राप्त करना चाहिए, यह उनका जन्मजात गुण था—यह अगर देखकर या जानकर सीखा जा सकता है, तो शायद मैंने भी सीख लिया है। व्यापार-धंधे की सफलता के लिए यह सबसे बड़ी कला है।

हरिकेशव बाबू की मृत्यु से अन्य सैकड़ों व्यक्तियों की भाँति मेरी भी बहुत क्षति हुई है। और कुछ वर्ष अगर वे जीवित रहते, तो मैं अपनी बहुत-सी समस्याओं को हल करने में उनके स्नेह का लाभ उठाता। कठिन परिस्थितियों में मुझे अब कभी उनकी जैसी सच्ची सहानुभूति और उनके जैसा सदुपदेश नहीं मिलेगा। उनकी बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह से मुझे अपने काम-धंधे में काफी सहायता मिलती थी; मुसीबत के समय वे मुझे रोशनी दिखाने का काम करते थे—यह अब मुझे कभी नहीं मिलेगा। मेरे जीवन में वे ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जो मुझे इतना प्रभावित कर सके।

उनके श्राद्ध के दिन मुझे उनका एक फोटो मिला है, जिसे मैंने जड़वाकर अपने शयनकक्ष में टाँग लिया है। मैं चाहता हूँ कि मैंने उनसे जो कुछ सीखा है, उसी से मुझे अपने बाकी जीवन में अधिक से अधिक मदद मिले। अपनी उलझनों के वक्त उनकी प्रतिमूर्त्ति देखकर मैं यह सोच सकूँगा कि इस समस्या को वे किस तरह हल करते।

जो कभी न भूलूँगा

प्रधानाचार्य पं० रामबहोरी शुक्ल, एम० ए०, साहित्य-महोपाध्याय

उन दिनों मैं नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी का प्रधान मंत्री निर्वाचित किया गया था। उसके संस्थापक स्व० पण्डित रामनारायण मिश्र थे सभापति। इसके पूर्व सभा की संस्थापना करने में मिश्रजी के सहयोगी बाबू श्यामसुन्दरदास सभापति रह चुके थे। बाबू साहब सभा के नियमों की रक्षा करने के लिए कहने को चाहे जिस पद पर रहते थे, वास्तव में वे ही सभा के एकमात्र सूत्रधार थे। इससे उन्हीं के संकेत से सभा के काम होते थे।

सभा के बहुत से कामों में ग्रन्थ-प्रकाशन मुख्य था। किसी समय तो सभा ही हिन्दी ग्रन्थों के प्रकाशन में पथ-प्रदर्शिका थी। इससे उसकी आय भी अच्छी होती थी। सम्भवतः व्यवसाय-कार्य से साहित्य-निर्माण के कार्य में कुछ बाधा पड़ती रही होगी अथवा और कोई दूसरा कारण हो सकता है; किन्तु हुआ यह कि सभा ने प्रकाशन-कार्य को विक्रय-कार्य से अलग करने का निश्चय किया और कदाचित् उक्त बाबू साहब की प्रेरणा से इंडियन प्रेस को सभा के प्रकाशन का विक्रेता नियुक्त किया गया।

सभा की पुस्तकें अधिकतर इंडियन प्रेस में ही छपतीं भी। फलस्वरूप काम कुछ सुगम हो गया होगा। सभा के तत्कालीन कार्यकर्त्ता और अधिकारी बहुत कुछ निश्चिन्त हो गए होंगे। परन्तु धीरे-धीरे अनेक कारणों से सभा की पुस्तकों से आय कम होने लगी और कुछ दिनों के पश्चात् तो आय से व्यय का खाता बढ़ने लगा। होते-होते सभा के ऊपर इंडियन प्रेस का हजारों का ऋण लद गया। उसके कम होने का उपाय न दिखलाई पड़ता, प्रत्युत वह प्रतिवर्ष बढ़ता ही जाता। उस समय नाना प्रकार की बातें कही-सुनी जातीं। जो श्यामसुन्दरदासजी सभा के लिए एकमात्र आश्रय समझे जाते और जिनके मुँह से पद-त्याग की बात सुनते ही प्रबन्ध-समिति के लोग बगलें झाँकने लगते, उनके बिना भी सभा चल सकती है, यह विचार भी कुछ लोगों के मन में आने लगा। अन्ततः उनके साथी पण्डित रामनारायणजी मिश्र आगे बढ़े। उन्होंने सभा को विशाल ऋण-राशि के बोझ से लदी होने पर भी सँभालने का साहस किया। अपनी ही कार्यप्रणाली के अनुसार चलने में अभ्यस्त बाबू श्यामसुन्दरदास ने सभा को एक प्रकार से त्याग दिया। सभा की प्रबन्ध-समिति ने ऐसे संकट के समय उसके संचालन का दायित्व लिया।

इंडियन प्रेस का ऋण चुकाने के लिए रुपए कहाँ से आएँ? सभा का नित्यप्रति का व्यय कैसे चले? उस समय सभा की साख भी कुछ बहुत अच्छी न थी। न तो बाहर से सहायता मिलने की आशा दिखलाई पड़ती थी और न किसी अन्य साधन से ही अपेक्षित धन की प्राप्ति सम्भव प्रतीत होती थी। अपनी धुन के पक्के और युक्तियों के सफल प्रयोग करनेवाले मिश्रजी को सुझाया गया कि सभा की कुछ अधिक लोकप्रिय पुस्तकों की बिक्री का काम इंडियन प्रेस से लेकर उसकी आय से अपना काम चलाया जाय और उसका नियत अंश इंडियन प्रेस को ऋण के भुगतान के लिए दिया जाय। मिश्रजी ने विविध सूत्रों से सभा का पुनरुद्धार करना

आरम्भ किया। उन्हें उक्त सुझाव भी जँच गया। अब उन्होंने इंडियन प्रेस से विक्रय के सम्बन्ध में नए रूप में समझौता करने की बात छेड़ी।

इसी सम्बन्ध में मुझे प्रेस के जनरल मैनेजर (प्रधान व्यवस्थापक) पटल बाबू नाम से परिचित श्री हरिकेशव घोष से पहले-पहल अकेले ही नहीं और अन्य लोगों के साथ भी अनेक बार मिलने का अवसर मिला। मुझे उनकी कुशाग्र बुद्धि, मृदुभाषिता और गम्भीरता के साथ मुसकानभरी व्यवहारकुशलता का बहुत ही सुखद और चिरस्मरणीय परिचय मिला। एक ओर वे अपने व्यावसायिक हित पर निरन्तर दृष्टि रखते मिले, तो दूसरी ओर सभा के हित की बात उठाने पर स्वार्थ-त्याग के लिए भी वैसे ही तत्पर जान पड़े। फल यह हुआ कि उनसे मिलने के पहले जिस समझौते के विषय में नाना प्रकार की बातें सोची जा रही थीं, वह सभा की इच्छानुकूल हो गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुपम 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' का नवीन संशोधित संस्करण एवं 'संक्षिप्त शब्द सागर' इंडियन प्रेस ने अपने व्यय से मुद्रित कर देने का वचन दिया और उनके विक्रय का अधिकार सभा के हाथ में आया। फिर तो क्रम-क्रम से सभा अपने अन्य प्रकाशन इंडियन प्रेस से लेती गई और दूसरे नए प्रकाशन भी करने लगी। आगे चलकर सभा पुनः अपने पैरों पर खड़ी हो गई। किन्तु इस कार्य में यदि पटल बाबू हमारे सहायक न होते, तो सभा के सामने उस समय तो अन्धकार ही था।

मैं वह दिन नहीं भूल पाता, जब मिश्रजी के घर में पटल बाबू इस कार्य के निमित्त पधारे थे और मैं मिश्रजी की निष्कपट और मोहनेवाली मुद्रा का पटल बाबू की उदाराशयता तथा अपनी खिलखिलाहट में विरोधी को भी आत्मसात करनेवाली हँसी को देख रहा था। उस समय जान पड़ता था कि पटल बाबू के सामने व्यवसाय न था; किन्तु था केवल हिन्दी और सभा की सेवा का एकमात्र वही सहज भाव, जिसकी प्रेरणा उन्हें वहाँ खींच लाई थी। मैं तो सभा को उस दलदल से निकालने के लिए जितना मिश्रजी को श्रेय देता हूँ, उतना ही पटल बाबू को देता हूँ।

अभी कुछ दिन ही बीते हैं, मिश्रजी को इहलोक की लीला-संवरण किए हुए, और अब पटल बाबू भी हमारे बीच नहीं रहे। उन दोनों की यह साहित्य-सेवा कभी बाहरी लोगों के सामने नहीं प्रकट हुई, और पटल बाबू का यह कार्य तो हम दो-चार जन ही जानते हैं। मैं उनकी अन्य हिन्दी-सेवाओं के सामने इसे भी महान् मानता हूँ, इसी के बल पर सभा अपना कार्यक्षेत्र विस्तृत कर सकी। ऐसे हिन्दी-हितैषी का वह सम्पर्क मेरे लिए सदैव स्मरणीय रहेगा।

अध्यापक-बन्धु पटल बाबू

प्रधानाचार्य श्री प्राणेन्द्रनाथ घोषाल

कदाचित् सन् १९२८ ई० की बात है। मैं ऐंग्लो बंगाली हाईस्कूल, बनारस में प्रधानाध्यापक था। वहाँ के कतिपय नवयुवक उत्साही अध्यापकों के मन में यह भावना उठी कि स्कूल की एक वार्षिक पत्रिका प्रकाशित होनी चाहिए। समय आजकल से नितान्त भिन्न था। पत्रिका-प्रकाशन के लिए परिस्थितियाँ तनिक भी अनुकूल न थीं। वर्तमान विद्यालयों के समान उस समय के विद्यालयों के पास धन नहीं था, न उन दिनों कोई पत्रिका-शुल्क ही छात्रों से लिया जाता था। उत्साही अध्यापकों के सामने एक विकट समस्या उपस्थित हुई—प्रकाशन व्यय कहाँ से आवे? पर फलाफलोपेक्षी शूरों की मनोवृत्ति से पूर्ण छात्रों तथा अध्यापकों ने लेख तैयार किए और पत्रिका छपने के लिए इण्डियन प्रेस, बनारस के हवाले कर दी गई। विद्यालय के पदाधिकारियों, अध्यापकों एवं छात्रों की सद्भावना के अनुसार पत्रिका बड़ी सजधज के साथ सुन्दर आकार में छपकर ठीक समय पर प्रकाशित हो गई।

अब फिर वही समस्या आई—प्रकाशन तथा मुद्रण का व्यय मुद्रणालय को कैसे दिया जाय? अनेक संकटों का सामना करके जो स्वल्प-सा द्रव्य पत्रिका के लिए संचित किया जा सका था, वह सम्पूर्ण व्यय के अर्द्धांग से भी कम था। विद्यालय के सभी लोग बड़ी चिन्ता में थे। अन्त में सारी कथा स्वर्गीय पटल बाबू को लिखी गई। उनका नवनीत-कोमल हृदय आर्द्र हो गया। औदार्य, दया तथा सहृदयता का स्रोत उमड़ पड़ा। उनकी नैसर्गिक दानशीलता बरबस फूट पड़ी। उन्होंने अविलम्ब शाखा-व्यवस्थापक महोदय को आज्ञा दी कि विद्यालय को पत्रिका के मुद्रण तथा प्रकाशन के शेष देय-द्रव्य से मुक्त किया जाय। पटल बाबू की उदारता, शिक्षा-संस्थाओं के प्रति अनुरक्ति तथा अध्यापकों की निःस्वार्थ सहायता की भावना ने इस अवसर पर मुझे बहुत ही प्रभावित किया।

मेरे जीवन में यह प्रथम अवसर था कि मैं स्वर्गीय श्रद्धेय पटल बाबू के सम्पर्क में आया और उनके विद्यानुराग तथा उनकी सहज करुणा की झलक पा सका।

सम्पर्क में आने का द्वितीय अवसर सन् १९३१ में आया, जब श्रद्धेय पटल बाबू मेरे गुरु स्वर्गीय कुमार बाबू की लिखी हुई भौतिक विज्ञान की पुस्तक में एक नया अध्याय लिखाने के लिए मेरी झोपड़ी पर पधारे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसमें भी मुझे सहायता पहुँचाने की भावना ही उनके हृदय में प्रबल थी। यह छोटी - सी घटना उस स्वर्गीय आत्मा की सहृदयता, कर्मपटुता, कष्टसहिष्णुता आदि सद्‌गुणों की द्योतक है। जब वे किसी अध्यापक को दुःख में देखते थे, तो यथाशक्ति उसके दुःख-निवारण के लिए प्रयत्न करते थे।

जब मैं प्रयाग आया, तो शहर के अनेक प्रमुख व्यक्तियों से स्वर्गीय पटल बाबू की प्रशंसा सुनने लगा। अनेक शिक्षा-संस्थाओं से उनका सम्बन्ध था और वे उन संस्थाओं के कल्याण में बड़ी अभिरुचि रखते थे और उसके लिए बड़ी तत्परता से कार्य करते थे। वे कर्नलगंज कालेज की भवन-निर्माण-समिति के अध्यक्ष थे। रुग्णा-

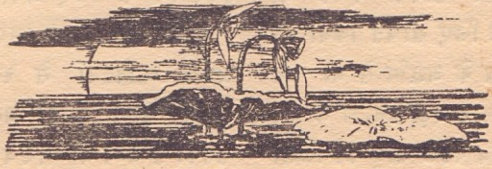
वश में होते हुए भी वे भवन-निर्माण-कार्य का निरन्तर अदम्य उत्साह के साथ निरीक्षण करते रहे। व्याधि तथा अस्वस्थता कभी उनके कर्त्तव्य-मार्ग में बाधक नहीं हुई। समय-पालन के तो वे मानो साक्षात् अवतार थे। जिस कार्य के लिए जो समय दे देते थे, उसको ठीक उसी समय सम्पादित करते थे; कभी एक पल की भी देर नहीं करते थे।

सी० ए० वी० कालेज के प्रधान होने के नाते मैंने गतवर्ष उनसे कालेज की वाणिज्य-परिषद् के उद्‌घाटन करने की प्रार्थना की। अस्वस्थ होते हुए भी उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार की और निश्चित समय पर कालेज में पधार-कर बड़ी सफलता एवं सुन्दरता से वाणिज्य-परिषद् का उद्‌घाटन-कार्य सम्पन्न किया। हिन्दी भाषा के प्रति उनका इतना प्रबल अनुराग था कि यद्यपि उन्हें हिन्दी में व्याख्यान देने में कठिनाई पड़ती थी, तथापि उन्होंने हिन्दी में ही अपना भाषण दिया और विद्यार्थियों को अपने निजी अनुभव की ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें बताईं, जो बिरले ही सज्जन बता सकते हैं। विद्यालय सदा के लिए उनका आभारी रहेगा।

स्वर्गीय पटल बाबू बड़े ही गुणग्राही महा-पुरुष थे। गुणों का वे बड़ा आदर करते थे, चाहे वे गुण छोटे-से-छोटे व्यक्ति में ही हों। उनका यह समादर केवल मौखिक शब्दों तक ही सीमित नहीं रहता था, बल्कि वह समुचित पुरस्कार के रूप में अभिव्यक्त होता था, जिससे गुणी व्यक्ति का उत्साह दुगुना-तिगुना बढ़ जाया करता था। वे स्वयं अनेक गुणों की खान थे, इसीलिए गुणी व्यक्तियों का आदर करते थे। "गुणी गुणं वेत्ति" वाली उक्ति उनमें पूर्णरूप से चरितार्थ होती थी।

उन्होंने त्रेपन वर्ष की स्वल्प आयु में ही बृहत् तथा सर्वांगीण कार्य-कलाप सम्पन्न कर दिया। वे पुरुष-रत्न थे। अध्यापकों को उचित पारिश्रमिक देना और उनकी कठिनाइयों तथा विपत्तियों में सब प्रकार से सहायता पहुँचाना उनके स्वभाव का प्रधान अंग बन गया था।

उनके निधन से अध्यापकों का एक सच्चा एवं सहृदय बन्धु संसार से उठ गया, जिससे अध्यापक-वर्ग अत्यन्त दुःखित है। उनकी पुण्य स्मृति में अपनी तुच्छ श्रद्धांजलि अर्पित करने का यह सुअवसर पाकर मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ।



पटल बाबू के साथ बीस वर्ष

श्री गिरीशचन्द्र पन्त

अद्यैव हसितं गीतं पठितं यैः शरीरिभिः।
अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम्॥

सदा की भाँति ता० १८ मार्च १९५३ के प्रातः कालेज पहुँचा। वहाँ सन्नाटा-सा छाया हुआ था। कारण पूछा, तो मेरे एक सहयोगी अध्यापक ने श्री पटल बाबू के स्वर्गारोहण का हृदयविदारक समाचार सुनाया। मैं बहुत देर तक स्तब्ध रहा, कुछ सच-सा प्रतीत नहीं हुआ। इधर-उधर दौड़ाकर दैनिक पत्र मँगाए, तब यथार्थता मालूम हुई। शोक-सभा के उपरान्त कालेज बन्दकर मैं और श्री आचार्यजी उनके निवासस्थान मालवीय रोड पर पहुँचे। मालूम हुआ, ता० १७ मार्च को पौने पाँच बजे संध्या-समय इनका जीवन-सूर्य अस्त हो गया। विधि के विधान को कौन मेट सकता है? हाथ मलते भारी हृदय लिये हुए लौट आये।

प्रथम दर्शन

जुलाई सन् १९३३ में श्रीमान् भैय्या साहब (श्री एस० एन० चतुर्वेदी, एम० ए०) ने स्वर्गीय श्री कुमारचन्द्र भट्टाचार्य, श्री बी० एन० झा, बी० एड० (एडिन०), स्व० श्री पटल बाबू (श्री हरिकेशव घोष), श्री० मकबूल अहमद, डॉ० इबादुर्रहमान खाँ, पी-एच० डी०, स्व० श्री शालग्राम वर्मा, डा० व्रजविहारीलाल, श्री रामनरेश मिश्र, श्री शीतलादीन द्विवेदी तथा श्री इन्द्रपालसिंह के सहयोग से एक समिति की स्थापना की। इसका नाम ग्राम शिक्षासमिति रखा गया। इसका प्रथम प्रयास झूसी में सेंट्रल ट्रेनिंग स्कूल खोलना था। इसी संस्था में अध्यापक के पद पर मेरी भी नियुक्ति हुई। हमारे प्रधानाध्यापक श्री कृष्णप्यारेलालजी थे, जो अब जिला इन्सपेक्टर हैं। श्री कृष्णप्यारेलालजी का इंडियन प्रेस से घना सम्बन्ध था। उन्हीं के साथ मैं भी वहाँ जाता था। पटल बाबू के मँझले कद, गोरे रंग, हँसमुख चेहरे तथा मधुर वाणी से मैं उनकी ओर बहुत आकर्षित हुआ। जब कभी प्रधानाध्यापक कुछ कार्य से वहाँ भेजते, तो मैं सहर्ष जाता और पटल बाबू के दर्शन का लाभ उठाता।

घनिष्ठता

सन् १९३७ में जब श्री कृष्णप्यारेलालजी वहाँ की अध्यापकी छोड़कर राजकीय पद पर चले गये, मुझे ही प्रायः इंडियन प्रेस जाना पड़ता। सन् १९४५ में जब यह ट्रेनिंग स्कूल नार्मल स्कूल में परिवर्तित हो गया, तब से तो बहुधा श्री पटल बाबू के सम्पर्क में रहना पड़ा। इन्होंने ही कालेज में दो कमरे तथा एक अध्यापक-निवास बनवाने का वचन दिया, जो नार्मल स्कूल के लिए शर्त्त थी। इसी कारण मैं थोड़ा-बहुत उनके विषय में जान सका।

उदार प्रकृति

जब हमारे स्कूल का नया भवन तैयार हुआ, जिसका शिलान्यास तत्कालीन डाइरेक्टर, शिक्षा विभाग स्व० मैकेन्जी साहब तथा उद्घाटन स्व० हैरप साहब ने किया, तो उसका आधा

व्यय आपने ही सहन किया। पूरा बड़ा हाल, जो आपके पिता बाबू चिन्तामणि घोष के नाम से प्रसिद्ध है, आपकी उदारता का परिणाम है। इतना ही नहीं, सन् १९४५ में जो अध्यापक-निवास तथा दो कमरे नए बने और जिनमें कई हजार व्यय हुआ, वे भी आपकी ही कृपा से बने। समय-समय पर आप पुस्तकों, फर्नीचर, मासिक पत्रों आदि से भी सहायता करते रहे।

दयालु

पटल बाबू दयालु इतने थे कि वे जिससे असन्तुष्ट भी रहते थे, उससे ज्यादा उलझना पसन्द नहीं करते थे। फिर उन लोगों के लिए उनका क्या व्यवहार हो सकता था, जो उनके प्रिय तथा मनोनुकूल चलनेवाले हों? मुझसे बड़ी मधुरता से बोलते थे। जब जिस अवस्था में झूसी से कुछ कार्य लेकर जाता, तब कार्य में व्यस्त होने पर भी उसे ध्यानपूर्वक सुनते, नोट करते तथा उचित आदेश देते थे।

उनकी दया का एक उदाहरण है। सन् १९४५ से श्री पटल बाबू ने झूसी में भवन-निर्माण का कार्य मुझे सौंप दिया था। मैं जब चाहता था तथा आवश्यकता होती थी, उनसे रुपया ले आया करता था––कभी नकद, कभी चेक द्वारा। यह कार्य सन् १९४७ तक चालू रहा। इसी बीच में मुझे अपनी लड़की की शादी के लिए अल्मोड़ा जाना पड़ा। जो कुछ हिसाब था, उसे प्रधानाध्यापक तथा श्री वाचस्पति उपाध्यायजी (उस समय के एक सहयोगी) को समझाकर चला गया। जो शेष धन था, उसे उनको देने लगा, पर किसी ने नहीं लिया। इसी आशय से लौटा दिया कि यह कार्य जिसके जिम्मे है, वही करेगा।

प्रधानाध्यापक अपने घर कोटा चले गये और मैं अल्मोड़ा। यहाँ कार्य देखने के लिए श्री उपाध्यायजी रह गए। पता नहीं, उन्होंने श्री भैया साहब के कानों में क्या-क्या भर दिया। गर्मी के अवकाश के बाद लौटने पर मेरे समक्ष प्रश्नों का ढेर, उत्तर देने के लिए तैयार मिला। मैनेजर साहब डॉ० व्रजविहारीलालजी ने गबन का मुकदमा चलाने की धमकी दी। मुझे इस सबकी तनिक भी चिन्ता न हुई, क्योंकि रुपया श्री पटल बाबू दे रहे थे और मैं उनका एक एजेण्ट होकर कार्य कर रहा था और मासिक आय-व्यय का चिट्ठा उनके सामने रखता था। इस बात को मैंने कार्यकारिणी समिति के सामने रखा, किन्तु उसने ध्यान नहीं दिया। दुख यही रहा कि उस समय उस समिति में आप नहीं थे। भाग्यवश जुलाई सन् १९४७ में ट्रेनिंग कालेज के रूप में नार्मल स्कूल हो गया। स्व० श्री डी० एन० मुकर्जी, प्रधानाचार्य बनकर आये। यह मामला उनके सामने भी पेश हुआ। उन्होंने इसका स्पष्टीकरण चाहा। मैं स्वयं श्री पटल बाबू के पास गया। मैंने उनको आद्योपान्त सब कथा सुनाई। अन्त में उन्होंने यह लिखकर दिया––"मैंने श्री गिरीशचन्द्र पन्त को यह रकम अपने एजेण्ट के रूप में खर्च करने को कह दिया था।" इसे लाकर मैंने आचार्य जी तथा प्रबन्धक महोदय को दिखा दिया। उनको मेरी प्रामाणिकता मालूम हो गई। क्या यह पटल बाबू की कम महानता थी?

कुशल भवन-निर्माता

जब ये इमारतें कालेज में बन रही थीं, तभी से मुझे पूर्ण ज्ञान हो गया कि श्री पटल बाबू उदार दिल, मधुर भाषी और विश्वासप्रिय ही नहीं, एक कुशल इञ्जीनियर भी हैं। जब कभी मैं उनके पास किसी आवश्यक सामग्री की माँग

[पृष्ठ २०७ देखिए]

स्वर्गीय पटल बाबू

श्री गोपाललाल खन्ना, एम० ए०

पटल बाबू के निधन का समाचार 'लीडर' में पढ़ा, तो सन्न रह गया। एकाएक यह वज्रपात असह्य-सा हुआ। कार्यालय से दिसम्बर मास में यह समाचार मिला था कि अत्यधिक रुग्ण होकर वे चिकित्सा के लिए कलकत्ता गये हैं।

पटल बाबू का प्रथम दर्शन उस समय हुआ था, जब वे काशी में हिन्दू विश्वविद्यालय में इंजीनियरिंग की ट्रेनिंग प्राप्त कर रहे थे। इनका प्रथम दर्शन ही अत्यन्त प्रभावशाली था। इनका शील-सौन्दर्य, सौम्य और विनयी स्वभाव, प्रखर बुद्धि तथा आत्मविश्वास अतुलनीय था। पिताजी (स्व० डॉ० श्यामसुन्दरदास) और बड़े बाबू (स्व० श्री चिन्तामणि घोष)——दोनों बाबू साहब——में बड़ी आत्मीयता थी। पटल बाबू को काशी भेजने के पूर्व बड़े बाबू ने 'बाबू साहब' के हाथ में पटल बाबू का हाथ देकर कहा कि भाई, इसका ध्यान रखना। तुम्हारा ही बच्चा है। इस कथन की सम्मान-रक्षा पटल बाबू ने जीवन-पर्यन्त की और बाबू साहब के प्रति सदा पितृतुल्य आदर भाव रखा। छात्रावस्था में काशी में कभी विश्वविद्यालय में अथवा अन्यत्र सामना होने पर, न मिलने का इनका एकमात्र उत्तर रहता——'अवकाश नहीं मिलता।' परन्तु इस विनय और शालीनता से इन तीन शब्दों का उच्चारण होता था कि बाबू साहब को निरुत्तर होकर 'अच्छा, अच्छा' ही कहना पड़ता।

अपने-अपने क्षेत्र में दोनों बाबू साहब ने मौलिक (पायनियर) कार्य किया है। भारत में उच्च कोटि की छपाई का कार्य करने योग्य प्रेस की स्थापना करना इनका ध्येय था। इस कार्य में गहरी लगन, उत्साह और घोर परिश्रम का परिचय बड़े बाबू ने दिया था। बाबू साहब ने नागरी-प्रचारिणी सभा, साहित्य-सम्मेलन की लगन से स्थापना कर हिंदी की सेवा करने का जो बीड़ा उठाया था, वह चिरस्मरणीय है। बाबू साहब को इंडियन प्रेस से वही स्नेह था, जो नागरी-प्रचारिणी सभा से था। इन दोनों बाबू साहब के संरक्षण, परामर्श और संकेत पर प्रेस-कार्य में क्रान्ति उत्पन्न करनेवाला एक अत्यन्त मेधावी युवक प्रकट हुआ। उन्नति के प्रत्येक चरण पर परामर्श लेना पटल बाबू अपना कर्त्तव्य समझते थे। विदेश-यात्रा करने के बहुत पहले इस निश्चय पर मेरे पिताजी से परामर्श कर चुके थे और अपनी योजना पर विचार-विनिमय भी।

पटल बाबू के उद्योग से उत्तरप्रदेश की दोनों प्रमुख संस्थाएँ——नागरी-प्रचारिणी सभा तथा इंडियन प्रेस——एक साथ हो गई थीं। सभा द्वारा प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक का मुद्रक और विक्रेता इंडियन प्रेस हो गया था। यहीं से इंडियन प्रेस की सर्वतोमुखी उन्नति का प्रारंभ होता है। खेद है, यह संबंध कुछ लोगों की कूटनीति के कारण स्थायी न रह सका।

पटल बाबू के समस्त परिवार एवं भाइयों से मेरा परिचय जगन्नाथपुरी में हुआ था। इन सभी भाइयों में जो स्नेह और सुशीलता दिखाई पड़ी, वह आदर्श थी। कभी आपस में विरोध या अवज्ञा का लवलेश भी न था। अनु-चर की भाँति आदेश का पालन होता था। परन्तु इधर भाई के स्नेह और स्वास्थ्य ने धूनी

बाब को विचलित कर रक्खा था। यही नहीं, प्रत्येक कर्मचारी, परिचित व मित्र सभी चिन्तित रहते थे। प्रायः धूनी बाबू पटल बाबू को कार्य करने से रोकते थे, विश्राम करने का आग्रह करते थे—स्नेहपूर्ण हठ के साथ। परन्तु पटल बाबू को तो प्रतिदिन के नित्य कर्म में भी प्रेस का ही ध्यान रहता था। बीमारी में भी बात करते-करते सहसा प्रेस-कार्य के लिए आदेश दिया करते थे।

प्रेस में समय पर पहुँचना इनका नियम था और शेष अर्थात् लौटना अनियमित। दस बजे प्रेस के दरवाजे पर उनकी मोटर पहुँच जाती थी। प्रेस में पहुँचते ही पहले मशीनों आदि की छपाई का काम देखते थे। कहीं कोई गड़बड़ हुई, तो पटल बाबू स्वयं उपस्थित हैं। बुलाइए या न बुलाइए, आँधी की तरह पहुँच जाते थे। कंपोजिंग, प्रिंटिंग, फोटोग्रेविंग आदि का कार्य वे भली-भाँति जानते थे। तत्काल त्रुटि निकाल देते थे, जैसे दूध में पड़ी मक्खी। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि और प्रखर-प्रतिभा अप्रतिम थी। नवीनतम कार्य करना इनको आनन्ददायक था।

खाली बैठना, बेकार की बातचीत करना इनसे बहुत दूर रहता था। घर पर भी विविध विषयक पुस्तकें और पत्रादि पढ़ते ही रहते थे। रात को ग्यारह बजे से पहले सोना इनके स्वभाव के विपरीत था। प्रातःकाल नौ-साढ़े नौ बजे तक इमारतों का निरीक्षण करने या योजनाएँ बनाने में ही व्यतीत होता था। प्रेस में आने पर वे अत्यन्त मिष्ट और मितभाषी रहते थे। इसका कारण उपेक्षा या उदासीनता न थी, परन्तु कार्याधिक्य ही था। अपराह्न तक पत्र-व्यवहार होता और मध्याह्नोपरान्त अन्य प्रेस-कार्य।

बात कहकर बदलना इनके स्वभाव के विरुद्ध था। विरुद्ध आग्रह असह्य था। भृकुटि-मात्र का चढ़ना और क्षणिक दृष्टिपात सारे रहस्य को स्पष्ट कर देता था। किसी को डाँटना-फटकारना इनके स्वभाव के विरुद्ध था। गरीब, निःसहाय अथवा आश्रित की समुचित सहायता और उनके प्रति सहानुभूति इनकी नस-नस में भरी थी। सब पर विश्वास करना और उत्तरदायित्व का अनुभव कराना तथा वांछित कार्य करा लेना इनकी कार्य-कुशलता का परिचायक था।

बहुज्ञता इनकी एक बड़ी विशेषता थी। किसी भी विषय पर विचार-विनिमय करना और पते की बात बतला देना इनके लिए साधारण-सी बात थी। विज्ञान हो या साहित्य, काव्य हो या कला, व्यापार हो या विकास सभी में अधिकारपूर्ण प्रवेश था।

'सरस्वती' और 'बालसखा' इनके प्रिय प्रकाशन थे। अनेक बार अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कभी-कभी दुःखित होकर इनका प्रकाशन बंद करने की भावना भी उत्पन्न हुई; परन्तु ऐसा किया नहीं। कोई-न-कोई मार्ग खोजकर इनका प्रकाशन सदा जारी रक्खा।

पटल बाबू के निधन से परिवार का प्राण गया, इंडियन प्रेस का कर्णधार उठ गया, आश्रितों का परिपालक गया, विपन्नों और संकटग्रस्तों का मुक्तिदाता गया और आत्मवत् सर्वभूतेषु समझनेवाला 'पिता' उठ गया। इस क्षति की पूर्त्ति करना असंभव है। काल के समक्ष मानव असहाय है।

सहृदय पटल बाबू

श्री रामलालसिंह, एम० ए०, साहित्यरत्न

मेरा लेखक-जीवन इंडियन प्रेस, लिमिटेड प्रयाग के माध्यम से प्रकाश में आया। इस माध्यम के नियंता पटल बाबू से अपनी पुस्तकों के छपवाने के सिलसिले में तथा व्यावसायिक कार्यों के अतिरिक्त भी कई बार मिलने का अवसर मिला। अतः आज उनके स्वर्गस्थित होने पर उनके जीवन की अनेक स्मृतियों का मेरे हृदय-पटल पर नृत्य होना स्वाभाविक है।

सन् १९४४ में दशहरे की छुट्टियों में पटल बाबू का सर्वप्रथम साक्षात्कार 'कामायनी-अनुशीलन' के प्रकाशन के सिलसिले में हुआ। उस समय तक मेरी कोई पुस्तक छपी नहीं थी। लेखक के रूप में मुझे कोई जानता नहीं था। किन्तु पटल बाबू ने प्रथम परिचय में ही अपनी सहानुभूति भरी, प्रेममयी दिव्य मूर्त्ति की ऐसी छाप मेरे हृदय पर अंकित कर दी, मानो उनसे पूर्वजन्म का कोई प्रगाढ़ परिचय रहा हो। उन्होंने पुस्तक का प्रकाशन ही स्वीकार नहीं किया, वरन् अग्रिम रायल्टी देकर लेखकों के प्रति अपनी उदारता का परिचय भी दिया। उस समय उन्होंने मेरी हस्तलिपि के विषय में व्यावसायिक दृष्टि से कुछ सोचने या अपने साहित्यिक परामर्श-दाताओं से कुछ पूछताछ करने का अवसर नहीं लिया कि यह पुस्तक कैसी है, बाजार में चल सकेगी या नहीं। उस घटना से मैंने यह परिणाम निकाला कि पटल बाबू में आदमियों को ही नहीं, लेखकों को भी देखते ही पहचान लेने की एक पैनी दृष्टि है। वे अपनी स्वयं प्रकाशिका दृष्टि से लेखक को देखते ही उसकी कृति का स्तर भी बिना उसे पढ़े या बिना किसी से पूछे ही समझ जाते थे। व्यावसायिक जीवन में उनकी सफलता के अनेक गुणों में उनका किसी को देखते ही उसका स्तर समझ लेने का गुण बहुत ही महत्त्वपूर्ण था।

पटल बाबू के इस प्रथम दर्शन का चित्र मेरे हृदय से कभी नहीं उतरता, जिसमें उनका शान्ति बरसानेवाला गंभीर व्यक्तित्व, सँभल-सँभलकर पग आगे धरने से अपने व्यावसायिक चिन्तन एवं मनन को व्यक्त करनेवाला कदम, अपनी दुर्बल आकृति से व्यावसायिक साधना एवं सतत परिश्रम को व्यंजित करनेवाला शरीर-यष्टि, आधुनिक वेशभूषा में छिपी हुई भारतीय आत्मा रखनेवाला स्वरूप, आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ देखनेवाली दृष्टि में भरी हुई सजगता तथा सुमन बिखराता-सा सौजन्य सभी को बरबस अपनी ओर खींच लेता था।

पटल बाबू का दूसरा महत्त्वपूर्ण दर्शन 'कामायनी-अनुशीलन' के मूल्य बढ़ाने के संबंध में हुआ। मैंने सोचा, इसका ३) रु० मूल्य इसके परिश्रम को देखते हुए बहुत कम है। उस समय मैं सागर से काशी जा रहा था। मैंने सोचा कि इस विषय में पटल बाबू से मिलकर बातचीत कर लूँ। यदि उन्होंने हाँ कह दिया, तो काम बन जायगा। यात्रा से थके हुए शरीर एवं अस्तव्यस्त वेश में उनके पास जाने में कुछ संकोच हो रहा था; किन्तु मानसिक साहस ने साथ दिया और संयोग से वे घर पर मिल भी गए। पहुँचते ही उन्होंने अपनी शान्ति बरसाने-वाली मधुर मुसकान से स्वागत किया। चाय आदि पिलाने के पश्चात् पूछा कि आप कहाँ से आ रहे हैं! मेरे योग्य कोई सेवा? मैंने मन-ही-

मन सोचा कि इतना बड़ा आदमी होते हुए भी यह व्यक्ति कितना निरभिमानी, विनम्र एवं शीलवान् है; व्यावसायिक होते हुए भी इनमें कितनी आन्तरिक शान्ति, सन्तोष एवं प्रसन्नता भरी है। उनके इन गुणों का स्मरण करते ही गीता का यह श्लोक हठात् उनके विषय में मेरी लेखनी से निकल ही जाता है:—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

अर्थात् पटल बाबू रागद्वेष-रहित होकर अपनी इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने देते थे। इसी कारण उनके मुख-मण्डल से सदा शान्ति एवं प्रसन्नता बरसती-सी प्रतीत होती थी।

पुस्तक का मूल्य उन्होंने मेरी इच्छानुसार ४) कर दिया और अपनी डायरी में उसे नोट कर लिया। सागर पहुँचते ही उनका उत्तर मिला कि आपकी पुस्तक का दाम बढ़ाकर ४) कर दिया गया। इस घटना से उनके व्यावसायिक जीवन की समय-संकेत-पालन-निष्ठा का पता चलता है।

उदयपुर, नागपुर तथा सागर से बनारस आते-जाते समय इंडियन प्रेस में मेरा वैयक्तिक काम हो या न हो, मैं पटल बाबू का दर्शन करने का अवसर अवश्य प्राप्त कर लेता था; क्योंकि उनके साथ बातचीत करने में एक अपूर्व आनन्द मिलता था; उनके पास रहने में एक अद्भुत शान्ति मिलती थी! उनके व्यक्तित्व का ऐन्द्रजालिक आकर्षण मन को बलात् खींच लेता था। मिलने पर बहुत ही प्रेमपूर्वक भविष्य में निकलनेवाली मेरी पुस्तकों के विषय में वह पूछा करते थे और लिखने के लिए बराबर प्रोत्साहन दिया करते थे। मेरी समझ में वयोवृद्ध व्यक्तियों का सबसे बड़ा काम नवयुवकों को प्रोत्साहित करना है और यह गुण पटल बाबू में कूट-कूटकर भरा था।

दिसम्बर, सन् १९५० में अपनी रायल्टी के कुछ रुपये लेने के लिए मैं इंडियन प्रेस गया था। बगल में 'समीक्षा-दर्शन' की अधूरी हस्तलिपि दबाए पटल बाबू से बातें कर रहा था। उन्होंने पूछा—"बगल में क्या छिपाए हैं?" टालने की दृष्टि से मैंने कहा—"कुछ नहीं।" फिर भी वे ताड़ गए और हँसते हुए उन्होंने कहा—"आप हमसे कुछ नहीं छिपा सकते।" मैंने उत्तर दिया—"जी नहीं, मुझे वह कला नहीं आती।" हस्तलिपि अधूरी थी, इसीलिए मैं नहीं दिखा रहा था। उन्होंने कहा—"इतना छपने दीजिए और तब तक अवशेष पूरा कर डालिए।" और हस्तलिपि अधूरी होते हुए भी उन्होंने अग्रिम रायल्टी देकर मेरी आर्थिक सहायता की।

वे किसी व्यक्ति की कठिनाई, उसके बिना कहे पहचान लेते थे। इसी कारण वे अपने यहाँ के कर्मचारियों को विश्राम ग्रहण करने पर पेन्शन दिया करते थे। इंडियन प्रेस के कर्मचारियों के साथ उनका ऐसा उदार एवं सदय व्यवहार होता था कि सभी उनके पीठ पीछे भी मुक्त कंठ से उनके स्वभाव की प्रशंसा किया करते थे।

पटल बाबू अपने वादे के बड़े पक्के थे। एक बार १९५२ में बी० ए० कक्षा की पाठ्य-पुस्तक के सम्पादन के सम्बन्ध में उनसे बातचीत हुई। समय केवल ५ दिन का था। मैंने कहा—"इतने कम समय में ३०० पृष्ठ की पुस्तक कैसे छपेगी?" उन्होंने कहा—"यह मेरा काम है। आपको चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं।" और उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ५ दिन में ही पूरी पुस्तक छपवाकर भेजवा दी।

अमर अस्तित्व

पं० सुदर्शन वाजपेयी

मानवता का महान् आदर्श, प्रतिभापूर्ण प्रकांड पांडित्य, चिंतन-शक्ति, चारित्र्य-बल और अविश्रान्त परिश्रम—यदि इन सब तत्त्वों का साकार समन्वय किया जाय, तो उसका नामकरण होगा—श्री हरिकेशव घोष।

आज से लगभग २० वर्ष पूर्व शक्कर के व्यापार के सम्बन्ध में मेरा उनका सर्वप्रथम परिचय हुआ था। इस अवधि में मैंने उन्हें परखने की जितनी चेष्टा की, उतना ही खरा पाया। घोष बाबू के सरल व्यक्तित्व की पृष्ठ-भूमि में ईश्वरीय आकर्षण निहित था, जिसके कारण जिसने भी उनके निकट आने का प्रयास किया, वह प्रभावित हुए बिना न रह सका। यही कारण है कि स्वयं मैंने भी अपने सम्बन्ध में उन्हें परिवार के किसी प्राणी के समान स्नेह करते हुए पाया।

उनके हृदय में दूसरों के प्रति स्नेह, सद्भाव और सारल्य की त्रिवेणी प्रवाहित होती रहती थी, जिसका आनन्द उन्हीं सौभाग्यशाली व्यक्तियों को प्राप्त हुआ होगा, जिन्होंने उनके निकट बैठकर कुछ सीखने का प्रयास किया होगा। यदि कोई भी व्यक्ति उनका परामर्श प्राप्त करने का इच्छुक रहता, तो वे उसकी उलझन का इतना सटीक उत्तर देते थे, मानो वह घटना उनके लिए चिरपरिचित-सी हो। आप कह सकते हैं कि दूसरों को सलाह देना तो बहुत सरल कार्य है—यह तो मनुष्य का जन्मजात स्वाभाविक गुण ही है। ठीक है, किन्तु सलाह देकर अपने से जो कुछ बन पड़े, उसका भी पूर्ण निर्वाह करना बहुत टेढ़ी खीर है और यही लोहे के चने हमारे घोष बाबू जीवन भर चबाते रहे।

उनकी कार्यदक्षता का ज्वलन्त प्रमाण शीतलपुर शुगर मिल का स्थानान्तरण है, जिसकी स्मृति कभी नहीं भुलाई जा सकती। कुछ वर्षों पूर्व गन्ने की फसल अनुपयोगी होने तथा बाढ़ के प्रकोप के कारण मिल पर व्याधियाँ मँडराने लगीं। ईश्वर की बहुत बड़ी अनुकम्पा थी कि मिल का सारा स्टाक सुरक्षित बच गया। उसी समय मिल के स्थानान्तरण का निर्णय किया गया। इस कार्य को घोष साहब ने जिस कुशलता और धैर्य के साथ निबाहा, उसका वर्णन शब्दों की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता है। उन्होंने अपनी समस्त शक्ति लगाकर एक 'सीजन' मिल चलाई और उक्त स्थान से कुछ मील के अन्तर पर 'गरौल' में उसकी स्थापना भी कर दी। मिलों के इतिहास में यह कदाचित् प्रथम आश्चर्यजनक घटना है। यद्यपि मैंने उन्हें नित्य के जीवन में पूजन-पाठ करते कभी नहीं देखा; किन्तु जब मिल का कोई धार्मिक कार्य होता था, तब उनकी श्रद्धा देखने योग्य होती थी।

यदि केवल एक ही शब्द में उनके व्यक्तिगत गुणों को केन्द्रित कर व्यक्त किया जाय, तो यही कहना पड़ेगा कि वे शुद्ध कर्मयोगी थे। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते माँ फलेषु कदाचन्' के सिद्धान्तों का उन्होंने जीवन भर प्रतिपालन किया। उनकी वाग्विदग्धता का स्मरण आते ही अतीत की एक व्यापारिक घटना सजीव हो उठती है। व्यापारिक क्षेत्र की संकीर्णता से एक समय ऐसा भी आया, जब शक्कर की

स्थिति मन्दी में थी। कानपुर में इस हलचल का पूर्ण प्रभाव पड़ा और यहाँ के व्यापारियों ने मीटिंग द्वारा भिन्न-भिन्न मिलों की भिन्न-भिन्न कमेटियों का निर्माण कर दिया। कानपुर से शुगर मर्चेण्ट्स के सेक्रेटरी बाबू प्यारेलालजी माहेश्वरी और श्री श्यामसुन्दरजी खंडेलवाल मेरे साथ घोष साहब के बँगले पर इस विषय में विचार-विमर्श करने इलाहाबाद पहुँचे। सौदे की 'डेलिवरी' के भी दो ही महीने शेष रह गए थे। उस परिस्थिति में घोष बाबू के विचार सराहनीय थे। उन्होंने कहा—'ठीक है। जो भाव आपने तय किया है, वह हमें स्वीकार है। व्यापारी की हानि में मिल अवश्य सहयोग दे सकती है; किन्तु किसी कारण उस देय के समय पर बाजार भाव तेज हो जाय, तो उसका लाभ केवल व्यापारी ही उठा सकेगा—उस लाभ से मिल का कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता है।"

घोष साहब के इस तर्क ने सबको आश्चर्य में डाल दिया और उनकी बुद्धि का लोहा मानना ही पड़ा।

उनमें राष्ट्रीय निर्माण के प्रति कितना उत्साह एवं आवेग था, उसका जीता-जागता प्रमाण एक छोटी-सी घटना है। कानपुर में खेले गए अंतिम टेस्ट मैच के अवसर पर वे यहाँ पधारे थे। केवल एक ही दिन मैच देखकर जब वे वापस लौटने लगे, तो मैंने उनसे इस शीघ्रता का कारण पूछा। उन्होंने बतलाया कि मुझे इलाहाबाद इसलिए जल्दी जाना है कि वहाँ पर मकानों की नींव डाली जा चुकी है और उन पर इमारत खड़ी करना आवश्यक है।

मैंने छूटते ही प्रश्न किया कि यदि भविष्य में साम्यवादी विचारधारा ने जोर पकड़ा, तो यहाँ कम्युनिस्टों का शासन निश्चित है, जिसके फलस्वरूप सम्पत्ति का वितरण भी अवश्यम्भावी है। ऐसी दशा में मकान बनवाने से आपका क्या तात्पर्य है?

प्रश्न विचित्र था, किन्तु उसका उत्तर कितना मर्मस्पर्शी और देश-प्रेम के साँचे में ढला हुआ था। उन्होंने कहा—"भविष्य में कुछ भी हो, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं; किन्तु उसका यही तात्पर्य है कि देश के निर्माण-कार्य में मैं भी अपना किंचित् सहयोग दे सकूँगा।"

वास्तव में राष्ट्रीय निर्माण के प्रति वे सदैव सजग और सचेत रहते थे। उनका कथन था कि धन का वास्तविक उपयोग देश की सुख-समृद्धि में ही निहित है। यद्यपि उनके दैनिक जीवन के रहन-सहन का ढंग पाश्चात्य सभ्यता में रँगा हुआ था; किन्तु उस पाश्चात्य ढंग में भी भारतीयता साफ झलकती थी। 'समय ही धन है', 'सादा जीवन उच्च विचार' और 'कार्य ही पूजा है' यही उनके सर्वप्रिय मन्त्र थे, जिनके सम्मान का उन्होंने सदैव ध्यान रक्खा और दूसरों को भी उसका महत्त्व समझाने में कभी नहीं चूके। यही उनके जीवन के ५३ बसन्तों की प्रफुलित पँखुरियाँ हैं, जिनकी सुगंध से घोष-परिवार सदैव सुरभित रहता है।

भाग्य की रेखाओं का निर्माण मनुष्य के वश की वस्तु नहीं है। सचमुच घोष बाबू भी 'मानव' थे—ऐसे 'मानव' जिसका सर्वश्रेष्ठ गुण दूसरों के प्रति सहानुभूति दिखलाने के हेतु सदैव प्रस्तुत रहता था। इसीलिए तो जिस दुखदायी घड़ी में उनकी शव-यात्रा निकल रही थी, इन पंक्तियों के लेखक ने बाबू बेनीप्रसादजी अग्रवाल तथा उनके वकील मुकर्जी साहब के साथ इन पानी भरी आँखों से एक निम्न परिवार

की तरुणी को घोष बाबू के लिए इस प्रकार आँसू बहाते देखा है, मानो स्वयं उसके परिवार का कोई व्यक्ति चल बसा हो। यह दृश्य देखकर किस हृदयहीन का हृदय गीला नहीं हो आया और किसके मस्तिष्क को यह सोचते देर न लगी कि घोष साहब का विशाल वैभव प्रासादों की गोद में खेलकर कुटियों की छाया ही में अपनी थकान मिटाता रहा। जिस व्यक्तित्व में मानवता का विकास इतना स्पष्ट परिलक्षित होता था, आज वही विभूति अपना भौतिक आवरण उतारकर हम लोगों से सदैव के लिए बिछुड़ चुकी है। हमारे शब्दों में इतना साहस कहाँ कि हम उनकी महत्ता का बखान कर सकें; क्योंकि स्मृतियों का मूल्य आँसुओं से नहीं आँका जा सकता, उसकी कसौटी तो हृदय है। कदाचित् इसीलिए लेखनी रुकने को विवश कर रही है। विचारों में और कुछ प्रकट करने की क्षमता ही नहीं है और स्याही में इतनी तरलता कहाँ कि उनकी स्मृति के पवित्र पुष्पों को सजल रख सके। घोष बाबू के पंचतत्त्व से निर्मित नश्वर शरीर को चिता की चार ही लकड़ियों ने भस्मीभूत कर दिया; किन्तु उनके जीवन की अनंत स्मृतियों का अंत करने में समय का बलशाली चक्र भी समर्थ न हो सकेगा।

पटल बाबू के साथ बीस वर्ष

[पृष्ठ २०० का शेष]

लेकर जाता, वे मुझसे तखमीना पूछते थे। मुझे कोई अनुभव नहीं था। वे तुरन्त मुझसे लम्बाई-चौड़ाई पूछकर सामान के परिमाण को निश्चित कर लेते थे। जिन सज्जनों ने इंडियन प्रेस, प्रयाग के भवन को सन् १९४७ के पूर्व देखा होगा, वे स्वयं समझ सकते हैं कि श्री पटल बाबू में भवन-निर्माण तथा डिजाइन आदि के लिए कितनी रुचि थी। इंडियन प्रेस में जनरल मैनेजर के बैठने का स्थान देखिए। वहाँ से जरा-सी आँख ऊपर करते ही आप पूरे कार्यालय का निरीक्षण कर सकते हैं।

'फार्म' में रुचि

जब कभी पटल बाबू कुछ अवकाश में हुए तथा मुझे उनके साथ कुछ दूर चलने का अवसर प्राप्त हुआ, तो वे हमेशा पूछा करते कि झूसी या उसके आस-पास कुछ एकड़ भूमि मिले, तो सूचित करना ताकि एक सुन्दर फार्म बन सके। इसी हेतु उन्होंने अलोपी बाग के पास पड़ाव लिया था, पर लक्ष्य पूर्ण नहीं हुआ। बीच ही में उसमें से कुछ भूमि सरकार ने शरणार्थी-क्वार्टर्स के लिए ले ली।

पटल बाबू कितने प्रबन्ध-कुशल, कर्त्तव्य-परायण और अध्यवसायी थे, इसका ज्वलन्त प्रमाण है वर्तमान समय में इंडियन प्रेस की उन्नतावस्था। मैं इस महान् कर्मयोगी के बारे में लिख ही क्या सकता हूँ?

अपनी बात—

स्वर्गीय बाबू हरिकेशव घोष

सन् १९२८ में इंडियन प्रेस और 'सरस्वती' के संस्थापक बाबू चिंतामणि घोष के दिवंगत होने पर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए 'सरस्वती' का एक विशेष अंक प्रकाशित किया गया था। आज इंडियन प्रेस और 'सरस्वती' के उन्नायक स्वर्गीय बाबू हरिकेशव घोष की स्मृति में 'सरस्वती' का यह विशेषांक प्रकाशित हो रहा है।

मृत्यु तो अनिवार्य है। किसी भी अवस्था में किसी की मृत्यु हो जाने पर लोगों को दुख होता है। अपने स्नेह और ममत्व के कारण हम सभी लोग अपने आत्मीय जनों के देहावसान पर शोक से व्याकुल हो जाते हैं। फिर भी वृद्धावस्था में अपने जीवन का कार्य-काल समाप्त कर और अपना कार्य-भार अपने उत्तराधिकारियों को सौंपकर जो सांसारिक चिंताओं से मुक्त होकर परलोक-गमन करते हैं, उनके लिए शोक होने पर भी मन में सांत्वना का यह एक भाव अवश्य आ जाता है कि उन्होंने अपने ऐहिक जीवन के समस्त कर्त्तव्यों को पूर्ण कर लिया था। उनके लिए कोई विशेष कर्त्तव्य नहीं रह गया था। अपने जीवन में उन्हें जो कुछ करना था, उसे वे कर चुके थे। ऐसे लोगों की स्मृति में एक गौरव का भाव भी रहता है। उससे अन्य लोगों को कर्त्तव्य की एक प्रेरणा भी प्राप्त होती है। परन्तु जब थोड़ी अवस्था में किसी की मृत्यु हो जाती है, तब शोक की सीमा नहीं रहती। विश्व के किसी भी कर्म-क्षेत्र में सफलता प्रौढ़ावस्था की अनुभूति पर निर्भर रहती है। सफलता का पथ-प्रदर्शन प्रौढ़ावस्था की अनुभूति ही कर सकती है। तारुण्य में दीप्ति रहती है, उत्साह रहता है, कार्य की क्षमता भी रहती है। पर सफलता के लिए प्रौढ़ावस्था की एक विशेष अनुभूति की आवश्यकता होती है। यह सच है कि सन् १९२८ में इंडियन प्रेस का समस्त भार लेकर स्वर्गीय बाबू हरिकेशव घोष ने उसे उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। परन्तु अभी उनका कर्त्तव्य-काल पूर्ण नहीं हुआ था। इंडियन प्रेस के संचालन और व्यवस्था में उनकी प्रौढ़ावस्था की अनुभूति की विशेष आवश्यकता थी। इसी से उनके आकस्मिक देहावसान के कारण इंडियन प्रेस की ही नहीं, हिन्दी-साहित्य-जगत् की भी अपार क्षति हुई है। उसकी पूर्त्ति सहसा नहीं हो सकती। इसी से उनके देहावसान का समाचार सुनकर उनके आत्मीय और आश्रित-जनों को ही नहीं, सभी साहित्य-प्रेमियों को दुख हुआ।

यह एक संयोग की बात है कि सन् १९२० में अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री हरिपद घोष के निधन पर जब श्री हरिकेशव घोषजी ने इंडियन प्रेस का संचालन-भार लिया, तब मुझे 'सरस्वती' के संपादन-विभाग में काम करने का अवसर मिला। मेरा साहित्य-जीवन प्रारंभ से ही उनके साथ संबद्ध हो गया। सन् १९२८ के अंत में जब मैं इलाहाबाद छोड़कर चला आया, तब कितने ही वर्षों तक मुझे इंडियन प्रेस देखने का अवसर ही नहीं मिला। यह सच है कि इलाहाबाद छोड़ देने पर भी इंडियन प्रेस से मेरा संबंध बना ही रहा। समय-समय पर इंडियन प्रेस का कोई-न-कोई काम मैं करता ही रहता था। इंडियन

प्रेस की जबलपुर शाखा से मेरा विशेष संबंध था। इसी से मुझे इलाहाबाद आने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती थी। पर इंडियन प्रेस की जो निरंतर उन्नति होती जा रही थी, उससे मैं अपरिचित नहीं था। 'सरस्वती' और 'बाल-सखा' के अतिरिक्त 'देशदूत' और 'मंजरी' का प्रकाशन भी इंडियन प्रेस से हुआ। साहित्य के क्षेत्र में इन दोनों ने एक ख्याति प्राप्त कर ली। जब सरस्वती पुस्तक-माला के नाम से नव-साहित्य-निर्माण की योजना प्रकाशित हुई, तब मैं समझ गया कि इंडियन प्रेस का प्रकाशन-क्षेत्र कितना विस्तृत हो गया है। जबलपुर के अतिरिक्त अन्य प्रांतों के कितने ही नगरों में उसकी शाखाएँ खुल गई थीं। उन सबसे उसकी असाधारण उन्नति के संबंध में मैंने अनुमान कर लिया था। पर दो ही वर्ष पहले जब बाबू हरि-केशव घोष की एकमात्र कृपा से मुझे 'सरस्वती' में काम करने का फिर अवसर मिला, तब इलाहाबाद जाकर मैं न तो इंडियन प्रेस को ही पहचान सका और न उसके संचालक बाबू हरिकेशव घोष को। दोनों में बड़ा विलक्षण परिवर्त्तन हो गया था। परन्तु इंडियन प्रेस की इस आश्चर्यजनक वृद्धि को देखकर मुझे जितना विस्मय हुआ, उतनी ही वेदना बाबू हरिकेशव घोष को श्री-हीन देखकर हुई। जरा की जीर्णा-वस्था तो मुझमें भी आ गई है। एक वर्ष तक मैं भी रोग से ग्रस्त था। पर बाबू हरिकेशव घोष में तो तारुण्य की अपूर्व दीप्ति देखकर मैंने सन् १९२८ में इलाहाबाद छोड़ा था। मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि इंडियन प्रेस की इस अपूर्व श्रीवृद्धि में उनकी उस अपूर्व श्री का ह्रास हो गया है। मैं तो उन्हें देखकर क्षण भर अवाक् रह गया। उन्होंने मुझे देखकर पूछा—'अब तो आप अच्छे हैं?' मैंने कहा—'मैं तो अब अच्छा हूँ। पर आपकी....?' उन्होंने बात काटकर कहा—'मैं तो रोगग्रस्त होकर काफी कष्ट पा चुका हूँ। अब कुछ अच्छा हूँ। पर रोग से अभी मुक्ति नहीं हुई है।' फिर उन्होंने अपनी चर्चा छोड़कर तुरन्त ही 'सरस्वती' की चर्चा आरंभ कर दी। उन्होंने कहा—'मैं तो 'सरस्वती' की उन्नति के लिए सब कुछ करने को तैयार हूँ। सामग्री आप दीजिए। उसके प्रकाशन और प्रचार का भार मुझ पर है। जिस प्रकार 'सरस्वती' की सर्वांगीण उन्नति हो, वही आप प्रयत्न कीजिए। मैं अपनी ओर से उसके प्रकाशन और प्रचार के लिए अच्छी से अच्छी व्यवस्था कर दूँगा।'

मैं दो-चार दिनों तक इलाहाबाद में रुका रहा। प्रेस में उनसे फिर भेंट हुई। उसके बाद मैं चला आया। दो वर्षों से मैं 'सरस्वती' का काम अपनी इच्छा के अनुसार करता आया। उनकी ओर से मुझे पूर्ण स्वाधीनता थी। मुझे सभी प्रकार की सुविधाएँ उनसे प्राप्त हो गई थीं। मैं गत अप्रैल में जबलपुर से इलाहाबाद जाने के लिए निश्चय कर चुका था। मैं समझता था कि तब तक वे पूर्ण स्वस्थ होकर कलकत्ते से लौट आवेंगे। सहसा जबलपुर में इंडियन प्रेस की शाखा के मैनेजर बाबू रामानुजलाल श्रीवास्तव से मुझे सूचना मिली कि कलकत्ते में उनका देहा-वसान हो गया। मैं तो सुनकर स्तब्ध हो गया। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो मैं अपना कोई अव-लम्ब खोकर निश्चेष्ट हो गया हूँ।

विश्व की रंगभूमि में जीवन की जो चिरंतन लीला हो रही है, उसका प्रारंभ जैसे अज्ञेय है, वैसे ही अंत भी अत्यन्त रहस्यमय है। हम सभी लोग न जाने किस अज्ञात सूत्रधार के निर्देश से

अपने-अपने जीवन-नाटक की विभिन्न लीलाओं में व्यस्त रहते हैं। जीवन की कथा सदैव अपूर्ण ही रहती है। जब मृत्यु आती है, तब वह अपने साथ न जाने कितनी अपूर्ण कामनाएँ, लालसाएँ, आशाएँ, चिंताएँ और वेदनाएँ ले जाती है। किसी भी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि अब जीवन का ध्येय पूर्ण हो गया, अब कोई चिंता नहीं रही, अब कोई आशा नहीं रही।

कहा जाता है कि सभी मनुष्य अपने भाग्य के विधाता होते हैं। वे अपनी ही शक्ति से, अपने ही पौरुष से, अपने ही उद्योग से जीवन में सफलता प्राप्त करते हैं। परन्तु यह देखा जाता है कि किसी एक के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव के कारण हम लोगों के जीवन की गति निर्दिष्ट होती है। स्वर्गीय बाबू हरिकेशव घोष की गणना भी ऐसे ही लोगों में की जा सकती है, जिनके साथ मेरे समान कितने ही लोगों का जीवन विशेष रूप से संबद्ध था। उनके चले जाने पर हम सभी लोग ऐसा अनुभव कर रहे हैं, मानो हम लोगों का एकमात्र आधार ही विलुप्त हो गया है, मानो हम निराश्रय हो गए हैं, मानो हमारी जीवन-गति ही अवरुद्ध हो गई है।

आधुनिक युग में प्रेस ने एक बड़ी शक्ति उत्पन्न कर दी है। पाश्चात्य देशों में तो उसने जीवन के सभी क्षेत्रों में एक क्रांति कर दी है। एक व्यवसाय का रूप धारण करने पर भी उसने एक ऐसी शक्ति उत्पन्न कर दी है जिसके सम्मुख अन्य शक्तियाँ हीन हो गई हैं। लोक-शिक्षा के प्रचार के साथ लोक-मत का निर्माण कर उसने जनतंत्र पर सबसे बड़ा प्रभाव डाला है। सच पूछिए तो पाश्चात्य देशों में वही लोकतंत्र का नियंता हो गया है। उसका क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि मनुष्य के समस्त कर्म-क्षेत्र को उसने आच्छन्न कर रखा है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जिसकी प्रेरणा का मूल स्रोत उससे उद्‌गत न होता हो। भारतवर्ष में आज जिस नव-युग का उदय हुआ है, उसका मुख्य कारण उस नव-साहित्य का निर्माण है, जिसने नवयुग के संदेश को गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचाया है। राजनीति के क्षेत्र में भारत ने जो स्वाधीनता प्राप्त की है, उसके मूल में साहित्य की ही शक्ति विद्यमान है। स्वाधीनता की रक्षा भी तभी संभव है, जब हम अपनी बौद्धिक पराधीनता को दूर कर अपनी भाषा और साहित्य का स्वराज्य निश्चित कर लेंगे। राष्ट्र के उत्थान में प्रेस सबसे बड़ा काम करता है। उसकी उचित व्यवस्था और संचालन से सभी साहित्यकारों का एक संगठन हो जाता है। उन सबकी विच्छिन्न शक्तियाँ एक निश्चित उद्देश्य के लिए एकत्र होकर काम करने लगती हैं। यह सच है कि व्यवसाय के रूप में वह अन्य व्यवसायों से कम लाभप्रद नहीं है। कितने ही लोगों ने अल्प साधनों से प्रकाशन का कार्य आरंभ कर अच्छी सफलता प्राप्त कर ली है। परन्तु साहित्य की व्यावसायिक सफलता पर राष्ट्र की नव-चेतना-शक्ति का विकास निर्भर रहता है।

साहित्य का व्यवसाय एकमात्र अर्थोपार्जन का साधन नहीं है। वह ज्ञान के पथ को सुगम बनाता है, वह लोक-जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव डालता है। एक-एक व्यक्ति के मानसिक विकास के साथ वह समस्त राष्ट्र की मानसिक उन्नति में सचेष्ट रहता है। उसी के द्वारा लोक-रुचि का परिष्कार होता है। उसी के द्वारा समाज और राष्ट्र में उन्नति अथवा अवनति के भी ऐसे बीज बो दिए जाते हैं, जो वृक्ष-रूप में परिणत

होकर किसी राष्ट्र के गौरव या अधःपतन के कारण बन जाते हैं। अतएव प्रेस के संचालकों पर कम उत्तरदायित्व नहीं रहता।

यह केवल संयोग की बात नहीं है कि इंडियन प्रेस ने एकमात्र व्यवसाय की दृष्टि से 'सरस्वती' का प्रकाशन आरंभ किया। हिन्दी भाषा और साहित्य की सर्वांगीण उन्नति की कामना से प्रेरित होकर उसका प्रकाशन आरंभ हुआ और गत ५३ वर्षों से हिन्दी के क्षेत्र में वह एक निश्चित उद्देश्य से अपने पथ पर बराबर अग्रसर होती जा रही है। प्रायः सभी श्रेष्ठ साहित्यकारों का संपर्क 'सरस्वती' के साथ रहा है। नव-प्रतिभा के उन्मेष में 'सरस्वती' ने सबसे बड़ा काम किया। साहित्य का ऐसा कोई भी अंग नहीं है, जिसके लिए 'सरस्वती' में स्थान नहीं था।

यह सच है कि 'सरस्वती' के सौभाग्य से उसके प्रारंभिक काल में उसका संपादन-भार आचार्य द्विवेदीजी पर आया। उनमें संपादन की विलक्षण योग्यता थी। अठारह वर्षों के भीतर द्विवेदीजी ने 'सरस्वती' के द्वारा हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में एक नए युग का निर्माण कर दिया। परन्तु उनके बाद 'सरस्वती' की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण बनाए रखना साधारण बात नहीं थी। 'सरस्वती' का संपादन-भार लेकर मेरे समान साधारण लेखक अनायास गौरव स्वयं पा सकते थे। परन्तु एकमात्र अपनी योग्यता के द्वारा 'सरस्वती' की प्रतिष्ठा बढ़ाना उनकी शक्ति के बाहर की बात थी। यही कारण है कि १९२१ में जब द्विवेदीजी 'सरस्वती' के संपादन-कार्य से विरत हुए, तब उसकी उन्नति का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व संचालक पर आ गया। तब 'सरस्वती' द्विवेदीजी की 'सरस्वती' न होकर इंडियन प्रेस की 'सरस्वती' हो गई। उसकी उन्नति में सम्पादक की योग्यता नहीं, संचालक की क्षमता मुख्य थी।

मुझे अच्छी तरह याद है कि सन् १९२१ में जनवरी का अंक निकालने के समय मुझे कितनी घबराहट थी। द्विवेदीजी के हटते ही 'सरस्वती' के कितने ही लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक 'सरस्वती' से हट गए। उस समय चालीस पृष्ठों में 'सरस्वती' का प्रत्येक अंक निकलता था। मैंने यह सोचा कि जनवरी के नए अंक में कम से कम एक सौ बीस पृष्ठ दिए जायँ। पंडित देवीदत्त-जी शुक्ल ने भी मेरे इस विचार का समर्थन किया। यह बात नहीं थी कि मैं बिलकुल चिंतामुक्त होकर काम कर रहा था। परन्तु पटल बाबू ने हम लोगों को बड़ा प्रोत्साहन दिया। संयोग-वश उसी समय इंडियन प्रेस में हड़ताल हो जाने के कारण 'सरस्वती' को ठीक समय में निकालना असंभव हो गया। द्विवेदीजी के संपादन-काल में 'सरस्वती' सदैव ठीक समय पर प्रकाशित होती थी। उनके हटते ही 'सरस्वती' का विलम्ब से प्रकाशित होना मेरे लिए कम दुर्भाग्य की बात नहीं थी। मैं तो बिलकुल घबरा गया। परन्तु पटल बाबू ने आकर कहा कि मैं काली बाबू तथा अन्य एक व्यक्ति की सहायता से ही 'सरस्वती' के जनवरी अंक को निकाल ही दूँगा। एक सौ बीस पृष्ठों के स्थान में अस्सी पृष्ठ प्रकाशित करने की व्यवस्था की गई। कम्पोजिंग से लेकर छपाई और सिलाई तक का काम पटल बाबू ने प्रेस के उन्हीं दो-चार लोगों की सहायता से कर डाला। 'सरस्वती' का अंक कुछ विलंब से अवश्य निकला, परन्तु वह एकमात्र पटल बाबू के दृढ़ निश्चय और उद्योग का फल था। उस समय भी वे प्रेस के सभी कामों में इतने दक्ष थे कि मैं उनकी विलक्षण

कार्य-दक्षता को देखकर चकित हो गया। जनवरी का वह अंक उनकी असाधारण कार्य-क्षमता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

प्रेस को उन्नतावस्था में ले जाने के लिए पटल बाबू के समान असाधारण क्षमता-सम्पन्न लोगों की ही आवश्यकता होती है। पटल बाबू में जितना बुद्धि-कौशल था, उतनी ही कार्य-क्षमता भी थी। प्रेस में उनसे अधिक परिश्रम कदाचित् कोई नहीं कर सकता था। प्रेस-संबंधी विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्होंने योरप-यात्रा की। योरप से लौटकर उन्होंने प्रकाशन के क्षेत्र को खूब विस्तृत किया। साहित्य के प्रति अनुराग होने के कारण उन्होंने सदैव उच्च कोटि का साहित्य निर्मित कराया और उसी के प्रकाशन की व्यवस्था की। इसी से थोड़े ही दिनों में उन्होंने इंडियन प्रेस को खूब समुन्नत किया। प्रेस के अतिरिक्त वे अन्य कितनी ही व्यावसायिक संस्थाओं को स्थापित कर उनके कार्यों को सुचारु रूप से चलाने में सचेष्ट रहते थे। फिर भी उन्हें 'सरस्वती' के प्रति इतना अनुराग था कि वे उसके नए अंकों को प्रकाशित होने के बाद अवश्य देख लेते थे और एक आलोचक की तरह यदि किसी नए लेखक की रचना में कोई नवीनता या विशेषता देखते, तो उसके संबंध में पूछते भी थे। पंतजी की रचनाएँ जब 'सरस्वती' में पहले-पहल प्रकाशित हुईं, तब उन्होंने उनको ध्यानपूर्वक पढ़ा। आख्यायिका-लेखकों में इलाचन्द्रजी जोशी ने उनके ध्यान को आकृष्ट किया था। जब जोशीजी की पहली कहानी 'परदेशी' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई, तब उन्होंने उसे पढ़कर उसकी शैली की प्रशंसा की। हिन्दी-साहित्य का विशेष ज्ञान न होने पर भी उनमें हिन्दी-साहित्य के प्रति इतना अनुराग था कि वे किसी भी लेखक के गुण-गौरव को अच्छी तरह परख लेते थे।

पटल बाबू की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे किसी के भी कार्य में व्यर्थ हस्तक्षेप नहीं करते थे। संपादकों को अपने कार्य में पूर्ण स्वाधीनता थी। परन्तु यह बात नहीं थी कि वे किसी भी काम की ओर कभी उदासीन या विरक्त होते थे। किसी तरह की त्रुटि उन्हें असह्य थी। वे चाहते थे कि सभी लोग अपने-अपने कार्यों में सचेष्ट रहें। वे कभी नहीं चाहते थे कि लेखों के प्रूफ आने पर उनमें विशेष संशोधन किए जावें। संपादकों को जो कुछ संशोधन करना होता था, उसे वे मूल लेख में ही करते थे। यदि भूल से कोई असंशोधित भाग रह जाता था और प्रूफ पर वह संशोधित किया जाता था, तो वे विशेष रुष्ट होते थे। उनकी एक विशेषता यह भी थी कि वे प्रेस के किसी कर्मचारी को सहसा काम से अलग नहीं करते थे। अपनी इच्छा से कोई भले ही इंडियन प्रेस को छोड़कर चला जाय, पर एक बार नियुक्त हो जाने के बाद लोगों को अपने कार्य के स्थायित्व पर संदेह नहीं रहता था। इसी से मैंने इंडियन प्रेस के किसी भी विभाग में कार्य की शिथिलता का अनुभव नहीं किया। सच तो यह है कि जब मैं पहली बार इंडियन प्रेस में गया, तब मैनेजर साहब की अनुपस्थिति में भी सभी लोगों को यंत्रवत् काम करते देख बड़ा चकित हो गया था। कुछ ही समय काम करने के बाद हम लोगों को इंडियन प्रेस का प्राचीन भवन छोड़कर कर्नलगंज के एक बँगले में काम करना पड़ा। इंडियन प्रेस के प्राचीन भवन को और उसकी प्रायः सभी सामग्रियों को इलाहाबाद के विश्व-विद्यालय ने खरीद लिया था। उस समय

'सरस्वती' का काम बड़ा अव्यवस्थित-सा हो गया था। 'सरस्वती' को छापने की व्यवस्था बेलवेडियर प्रेस में हुई। मैनेजर साहब एक जगह रहते थे और हम लोग दूसरी जगह। ब्लाकों की कोई व्यवस्था नहीं थी। ऐसी स्थिति में 'सरस्वती' को ठीक समय पर निकालना बड़ा दुष्कर प्रतीत होता था। परन्तु पटल बाबू ने ऐसी सुन्दर व्यवस्था कर दी कि सभी काम अनायास होने लगे। न चित्रों के लिए कभी चिंता करनी पड़ी और न अन्य किसी बात के लिए। १९२९ तक इंडियन प्रेस का पुनर्निर्माण भी हो गया और उसका काम पहले से कहीं अधिक विस्तृत और उन्नत हो गया। 'सरस्वती' का बड़ा से बड़ा विशेषांक निकालने में भी हमें कोई कठिनता नहीं होती थी।

आधुनिक हिंदी-साहित्य के क्षेत्र में 'सरस्वती' का एक विशेष स्थान अवश्य है। यदि एकमात्र व्यवसाय की दृष्टि से 'सरस्वती' का प्रकाशन होता, तो संभव है हिन्दी की अन्य कितनी ही पत्रिकाओं की तरह वह भी इतने वर्षों तक हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि में काम न कर पाती। हिन्दी भाषा का प्रचार समस्त देश में होने पर भी हिन्दी-भाषा-भाषियों में अभी तक श्रेष्ठ साहित्य के प्रति इतना अनुराग नहीं उत्पन्न हुआ है कि एकमात्र पाठकों के आश्रय पर कोई पत्र जीवित रह सके। हिन्दी में कितने ही पत्र प्रकाशित हुए और कुछ समय के बाद आर्थिक कारणों से उनका प्रकाशन बंद हो गया। पत्रों को ठीक समय पर निकालना भी कठिन हो जाता है। अभी तक कितने ही पत्रों को दो-दो अंकों का एक संयुक्त अंक निकालना पड़ता है। 'सरस्वती' के लिए यह कम गौरव की बात नहीं है कि गत ५३ वर्षों में कठिन परिस्थितियों में भी कभी ऐसा अवसर नहीं आया कि उसका कोई संयुक्त अंक प्रकाशित हुआ हो। लेखकों के प्रति भी पटल बाबू ने उदारता का ही व्यवहार किया। यह तो सच है कि अभी तक जो लेखक व्यवसाय के रूप में साहित्य को स्वीकार करते हैं, उन्हें अपने जीवन-निर्वाह में कठिनता अवश्य होती है। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में अभी तक सेवा का जितना भाव काम कर रहा है, उतना अर्थ-सिद्धि का नहीं। फिर भी संकटग्रस्त लेखकों को सहायता देने में पटल बाबू ने अपने हृदय की उदारता प्रकट की। मुझ पर तो उनका सदैव कृपा-भाव रहा। मैं एक बार 'सरस्वती' का काम छोड़कर चला गया और फिर एक वर्ष के बाद चला आया। मैंने फिर काम छोड़ा और फिर उन्होंने मुझे काम करने का अवसर दिया। बीमार पड़ जाने पर मेरे लिए उन्होंने स्वयं आकर चिकित्सा की व्यवस्था की। आर्थिक सहायता भी मुझे मिली। अपने संपादन-काल में मैंने उनसे प्रार्थना कर कई लेखकों को यथेष्ट अग्रिम पुरस्कार दिलवाये। पारिश्रमिक के संबंध में जब उनसे बातें हुईं, तब उन्होंने कहा कि मैं जानता हूँ कि ऐसे भी लेखक हैं, जिनकी रचना के लिए सौ रुपए भी कम हैं। परन्तु ऐसी भी रचनाएँ हैं, जो तीन रुपए में भी महँगी हैं। मैं लेखकों के पारश्रमिक के संबंध में कोई नियम निश्चित नहीं करना चाहता। आप यही देखिए कि किसी लेखक के साथ अन्याय न हो।

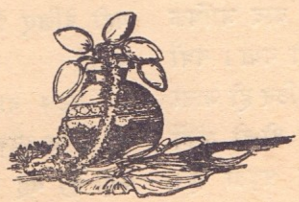
पटल बाबू चले गये और अपनी कीर्त्ति का गौरव छोड़ गए। जीवन की सच्ची सफलता कहाँ है, यह कहना बड़ा कठिन है। संसार में हम जो कुछ छोड़ जाते हैं, उसी को देखकर लोग हमारे जीवन का मूल्य निर्दिष्ट करते हैं। संसार

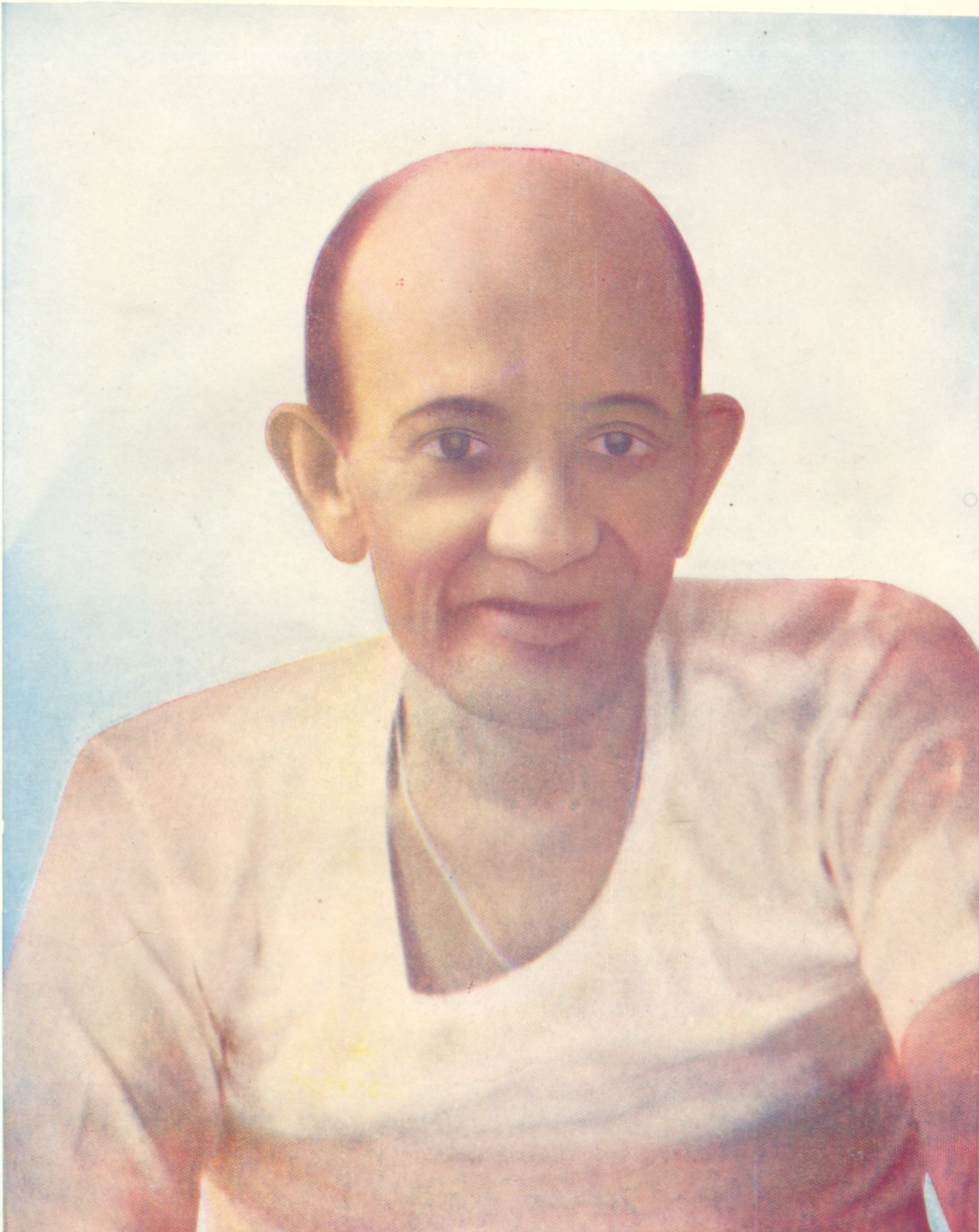
में ऐश्वर्य का जो विशाल सदन निर्मित होता है या प्रभुत्व का जो गौरव स्थापित होता है, उसी के अनुसार साधारणतया लोग हमारे जीवन के गौरव को स्वीकार करते हैं और हमारी कीर्त्ति की महिमा विश्व में व्याप्त होती है। परन्तु एकमात्र ऐहिक गौरव के आधार पर ही जीवन का सच्चा मूल्य निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। मृत्यु तो ऐहिक ऐश्वर्य पर सबसे पहले आघात करती है। बहिर्जगत् के अतिरिक्त अन्तर्जगत् का जो गौरव होता है, वह अलक्षित होने पर भी जीवन की सच्ची महिमा का द्योतक होता है। स्नेह और उदारता, सेवा और त्याग की महिमा ऐश्वर्य या शक्ति के भव्य प्रदर्शन से भी कहीं अधिक है। उसी को हम अपने साथ ले जाते हैं। मृत्यु के लिए सांसारिक ऐश्वर्य का कोई मूल्य नहीं है। परन्तु वह अन्तर्जगत् के गौरव को नहीं नष्ट कर सकती। उसी में जीवन का सच्चा मूल्य है। पटल बाबू में जो स्नेह था, जो उदारता थी, जो सच्चा अनुराग था और सेवा का जो सच्चा भाव था, उसकी महिमा को वे लोग कभी नहीं भूल सकते, जो उनके संपर्क में आये हैं। उनके उस अन्तर्गौरव को जानकर कौन नतमस्तक होकर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित नहीं करेगा।

कृतज्ञता-ज्ञापन

'श्रद्धांजलि अंक' के आवरण तथा अन्य कुछ चित्रों के लिए सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री पी० मुकुर्जी, और फोटोग्राफी के लिए श्री शैलेन सेन के अतिरिक्त बँगला संस्मरणों के सम्पादन में श्री एन० जी० बागची और एस० एम० कर तथा अँगरेजी संस्मरणों के सम्पादन में सर्वश्री एन० जी० बागची, राम विशाल मिश्र तथा भगवतीनारायण माथुर का जो सहयोग हमें प्राप्त हुआ है, उसके लिए हम इन सबके प्रति अपना आभार प्रदर्शन करते हैं। इसी प्रकार उन समस्त लेखकों और कवियों के प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिनकी अमूल्य रचनाओं से यह अंक अलंकृत हो सका है।

स्थानाभाव के कारण न केवल अनेक कृपालु लेखकों के संस्मरण प्रकाशित करने में हम असमर्थ रहे, प्रत्युत कुछ संस्मरणों में हमें आवश्यक संशोधन करने पर भी विवश होना पड़ा। इस विवशता के लिए हम लेखकों के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं।





देहावसान से चार दिन पूर्व श्री हरिकेशव घोष

[फोटो : श्री ज्योतिप्रसाद घोष

बँगला-संस्मरण

হরিকেশব স্মরণে

শ্রীযোগেন্দ্রনাথ গুপ্ত

মৃত্যুরে করিয়া জয় গেছ বন্ধু চলি,
তোমারে স্মরিয়া দেই শ্রদ্ধার অঞ্জলি ॥

মৃত্যু মানুষের স্বাভাবিক পরিণতি। মানুষ তাহা জানে। তবু মানুষ সংসারকেই তাহার কর্ম্মক্ষেত্র মনে করে। এজন্য মানুষ মাত্রেরই যে কোন কর্ম্ম করা কর্ত্তব্য, তাহা ইহলোকেই যত সত্বর সম্ভব সম্পন্ন করিতে হইবে—এইরূপ চিন্তা করিয়া যাঁহারা কাজ করেন তাঁহারা জগতে বরণীয় হইয়া থাকেন। আমাদের প্রিয়বন্ধু প্রিয়দর্শন হরিকেশব বাবুর কথা ভাবিলে, তাঁহার জীবনী আলোচনা করিলে সকলই সত্য বলিয়া মনে হয়। কাজের ভিতরই তিনি দিনরাত ডুবিয়া থাকিতেন। 'শুভস্য শীঘ্রং' এই নীতিই ছিল তাঁহার আদর্শ। স্বনামধন্য পিতা চিন্তামণি ঘোষের যোগ্যপুত্র ছিলেন তিনি। পিতার নিকট হইতে যে শিক্ষা-দীক্ষা এবং মহত্বের ও সৌজন্যের অধিকারী হইয়াছিলেন—জীবনের শেষ মূহুর্ত্ত পর্য্যন্ত সেই সৌজন্য, সেই মধুময় হাসি এবং অসাধারণ ধৈর্য্য, সংযম ও সহিষ্ণুতার মধ্য দিয়াই—তিনি চলিয়া গেলেন অমর ধামে। যে জীবন শত শত জনের আশ্রয় ও অবলম্বন ছিল, তাহা অকালে মরণের বুকে ঢলিয়া পড়িল।

মৃত্যুর কিছুদিন পূর্ব্বে একদিন প্রত্যূষে বেলা আট বা নয়টার সময় তাঁহাকে দ্বিজেন্ বাবুর সহিত দেখিতে গিয়াছিলাম। বিষণ্ণ-মলিন মুখ। রোগজীর্ণ-ক্লান্তদেহ। তবু হাত দু'খানি যোড় করিয়া আমাকে নমস্কার করিয়া করুণস্বরে বলিলেন: 'যোগীন বাবু, এসেছেন দয়া করে দেখতে এসেছেন!' তাঁহার চোখ দু'টি ছল্ ছল্ করিয়া উঠিল, চোখ দিয়া জল পড়িতে লাগিল। ধীর স্থির কণ্ঠে কহিলেন: 'আমার হৃদ্‌রোগ হয়েছে!' সেকি আর্ত্তস্বর! আমি তাঁহাকে আশ্বাস দিলাম, বলিলাম—'মানুষের কতই না কঠিন ব্যাধি হয়, আপনিও ভাল হবেন।' একটু মলিন হাসি হাসিলেন! বেশীক্ষণ কথা বলিতে ডাক্তারের নিষেধ ছিল—তবু কত কথা বলিতে চাহিতেছিলেন—কিন্তু কথা ত শোনা হইল না। পূর্ব্বে যেমন আমাকে দেখিলেই আমার জন্য চা আনিতে চাকর বা বাহককে আহ্বান করিতেন—তেমনি সেদিনও বলিলেন 'যোগীন বাবুকে চা দেও'! বলিলেন: 'চা খেয়ে যাবেন, কিন্তু আবার আমাকে দেখে যাবেন।' দ্বিজেনবাবুকে বলিলেন, 'বিল্লি 'যোগীন বাবুকে চা দিতে বল।' আমার সহিত সেই তাঁহার শেষ দেখা। বলিলেন, 'দ্বিজেন আমার জন্য যে রকম সেবা ও যত্ন কচ্চে তার তুলনা হয় না।' ডাক্তার আসিবার সময় হইয়াছিল, অন্যঘরে বিষণ্ণ মনে চলিয়া আসিলাম। সকালে আসাতে

চা ও জলযোগের ব্যবস্থা করিলেন। আমি আশ্চর্য্য হইলাম—তাঁহার ব্যাধিকাতর দারুণ যন্ত্রণাগ্রস্ত শরীরেও সৌজন্যের অপূর্ব্ব মাধুর্য্য দেখিয়া কত কথাই না মনে পড়িল। ভাবিতেও পারিতেছিলাম না—তিনি এতই সহসা চলিয়া যাইবেন। মৃত্যু কখন আসে তাহার ত স্থিরতা নাই। দিন রাত্রি বা সময় কেহ বলিতে পারে না। সম্পূর্ণ আকস্মিক ভাবে হরিকেশববাবুর মৃত্যু আসিল। ৩রা চৈত্র ইংরাজী ১৭ই মার্চ্চ বেলা শেষে প্রায় চারিটার সময় তিনি সজ্ঞানে সম্পূর্ণ আকস্মিকভাবে পরপারে চলিয়া গেলেন। তখন তাঁহার প্রিয়জনেরা—প্রিয় ভ্রাতারা, বন্ধু, পত্নী, পুত্র সকলে কাছে থাকিতেও শেষ নিঃশ্বাস ফেলিবার সময় কেউ উপস্থিত ছিলেন না। সাধ্বী পত্নী শুধু দুমিনিটের জন্য কক্ষান্তরে গিয়াছিলেন। কন্যা মায়া পিতাকে 'রামকৃষ্ণ কথামৃত' পড়িয়া শুনাইতেছিল,—হঠাৎ উঃ অসহ্য যন্ত্রণা! 'Nurse, I am going' এই কথাই হইল তাঁহার শেষ কথা! অমনি শয্যায় ঢলিয়া পড়িলেন। সাধ্বী সহধর্ম্মিণী কাঁদিলেন, কন্যা চীৎকার করিয়া উঠিল 'বাবা! ও বাবা!' এত অল্প সময়ের মধ্যে তাঁহার জীবন দীপ নিবিয়া যাইবে কেহ তাহা ভাবিতেও পারে নাই! এমনি ভাবে অপরাহ্নের ম্লানালোকে সূর্য্যের শেষ বিদায়ের করুণ চাহনির সঙ্গে সঙ্গে তাঁহার প্রাণ নীরবে অমর লোকে অনন্তের পথে যাত্রা করিল। কে জানে কোন্ সে দেশ।

ভ্রাতারা, পুত্র ও অন্যান্য আত্মীয়-স্বজন, বন্ধুবান্ধব সকলে বেলা তিনটার সময়ও যাঁহাকে বেশ একটু ভাল দেখিয়া নিজ নিজ কার্য্যে গিয়াছিলেন, তাঁহারা যখন মৃত্যুর সংবাদ পাইলেন, সে কিরূপ বেদনাদায়ক হইয়াছিল, তাহা সহজেই বুঝিতে পারা যায়। নিত্যসঙ্গী কনিষ্ঠ ভ্রাতারা ও প্রিয়তম পুত্র কেহই সেই অশিব মুহূর্ত্তে নিকটে ছিলেন না। শেষ মুহূর্ত্তে ধর্ম্মতলায় তাঁহাদের নিজস্ব চির-আদরের ইণ্ডিয়ান প্রেসে তাঁহার শব আসিয়া পৌঁছিল রাত্রি সাড়ে দশটায়। তারপর নিমতলা শ্মশানভূমে সেই পবিত্র দেহ গভীর নিশীথে ভাগীরথীর তীরে চিতাভস্মে মিশিয়া গেল।

আজ কত কথা মনে পড়িতেছে, সেই প্রায় পঁচিশ বৎসর পূর্ব্বে দৈবক্রমে আমার হরিকেশব বাবুর সহিত পরিচয় হয়। আমি তখন ঢাকায় থাকিতাম, জগন্নাথ ইন্টার-মিডিয়েট কলেজে বাঙ্গালা ভাষার অধ্যাপনা করিতাম। 'বিক্রমপুরের ইতিহাস' বাংলা ১৩১৬ সালে প্রকাশিত হইয়া সাহিত্য-ক্ষেত্রে আমাকে সুপরিচিত করিয়াছিল। দুইটি বিষয়ের প্রতি আমার বিশেষ অনুরাগ ও আকর্ষণ ছিল,—ইতিহাস ও শিশু-সাহিত্য। আমি মনে ভাবিতাম ইংরাজীতে যেমন Book of Knowledge বা ছেলেদের বিশ্বকোষ আছে, বাঙ্গালা ভাষাতে কি তেমন কিছু করিতে পারা যায় না? আমার মনের মধ্যে এইরূপ একটা কল্পনা আসিবামাত্র—আমার নিজমনে কি কি বিষয়ে প্রবন্ধ থাকিবে, কিরূপ চিত্র থাকিবে, এসব বিষয়ে একটা সূচী প্রস্তুত করিয়া ফেলিলাম। কলিকাতার অনেক খ্যাতনামা প্রকাশকের নিকট বিষয়টি উত্থাপন করিলাম, কিন্তু কেহই সে বিষয়ে

উৎসাহ দিলেন না ; 'অসম্ভব' বলিয়া উড়াইয়া দিলেন। আমি নিরুৎসাহ না হইয়া এলাহাবাদ ইণ্ডিয়ান প্রেসের কর্তৃপক্ষের নিকট আমার উদ্দেশ্য জানাইয়া এক পত্র দিলাম। অথচ তাঁহাদের কাহারও সহিত আমার পরিচয় ছিল না। দু'তিন সপ্তাহের পর উত্তর আসিল। লিখিলেন—এইচ, কে, ঘোষ, জেনারেল ম্যানেজার। 'আমি শিশু-সাহিত্যের একান্ত অনুরাগী, আমি শীঘ্রই কলিকাতা যাইতেছি। আপনি কলিকাতা আসিলে সব বিষয়ে বিস্তারিত আলাপ-আলোচনা করিব এবং প্রকাশের দায়িত্ব সাদরে গ্রহণ করিব।' আমি বাহিরে ছিলাম, তাই পত্রের উত্তরে দেরী হইল। পত্রখানা পাইয়া আনন্দ ও উৎসাহে আমার হৃদয় পূর্ণ হইল। আমি এক নির্দ্দিষ্ট দিনে কলিকাতা আসার জন্য প্রস্তুত হইলাম এবং তাঁহার কলিকাতা আসিবার দু'তিন দিন পরেই কলিকাতা আসিলাম। তাঁহার সহিত প্রথম সাক্ষাৎ হইল ২২।১ কর্ণওয়ালিস্ ষ্ট্রীটে, তাঁহাদের বইয়ের দোকান 'ইণ্ডিয়ান পাবলিশিং হাউসে।' দ্বিজেন্দ্র বাবু আমাকে পরিচিত করিবার পূর্ব্বেই আমাকে বলিলেন, 'আপনি ত যোগেন্দ্র বাবু।' উত্তর দিলাম—'হাঁ।' আলাপ জমিল, চা ও জলযোগ হইল, হরিকেশব বাবু পান ভালবাসিতেন—জরদা সহকারে পান খাইতে খাইতে নানা আলাপ হইতে লাগিল। ঢাকার কথা, শিক্ষার কথা, পুস্তক ব্যবসায়ের কথা। আমি দেখিলাম প্রত্যেক বিষয়েই তাঁহার তীক্ষ্ণদৃষ্টি, এবং অল্প বয়সেই সব বিষয়ে অসাধারণ অভিজ্ঞতা। বয়শ তখন তাঁহার বড় জোর বত্রিশ তেত্রিশ বৎসরের বেশী নয়। দেখিলাম দিব্য গৌরবর্ণ, উজ্জ্বল দুইটি চক্ষু, প্রশস্ত ললাট, খর্ব্বকায়, কর্ম্মী সুপুরুষ। আমাদের অনেক কথা হইল,—আমাকে বলিলেন 'দোকানে বসে ত কথা হতে পারে না। কাল সন্ধ্যার পর আমাদের বৌ-বাজারের প্রেসে সব বিষয়ে আলাপ ও আলোচনা হবে, আপনার পরিকল্পনাও নিয়ে আসবেন। রাত্রিতে ওখানেই খাবেন। জানেন, আমি গভীর রাত্রি পর্য্যন্ত কাজ করি।'

তাহাই হইল। পরদিন রাত্রি আটটা হইতে প্রায় রাত্রি দেড়টা পর্য্যন্ত বিষয়-বিভাগ, চিত্র-সংখ্যা, আকার, পৃষ্ঠা-সংখ্যা, এবং কয় ভল্যুমে শেষ হইবে তাহা স্থির হইয়া গেল। বলিলেন, 'কাজ আরম্ভ করতে কিন্তু বেশ দেরী হবে, অন্ততঃ চার পাঁচ মাস। আমাকে নূতন করে টাইপ, সাজ-সরঞ্জাম সব তৈরী করে নিতে হবে—আপনি অন্ততঃ ৪।৫ সংখ্যার মত পাণ্ডুলিপি তৈরী করে ফেলুন। আমাকে একাজ ক'রতে হলে নিশ্চিন্ত মনে করতে হবে।' আরও অন্যান্য বিষয়েও আলাপ আলোচনা হইল। পরদিন টাইপকরা আট-পৃষ্ঠাব্যাপী এক পরিকল্পনা পাইলাম, প্রত্যেক বিষয়ের খুঁটিনাটি লেখা। আশ্চর্য্য হইলাম, তাঁহার কর্ম্মনৈপুণ্যে।

আমি সন্তুষ্টমনে পরম উল্লসিত চিত্তে ঢাকা ফিরিলাম। তারপরে নামকরণের ভার পড়িল আমার উপর, কি নাম দেওয়া হইবে। বিশ্বকবি রবীন্দ্রনাথকে আমাদের উদ্দেশ্য জানাইয়া পত্র দিলাম, সঙ্গে সঙ্গে উত্তর আসিল—কবি লিখিলেন নাম রাখ 'শিশু-ভারতী'! আর সাদরে আমাকে তাঁহার সঙ্গে দেখা করিবার জন্য খড়দহ আহ্বান করিলেন। কবিগুরু তখন খড়দহে

থাকিতেন। সে শুভ দিনে সাক্ষাতের সময় রবীন্দ্রনাথ আমাকে বলিয়াছিলেন—'দেখ, খুব বড় কাজে হাত দিয়েছ, পারবে ত? তবে তোমাকে বলতে পারি, চিন্তামণি বাবুর ছেলেরা যখন ভার নিয়েছেন, তখন সে দিকে ভাবনা করো না, তোমার দিক্ দিয়ে আমার আশঙ্কা হয় বাঙ্গলা দেশে এত বিভিন্ন বিষয়ের লেখক পাবে ত? ওহে, আমিও ভেবেছিলাম, শান্তিনিকেতন থেকে এরকম একটা বিশ্ব-বিদ্যা-সংগ্রহ বের করবো, কিন্তু তা'ত আজও হয়ে উঠলো না!' অবশ্য এখন তাহা হইয়াছে। কবির আশী-র্ব্বাদ নিয়া কলিকাতা ফিরিলাম।

যেদিন 'শিশু-ভারতী'র প্রথম সংখ্যা প্রকাশিত হইল, সেদিন হরিকেশব বাবুর ও আমার আনন্দের ও উৎসাহের পরিসীমা ছিল না। কয়েক বৎসর হইল 'শিশু-ভারতী' দশ খণ্ডে ৪০০০ পৃষ্ঠায় সম্পূর্ণ হইয়াছে—কিন্তু এজন্য যদি কাহাকেও আন্তরিক ধন্যবাদ দিতে হয় সে ধন্যবাদ ছিল তাঁহারই প্রাপ্য। আমি এ প্রসঙ্গে একটা কথা বলি—আমাকে তিনি জানিতেন না, আমার এমন কেহ মুরুব্বি ছিল না যিনি এত বড় ব্যাপারে আমাকে উৎসাহ ও সাহায্য করিতে পারিতেন! একজন অপরিচিত ব্যক্তির একটা পরিকল্পনা লইয়া লক্ষাধিক টাকা ব্যয় করা কি সহজ ছিল? কয়জনে তাহা পারিতেন? কতজনে তাঁহাকে এইরূপ কাজের দায়িত্ব লইতে বাধা দিয়াছে, আমার সম্বন্ধেও নানারূপ বিরূপ সমালোচনাও করিয়াছে, কিন্তু তিনি কিছুতেই বিচলিত হন নাই—বিরুদ্ধবাদীদের বলিতেন—'যোগীন্ বাবু পারবেন, আমি মানুষ চিনি',—তাঁহার এইরূপ দৃঢ় বিশ্বাস ও সহানুভূতির জন্যই আমি এত বড় বিরাট কাজের দায়িত্ব লইয়া সম্পন্ন করিতে পারিয়াছি।

দৃঢ়চেতা পুরুষ ও বলিষ্ঠ প্রকৃতির মানুষ ছিলেন হরিকেশব বাবু। যে বিষয়টি করণীয় বলিয়া মনে করিতেন, তাহা করিতে কখনও পরাঙ্মুখ হইতেন না। আমি 'শিশু-ভারতী' মুদ্রণ ও প্রকাশোপলক্ষে চার পাঁচ বৎসর কাল এলাহাবাদে ছিলাম। সে কয় বৎসর আমি তাঁহাদের পরিবারের একজনই হইয়া ছিলাম, এখনও তাহাই আছি। আমার খাওয়া-দাওয়া, চলা-ফেরা, থাকা, সব বিষয়েই ছিল তাঁহার অখণ্ড মনো-যোগ। এলাহাবাদের সেই স্মৃতিকথা মনে পড়িলে আজ বেদনায় হৃদয় ব্যথিত হয়। প্রতিদিন সন্ধ্যার সময় পণ্ডিত নয়নচন্দ্র মুখোপাধ্যায়, হরিকেশব বাবুর ভ্রাতারা, অন্যান্য বন্ধুবান্ধব এবং লোকজন আসিতেন। অধিকাংশই নানাস্থানের অধ্যাপক এবং উচ্চপদস্থ ব্যক্তি। হরিকেশব বাবুর শ্বশুর পরমপণ্ডিত সুরেন্দ্রদেব মহাশয় আসিতেন—আনন্দে, গল্পে ও হাস্য-কৌতুকে দিন কাটিত! সেই সব রমণীয় সন্ধ্যার কথা মনে পড়ে!

এত বড় প্রেস, শত শত কর্ম্মচারী খাটিতেছে, ছোট বড় সকলে তাঁহার সঙ্গে আপনাদের অভাব-অভিযোগ এবং প্রয়োজনীয় ও অপ্রয়োজনীয় সকল বিষয়ে আপনাদেরই পরম-হিতৈষী-বন্ধুজ্ঞানে তাঁহার কাছে নিবেদন করিত। কোন শঙ্কা বোধ করিত না। আমি দেখিয়াছি, সকলের আবেদন ও নিবেদন মনোযোগ সহকারে শুনিতেন ও প্রতিকার করিতে

যত্নবান হইয়া তাহা সম্পন্ন করিতেন। একদিনও কোন কর্ম্মচারী, বাড়ীর দাস-দাসীর প্রতি রূঢ় ব্যবহার করিতে দেখি নাই, সকলের সহিতই হাসি মুখে মিষ্ট ব্যবহার করিতেন।

এলাহাবাদের, এক কথায় উত্তর প্রদেশের শিক্ষিত ও সম্ভ্রান্ত ব্যক্তি এমন কেহ ছিলেন না, যাঁহার সহিত না তাঁদের সৌহার্দ্দ ছিল। মালবিয় রোডের বিরাট ভবন অতিথি-অভ্যাগতদের জন্য মুক্ত ছিল। একবার পরলোকগত মহারাজা শ্রীশচন্দ্র নন্দী এলাহাবাদ আসিয়া তাঁহার আতিথ্য গ্রহণ করিয়াছিলেন,—অল্প সময়ের মধ্যে এমন সুন্দর সুবন্দোবস্ত, তীর্থ-দর্শন, নগর-ভ্রমণ ও প্রত্যেকটি কার্য্যে তাঁহাকে সাহায্য করিয়াছিলেন যে মহারাজা শ্রীশচন্দ্র বলিয়াছিলেন—'প্রবাসী বাঙ্গালীদের বাইরে এত সুনাম কেন জানেন, তার কারণ হরিকেশব বাবুর মত সজ্জনেরা আছেন বলিয়া', একথা যে কত বড় যথার্থ তাহা যাঁহারা তাঁহার সহিত পরিচিত ও সান্নিধ্যে আসিয়াছেন বা কোন দিন তাঁহাদের বাড়ীতে অতিথি হইয়াছেন তাঁহারাই জানেন।

মহৎ ও উদার ব্যক্তি ছিলেন হরিকেশব বাবুর পিতা চিন্তামণি বাবু, বাঙ্গালা সাহিত্যের প্রচারে ছিলেন উদ্যোগী এবং উৎসাহী—'প্রবাসী' পত্রিকা প্রথমে ইণ্ডিয়ান প্রেসেই স্বর্গত রামানন্দবাবুর সম্পাদনায় প্রকাশিত হইত; রবীন্দ্রনাথের গ্রন্থাবলীর যে শোভন ও সুন্দর সংস্করণ প্রকাশিত হইয়াছিল—তাতে চিন্তামণি বাবুর উৎসাহে ও উদ্যোগে এবং তরুণ যুবকদ্বয় হরিপদ ও হরিকেশব বাবুদের সহায়তায় ঐরূপ পরিপাটি মুদ্রণ ও বাঁধাই হইয়া শিক্ষিত সমাজের দৃষ্টি আকর্ষণ করিয়াছিল। চিন্তামণি বাবু শেষ জীবনে অন্ধ হইয়াছিলেন, সমুদয় বিষয়-কার্য্যের, গ্রন্থপ্রকাশ, মুদ্রাযন্ত্র পরিচালনা, হিসাব-নিকাশ, গ্রন্থকার নির্ব্বাচন, পরিচ্ছন্ন মুদ্রণ, সর্ববিষয় ভার দিয়াছিলেন যুবক হরিকেশবের উপর। 'প্রবাসী' পত্রের প্রথম সংখ্যার শেষ পৃষ্ঠায় কোরিয়ার বেগ গলায় ঝুলাইয়া যে তিন চারি বৎসরের বালকের চিত্র মুদ্রিত আছে, তাহা পটল বাবু—ওরফে হরিকেশব বাবুরই আলেখ্য।

বিদ্যালয়ে ও কলেজে মেধাবী ছাত্র ছিলেন হরিকেশব। বি, এস-সি ইঞ্জিনীয়ারিং বি, এইচ, ইউতে পড়িবার সময়ই ভবিষ্যৎ-দ্রষ্টা পিতা চিন্তামণি তাঁহাকে কলেজ হইতে ছাড়াইয়া আনিলেন, পুত্রকে বলিলেন !—'বিশ্ববিদ্যালয়ের উচ্চ উপাধি পাইলেই মানুষ বড় হয় না, তোমাকে আমি আমার এই বিশাল প্রতিষ্ঠানের দায়িত্ব অর্পণ করিতেছি।' পিতৃভক্ত পুত্র বিশ্ববিদ্যালয়ের উপাধি লাভের প্রলোভন ত্যাগ করিয়া পিতার আদেশ মাথায় তুলিয়া লইলেন। বিশাল সংসারের ও বিরাট প্রতিষ্ঠানের গুরুভার। ভাইয়েরা তখন সব ছোট, পিতা অন্ধ, কে দেখিবে এবং কাহাকে দিবেন এত বড় দায়িত্ব? যোগ্য পুত্র লইলেন সে ভার। প্রায় সাত লক্ষ টাকা মূলধন লইয়া ইণ্ডিয়ান প্রেসের সংস্কারে মনোযোগী হইলেন—এই হরিকেশবের অসাধারণ শ্রম, ধৈর্য্য, বিচক্ষণতা এবং অর্থ-নৈতিক জ্ঞানের ও সুষ্ঠু পরিচালনার ফলে আজ ভারতবর্ষের মধ্যে ইণ্ডিয়ান প্রেস লিঃ খ্যাতি অর্জ্জন করিয়াছে। চিন্তামণি বাবুর

মৃত্যুর পর দায়িত্ব আরও বাড়িল কিন্তু সুদক্ষ নাবিক যেমন ঝড় ঝঞ্ঝার প্রবল বিপ্লব ও তাড়নাকে উপেক্ষা করিয়া নির্ভীকভাবে তরী পরিচালনা করে—তেমনি জীবনের শেষ নিঃশ্বাস ফেলিবার পূর্ব্ব পর্য্যন্ত—হরিকেশব, হাল ধরিয়া ছিলেন। ছোট ভাইদেরও নিজের ইচ্ছামত, আদর্শমত শিক্ষা দীক্ষা দিয়া গড়িয়া তুলিয়া গিয়াছেন।

নির্লোভ, ভ্রাতৃবৎসল এবং স্বজনগণের সেবক ছিলেন—হরিকেশব বাবু! নিজের পরিবার-পরিজন, পুত্র-কন্যার কথা তিনি ভাবেন নাই, কিরূপ স্নেহ, বিশ্বাস ছিল ভ্রাতাদের প্রতি, একটা দৃষ্টান্ত দিই—বুঝিতে পারিয়াছিলেন—মৃত্যুদূত তাঁহার দুয়ারে আসিয়া হানা দিয়াছে, সংসারের কথা কি মানুষ না ভাবিয়া পারে? অবিবাহিতা কন্যাদের প্রসঙ্গে পত্নীকে বলিয়াছিলেন—'তোমার কোন দিকে ভাবনার কিছু নেই—আমার ভাইয়েরা আছে!' কত বড় স্নেহশীল এবং ভ্রাতাদের প্রতি অকপট বিশ্বাস না থাকিলে এমন কথা বলিতে পারিতেন। এমনি ছিল তাঁহার ভ্রাতৃপ্রেম।

হরিকেশব বাবুর ভ্রাতাদের সঙ্গে আজ পঁচিশ বৎসর যাবৎ মিশিয়া আসিতেছি। লক্ষ্য করিয়াছি তাঁহাদের 'মেজদাদার' প্রতি অসাধারণ শ্রদ্ধা ও ভক্তি। যে কোন বিষয়ই হউক না কেন, কি গ্রন্থ-প্রকাশ, কি পত্রিকা পরিচালন, কি ব্যবসায় বাণিজ্য সমস্ত বিষয়েই তাঁহারা 'মেজদাদার' কথা ও উপদেশ এবং চরম সিদ্ধান্তের উপর নির্ভর করিতেন। তাঁহার প্রতি প্রত্যেক ভাইয়ের যে কত বড় গভীর শ্রদ্ধা ও ভক্তি ছিল, তাহা প্রত্যক্ষ করিবার সুযোগ হইয়াছে বহুবার বহুকার্য্যে। বিশাল বটবৃক্ষের ছায়ায় যেমন লোকে ক্লান্ত ও তাপিত হইয়া বিশ্রাম করে, শান্তি লাভ করে, তেমনি প্রত্যেক ভাই তাঁহাদের 'মেজদাদার' স্নেহ-শীতল ছায়ায় নিশ্চিন্ত পরিবেশের মধ্যে বাস করিতেন। মনে পড়ে, ধুনি বাবু, হরিপ্রসন্ন, যখন—কয়েক বৎসর পূর্ব্বে জীবন সংশয় ব্যাধিতে আক্রান্ত হইয়াছিলেন, তখন সব কাজ ভুলিয়া কেমন করিয়া তাঁহাকে সুস্থ করিয়া তুলিবেন—সেজন্য স্নেহময়ী মাতার ন্যায় ভ্রাতা হরিপ্রসন্নের রোগ-শয্যার পাশে বসিয়া থাকিতেন। পথ্য, চিকিৎসা, সব বিষয়ের তত্ত্বাবধান করিতেন। 'মেজদা আছেন ভয় কি?' এই অক্ষয় কবচ ধারণ করিয়া এতদিন ভ্রাতারা চলিয়াছেন—আজ সেই আশ্রয়-তরু ঝঞ্ঝাহত।

হরিকেশব বাবুর চিকিৎসার জন্য যখন তাঁহাকে কলিকাতা আনা হইল, সে সময়ে সর্ব্বকনিষ্ঠ ভ্রাতা ভূষি বাবু—হরিভূষণ, ব্যস্ত হইয়া দ্বারে দ্বারে ছুটাছুটি করিতেন। কোথায় কোন্ অবধূত, তান্ত্রিক, সাধু, জ্যোতিষী আছেন, কোন দিক দিয়া যেন 'মেজদার' আরোগ্যের জন্য কোন ত্রুটী না হয়। হরিভূষণ আমাকে বলিতেন—'মেজদা, চুপ করে বসে থাকুন—ভাল হ'ন, তাহলেই আমাদের সব।' ভ্রাতাদের প্রতি যেমন ছিল তাঁহার অসীম স্নেহ ও বিশ্বাস ভ্রাতারাও তাঁহার মর্য্যাদা রক্ষা করিয়াছেন। হরিকেশববাবুর চিকিৎসার জন্য হাজার হাজার টাকা ব্যয় করিতে কুণ্ঠিত হন নাই। শুধু তাঁহারা বলিতেন—'মেজদা, তুমি কিছু ভেবোনা, তুমি ভাল হও।' হরিকেশব

বাবুর সম্বন্ধে আমি বিশেষ ভালই জানি, আত্মীয়স্বজনেরাও জানেন, নিজের স্বার্থ, নিজের সুখ সুবিধার কথা একদিনও তিনি ভাবেন নাই। এত বড় ছিল তাঁহার মহৎ হৃদয়।

১৯৩৪-৩৫ সালে বিলাত যান—ইউরোপের কোথায় কি ভাবে ছাপাখানার উন্নতি হইতেছে, কি নূতন যন্ত্র আবিষ্কৃত হইল, কিরূপ অল্প সময়ে অত্যধিক মুদ্রণ সম্ভব, প্রত্যেক বিষয়ে খুঁটিনাটির দিকে তাঁহার লক্ষ্য ছিল এবং বিলাত ও জার্ম্মেণী হইতে উৎকৃষ্ট যন্ত্রাদি ক্রয় করিয়া আনিয়া ইণ্ডিয়ান প্রেসের উন্নতি সাধন করিয়াছিলেন।

শ্রমশিল্পের উন্নতির জন্য ব্যবসায় বাণিজ্যের উন্নতির দিকে তাঁহার তীক্ষ্ণ দৃষ্টি ছিল—শীতলপুরের চিনির কারখানা আজ তাঁহাকে স্মরণীয় করিয়া রাখিয়াছে। বৈজ্ঞানিক যন্ত্রপাতি নির্ম্মাণ ও বিক্রয়, মুদ্রাযন্ত্র প্রস্তুতি ও তাহার সংস্কার—সর্ব্বদিকে সর্ব্ববিষয়ে তাঁহার ছিল সূক্ষ্ম দৃষ্টি।

অসাধারণ পরিশ্রমী ছিলেন হরিকেশব। দেখিয়াছি সকাল সাতটা হইতে বেলা একটা ও দুইটা এবং রাত্রি দশটা-এগারোটা পর্য্যন্ত শ্রম করিতে পরাঙ্মুখ হন নাই। কাজ-কাজ-কাজ, কাজের নেশাই ছিল তাঁহার জীবনের একমাত্র সঞ্জীবনী শক্তি বা প্রেরণা। গত বৎসর একটু সুস্থ হইয়াছেন। দেখা করিতে গিয়াছি, দেখিলাম, নানা কাগজপত্র ও হিসাব লইয়া বসিয়াছেন। আমি বলিলাম—'আপনি এই মাত্র সুস্থ হয়েছেন, একটু বিশ্রাম করুন।' হাসিয়া বলিলেন—'ঠিকই বল্‌ছেন যোগেন বাবু, কিন্তু কাজ ছাড়া যে এক মিনিট বসে থাক্‌তে পারি না।' আমি চুপ করিয়া রহিলাম। কর্ম্মীপুরুষ শেষ মূহুর্ত্ত পর্য্যন্ত কর্ম্মের অধিকারী হইয়াই চলিয়া গেলেন।

আমি এই দীর্ঘ পরিচয়ে একদিনের জন্যও তাঁহাকে চুপচাপ বসিয়া থাকিতে দেখি নাই। পড়াশুনা করিতে অত্যন্ত ভালবাসিতেন, কি বিজ্ঞান, কি দর্শন, কি ভ্রমণ ও আবিষ্কার, উপন্যাস, ইংরাজী, হিন্দী, বাঙ্গলা যে কোন ভাষায় উৎকৃষ্ট গ্রন্থ প্রকাশিত হইত, তাহাই তিনি পড়িতেন, কোন নূতন বইয়ের কথা বলিলে কিনিবার জন্য কর্ম্মচারীকে আদেশ দিতেন। পুস্তক প্রকাশ সম্বন্ধে তাঁহার বিচক্ষণতা ছিল অসাধারণ। লিখার দিকে ঝোঁক ছিল খুবই বেশী। বাঙ্গলা-সাহিত্যের প্রচারকল্পে তাঁহার উৎসাহ ও উদ্দীপনা দেখিয়াছি অদ্ভুত রকমের। কি অভিধান, কি বিজ্ঞান, কি উপন্যাস, কি শিল্প, কি রামায়ণ, মহাভারত, কি শিশু-সাহিত্য, কি সমালোচনা পুস্তক,—ইতিহাস, ভূগোল, সব বিষয়েই তাঁহার লক্ষ্য ছিল। গ্রন্থকারদিগকে সর্ব্বদা উৎসাহ দিতেন। তাঁহাদের প্রাপ্য অর্থ ত দিতেনই, এতদ্ব্যতীত যে কোন সময়ে প্রয়োজন উপলক্ষে অর্থ-সাহায্য করিতে কখনও তাঁহার মুখে 'না' কথা শুনি নাই।

এলাহাবাদের অনেক বাঙ্গালী দুঃস্থ পরিবারকে নিয়মিত ভাবে মাসিক অর্থ সাহায্য করিতেন। এবিষয়ে তাঁহার উদারতা দেখিয়া মুগ্ধ হইয়াছি। উত্তরপ্রদেশ বাসী, বিহারী, হিন্দু, মুসলমান কেউ তাঁহার কাছে প্রার্থী হইলে শূন্য হাতে

ফিরিয়া যাইত না পিতার বদান্যতা ও মহত্ত্ব প্রত্যেক পুত্রদের মধ্যেই অনুপ্রাণিত হইয়াছে।

বাঙ্গালাভাষা ও সাহিত্যের প্রতি একান্ত অনুরাগী ছিলেন, রবীন্দ্রনাথের কবিতা ও সঙ্গীত ছিল অত্যন্ত প্রিয়--কতদিন তাঁহাকে রবীন্দ্রনাথের কবিতা আবৃত্তি করিতে শুনিয়াছি, ভক্তিবিহ্বল চিত্তে। ইংরাজী সাহিত্যে তাঁহার বিশেষ জ্ঞান ছিল—ইংরাজী ভাষায় কথা বলিতে তাঁহার ছিল অসাধারণ নৈপুণ্য ; হিন্দী, উর্দ্দু তাঁহার মাতৃভাষা বলিলে কোনরূপ অত্যুক্তি হয় না। ধর্ম্ম বিষয়ে তাঁহার উদার মত ছিল এবং ঈশ্বর-বিশ্বাসী ছিলেন সর্ব্বতোভাবে, বাড়ীর প্রতিপালিত বিগ্রহের পূজা-পার্ব্বণ, ব্রত-নিয়ম, প্রত্যেক অনুষ্ঠানের প্রতিই তাঁহার সশ্রদ্ধ ভক্তিপূর্ণ ভাব ছিল। কথা-সাহিত্যের উন্নতির জন্য সাহিত্য-সম্মেলন প্রভৃতি উপলক্ষে সর্ব্বদা যেমন অর্থসাহায্য করিতেন, তেমনি আনন্দের সহিত তাহাতে যোগদান করিতেন। হরিকেশব বাবু বাঙ্গালা-সাহিত্যের উন্নতি কল্পে যে সকল গ্রন্থ প্রকাশ করিয়া গিয়াছেন—তাহা সর্বজন-বিদিত, নাম করিবার আবশ্যক করে না—রবীন্দ্রনাথ, শরৎচন্দ্র প্রভৃতির গ্রন্থাবলী হিন্দী ভাষায় অনুবাদ করাইয়া প্রকাশও তাঁহার এক অপূর্ব্ব কীর্ত্তি। জ্ঞানেন্দ্র দাসের 'বাঙ্গালা ভাষার অভিধান', হিন্দী সাহিত্যে 'সরস্বতী', 'বালসখা', প্রভৃতি পরিচালনা করিয়া যেমন যশস্বী হইয়াছেন, তেমনি ইংরাজীতে 'Orient' নামক সাপ্তাহিক ইংরাজী পত্রিকা প্রকাশও তাঁহাকে স্মরণীয় করিয়া রাখিবে।

পিতা মাতার প্রতি অসাধারণ ভক্তি ছিল হরিকেশব বাবুর। পিতা মাতার স্মৃতি-রক্ষাকল্পে সতত মনোযোগী ছিলেন। পিতার মহৎ আদর্শই তাঁহার জীবনকে মহিমান্বিত করিয়াছিল। পারিবারিক জীবনে তিনি সুখী ছিলেন। ভ্রাতাদের শ্রদ্ধা, ভক্তি, পত্নীর গভীর ভালবাসা, পুত্রকন্যাগণের ভক্তিপরায়ণতা, ভালবাসা, জামাতা ও আত্মীয়গণের প্রীতিপূর্ণ ব্যবহার তাঁহার জীবনকে সকল দিক্ দিয়াই সুখী করিয়াছিল। কিন্তু হায়রে, নিষ্ঠুর জগতে মহাকালের কবল হইতে কেহ ত রক্ষা পায় না ! বড় অকালে চলিয়া গেলেন এই কীর্ত্তিমান পুরুষ—রোগশয্যায় পড়িয়া করুণ কণ্ঠে বলিতেন—'আমাকে শুধু আর দু'বৎসর বাঁচিয়ে রাখ, অনেক কিছুই যে আমার করবার আছে।'

হায়রে মানুষ ! কত অক্ষম, কত দুর্ব্বল, কত অসহায় সে! বিধাতা কি মানুষের দুঃখবেদনায় সাড়া দেন, নির্ম্মম সে বিধান ! —একজন কীর্ত্তিমান পুরুষ, বাঙ্গলার গৌরব জীবনের পরিপূর্ণ সার্থকতার পূর্ব্বেই চলিয়া গেলেন।

আমার ব্যক্তিগত অভিজ্ঞতা হইতে বলিতে পারি, নানাজনের সঙ্গে নানা কাজে আসিয়াছি, কি গ্রন্থ প্রকাশে, কি অন্য প্রসঙ্গে আমি হরিকেশব বাবু ও তাঁহার ভ্রাতাদের ও পরিজনের নিকট হইতে যে শ্রদ্ধা, ভালবাসা, বদান্যতা, সৌজন্য, এবং সহানুভূতি লাভ করিয়াছি তাহা আমার জীবনের শেষ দিন পর্য্যন্ত স্মরণীয় হইয়া থাকিবে। আমার সাহিত্য-জগতে প্রতিষ্ঠার মূলে—'শিশু ভারতী' প্রকাশের দ্বারা যে ভাবে আমাকে উৎসাহিত করিয়া তাহার পরি-

সমাপ্তির সহায়ক ছিলেন—তাহা কি বিস্মৃত হইতে পারি ?

যখন এলাহাবাদে থাকিতাম তখন কন্যাস্থানীয়া শ্রীমতী মীরা ও অন্যান্য বধূগণের অসীম শ্রদ্ধা, তাঁহাদের শিশু পুত্র-কন্যাগণ বলিত 'যোগীন্ বাবু, পণ্ডিত মশাই একটা গল্প বলুন না !' তাহাদের সেই আবদার মনে পড়ে, আজ তাহারা বড় হইয়াছে, ভাবিতেই পারিতেছি না, তাহারা কেমন করিয়া এমন স্নেহশীল পিতা, ও জ্যেঠামহাশয়ের বিয়োগ ব্যথা সহ্য করিবে। তাহাদের কথা ভাবিতেও দুঃখ হয়। মনে হয় ইহাও অবশেষে দেখিতে হইল।

আমাদের শাস্ত্রকারেরা বলেন যে—দেহ মৃত হইলেও আত্মার বিনাশ নাই। আত্মার জরা নাই, মরণ নাই—দেহের বিনাশের পর জ্যোতির্ম্ময় আত্মা দেবলোকে প্রস্থান করেন। প্রিয়জনের স্মৃতি তাহার মনে থাকে, সে আপনাকে সমস্ত বিশ্বজগতে ব্যাপৃত করে ! বিদেহীর আধ্যাত্মিক সঙ্ঘাত, রূপ, বিজ্ঞান, বেদনা, সংজ্ঞা তখনও তাহার প্রিয়জনের কথা স্মরণীয় করিয়া রাখে। মৃত্যুতেই কি সব শেষ হয়, তাহা ত নয় ! মানুষ চলিয়া যায়—স্মৃতি থাকে। —সেই পুরাতন পৃথিবী, সেই ঋতু-পরিবর্ত্তন, সেই সুখ-দুঃখ হর্ষ ও বিষাদের দিন চির প্রবাহমান জগতে আসিবে, যাইবে, কিন্তু যে চলিয়া গেল সে ত আর আসিবে না ! প্রতি দিনকার জীবন-যাত্রায়—প্রিয়দিনের উৎসব ও আনন্দে ভ্রাতা, বন্ধু, পুত্র, পত্নী প্রিয়-জনেরা তাঁহাকে স্মরণ করিবে ! কিন্তু তাঁহাদের সেই আর্ত্ত কণ্ঠস্বর কি সেই অমর-লোকে পৌঁছিবে ?

হে বন্ধু ! তুমি যে দিব্যধামে গিয়াছ, সেই আনন্দময় জ্যোতির্ম্ময় লোকে তুমি চির শান্তি লাভ কর। আজ তুমি রোগমুক্ত, বেদনামুক্ত, জ্যোতির্ম্ময় সূক্ষ্মশরীরধারী ! আজ আকাশ-বাতাস, গ্রহতারাময়ী নিশি, নিখিল বিশ্ব ব্রহ্মাণ্ডে তোমার অসীম পরিক্রমা ! আজ মধুঋতু, মধুবাতাস, মধুময় আকাশ, মধুময় দিগদিগন্ত তোমাকে সুধা সিঞ্চিত করিতেছে।

তুমি যে লোকেই থাক, তোমার প্রিয়-জনের প্রতি স্নেহ সুধা বর্ষণ করে নবমন্ত্রে নবোৎসাহে তাহাদের মধ্যে জাগিয়ে দিও নব জীবন ! মৃত্যুর গাঢ় নিশীথের অবসানে নবলোকে তুমি যে প্রভাতসূর্য্যের দীপ্তিতে আলোকোজ্জ্বল রূপ ধারণ করেছ, সেখানেই তুমি মৃত্যুঞ্জয়রূপে প্রতিভাত হয়েছ, সেই পুণ্যলোক হইতে সুধার ধারা বর্ষণ কর।

হে বন্ধু আমার,

এসেছিলে এ-ধরণীতে, ছিলে কতদিন,
অর্দ্ধশত বৎসরের তরুণ নবীন !
আকাশের সূর্য্যসম আপন গগনে,
ছিলে দিব্য জ্যোতির্ম্ময় প্রফুল্ল কিরণে
সকলেরে করেছিলে প্রিয় আপনার,
কর্ম্মক্ষেত্রে গুণী, জ্ঞানী, প্রতিভা তোমার,
উজ্জ্বল সুন্দর রূপে গড়েছিল সবে,
কল্পনার দিব্যচক্ষে আনন্দ উৎসবে !
আজ তুমি নাই হেথা—আকাশে বাতাসে,
তোমার কীর্ত্তির দীপ্তি দিকে দিকে হাসে।
মরণেরে জয় করি, গেলে কোন্ দূরে,
গ্রহ তারাময়ী নিশা প্রদীপ্ত ভাস্বরে—
কোন্ সে সুদূর দেশ, কেহ ত জানেনা ;
প্রিয়জন সম্ভাষণ সেথা কি পশে না ?

যে দেশে যেখানে থাক, স্মরিয়া তোমায়,
অন্তরে রাখিব নিত্য, দিবস সন্ধ্যায় !

তদ্‌বিষ্ণোঃ পরমং পদং
সদা পশ্যন্তি সূরয়ঃ
দিবীব চক্ষুরাততম্‌।

আমাদের সকলের চক্ষে প্রতিদিন সমুদিত সূর্য্যকে যেমন দর্শন করি, তেমনি অসাধারণ গুণসম্পন্ন জ্ঞানী যাঁহারা, তাঁহারা অন্তরে-বাহিরে, সর্ব্বত্র বিশ্বব্যাপী পরমাত্মার দিব্য-জ্যোতি দর্শন করেন।

ওঁ শান্তি ! ওঁ শান্তি !! ওঁ শান্তি !!!

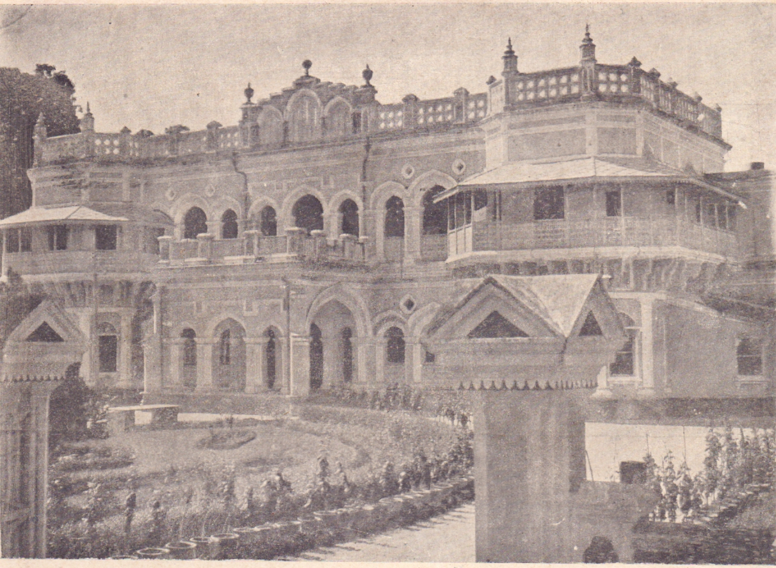


স্বর্গত কর্ম্মযোগী শ্রীহরিকেশব ঘোষ

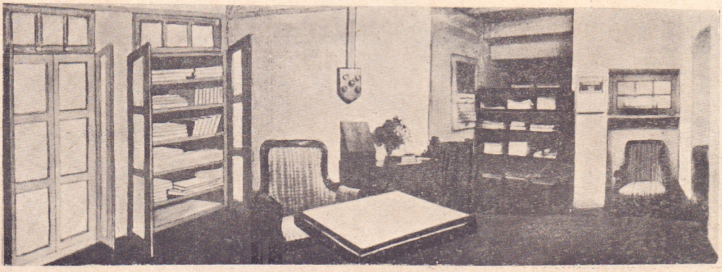
শ্রীঅসিতকুমার হালদার

আজ আপনাদের নিকট সন্তপ্ত হৃদয়ে কর্মযোগী বন্ধু স্বর্গত শ্রীহরিকেশব ঘোষ মহাশয়ের কথা বলব। তাঁর সঙ্গে এবং তাঁর পিতার সঙ্গে আমার পরিচয় ঘটে ইং ১৯১৪ সালে যখন আমি আমার মাতামহীর কনিষ্ঠ ভ্রাতা জগৎপূজ্য কবি রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর মহাশয়ের সঙ্গে এলাহাবাদে আসি এবং ইণ্ডিয়ান প্রেসেরই অতিথি হই। সঙ্গে ছিলেন স্বর্গত চারুচন্দ্র বন্দ্যোপাধ্যায় এবং শ্রীমান তপনমোহন চট্টোপাধ্যায়। তখন ভট্টাচার্য্য এণ্ড সন্স (ঢাকা) 'অজন্তা' পুস্তকটী আমার অঙ্কিত প্রচ্ছদনায় রচনা করেছিলেন এবং কবি রবীন্দ্রনাথ তখনকার বাঙলা গ্রন্থের এই সুষ্ঠ প্রচ্ছদপট দেখে খুব খুশী হয়েছিলেন। তাঁর তখন 'বলাকার' পাণ্ডুলিপি তৈরী হয়েচে। পাণ্ডুলিপিটি আমার দেওয়া একটি সাদা পার্চমেন্টের মলাটের খাতায় তিনি লেখেন এবং আমি তার মলাটে একটি চিত্র এঁকে দিয়েছিলাম। সেটি এখন রবীন্দ্র-গ্রন্থাগারে শান্তিনিকেতনে রক্ষিত আছে। এই 'বলাকার' প্রচ্ছদনার পরিকল্পনার ভার আমার উপর কবি দেন এবং আমি এলাহাবাদে তাঁর সঙ্গে এসে ইণ্ডিয়ান প্রেসে সেটির পরিকল্পনা দিয়েছিলাম চিন্তামণি বাবুকে। হরিকেশব তখন তরুণ, তাঁর পিতাকে এবিষয়ে (পাঠ্যাবস্থাতেও) সাহায্য করতেন। কবি এবং আমরা সকলেই আশ্চর্য্যান্বিত হলুম—অল্প তিন দিন মাত্র আমাদের অবস্থানের মধ্যেই সমগ্র 'বলাকা' মায় মলাট অতি সুচারুভাবে ছাপা হয়ে গেল। অবশ্য এই কাজ করতে প্রেসের লোকের অতিরিক্ত সময় কাজ করতে হয়েছিল। চারু বাবু এবং আমি তখন প্রেসের কারীগরদের এবিষয় প্রশ্ন করায় তাঁরা আমাদের বল্লেন "আমাদের ভগবান চিন্তামণি বাবু, অতিরিক্ত কাল যদি কোনো বিশেষ কাজে লাগে, তার হিসাব তিনিই রাখেন এবং আমরা ভাত্তা হিসাবে সময় সময় বহু অর্থ এক সঙ্গে পাই—সেটা ঐশী প্রেরিত বলেই তখন আমাদের মনে হয়।"

সব কাজেই—বিশেষতঃ ব্যবসায়ে সততা রক্ষার এতবড় আদর্শ বিরল। হরিকেশব পিতার এই গুণে গুণান্বিত—তার সাক্ষ্য প্রেসের সকল কর্ম্মচারীরাই আজ দেবেন। বোনেদী ঘরের বনিয়াদী চাল এই ভাবেই ক্রমে প্রতিষ্ঠিত হয় এবং কার্য্য পরম্পরায় (Tradition এ) বর্দ্ধিত হয়। হরিকেশব জানতেন কৃষ্টির ব্যাপারে (Culture এ) শিল্পকলা এবং কাব্য-সাহিত্য প্রধান অঙ্গ এবং তার প্রকাশনার ভার অত্যন্ত গুরুভার। বাঙলা দেশ আজ সমগ্র ভারতের পক্ষে যে আদর্শ হয়ে আছে এই দুই প্রধান কর্ম্ম-ধারায় তার জন্য প্রকাশকেরও দায়ীত্ব যে কম নয় তার বোধ তাঁর মধ্যে সজাগ ছিল। পূজনীয় কবি রবীন্দ্রনাথের সকল গ্রন্থ এবং সত্যেন্দ্রনাথ দত্ত, চারু বন্দোপাধ্যায়, মণিলাল গঙ্গোপাধ্যায়, সৌরীন্দ্রনাথ মুখোপাধ্যায় প্রভৃতি তখনকার উজ্জ্বল সাহিত্য-ভাস্করদের



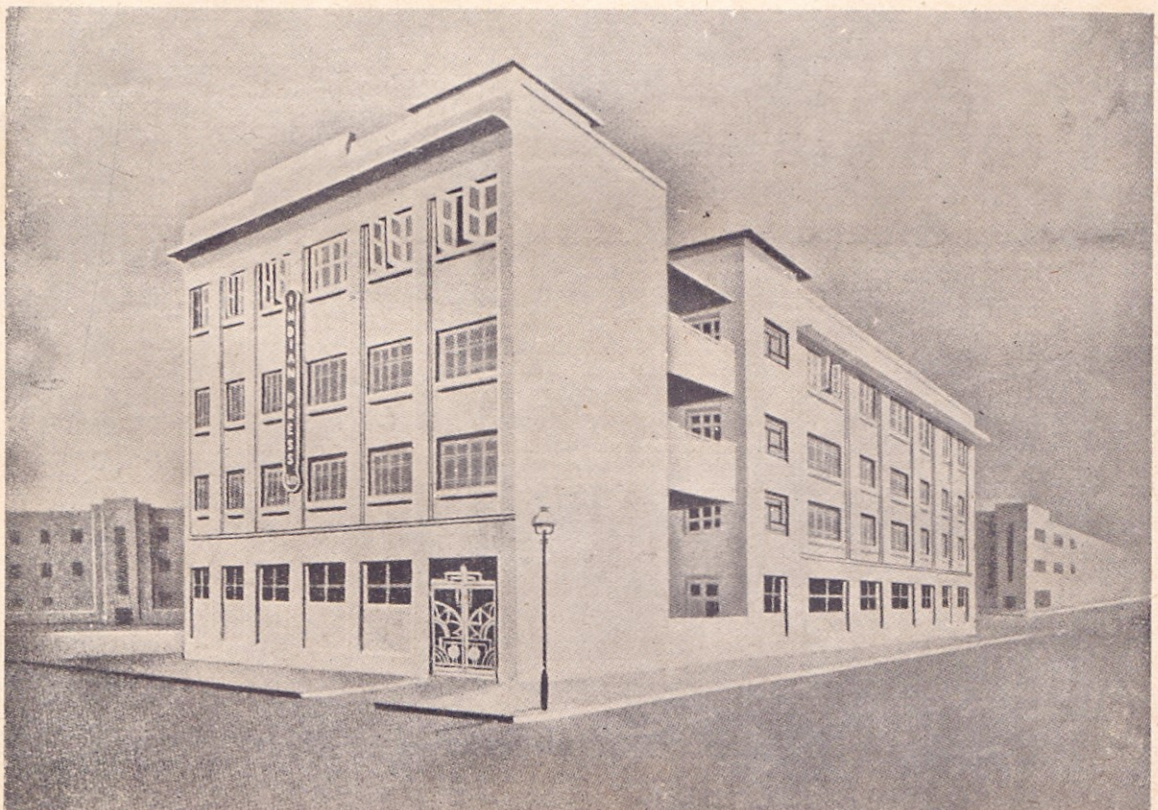
घोष परिवार का निवास-भवन, ५ मालवीय रोड, इलाहाबाद।



निवास-भवन में श्री हरिकेशव घोष का निजी कक्ष।



इंडियन प्रेस लिमिटेड का



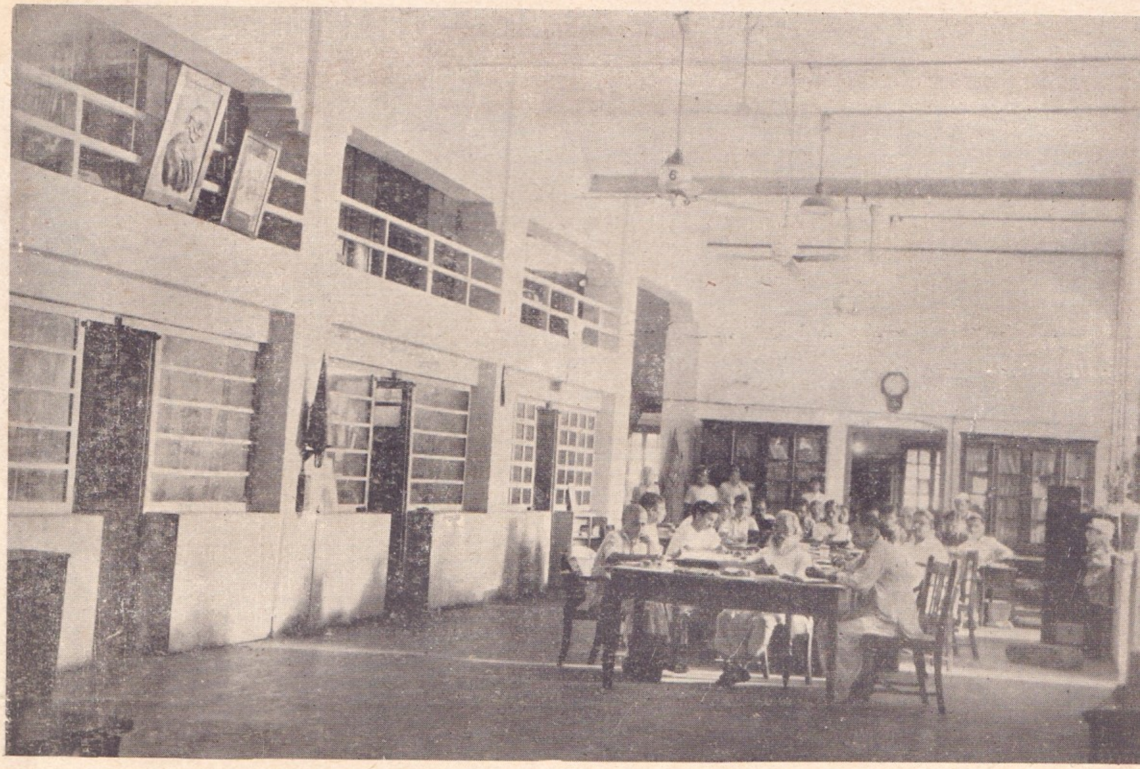
इंडियन प्रेस लि०, कलकत्ता-शाखा।



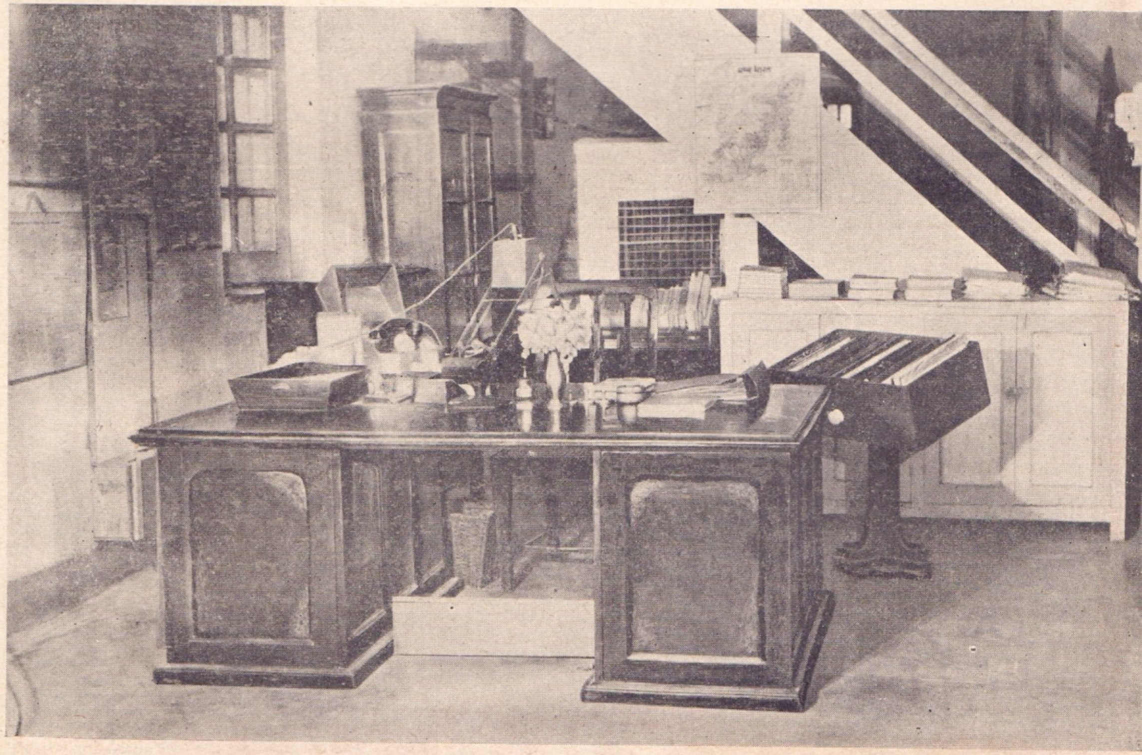
प्रधान कार्यालय, इलाहाबाद।



इंडियन प्रेस लि०, बनारस-शाखा।



इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग कार्यालय का एक दृश्य।



प्रधान व्यवस्थापक स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष की वह मेज, जिस पर वे कार्य-संचालन करते थे।

সকল গ্রন্থই তখন ইণ্ডিয়ান প্রেস লিঃ, এলাহাবাদ থেকে প্রকাশিত হ'ত। প্রবাসী পত্রিকাও প্রথমে প্রবাস-বাসী ছিল এবং ইণ্ডিয়ান প্রেসেই ছাপা হ'ত। ১৯০৫ সালে বঙ্গ-বিভাগের ফলে স্বদেশী-আন্দোলন যখন সুরু হ'ল, তখন থেকে পূজনীয় স্বর্গত অবনীন্দ্রনাথ ঠাকুরের দ্বারা সশিষ্য ভারত শিল্পের পুনরুত্থানের (Renaissance) সূচনা। সকল বাঙ্গালী যুবার মনে স্বদেশী আর্টের উপর দরদ দেখা গেল। যুবক হরিকেশবও সেইকাল থেকে অর্থাৎ ছেলেবেলা থেকেই দেশের একজন শিল্পানুরাগী ও ভক্ত হয়ে উঠেছিলেন। আমার সঙ্গে তাঁর নিবিড় বন্ধুত্বের কারণই তাই। কলামণ্ডিত পুস্তক রচনার জন্যে আমাকে তিনিই সর্বদা উৎসাহিত করতেন এবং বহু অর্থব্যয় এবং বাধাসত্বেও তিনি আমার আঁকা 'ওমর-খইয়ামের চিত্রাবলী' এবং 'খেয়ালিয়া'(সচিত্র সঙ্গীত পুস্তক) পোর্টফোলিও আকারে যেভাবে প্রকাশ করেছিলেন, তাছাড়া কিছুকাল পূর্বে মৎকৃত অনুদিত কালিদাসের 'মেঘদূত' এবং 'ঋতুসংহার' পুস্তকদ্বয় যেরূপ সুরুচিসম্পন্ন প্রচ্ছদন, কাগজ, দিয়ে ছাপাই করেছিলেন তা' যে-কোনো দেশী-বিদেশী-প্রকাশনার আদর্শ স্থল হয়ে থাকবে। প্রকাশকের উৎসাহ লেখককে যে কিরূপ উৎসাহ দিতে পারে তা' আমি বিলক্ষণ অনুভব করেচি। হরিকেশবের উৎসাহেই আমি সরকারী কাজে অবসর নেবার পর 'মানস-মুকুর' রত্নাবলী, মৃচ্ছ-কটিক, শ্রীমদ্ভাগবদ্গীতা এমন কি বাল্মীকীর সমগ্র রামায়ণ ('রামায়ণী') লিখতে পেরেচি। সম্প্রতি তিনি আমার 'রাজগাথা' সচিত্র কাব্য অত্যন্ত নিষ্ঠার সঙ্গে সুচারুরূপে প্রকাশ করেছিলেন। সে সময় পূজনীয় শিল্পগুরু অবনীন্দ্রনাথ ঠাকুর জীবিত ছিলেন। বইখানি তাঁর লিখিত রাজকাহিনীর রাজস্থানী গল্প অবলম্বনে চিত্রসহ কাব্যাকারে লেখা। (প্রবীণ সাহিত্যিক বন্ধু সৌরীন্দ্রমোহন মুখোপাধ্যায়ও সে-সময় উপস্থিত ছিলেন)। বইখানির অঙ্গ-সৌষ্ঠব এবং ছাপা প্রভৃতি দেখে এবং কবিতা পড়ে স্মিতহাস্যে কৌতুক করে বলেছিলেন "অসিত, এ-যে দেখচি আমার রাজকাহিনীকে কানা করে দিলে৷ পটলকে বোলো—এটা বেরুলে আমার বই আর কেউ কিনবে না।" পটল বাবুকে এই ঘটনা বলায় তিনি আরো উৎসাহ সহকারে বলেছিলেন 'রামায়ণী' 'মৃচ্ছকটিক' সচিত্র করে তাঁকে ছাপবার জন্য দিতে। তিনি আমার বই আমার আঁকা ছবি না হলে ছাপার পক্ষপাতী ছিলেন না। বলতেন "আপনার একসঙ্গে তুলি ও কলম চলে, দুটোকেই বজায় রাখবেন।" আমার সঙ্গে সাক্ষাৎ হলেই কলামণ্ডিত পুস্তক প্রকাশনার বিষয় বহু কথাবার্তা হ'ত। তাঁর উজ্জ্বল আকাঙ্ক্ষা ছিল যে ভারতবর্ষের মধ্যে শিল্পকলার প্রকাশনার একটি বিশেষ আদর্শ তিনি রক্ষা করবেন। কিন্তু যুদ্ধোত্তর কালের দৌরাত্ম্য এবং ভারত-বিভাগের দুর্ভাগ্যের মধ্যে তাঁর সকল কল্পনাকে ব্যহত রাখতে হয়েছিল। তাঁর এদানিকার ব্যাধি-বিধ্বস্ত শ্রান্ত-ক্লান্ত শরীর এবং উন্মিষিত উৎসাহ যখন দেখতাম্ তখন চিত্ত ব্যথিত হ'ত। তাঁর পিতার মতই মহৎ কর্ম-জীবনের মহৎ আদর্শ বিরাট ইণ্ডিয়ান প্রেসের সকল কর্মধারার মধ্যে প্রকাশ পেয়েচে। জীবনকে সঙ্কীর্ণ গৃহস্থালীর মধ্যে

আঁকড়ে তিনি রাখেননি। সারা বাঙলা দেশকে তিনি প্রকাশনার দ্বারা সাহিত্য ও কলায় পুষ্ট করতে পেরেছেন। আমরা জানি, বহু অর্থ-সামর্থ্যহীন চিত্রকার এবং কবিকে তিনি নানা উপায়ে সাহায্য করেচেন। এঁর তুলনা অতি বিরল। কেবল প্রকাশনার দ্বারা অর্থ রোজগার ক'রে বিপুল ধনভাণ্ডার ভর্‌চেন এরূপ প্রকাশক বহু থাকতে পারে। কিন্তু কর্মীকে উৎসাহিত করা, অর্থদ্বারা সাহায্য করা এবং সততার দ্বারা রক্ষা করা—হরিকেশব তারই আদর্শ রেখে গেছেন। আমরা—সাহিত্যিক, কবি এবং চিত্রকার তাঁর কাছে অশেষ ঋণে আবদ্ধ আছি। তাঁর অবর্ত্ত-মানে তাঁর ভ্রাতাদের মধ্যেও সেই আদর্শের প্রেরণা আমরা পাব এবং ইণ্ডিয়ান প্রেস শুধু বাংলা দেশের নয় সারা ভারতবর্ষের একটি বিশেষ প্রকাশনা-কেন্দ্র হয়ে পূর্ব্বের ন্যায় পারম্পার্য্য রক্ষা করে চলবে এই ৺ভগবানের নিকট আজ আমরা প্রার্থনা করি।

৺হরিকেশব ঘোষের স্মরণে

শ্রীধীরেন্দ্রনাথ ঘোষ

১৭ই মার্চ্চ ১৯৫৩ মঙ্গলবার বেলা ১১টা নাগাদ ধর্ম্মতলা ষ্ট্রীটে ইণ্ডিয়ান প্রেসের অফিসে খবর নিতে গিয়ে শুনলুম যে পটল বাবুর অবস্থা সামান্য একটু ভাল'র দিকে। শুনে মনের উদ্বিগ্ন ভাব একটু কম্‌ল এবং খুসী মনেই চলে এলুম। কিন্তু পরের দিন অর্থাৎ ১৮ই মার্চ্চ সকালের কাগজ খুলেই তাঁর পরলোক-গমনের সংবাদ পড়ে একেবারে স্তম্ভিত হয়ে গেলুম। ছোট্ট ক'লাইন ছাপার অক্ষরের যে এত তীব্র যন্ত্রণা দেবার শক্তি থাকতে পারে তা কল্পনাও করতে পারিনি। সমস্ত শরীর-মন কিরকম যেন অসাড় হয়ে গেল। চুপচাপ পড়ে রইলুম আর চোখ দিয়ে ঝর ঝর করে জল ঝরে পড়তে লাগল। বেশ খানিকক্ষণ এই ভাবে কাটবার পর মনের অসাড় ভাবটা একটু কমতেই গত ৩১ বৎসরের নানান ঘটনার স্মৃতি ঠিক যেন সিনেমার ছবির মতনই মনের পর্দ্দায় একটার পর একটা ফুটে উঠতে লাগল।

ইংরাজী ১৯২২ সালে প্রথম আমার শ্রীহরিকেশব ঘোষের সঙ্গে আলাপ হয়। প্রথম দর্শনেই সৌভাগ্যবশতঃ আমি তাঁর সুনজরে পড়ি এবং সেই থেকে গত ৩১ বৎসরের ভেতর এত অজস্র ভাবে তাঁর স্নেহ, ভালবাসা পেয়েছি যে তা চিরকাল আমার মনের মণি-কোঠায় সযত্ন-সঞ্চিত-সম্পদ হয়ে থাকবে। এই সুদীর্ঘ সময়ের মধ্যে কত বিচিত্র ঘটনার মধ্য দিয়ে তাঁর চরিত্রের যে অপূর্ব্ব মাধুর্য্যের পরিচয় আমি পেয়েছি তা লিখে শেষ করা যায় না। যাকে একবার তিনি ভালবাসতেন ও বন্ধু বলে হৃদয়ে স্থান দিতেন তাকে সম্পূর্ণ ভাবেই বিশ্বাস করতেন এবং তার কোন অনুরোধই অগ্রাহ্য করতেন না।

বহুকাল আগেকার একটা ঘটনা বলি। ইণ্ডিয়ান প্রেস লিঃ এর কলিকাতার আফিস তখন (বোধ হয়) বহুবাজার ষ্ট্রীটে অবস্থিত। এই সময় তিনি তাস তৈরী করতে মনস্থ করেন। নানান্ রকম মেশিনারী আনিয়ে তাসের কারখানা স্থাপন করেন। এই কারখানার নাম দেন "ইণ্ডিয়ান প্লেয়িং কার্ড কোং"। এই সময় লাহোরে আমা-দের অন্য এক বড় কাষ্টমার উত্তর চাঁদ কাপুর এণ্ড সন্স, তাসের কারখানা স্থাপন করেন। তাঁরাও নিজেদের কারখানার নাম রাখেন "ইণ্ডিয়ান প্লেয়িং কার্ড কোং" ব্যবসায় এই নাম নিয়ে এঁদের ভেতর তীব্র বিদ্বেষ ঘনিয়ে ওঠে। প্রথমে প্রতি-বাদ-পত্র বিনিময় থেকে আরম্ভ করে ক্রমশঃ উকিল, এটর্ণীর নোটীশ ইত্যাদি করে ব্যাপারটা এত ঘোরাল হয়ে ওঠে যে লাহোর ও কলিকাতা হাইকোর্টে বেশ জোরাল মোকদ্দমা রুজু হবার উপক্রম হয়ে ওঠে। উভয় পক্ষের যথেষ্ট প্রতি-পত্তিশালী এবং অর্থশালী ও এই রকম রেষারেষীর ক্ষেত্রে লোকের জেদও প্রচণ্ড

হয়ে ওঠে। কাজেই মনে হল ব্যাপারটা অনেক দূর গড়াবে এবং উভয় পক্ষেরই মামলা মোকদ্দমার দরুন যথেষ্ট লোকসান ও অনর্থক হায়রাণি হবে। কিন্তু উভয় পক্ষই আমাদের বিশিষ্ট বন্ধু বলে এই ঝগড়াটা আমাদের কাছে মোটেই ভাল ঠেক্‌ল না। আমরা মধ্যস্থ হয়ে ব্যাপারটা মিটিয়ে দিতে চাইলুম। এই উপলক্ষে যখন পটলবাবুর কাছে গিয়ে মেটানোর প্রস্তাব করি তিনি প্রথমটা একটু ক্ষুণ্ণ হন কিন্তু পর মূহুর্ত্তেই বলে ওঠেন্ "বেশ, বন্ধু হিসেবে যদি এই পরামর্শ দেন আমার কোন আপত্তি নেই।" দুর্দ্দমনীয় জেদকে যিনি এই ভাবে এক মিনিটের ভেতর সম্পূর্ণ দমন করতে পারেন তাঁর অন্তর যে কি ধাতু দিয়ে গড়া তা এই ব্যাপারে আমি প্রথম উপলব্ধি করি। ঠিক অনুরূপ ভাবেই কিছুদিন আগে বেনারসের এক ছাপাখানার সঙ্গে বইয়ের কপিরাইট নিয়ে গোলমাল হওয়ায় তাদের অনুরোধে আমি গিয়ে পটলবাবুকে বলতে এক সেকেণ্ডের ভেতর তিনি সে ব্যাপারও মিটিয়ে ফেলেন। তাঁর এই উদার স্বভাবের পরিচয় পেয়ে বেনারসের ভদ্রলোকেরাও অবাক হয়ে যান এবং ভাবেন যে ভেতরে বহুবিধ গুণ না থাকলে কি একজন এত বড় হতে পারেন।

সে বোধ হয় ১৯৩৫ সালের কথা। কলিকাতায় এলেন, দেখা হওয়ায় বললেন 'শীঘ্রই বিলেত যাচ্ছি', উদ্দেশ্য জিজ্ঞাসা করতে বললেন "কি ভাবে বিলেতের লোকেরা এত সুন্দর ছাপা এবং বাঁধাই ইত্যাদি করে সেই সব দেখতে এবং কি কি যন্ত্রপাতিই বা তারা ব্যবহার করে তা দেখে সেই সব কিনে ইণ্ডিয়ান প্রেসকে নূতন সজ্জায় সজ্জিত করে ভারতের এক্ বিশিষ্ট মুদ্রণালয়ে পরিণত করতে চাই যাতে আমরাও বিদেশের মতনই উঁচু ধরণের কাজ করতে পারি। বিদেশের লোকেরা আমাদের এই সামান্য উপকরণ দেখে যে রকম অবজ্ঞা ও কৃপাদৃষ্টিতে দেখে এবং তা থেকে আমাদের লোকদের মনের ভেতর যে "ইন্‌ফিরিয়রিটী কমপ্লেক্স" বা হীনমন্যতার উদ্ভব হয় তা আমি সম্পূর্ণ দূর করতে চাই।" কি ভাবে তিনি তাঁর এই সঙ্কল্প পালন করে ছিলেন পরবর্ত্তী কালের ইণ্ডিয়ান প্রেসই তার জাজ্বল্য প্রমাণ। যাই হ'ক কিছু দিন পরেই তিনি বিলেত চলে যান। তার কিছুদিন পর থেকেই বিলেত ও জার্ম্মানীর নানান্ সহর থেকে বিভিন্ন কোম্পানীর তাঁকে লেখা সব চিঠির কপি আসতে লাগল আমাদের কাছে। কত রকম মেসিন ও কত বিচিত্র সব সরঞ্জামের বিবরণ, যা তিনি বহু পরিশ্রম করে তার সমস্ত খুঁটিনাটী আয়ত্ব করেছিলেন, সেই সবের বর্ণনা ও মূল্য তালিকা ইত্যাদিও আসতে লাগল। এই সব বিচিত্র জিনিষ এর আগে আমরা কখনও চোখেও দেখিনি বা সে গুলির সম্বন্ধে আমাদের আগে কোন ধারণাও ছিল না। তিনি প্রত্যেক কোম্পানীকে বলেছিলেন যে এই সবের পূর্ণ বিবরণ দিয়ে তাঁকে চিঠি লিখতে এবং তার সব কপি আমাদের কাছে পাঠিয়ে দিতে। এই সব থেকে তাঁর বহু পরিশ্রমের ফলে যে জ্ঞান তিনি আহরণ করিয়াছিলেন, সেই সব কত নূতন নূতন জিনিষের বিষয়, যা

ভারতবর্ষে এর আগে আসেনি, আমার শেখবার সৌভাগ্য হয়েছিল সে বিষয়ে আর কি বলব।

যাই হ'ক কিছুকাল পরে তিনি ফিরে এলেন। এলাহাবাদে দেখা করতে গিয়ে জিজ্ঞেস করলুম "কি কি কিনে আনলেন ?" বললেন "কিছুই কিনে আনিনি।" তার পর এক গোছা চিঠি বার করে বললেন "এই সব জিনিষ পছন্দ করে এসেছি, এই গুলো সব আনিয়ে দিন। সে দেশে অর্ডার দিয়ে এলে তাদের কাছে আপনাদের প্রতিপত্তি বাড়ান হ'ত কি করে আর আমার পক্ষেও বন্ধুত্বের মর্য্যাদা কি করে রাখা হোত?" জবাব শুনে স্তব্ধ বিস্ময়ে তাঁর দিকে চেয়ে রইলুম। বিদেশে গিয়ে জিনিষপত্র দেখে সেখানে অর্ডার দিয়ে সাহেব সুবোর কাছ থেকে ধন্যবাদ ও বাহাদুরী পাবার ইচ্ছা ও প্রবৃত্তি প্রায় সব বিদেশগামীরই থাকে ,কিন্তু সেই ইচ্ছাকে তিনি দমন করে চলে আসেন, শুধু এই ভেবেই, যে, দেশে ফিরে নিজের স্নেহের পাত্রের সম্মান ও প্রতিপত্তি বাড়াবার জন্যে এত টাকার অর্ডার তার মারফৎ দেবেন, তিনি যে সাধারণ মানুষের অনেক উর্দ্ধে সে বিষয় কোন সন্দেহই নেই।

১৯৪২ সাল—তখন যুদ্ধ পুরো দমে চলেছে। বিদেশ থেকে জিনিষপত্র আমদানী বন্ধ অথচ বাজারে চাহিদা প্রচুর। এই অবস্থায় যাঁদের পুরোনো জিনিষপত্র ছিল, তাঁদের কেউ কেউ সেই সব বেচে খুব উঁচু দর পান। এই রকম পরিস্থিতিতে আমি একদিন তাঁকে বলি যে "বাজারের অবস্থা এই রকম থাকতে আপনাদের পুরোনো জিনিষ কতক বেচে ফেলুন না।" সঙ্গে সঙ্গে তিনি রাজী হলেন। দাম জিজ্ঞেস করতে বললেন—"যা পাইয়ে দেবেন।" বললুম "তবু যা হোক একটা আইডিয়া দিন ?" বললেন "না, সম্পূর্ণ ভার আপনার ওপর, যা আপনি ঠিক করে দেবেন তাই মেনে নেব।" মনে হোল বোধ হয় ঠাট্টা করছেন, কেননা যখন ছোট বড় প্রত্যেকেই যে কোন জিনিষ বেচতে হলে আকাশচুম্বি দর হেঁকে বসেন ও তা থেকে এক পয়সাও কম করতে রাজী হন না, সেই সময় এই রকম উত্তর অভাবনীয় ও আশ্চর্য্যজনক বলেই মনে হোল। কিন্তু আগেই বলেছি যে তিনি সাধারণ মনুষ্যের বহু উর্দ্ধে ছিলেন এবং কোন লোভই তাঁর চিত্তকে কখনও বশীভূত করতে পারেনি। যাই হ'ক, হঠাৎ মনের ভেতর এক দুষ্টবুদ্ধি উদয় হোল। সেই সব জিনিষের তখনকার দিনে যা ন্যায্য দাম তার অর্দ্ধেক মূল্য তাঁকে বললুম। তৎক্ষনাৎ তিনি বলে উঠলেন "রাজী।" তিনি ছিলেন ব্যক্তিগত লাভালাভের এত উর্দ্ধে এবং তাঁর বিশ্বাসের এই অটল গভীরতা আমার মনকে আর একবার বুঝিয়ে দিলে যে এই সব লোক দেবকল্প এবং এঁদের সঙ্গে সাধারণ মানুষের ব্যবহারের কোন তুলনাই হয় না। আমি অবশ্য তাঁকে ন্যায্য মুল্যই পাইয়ে দিয়েছিলুম এবং তিনি হেঁসে বলেছিলেন "দেখলেন ত, বিশ্বাস করেও ঠকলুম না।"

তারিখ সময় মনে নেই—একদিন তিনি আমার বাড়ীতে পায়ের ধ্‌লো দেন। সিঁড়ি দিয়ে ওপরে উঠতে গিয়ে সিঁড়ির ধারের একটা জানলা হঠাৎ হাওয়ায় খুলে গিয়ে তার

মাথায় আঘাত লাগে। আমি ব্যস্ত হয়ে তাড়াতাড়ি বরফ আনবার কথা বলতেই তিনি "না, না, ও কিছু নয়, বরফের দরকার নেই" বলে কথাটা উড়িয়ে দিলেন—পাছে আমি লজ্জিত ও দুঃখিত হই তাই নিজের আঘাতটা তিনি সম্পূর্ণ উপেক্ষা করে গেলেন। মুখে যন্ত্রণার একটা "উঃ" শব্দ পর্য্যন্ত শুনলুম না। কিন্তু খানিকক্ষণ পরে কথা কইতে কইতে দেখি যে মাথার যেখানে লেগেছিল, সেইখান দিয়ে রক্ত পড়ছে। তখন জোর করে আমি বরফ দিয়ে ও পরে টিংচার আইডিন দিয়ে দিই। নিজের শারীরিক যন্ত্রণা যতই হোক তার জন্য অপরকে সামান্যও ব্যস্ত তিনি কিছুতেই করতে চাইতেন না এই রকম অসাধারণ মনেরই পরিচয় বরাবর তাঁর কাছে পেয়েছি।

আর একবার আমার কয়েকটী ভিন্ন প্রদেশের বন্ধু কলকাতায় এলে আমি তাঁদের আমার বাড়ীতে খেতে বলি রাত্তিরে। এই উপলক্ষ্যে আমি সেদিন সন্ধ্যের কিছু আগেই অফিস থেকে বাড়ী চলে আসি। আমি খবর পাইনি যে তিনি সেই দিনই সকালে এলাহাবাদ থেকে কলকাতায় এসেছেন। আমি বাড়ী চলে আসবার একটু পরেই তিনি অফিসে গিয়ে শোনেন যে কি জন্যে আমি একটু আগে বাড়ী চলে গেছি। একটু হেঁসে তিনি চলে আসেন। তারপর রাত্রির ৮টার সময় হঠাৎ নিচে থেকে সেই চির পরিচিত ও মধুময় গলার উদাত্ত আহ্বান "ধীরেন বাবু, বাড়ী আছেন না কি। ভেবেছেন বেশ ফাঁকী দেবেন-না? সেটী হচ্ছে না।" তাড়াতাড়ি নীচে এসে তাঁকে সাদরে ওপরে নিয়ে গেলুম। এই রকম অপ্রত্যাশিত ভাবে তাঁকে পেয়ে সেদিন যে কি আনন্দ হয়েছিল তা আর কি লিখব? মনে মনে ভাবলুম যে কত নিরহঙ্কার ও উদার মন হলে এবং কত বেশী আপনার ভাবলে তবে এই রকম ভাবে কেউ আসতে পারেন! তাঁর এই অযাচিত স্নেহের পরশ পেয়ে অন্তর কৃতজ্ঞতায় ও আনন্দে ভরে উঠল। ঘণ্টা দুই তিনি সেদিন ছিলেন আর সেই সময়টুকু আমাদের সকলকে আনন্দে, হাঁসিতে, গল্পে মাতিয়ে রেখে-ছিলেন। সে আনন্দের স্মৃতি এখনও মনের ভেতর উজ্জ্বল হয়ে আছে। যেখানে তিনি যেতেন তার চার পাশে যেন আনন্দের ফোয়ারা ছুটিয়ে দিতেন এবং লোকের মনের দুঃখ কষ্টকে যেন নিমিষের মধ্যে দূর করে দিতেন। যতবার এলাহাবাদে গেছি তিনি জোর করে নিজের ওখানে টেনে নিয়ে গেছেন এবং সেই সেই সময় যে কি গভীর স্নেহ ও ভালবাসা তাঁর কাছ থেকে পেয়েছি তা লিখে প্রকাশ করা যায় না।

তাঁর প্রখর ব্যক্তিত্ব, অপূর্ব্ব কর্ম্মকুশলতা, অপরের মন জয় করবার অসাধারণ দক্ষতা এবং আরও অসংখ্য গুণাবলীর সম্বন্ধে ভারতবর্ষের লক্ষ লক্ষ লোক যাঁরা তাঁর সংস্পর্শে এসেছেন সকলেই জানেন। এ বিষয় আমার পক্ষে অধিক বলা বাহুল্য। আমি শুধু ব্যক্তিগত কয়েকটি ঘটনার এখানে উল্লেখ করে তাঁর পূণ্যময় আত্মার প্রতি আমার আন্তরিক শ্রদ্ধাঞ্জলি অর্পণ করছি এবং প্রার্থনা করছি যেন স্বর্গ থেকে তাঁর আশীর্ব্বাদ আমাদের ওপর বর্ষিত হয়।

কর্ম্মবীর হরিকেশব

শ্রীনিবারণচন্দ্র ঘোষ

গত যুগে প্রবাসী বাঙ্গালী যাঁরা বাঙলার বাহিরে বসবাস করে বাঙলার মুখোজ্জ্বল করে গেছেন তাঁদের মধ্যে প্রয়াগ-প্রবাসী ৺চিন্তামণি ঘোষের নাম স্বর্ণাক্ষরে লিখিত রয়ে গেছে। Indian Press Ltd.-এর প্রতিষ্ঠাতা হিসেবে তাঁর অপূর্ব্ব কর্ম্মকুশলতা, চরিত্র মাধুর্য্য, অমায়িক ব্যবহার, সত্য-নিষ্ঠা, আদর্শ সততা ও অকুণ্ঠ-সারল্যের কথা আজও, যাদের, তাঁর সঙ্গে পরিচিত হবার সুযোগ হয়েছিল তারা ভুলতে পারেনি। তাঁর সবার চেয়ে বড় কীর্ত্তি তিনি শুধু নিজে মহান্ ছিলেন না, নিজের আদর্শে ছেলেদের কতক গড়ে রেখে যেতে পেরেছিলেন বলেই এলাহাবাদের Indian Press Ltd. ও তৎসংশ্লিষ্ট ব্যবসাদি আজও সারা ভারতের বড় ব্যবসা প্রতিষ্ঠানের ভেতর অন্যতম হয়ে বর্ত্তমান রয়েচে।

জ্যেষ্ঠপুত্র হরিপদ পিতার জীব- দ্দশাতেই অকালে মৃত্যুমুখে পতিত হন্—সে আজ ৩৩ বৎসরের কথা। দেশের নিতান্তই দুর্ভাগ্য তাঁর অক্লান্ত- কর্ম্মী দ্বিতীয় পুত্র হরিকেশব আর ইহজগতে নেই। গত ১৭ই মার্চ্চ ১৯৫৩ সাল অপরাহ্ণ চারিটার সময় মাত্র ৫৪ বৎসর বয়সে পরিবারস্থ সকলকে ও সারা দেশজোড়া সুহৃদমণ্ডলীকে শোক-সাগরে ভাসিয়ে হরিকেশব নিতান্তই অকালে তাঁর সাধনোচিত ধামে চলে গেছেন।

আমাদের দেশে কর্ম্মীর অভাব ষোল আনা। তাই হরিকেশবের মত আদর্শ কর্ম্ম-বহুল জীবন-আলেখ্য আমাদের প্রণিধান-যোগ্য। বিশেষ করে স্বাধীন ভারতের আর্থিক উন্নয়নের জন্যে যে চেষ্টা চলেছে, শিল্প-বাণিজ্যের বিস্তার সাধিত করে তার দরিদ্রতা ঘোচাবার যে প্রয়াস চতুর্দ্দিকে লক্ষিত হচ্ছে, সে যুগে হরিকেশবের মত একজন কর্ম্মীর অভাব এ ত একটা ব্যক্তিগত, পারিবারিক বা একটা গোষ্ঠির অভাব নয়! —এ যে সারা দেশের অভাব। আজকের পরিস্থিতিতে যে সব ভারতসন্তান দেশকে বাণিজ্য আর শিল্পক্ষেত্রে এগিয়ে দেবার যোগ্যতা ধারণ করেন তাঁদের জীবন অমূল্য। সেই অমূল্য জীবনই ছিল হরিকেশবের, তাই তাঁর অভাব আজ বস্তুতই দেশের অভাব। তাঁর মৃত্যু ত ক্ষতি শুধু পারিবারিক গণ্ডির নয়—এ ত সারা দেশের ক্ষতি।

হরিকেশবের বালকিশোর জীবনে পঠদ্দশা কেটেছিল এলাহাবাদের এংলো-বেঙ্গলী স্কুলে। ঐ বিদ্যালয় থেকেই ১৯১৫ সালে কৃতিত্বের সঙ্গে ম্যাট্রিকুলেশন পরীক্ষায় উত্তীর্ণ হয়ে মিওর সেন্ট্রাল কলেজে প্রবেশ করেন। কলেজের একজন মেধাবী ছাত্র ছিলেন তিনি। একটা প্রবল অনুসন্ধিৎসা সেই অল্পবয়স্ক ছাত্রের ভেতর একটি বিশেষত্ব বলে পরিলক্ষিত হয়েছিল। সেই সময়েই বিজ্ঞান পিপাসার প্রাবল্যে তাঁকে রাসায়নিক গবেষণায় প্রবৃত্ত হতে দেখা গিয়েছিল। সুগন্ধি দ্রব্য কি করে

প্রস্তুত হতে পারে সেই গবেষণা ডাঃ এ, পি, সরকার মহাশয়ের তত্ত্বাবধানে আর একটী ছাত্রের সঙ্গে তিনি কিছুদিন করতে আরম্ভ করেছিলেন। সহকর্ম্মী এস, সি, চাটার্জ্জির হঠাৎ মৃত্যুতে তিনি বড় আঘাত পেয়ে এ কার্য্যে আর ব্রতী থাকতে পারেন নি। এমন কি মিওর সেণ্ট্রাল কলেজ ছেড়ে দিয়ে তিনি বারাণসী বিশ্ববিদ্যালয়ের সদ্য-প্রতিষ্ঠিত ইঞ্জিনীয়ারিং বিভাগে পাঠ উদ্দেশে যোগ দিলেন। কিন্তু তাঁর ইঞ্জিনীয়ারিং শিক্ষাও শেষ করার সুযোগ ঘটে ওঠেনি। ১৯২০ সালে তাঁর জ্যেষ্ঠ হরিপদ ঘোষের অকাল মৃত্যুতে ব্যবসা ক্ষেত্রে সেই অল্প বয়সেই তাঁর ডাক পড়েছিল। পিতা চিন্তামণি ঘোষ তখন বৃদ্ধ, কাজেই মাত্র ২৩ বৎসর বয়সে তাঁকে ইণ্ডিয়ান প্রেস পরিচালনের গুরুভার গ্রহণ করতে হয়েছিল। সেই অল্প বয়সেই ব্যবসা পরিচালনের যথেষ্ট যোগ্যতার পরিচয় দিতে তিনি পেরেছিলেন। তখন তাঁর কনিষ্ঠেরা সকলেই পাঠ-নিরত, কাজেই তাঁর উপরেই ছিল সে বিরাট প্রেস প্রতিষ্ঠানের সকল ভার।

৺চিন্তামণি ঘোষ যোগ্যতর ভাবে ছেলেদের ব্যবসা ও প্রেস সংক্রান্ত সকল কাজে অভিজ্ঞ করে দেবার মানসে এক অভিনব উপায় উদ্ভাবন করেছিলেন যাতে তাঁর দূরদৃষ্টি ও ব্যবসা-বুদ্ধির উৎকর্ষতাই বিশেষ ভাবে প্রতিপাদন করে। ইণ্ডিয়ান প্রেস লিঃ তখন কতক পরিমাণে পুরোনো হয়ে পড়েছে, প্রেস ক্ষেত্রে অনেক নুতন যন্ত্রাদির আবিষ্কার হয়েছে—সেই নব যন্ত্রের সাহায্য না পেলে প্রকৃত নবযুগের প্রেস গড়ে ওঠা সম্ভবপর নয়। তাই তিনি পুরোনো বিরাট প্রেসটী তখনকার প্রাদেশিক সরকারকে তাদের বিশ্ববিদ্যালয়ের কাজের জন্য বিক্রয় করে দিলেন আর নুতন যন্ত্রাদি ক্রয় করে নুতন করে প্রেস গড়ে তোলার ব্যবস্থা করলেন। এই ভাবে হরিকেশবের নুতন করে এত বড় একটী প্রতিষ্ঠান গড়ে তোলার শিক্ষা হয়ে গেল—এতে তাঁর কর্ম্ম-পটুতারও বিশেষ উৎকর্ষ সাধিত হ'ল। এর পর ১৯২৮ সালে চিন্তামণি ঘোষ মহাশয়ের দেহত্যাগে হরিকেশবই ইণ্ডিয়ান প্রেস লিঃ এর জেনারেল ম্যানেজার ও ম্যানেজিং ডাইরেক্টার পদে প্রতিষ্ঠিত হলেন। তাঁর কর্তৃত্বাধীনে ইণ্ডিয়ান প্রেসের উত্তরোত্তর আয় ও শ্রীবৃদ্ধি ও নানান ক্ষেত্রে এর বিস্তৃতি আরম্ভ হল। ইণ্ডিয়ান প্রেসের একটী শাখা ছাপাখানা কাশীধামে পুর্ব্বেই (১৯২১) প্রতিষ্ঠিত হয়েছিল—১৯৩৪ সালে কলিকাতায় একটী বিরাট শাখা ছাপাখানা খোলা হয়। এই সব বিস্তার-কার্য্যে হরিকেশবের উদ্যম, অভ্রান্ত নির্দ্দেশ ও সাফল্য বস্তুতই চমকপ্রদ। কি অপূর্ব্ব নিষ্ঠা ও প্রাণপাত চেষ্টা তাঁর সকল কর্ম্মে ফুটে উঠত সে কথা ভাবলেও আনন্দ হয় কেননা—বাঙালী ব্যবসা ক্ষেত্রে বিরল।

পুস্তকাদি প্রকাশ ও সৎ-সাহিত্য প্রচার বিষয়ে তাঁর অবদান বিপুল। তাঁর এই কার্য্যের জন্য তাঁর কাছে বাঙলা দেশ ও হিন্দী-ভাষী দেশগুলি চিরকাল ঋণী হ'য়ে থাকবে। "শিশু-ভারতী"র কথা বাঙলা দেশ তথা ভারতে কে না জানে—ভারতীয় নানান ভাষায় এই বিরাট শিশু-গ্রন্থের অনুকরণ হয়েচে। ভারতবর্ষে এরূপ বিপুলায়তন চেষ্টা আর উপযুক্ত সম্পাদক নির্ব্বাচন দুই প্রশংসার্হ।

শিশু-সাহিত্য-সম্রাট যোগেন্দ্রনাথ গুপ্ত মহাশয়ের সম্পাদনে ও কবিগুরুর আশীষ-মণ্ডিত হয়ে এই গ্রন্থ ১৯৩৪ সালে প্রথম প্রকাশিত হয় ও বহুবর্ষ ধরে নিয়মিত প্রকাশিত হতে থাকে। এই পরিকল্পনা হরিকেশবের সুষ্ঠভাবে কতৃত্বাধীনেই কার্য্য-করী হয়েছিল।

১৯৩৫ সালে হরিকেশব প্রতীচ্য প্রদেশে প্রেস ও পুস্তকপ্রকাশ ও প্রচারাদি কার্য্য পরিদর্শন মানসে গেছলেন। ইউরোপের নানান দেশে ও বিলাতে পরিভ্রমণ করে নানান তথ্য আহরণ করে দেশে ফেরেন। এই সময়েই জার্ম্মান প্রদেশ থেকে এলাহাবাদের প্রেসে বুক রোটারি যন্ত্র আমদানী করেন ও কলিকাতার শাখা-প্রেসেও একটী ফোটোগ্র্যাভ্যুর যন্ত্রও প্রতিষ্ঠা করেন। ইংরেজী 'পেন্‌গুয়ীন' গ্রন্থমালারই মত 'সরস্বতী' গ্রন্থমালা এই সময় প্রকাশিত হতে আরম্ভ হয়। বাঙলার বিখ্যাত সাহিত্যিক নিচয়ের বহু অমর গ্রন্থের অনুবাদ প্রকাশ করে হিন্দিভাষার সমৃদ্ধি ও বাঙলার কীর্ত্তির প্রসার যুগপৎ সম্পাদন করান। একাধিক মাসিক হিন্দি ও সাপ্তাহিক সচিত্র পত্রিকা এর পরেই প্রকাশিত হয়েছিল ও কিছুকাল ধরে ইংরেজী 'ওরিয়েন্ট' সচিত্র সাপ্তাহিক কলিকাতা থেকে ছাপা হয়ে প্রকাশিত হয়েছিল। অসিত হালদারের 'ওমর খইয়াম' কয়েকখানি ছবি ও মূল ইংরেজী কবিতার সঙ্গে যে অভিনব শিল্প-সৌন্দর্য্যে মণ্ডিত হয়ে প্রকাশিত হয়েছিল তার তুলনা সহজে মেলে না। হরিকেশবের প্রতিভা এই সব বিপুল পুস্তক পত্রিকাদি প্রচারের সঙ্গে চতুর্দ্দিকে বিকীর্ণ হয়ে রয়েচে।

প্রেসের কার্য্যের আশাতিরিক্ত প্রসার-সত্বেও হরিকেশবের মত উদ্যমশীল কর্ম্ম-বীরের শুধু এই কাজেই মন ওঠে নি। কয়েকটী বাঙালী সতীর্থ ও সুবিখ্যাত বৈজ্ঞানিক বন্ধু ডাঃ মেঘনাদ সাহা মহাশয়ের সহযোগিতায় তিনি একটি চিনির কল প্রতিষ্ঠা করেন (শীতলপুর সুগার ওয়ার্কস লিঃ) এবং এই কোম্পানীর তিনিই তাঁর জীবন-শেষ অবধি অন্যতম ম্যানেজিং ডাই-রেক্টার ছিলেন। শীতলপুরের এই কারখানা অনিবার্য্য কারণে অন্যত্র সরিয়ে নিয়ে যাওয়ার প্রয়োজন হয়েছিল। এ-কার্য্য তাঁরই তত্বাবধানে অত্যল্প সময়ের মধ্যে নির্ব্বিঘ্নে সুসম্পন্ন হয়েছিল। কর্ম্মী হরিকেশবের যান্ত্রিক কর্ম্মকুশলতার এও একটি চূড়ান্ত দৃষ্টান্ত।

এ ছাড়া হরিকেশব আরও অনেকগুলি ব্যবসা ও শিল্প প্রতিষ্ঠানের সঙ্গে ওতঃপ্রোত ভাবে জড়িত ছিলেন। তাঁর কর্ম্মকুশলতা ও সহজ নৈপুণ্যগুণে যুক্ত থাকা মানেই তার প্রাণস্বরূপ হয়ে থাকা—এই ছিল তাঁর রীতি। সাইন্‌টিফিক্ ইন্সট্রুমেন্ট কোং লিঃ একটি বিশিষ্ট শিল্প প্রতিষ্ঠান যার দ্বারা দেশের অনেক উপকার সাধিত হচ্ছে। এই কোম্পানরিও অন্যতম ডাইরেক্টার ছিলেন হরিকেশব।

আদর্শ বীমা কোম্পানী লিমিটেড, ইণ্ডাষ্ট্রিয়াল রিসার্চ্চ হাউস লিমিটেড, সুপার ইঞ্জিনীয়ারস্ লিমিটেড—এই সব প্রতিষ্ঠান-গুলির গঠনে ও পরিচালনে হরিকেশবের হাত ছিল অনেকখানি। ইউনাইটেড কমার্সিয়াল ব্যাঙ্কের এলাহাবাদ ব্রাঞ্চেরও তিনি একজন ডাইরেক্টার ছিলেন। স্থাপত্য

শিল্পে ও ইঞ্জিনীয়ারিংএ হরিকেশবের চির-কাল প্রাণের টান ছিল। এলাহাবাদের 'ঘোষ-মার্কেট' এ তথ্যের সাক্ষ্য দেবে। এটী তাঁরই পরিকল্পনা ও তাঁরই গড়া।

এই সামান্য জীবন-আলেখ্য থেকে বোঝা যায় তাঁর কর্ম্মজীবনের প্রসার ছিল কতখানি। কতকাজই করে গেছেন মাত্র ত্রিশ বত্রিশ বছরের কর্ম্ম-জীবনে। প্রাতঃ-কালে চা পানের সময় থেকে কাজ আরম্ভ হত আর শেষ হ'ত মধ্যরাত্রে—কাজ থেকে মুহূর্ত্তেরও বিরাম ছিল না তাঁর। তাই বুঝি দেহ আর সে ভার বহনে অপারক হয়ে পড়ল।

পারিবারিক জীবন ছিল তাঁর অতি মধুর। ভ্রাতৃবাৎসল্য ছিল একটি বিশেষত্ব। শত কাজের ভেতর পরিবারবর্গের মধ্যে ও বন্ধু-সমাগমে তাঁর সহাস বদন সদাই দেখা যেত। সরল, অনাড়ম্বর, ধীর-স্থির ছিলেন হরিকেশব।

মুহূর্ত্তে, মুহূর্ত্তে নানান কাজের নানান সমস্যা আসত তাঁর কাছে সমাধানের জন্যে। ধীরভাবে নির্দ্দেশ দিতে সর্ব্বদা দেখা যেত, কখনও উত্তেজিত হতে দেখা যেত না। নিঃশব্দে কর্ম্ম করে যাওয়াই যেন ছিল তাঁর জীবনের ব্রত। দেহান্তে কর্ম্মাবসানে শ্রীভগবানের ক্রোড়ে তিনি আশ্রয় পেয়ে-ছেন, এই আমাদের বিশ্বাস।



স্মরণে

শ্রীভূপেন্দ্রনাথ বিশ্বাস

কত বৎসর আগের কথা। এলাহাবাদে বারো বছরের একটি তরুণ কিশোরকে দেখেছিলাম। তার সরল সুন্দর মুখখানি, সহজ শিষ্টাচার, এবং মধুর মিষ্ট আলাপনে মুগ্ধ হয়েছিলাম। সে ছিল চিন্তামণি বাবুর দ্বিতীয় পুত্র। 'পটল' নামে সর্ব্বত্র পরিবারের লোকজনের কাছে, আত্মীয় স্বজন ও বাহিরের লোকের কাছেও পরিচিত ছিল। ভাল নাম ছিল তার হরিকেশব। চিন্তামণি ঘোষ এলাহাবাদে প্রবাসী বাঙ্গালী সমাজের একজন প্রসিদ্ধ ব্যক্তি ছিলেন—ভারত বিখ্যাত ইণ্ডিয়ান প্রেস তাঁহার প্রধান কীর্ত্তি। আজ যে হিন্দী ভাষা রাষ্ট্র-ভাষারূপে গৃহীত হবার জন্যে দাবী উপস্থিত করেছে, তার সেই প্রেরণার মূলে ইণ্ডিয়ান প্রেসের সত্ত্বাধিকারী চিন্তামণি বাবুর ভবিষ্যত দৃষ্টি এবং প্রেরণা যে কত বড় কাজ করেছে, সে কথা দেশবাসীকে মনে করিয়ে দেবার সময় এসেছে। হিন্দী ভাষা ও সাহিত্য-বিষয়ক বিবিধ পুস্তক, তুলসীদাসের রামায়ণ এবং বহু হিন্দী কবিগণের কাব্য ও ধর্ম্ম-গ্রন্থ প্রকাশ দ্বারা তিনি যেমন উত্তর ভারতে হিন্দী-সাহিত্য প্রচারের সুযোগ করে দিয়েছিলেন—তেমনি ১৯০০ সালে 'সরস্বতী' নামে হিন্দী ভাষার মাসিক সাহিত্য-পত্রিকা-প্রকাশ তাঁর অপূর্ব্ব কীর্ত্তি।

যে কথা বলিতেছিলাম, সময় চলে যায়, সঙ্গে সঙ্গে শিশু বালক হয়, কিশোর হয়, যুবক হয়, তেমনি যে বারো বছরের কিশোরকে দেখেছিলাম, সে ক্রমে শিক্ষিত, তরুণ যুবকে পরিণত হলো, এবং পিতার ও জ্যেষ্ঠ ভ্রাতার মৃত্যুর পর মাথায় তুলে নিল বিরাট ব্যবসার কর্ম্মভার। ছোট ছোট ভাইদের শিক্ষার ভার, ব্যবসায় ও পরিবার পরিচালনার ভার সর্ব্ববিধ দায়িত্বই যুবক হরিকেশবের উপর আপনা হতেই এসে পড়েছিলো।

যুবক হরিকেশব পিতার আদেশে কলেজের শিক্ষা সমাপ্তির পূর্ব্বেই প্রেসের কার্য্য পরিচালনা, বাঙ্গলা, হিন্দী এবং বিবিধ ভাষায় গ্রন্থ প্রকাশের দ্বারা, বাঙ্গলা, বিহার, উড়িষ্যা, উত্তর ও মধ্য-ভারতে বিশেষ প্রতিষ্ঠাভাজন হয়েছিলেন এবং ইণ্ডিয়ান প্রেসের সুনাম সর্ব্বত্র বিস্তার করতে কৃতকার্য্য হয়েছিলেন। রবীন্দ্রনাথের কাব্য-গ্রন্থাবলীর অতি সুন্দর মুদ্রণ ও প্রকাশের জন্যও সে-কালের বাঙ্গলার শিক্ষিত সমাজে তাঁহার কীর্ত্তি বিঘোষিত হয়েছিল।

আমার সঙ্গে হরিকেশবের প্রথম পরিচয় হতেই তার মধ্যে আমি দেখতে পেয়েছিলাম, তাঁর ব্যবসা-বাণিজ্য ও শিল্পানুরাগের প্রতি আন্তরিক অনুরাগ ও প্রেরণা। যৌবনে কর্ম্মক্ষেত্রে প্রবেশ করে যে সুযোগ তিনি পেয়েছিলেন, ক্রমশঃ তার শ্রীবৃদ্ধি-সাধনের জন্য একান্ত ভাবে মনোযোগী হলেন। কর্ম্মক্ষেত্রে নানা শ্রেণীর লোকের সহিত তার পরিচয়ের সুযোগ হয়েছিল। কৃতী ব্যবসায়ী, শিল্পী, বিখ্যাত সাহিত্যিক ও লেখক প্রভৃতির সঙ্গে ঘনিষ্ঠ পরিচয়ের দ্বারা—কি ভাবে

দেশের কল্যাণ হয় ও সামাজিক ও অর্থ নৈতিক উন্নতি হয়, ব্যবসায়-বাণিজ্য ক্ষেত্রে এবং শ্রমশিল্পে জাতির সর্ব্ববিধ কল্যাণ সাধিত হয় সে দিকে তার প্রখর দৃষ্টি পড়েছিল।

আত্মীয়তা-সূত্র ছাড়া—ব্যবসায় ও বাণিজ্য ক্ষেত্রেও তার সঙ্গে আমার এই বিষয়ে আলাপ হ'ত। আমি সেই সব বিষয়ে হরিকেশবের সাথে আলোচনা করে, তাঁর ভবিষ্যতদৃষ্টি এবং বৈষয়িক জ্ঞান ও সূক্ষ্ম পর্য্যবেক্ষণ-শক্তি দেখে মুগ্ধ হয়েছি। শীতলপুরে চিনির কারখানা প্রতিষ্ঠার মূলে তাঁর যে শ্রম, উদ্যোগ ও কর্ম্মকুশলতা, অধ্যবসায় এবং শ্রম-দক্ষতা দেখেছি তা জীবনে কখনো ভুলবো না। আমাকেও তিনি টেনে নিয়েছিলেন সেই প্রতিষ্ঠান প্রতিষ্ঠার প্রথম প্রারম্ভ কাল হ'তে,—কত দুঃসময় এসেছে, কত বাধা-বিপত্তি এসেছে, আমরা সময়ে সময়ে নিরাশ হয়ে পড়েছি—কিন্তু একদিনের জন্যও কোন বাধা-বিপত্তিকে গ্রাহ্য করতে দেখিনি হরিকেশবকে,—তিনি বলেছেন, 'ভূপেনদা কিছু চিন্তা করবেন না, সব ঠিক্ হবে। ভাবনা কিসের ?' কার্য্যতঃও তাই হয়েছে।

জীবনে তাঁকে বিশ্রাম ও বিলাস-আলস্যে সময় কাটাতে কখনো দেখিনি। সর্ব্বদাই, কোন না কোন কাজে তিনি লিপ্ত থাকতেন। প্রেস, গ্রন্থ-প্রকাশ, চিনির কল, বহুবিধ প্রতিষ্ঠান পরিচালনা সকল দিকেই ছিল তাঁর লক্ষ্য। মানুষকে চিনবার, বুঝবার শক্তি ছিল তাঁর অসাধারণ, কে কোন্ কাজের যোগ্য, কাকে কি কাজের ভার দিলে সুসম্পন্ন হবে, সে দিক্ লক্ষ্য করে কর্ম্মচারী নিয়োগ যেমন করতেন তেমনি যিনি যে ব্যবসায়ে, শিল্পে বিশেষজ্ঞ, তার উপরেই সে কাজের ভার দিতে দেখেছি।

পাশ্চাত্য দেশের মুদ্রণ-নীতি, ব্যবসায়-বাণিজ্য পরিচালনায় বৈজ্ঞানিক প্রণালী শিখবার জন্য, দেখবার জন্য ইউরোপ ভ্রমণ করে এসে নিজের মুদ্রাযন্ত্র বিভাগ, গ্রন্থ প্রকাশ, সর্ব্ববিষয়ে নূতন প্রথা অবলম্বন করে যথেষ্ট উন্নতি করে গিয়েছেন।

মানুষ বেঁচে থাকে তাঁর কীর্ত্তির উপর দিয়ে। কর্ম্মই ছিল হরিকেশবের জীবনের ব্রত। তার সুনিয়ন্ত্রিত পরিচালনার গুণে, সাধুতা, সত্যনিষ্ঠা, এবং সহযোগী কর্ম্মীগণের প্রতি সুমিষ্ট ব্যবহার দ্বারা, তিনি সকলের চিত্ত জয় করে প্রত্যেকের হৃদয়ে ও মনে স্মরণীয় ও বরণীয় হয়ে রয়েছেন। আমার জীবনে তার সংস্পর্শে আত্মীয়তা সূত্রে হ'ক, ব্যবসায়-বাণিজ্যের দিক্ দিয়ে হ'ক, সর্ব্বদা ঘনিষ্ঠ ভাবে মিলতে হয়েছে, দীর্ঘ সময় অতিবাহিত করতে হয়েছে, কিন্তু আমার মনে পড়ে না, কোন সময়ে তার ধৈর্য্যচ্যুতি হতে দেখেছি, বা রাগ করতে দেখেছি। ধীর, স্থির ভাবে সব বিষয়ই চিন্তা করে যেখানে ক্রোধ হওয়া উচিত, সেখানেও অপূর্ব্ব সংযমের সঙ্গে তা দমন করে স্বভাব-সুন্দর হাস্য দ্বারা অন্যায়কারীকেও ক্ষমা করেছেন।

কয়েক বৎসর যাবতই দারুণ পীড়া-যন্ত্রণায় ভুগতে হয়েছে। অশক্ত, অপটু শরীর নিয়েও দিনের পর দিন কাজ করে যেতে দেখেছি। অনেক সময় বলেছি, 'পটল, আর কাজ করোনা ভাই, শরীরটার দিকে তাকাও !' উত্তর দিয়েছেন হাসিমুখে, 'ভূপেন্দা কাজ ছাড়া আমি থাকতে পারি না।' কাজেই নিরুত্তর হতে হ'ত।

বৃহৎ একান্নবর্ত্তী পরিবারের কর্ত্তা হয়েও কোন দিন পরিবারের এমন কি, ভৃত্য হতে আরম্ভ করে, আত্মীয়স্বজন, বন্ধুবান্ধব, কারও মুখে তাঁর বিরুদ্ধে একটি কথাও শুনিনি। ভ্রাতাদের প্রতি ছিল তাঁর অসীম স্নেহ। সে স্নেহের পরিচয় তার প্রত্যেকটি কার্য্যে, কথা ও ব্যবহার দ্বারাই প্রকাশ পেত। কি ব্যবসায় সম্পর্কিত ব্যাপারে, কি পারিবারিক, কি সামাজিক ব্যাপারে ভ্রাতাদের সহিত আলাপ আলোচনা করে কাজ করা ছিল তাঁর চরিত্রের বিশেষত্ব। ভ্রাতারাও 'মেজদা' ছাড়া কিছু জানত না। বর্ত্তমান সময়ে এরূপ পারিবারিক প্রীতি ও ঐক্য বড় একটা দেখা যায় না।

হরিকেশব বড় অকালে চলে গেছেন। মাত্র চুয়ান্ন বৎসর বয়সে বিধাতা তাঁর বুকে এই কর্ম্মযোগী পুরুষকে টেনে নিলেন। বাঙ্গালী জাতির পক্ষে এ একটা অভিশাপ বলতে হবে। আমাদের মনে হয়, মৃত্যুর পরেও মানুষ যাকে স্মরণ করে, তার কখনও মৃত্যু হয় না। হরিকেশবের মৃত্যু হয় নাই, আজ তাঁর বিদেহী আত্মা তার প্রত্যেকটি কর্ম্মের মধ্যে প্রেরণা জাগিয়ে সকলের মনে তাকে স্মরণীয় করে রেখেছে। আজ আমি তার স্মরণে তার স্মৃতির উদ্দেশ্যে অশ্রুসিক্তনয়নে বিধাতার কাছে এই প্রার্থনা করি—তিনি যেন তাঁকে অমর শান্তি দান করেন। আমরা ক্ষুদ্র মানুষ, আর কিই-বা বলতে পারি। হরিকেশবকে জীবনের প্রতিটি দিন স্মরণ করে তার স্মৃতির প্রতি আমার স্নেহ-পুষ্পাঞ্জলি অর্পণ করে ধন্য হচ্ছি।

ওঁ শান্তি! ওঁ শান্তি!! ওঁ শান্তি!!!



বন্ধু-স্মরণে

শ্রীসৌরীন্দ্রমোহন মুখোপাধ্যায়

সেদিন সকালে খবরের কাগজে হঠাৎ পড়লুম, বন্ধু হরিকেশব পরলোক গমন করেছেন,—বুকখানা ধ্বক্ করে উঠলো! মনে হলো, এর মধ্যেই ?............যাবার বয়স তো হয়নি!

সঙ্গে সঙ্গে মনে হলো, মস্ত বড় একজন বাঙালী শিল্পপতি চলে গেলেন—তাঁর সঙ্গে চলে গেল কতখানি বোনেদী-মন...কতখানি 'কাল্‌চ্যারাল্ আউট্‌লুক্'! এমন সদাচারী, মিষ্টভাষী, অমায়িক, শান্ত, শিষ্ট, সুধী-সজ্জন জীবনে অল্পই দেখেছি! সুদীর্ঘ কর্ম্ম-জীবনে নানা দেশের, নানা জাতের বহু কৃতবিদ্য, শিল্প-রসিক এবং সম্ভ্রান্ত-সুধী'র অন্তরঙ্গতা লাভের সৌভাগ্য আমার হয়েছে, কিন্তু হরিকেশবের মধ্যে এমন কয়েকটি বৈশিষ্ট্য দেখেছি, যা মানব-চরিত্রে একাধারে দুর্লভ! প্রথমেই মনে পড়ছে, তাঁর সহজ শিষ্টাচার এবং ভদ্রতার কথা। ইংরাজীতে যাকে বলে 'Gentleman'—হরিকেশব ছিলেন সেই 'Gentleman'............ and a 'Perfect Gentleman'! ইণ্ডিয়ান প্রেস লিমিটেড এবং ইণ্ডিয়ান পাব্‌লিশিং হাউস—বাঙালীর গৌরবের প্রতিষ্ঠান। এ-দুটির প্রতিষ্ঠা করে-ছিলেন তাঁর স্বনামধন্য কর্ম্মী-পিতা স্বর্গীয় চিন্তামণি ঘোষ। তাঁর লালনে-পরিচর্য্যায় এ-দুটি প্রতিষ্ঠান কচি চারার মত সম্ভাবনার কিশলয়ে মুঞ্জরিত হয়েছিল মাত্র; সে-চারা আজ বিরাট মহীরুহরূপে বহু শাখা-প্রশাখায় প্রসারিত হয়ে যে ফল-ফুল ও ছায়া রচনা করেছে—এ হয়েছে হরিকেশবের হাতে!

হরিকেশবের প্রতিভা বহুমুখী এবং সৃজনী-শক্তি অসাধারণ! সে প্রতিভা এবং সে ভক্তি শুধু এই প্রেস এবং পাবলিশিং হাউসের প্রবর্দ্ধনাতেই কেন্দ্রীভূত ছিল না—উত্তর পশ্চিমাঞ্চলের শীতলপুরে তিনি যে চিনির কারখানা রচনা করেছিলেন দেশের Economic এবং Industrial Development এর দিক দিয়ে সে-দান অমূল্য! তাছাড়া ভারতের চলচ্চিত্র-শিল্পের উৎকর্ষ সাধনেও হরিকেশবের সহযোগিতা ছিল অনেকখানি!

আজ মনে পড়ছে হরিকেশবের সঙ্গে প্রথম পরিচয়ের কথা। তাঁর পোষাকী নাম হরিকেশব...আত্মীয়-স্বজন এবং অন্তরঙ্গদের কাছে তিনি ছিলেন—পটলবাবু! ত্রিশ-বত্রিশ বছর আগে শান্তিনিকেতনে যখন ছাপাখানা বসলো, তখন থেকে রবীন্দ্রনাথের সমস্ত রচনা সেই ছাপাখানায় ছাপাবার ব্যবস্থা হয়। তার আগে ইণ্ডিয়ান প্রেসে কবির সব রচনা ছাপা হয়ে ইণ্ডিয়ান পাবলিশিং হাউস থেকে প্রকাশ হতো। রবীন্দ্রনাথের রচনাতেই ইণ্ডিয়ান প্রেস এবং পাবলিশিং হাউস প্রাণ পেয়েছিল। তাঁর লেখা ইণ্ডিয়ান প্রেস থেকে সরে গেলে বাংলা-গ্রন্থের প্রকাশ এক রকম বন্ধ হল। তখন পটলবাবু আমার সঙ্গে আলাপ করেন এবং তাঁরই উৎসাহে ইণ্ডিয়ান পাবলিশিং

হাউস থেকে আমার অনেকগুলি বই প্রকাশিত হয়। এই সূত্রে এবং এই সময় থেকেই তাঁর সঙ্গে আমার অন্তরঙ্গতা বেড়ে ওঠে। আমাদের এ অন্তরঙ্গতা শেষ পর্য্যন্ত অক্ষুন্ন ছিল।

বহুদিন থেকে আমার বাসনা ছিল পৃথিবীর সকল দেশের প্রাচীন রূপকথা সংগ্রহ করে বাংলায় সেগুলি লিখে প্রকাশ করবো। ওকালতী পেশা থেকে অবসর নিয়ে সম্প্রতি বহু বিদেশী রূপকথা আমি বাংলায় লিখি.........পটলবাবু সে খপর পেয়ে খুব উৎসাহিত হন এবং সে গল্পগুলি বহু ব্যয়ে ন' দশ খণ্ডে প্রকাশ করতে উদ্যোগী হন। 'রূপকথা'র প্রথম খণ্ড ছাপাও প্রায় শেষ হয়েছে, কিন্তু আমার দুর্ভাগ্য হরিকেশব সে বই দেখে গেলেন না!

কিন্তু আমি ত প্রবন্ধ লিখছি না—তাঁর জীবনীও লিখছি না! তাঁর আকস্মিক মৃত্যুতে যে সব কথা মনে ভেসে উঠেছে, লিখলুম। হরিকেশবের কর্ম্মময় জীবনের কাহিনী লেখবার মত.........সে-কাহিনীতে অনেক আদর্শের সন্ধান পাবেন—জীবনের লক্ষ্য স্থির করতে পারবেন—এবং কি করে বাঁচার মত বেঁচে জীবনকে সার্থক করে তোলা যায়,—উপলব্ধি করবেন!

আমার পটল বাবু

শ্রীনয়নচন্দ্র মুখোপাধ্যায় (পণ্ডিত মশাই)

[আমার পটল বাবু আজ পৃথিবীর পর-পারে—অমৃত লোকে। তাঁরি উদ্দেশে এই অশ্রুতর্পণ লিখিতে বসিয়াছি। হে স্বর্গত অমৃত-পুত্র! আমার বিশ্বাস, সে-লোকে দুঃখ-দ্বন্দ্ব নাই—পৃথিবীর কোলাহল নাই। সেখানে কেবল আনন্দ আর শান্তি। হে চিরআনন্দময়—সেই অমৃত-লোক হইতে তোমার শোকসন্তপ্ত 'পণ্ডিত মশাই' এর এই শোকাশ্রুতর্পণ গ্রহণ কর।]

* * *

১৯০৫ খৃষ্টাব্দের ৬ই ডিসেম্বর, অপরাহ্ণ ৪টা। এলাহাবাদ এংলো বেঙ্গলি স্কুলের (এখন কলেজ) প্রধান শিক্ষক নেপাল বাবু * আমাকে বলিলেন, "চলুন পণ্ডিত মশাই, আপনাকে এখানকার একজন মানুষ দেখিয়ে আনি।"

বিস্মিত হইয়া আমি বলিলাম,—"মানুষ! এম্‌নি তো প্রতিদিন কত চেনা-অচেনা মানুষ দেখ্‌চি—মানুষ দেখবার জন্য আবার কোথায় যেতে বল্‌চেন ?"

হাসিতে হাসিতে তিনি বলিলেন, "হাঁ যে মানুষের কাছে আজ আপনাকে নিয়ে যাবো, তিনি মানব—অতিমানব—মহা-মানব দেখিলেই বুঝবেন!"

বিস্ময় আরোও বাড়িল। দু-জনে আমরা স্কুলের গাড়ী-বারান্দার ধারে দাঁড়াইয়া আছি; এমন সময়ে স্কুলের চাকর মাতাভিখ্ এক টাঙ্গায় চড়িয়া গাড়ী-বারান্দায় উপস্থিত হইল এবং অভিবাদন করিয়া বলিল—"হুজুর! গাড়ী এসেছে।"

নেপালবাবু সহাস্য মুখে বলিলেন, "উঠুন।"

নেপালবাবুর সংগে আমিও টাঙ্গায় উঠিলাম। নেপালবাবু টাঙ্গাওয়ালাকে বলিলেন "কাট্‌রা চলো"।

টাঙ্গা স্কুলের 'গেট' পার হইয়া সিটি রোড (এখন কমলা নেহ্‌রু রোড) ধরিয়া বরাবর উত্তর মুখে চলিল।

এলাহাবাদে তখন আমি নূতন আসিয়াছি। সব জায়গার সঙ্গে তখন আমার পরিচয় হয় নাই। আল্‌ফ্রেড পার্কের পাশ দিয়া টাঙ্গা যাইতেছিল। নেপাল বাবু বলিলেন, "ঐ দেখুন—আল্‌ফ্রেড পার্ক; কল্‌কাতার ইডেন গার্ডেন। ওদিকে সাধারণ গাড়ী, এক্কাও যাওয়া নিষেধ। ফের্‌বার মুখে আপনাকে দেখিয়ে আন্‌বো।"

যথাসময়ে টাঙ্গা পৌঁছিল, কাটরা রোডের এক দ্বিতল অট্টালিকার সম্মুখে। দেখিলাম, দ্বিতলের বারান্দার ধারে এক হৃষ্টপুষ্ট প্রবীণ পুরুষ রাস্তার দিকে তাকাইয়া দাঁড়াইয়া আছেন। টাঙ্গা ঐ বাড়ীর সম্মুখে দাঁড়াইতেই দেখিলাম, বারান্দায়

---

* অধুনা স্বর্গত নেপালচন্দ্র রায়—যিনি এলাহাবাদ এংলো বেঙ্গলি স্কুলের কার্য্যভার ত্যাগ করিয়া রবীন্দ্রনাথের শান্তিনিকেতনে আত্মনিয়োগ করিয়াছিলেন।

দণ্ডায়মান পুরুষ সম্মুখের ঘরে প্রবেশ করিলেন। আমরা টাঙ্গা হইতে নামিলাম। নেপাল বাবু টাঙ্গার ভাড়া চুকাইয়া দিতেই টাঙ্গা চলিয়া গেল। আমরা সম্মুখের বৈঠকখানায় প্রবেশ করিলাম। চারখানা বড় বড় তক্তপোষের উপর দামী সতরঞ্চী পাতা। তার উপরে শাদা ধব্‌ধবে চাদর বিছানো। আমরা তাহার উপর বসিয়া দেখিলাম—সম্মুখের দেওয়ালে ঘড়ি—তাহাতে চারিটা বাজিয়া পঁচিশ মিনিট।

নেপাল বাবু বলিলেন, "সাড়ে চারিটার সময় আমাদের আসবার কথা। টাঙ্গার ঘোড়াটা খুব তেজী ছিল কিনা—তাই শিগ্‌গিরই এসে গেছে।"

এর তো আর কোনো জবাব নাই। অবিলম্বে লাঠির ঠক্‌ঠক্ আওয়াজের সংগে মনে হইল—সিঁড়ি বাহিয়া কেহ যেন নীচে নামিতেছেন। আগেই দ্বিতলের বারান্দায় যাঁহাকে দাঁড়াইয়া থাকিতে দেখিয়াছিলাম, দেখিলাম, তিনিই আফিসের পোষাকে এক লীলাচঞ্চল সুদর্শন বালকের সহিত সেই বৈঠকখানায় প্রবেশ করিলেন এবং হাস্যমুখে নেপাল বাবুকে বলিলেন—"আজকে যে খুব পাংচুয়াল।"*

নেপালবাবু ও আমি উভয়েই দাঁড়াইয়া সমাগত মহাপুরুষের অভ্যর্থনা করিলাম। তিনিও প্রতি-নমস্কার করিয়া নেপালবাবুকে জিজ্ঞাসা করিলেন,—"আপনি এঁরি কথা আমাকে বলিয়াছিলেন?" নেপাল বাবু বলিলেন "হাঁ"।

ইহার পর তাঁহাদের দু-জনের মধ্যে কয়েকটা কি কথা হইল—আমার মনে নাই। ইতিমধ্যে সেই শিশুটি আমার কাছে বসিয়াছে। আমার পিঠে হাত দিয়া সেই শিশুটি বলিল, "আপনি পণ্ডিত মশাই?—আমাকে বুঝি পড়াবেন? আমি আপনার কাছে পড়্‌বো।"

শিশুটি আমার সংগে এইরূপ কহিতেছে শুনিয়া নেপালবাবু বলিলেন, "এই যে পটলবাবু, তুমি এরি মধ্যে পণ্ডিতমশাইকে চিনে ফেলেছ? তুমি এঁরি কাছে পড়্‌বে—তাইতো আমি আজ এঁকে এখানে নিয়ে এসেছি।"

শিশুর পিতা আমার পরিচয় জিজ্ঞাসা করিলেন। কোথায় বাড়ী—কতদিন চাকরী করিতেছি—বাড়ীতে কে কে আছেন, ইত্যাদি। তারপর তিনি নেপাল বাবুকে অন্য ঘরে লইয়া গিয়া কিছু কথাবার্ত্তা করিলেন। পরে তাঁহারা সেই বৈঠকখানার ঘরে আসিয়া নেপালবাবুর সহিত আরো কয়েকটা কথা কহিয়া ঐ মহাপুরুষ তাঁহার আফিসে চলিয়া গেলেন। আমরাও বিদায় গ্রহণ করিতে উদ্যত হইলে শিশুটি আমাকে বলিল, "তা হ'লে পণ্ডিত মশাই, কাল সকালেই আস্‌ছেন? আপনার আস্‌বার আগেই আমি এই জায়গায় বসে থাক্‌বো, দেখ্‌বেন।"

আমি বলিলাম, "আচ্ছা।"

প্রায় ৫টার সময় আমরা সেখান হইতে আসিয়া আল্‌ফ্রেড পার্কে পৌঁছিলাম।

* নেপাল বাবুর সময়নিষ্ঠতা প্রায় ছিল না। ঠিক সময়ে আসা প্রায়ই তাঁহার হইত না, এই কারণে সেইদিন চিন্তামণি বাবু তাঁহাকে "পাংচুয়াল" বলিয়া রহস্য করিয়াছিলেন।

আল্‌ফ্রেড পার্ক দেখিয়া আমরা বাসায় ফিরিতেছিলাম। নেপাল বাবু পথে আমায় পরিচয় দিলেন। উপরিউক্ত মহাপুরুষের নাম শ্রীযুক্ত চিন্তামণি ঘোষ, আর এই শিশুটি তাঁহার মধ্যম পুত্র—শ্রীমান্ পটল বাবু। তাঁর ভালো নাম তিনি বলিতে পারিলেন না। হরিকেশব নামটি তাঁহার 'পটল বাবু' এই নামের অন্তরালে ঢাকা পড়িয়া গিয়াছিল। অতি অল্প লোকেই তাঁর আসল নামটি জানিত। ফলতঃ, উত্তর কালে তিনি এই নামেই পরিচিত ছিলেন।

পরদিন্ ডিসেম্বরের সেই শীতে সকাল পৌনে সাতটার সময়ে আমি কাট্‌রার ঐ বাড়ীতে উপস্থিত হইয়া দেখিলাম, শিশুটি আমার পৌঁছিবার আগেই সেই খানে আসিয়া বসিয়া আছে, হাতে তাহার একখানি শিশু-শিক্ষা—তৃতীয় ভাগ, চিন্তামণি বাবু আফিসের পোষাকে বৈঠকখানার বারান্দার কাছে দাঁড়াইয়া। আমাকে দেখিয়া মনে হইল, যেন সম্মুখের ঘড়ির দিকে চাহিলেন। পরে বলিলেন, "দেখুন পণ্ডিত মশাই, পটল বাবু ঠিক সময়েই আপনার প্রতীক্ষা করিতেছে।" এই বলিয়া তিনি আমাকে বলিলেন, "আপনার সব পরিচয় আমি নেপালবাবুর মুখে শুনিয়াছি। পটল বাবুকে আপনার হাতে দিলাম। এ'কে বাংলা একটু ভালো করিয়া পড়াইবেন। বাঙ্গালীর ছেলে বাংলার বাইরে আসিয়া তার মাতৃভাষা ভুলিয়া যায় এ আমার অভিপ্রেত নয়।" এই বলিয়া তিনি অফিসে চলিয়া গেলেন। আমি পটল বাবুকে পড়াইতে আরম্ভ করিলাম। বলিলাম, "তুমি কোন্‌খানটায় পড় ?" পটলবাবু শিশু-শিক্ষার 'ভালুকের গল্প' বাহির করিয়া কয়েকটা কথার পর পড়িল—'তথাকার লোকেরা ভালুকের হাড় দিয়া ঘাস কাটে ;'—এই বলিয়াই হাসি ! হাসির কারণ জিজ্ঞাসা করায় শিশুটি বলিল, "হাড় দিয়ে ঘাস কাটে কেমন করে' ?" উত্তরে বলিলাম, "কাস্তে দিয়ে ঘাস কাটা দেখেছ ?" পটলবাবু বলিল, "কাস্তে কি পণ্ডিত মশাই ?" আমি বলিলাম—"যা দিয়ে ঘাস কাটা হয়।" এবং তার ছবি আঁকিয়া দেখাইলাম। ছবি দেখিয়া পটলবাবু বলিল—"এ যে হাঁসুয়া ! একে আপনারা কাস্তে বলেন ?" এই বলিয়া পটলবাবুর কি হাসি ! সুদীর্ঘ এত কালেও আমার হৃদয়ে সে-হাসির ঔজ্জ্বল্য মলিন হয় নাই।

গ্রীষ্মাবকাশের পর (১৯০৬ খৃষ্টাব্দের ৯ই জুলাই) পটল বাবু এংলো বেঙ্গলী স্কুলে ভর্ত্তি হইলেন। স্কুলের পাঠ্য অন্যান্য বিষয়ে পড়াইবার জন্য অন্য শিক্ষকের ব্যবস্থা থাকিলেও পটল বাবুর তাহা আমার কাছে না পড়িলে তৃপ্তি হইত না।

কিছুদিনের পর ঘটনাচক্রে মেসের বাসা ছাড়িয়া আমি ৺চিন্তামণি বাবুর বাড়ীতেই আশ্রয় গ্রহণ করিলাম। এই সময়ে পটল বাবু অধিকাংশ সময়ই আমার কাছে থাকিত। বাড়ীর ভিতরে থাকিতে তাহার ভালো লাগিত না ; আহারাদিও আমারই কাছে হইত। রাত্রে শুইবার জায়গাও আমার কাছে। পটল বাবু দুই হাতে আমার গলা জড়াইয়াধ রিয়া আব্‌দার করিত—"গল্প বলো" ! কত গল্পই বলিতাম। সুয়োরাণী, দুয়োরাণীর কথা—সাতভাই চম্পার কথা—বামন বীরের কথা ইত্যাদি।

—কত কথাই না হইত। ক্রমে আমার। গল্পের ভাণ্ডার ফুরাইয়া আসিলে রামায়ণ মহাভারতের গল্প, পঞ্চতন্ত্রের গল্প, কথা-সরিৎ-সাগরের গল্প, উপনিষদের গল্প—কত গল্পই না বলিতাম। ফলতঃ, বালকের কৌতূহল পরিতৃপ্তির জন্য আমাকে নানা জায়গা হইতে আগেই গল্প ঠিক করিয়া রাখিতে হইত? কখনো বা কত সম্ভব-অসম্ভব কথা জুড়িয়া একটা গল্প বানাইয়া রাখিতাম। বালকের কৌতূহলী চিত্ত আমার রচা গল্পে যেন কোন্ অজানিত রাজ্যের সন্ধান পাইত। আমি বরাবরই লক্ষ্য করিতাম, পটলবাবুর মানস-লোক ছিল—কৌতূহলের স্বপ্নরাজ্য! কৌতূহলই আশার নন্দন কানন। পটল বাবুর জীবনে এই কথাটির সত্যতা সুস্পষ্ট পরিলক্ষিত হইত।

কথা-প্রসংগে আর একটা কথা আসিয়া পড়িতেছে। স্বনামধন্য রামানন্দ বাবু তখন এলাহাবাদ কায়স্থ কলেজের প্রিন্সিপাল (সর্বাধ্যক্ষ)। পাঠকগণ জানেন, তাঁহার পরিচালিত প্রবাসী, মডার্ণ রিভিউ পত্রিকার সূতিকাগার ছিল, ইণ্ডিয়ান প্রেস। কার্য্যোপ-লক্ষে তাঁহাকে প্রায় প্রতিদিন ইণ্ডিয়ান প্রেসে আসিতে হইত। পটল বাবু তখন পিতার কাছে বসিয়া লেখাপড়া করিতেন। সে লেখাপড়া ছিল তাঁর কাঁচি দিয়া কাগজের ফুল কাটা, কাকের ছানা বকের ছানার ছবি আঁকা ইত্যাদি। রামানন্দ বাবু সেই সময়ে তথায় উপস্থিত হইলে পটল বাবু হাসিতে হাসিতে বলিতেন,—"আপনার কত টাকার চেক্ চাই?" রামানন্দ বাবু সকৌতুকে বলিতেন,—"যা হয় দাও"। পটল বাবু তৎক্ষণাৎ এক টুকরা কাগজে কোনো একটা সংখ্যা লিখিয়া তাঁর হাতে দিয়া বলিতেন—"আজ এত টাকার চেক্ দিলাম; কাল আসিলে আরো পাঁচ হাজার টাকার চেক্ দিব।" "উঠন্তি মূলো পত্তনে চেনা যায়"—বাল্যের খেলাছলে এই যে চেক্ দান ব্যাপারটা, ইহা কিন্তু নিতান্ত ছেলে-খেলা নয়। কর্মজীবনে প্রবেশ করিয়া এই সুকুমার বালক কত ভাবেই না চেক্ স্বাক্ষর করিয়া তাহার এই শৈশব-স্বপ্ন সার্থক করিয়াছে—হরিকেশবের কর্মজীবন-সহচরগণ ইহা জানেন।

১৯১৯ সালের ডিসেম্বর মাস। চিন্তামণি বাবুর সংসারে দুরারোগ্য বেরিবেরি রোগে প্রায় সকলেই আক্রান্ত হইলেন। চিন্তামণি বাবু কার্য্যোপলক্ষে কলিকাতায়। সংবাদ পাইয়া তিনি জানুয়ারি মাসে (১৯২০) এলাহাবাদে আসিলেন এবং প্রত্যেক রোগীর সুচিকিৎসার ব্যবস্থা করিলেন। ডাক্তারগণ অভিমত জানাইলেন, এতগুলি রোগীকে এক জায়গায় রাখা উচিত হইবে না। এই জন্য ডাক্তারদের পরামর্শে স্থান পরিবর্তনের জন্য প্রায় সকলকেই লক্ষ্ণৌ-এর মডেল হাউসস্থ বাসা-বাটীতে পাঠানো হইল। হরিকেশব বাবুও এই সময়ে লক্ষ্ণৌয়ে গেলেন। জর্জটাউনের বাটীতে রহিলেন—দুইটি কঠিন রোগী—জ্যেষ্ঠপুত্র হরিপদ বাবু ও তাঁহার জননী দেবী। লিখিতে লেখনী কাঁপিয়া উঠে—১৭ই ফেব্রুয়ারী তারিখে রাত্রি প্রায় একটার সময়ে হরিপদ বাবুর জননী স্বর্গলাভ করিলেন। সপ্তাহ অতীত হইতে না হইতেই ২৪শে ফেব্রুয়ারী হরিপদ বাবুও সকল চেষ্টা ব্যর্থ করিয়া মাতৃক্রোড়ে আশ্রয়

গ্রহণ করিলেন। সংবাদ পাইয়া হরিকেশব বাবু অন্যান্য ভ্রাতৃবর্গসহ এলাহাবাদে ফিরিয়া আসিলেন। দুঃখের কথা কি কহিব—কয়েকদিনের পরেই খবর আসিল লক্ষ্ণৌয়ে হরিকেশব বাবুর জ্যেষ্ঠা ভগিনী হরিপ্রভাও তাঁহার মাতার ও জ্যেষ্ঠভ্রাতার পার্শ্বে আশ্রয় গ্রহণ করিয়াছেন। শোকের কালো ছায়ায় এলাহাবাদে জর্জটাউনের প্রাসাদ মলিন রহিয়াছে। সকলেই ম্লান-বিমর্ষ। এপ্রিল মাসের প্রথম সপ্তাহেই আবার চিন্তামণি বাবুর সকল-কাজের পরামর্শ দাত্রী জ্যেষ্ঠা ভগিনীও দুরারোগ্য ক্যান্সার রোগে দেহত্যাগ করিলেন। এই সকল নিদারুণ শোকানলে চিন্তামণি বাবু বাহ্যতঃ স্থির-শান্ত থাকিলেও অগ্নিগর্ভ গিরিশৃংগের মত মাঝে মাঝে কাঁপিয়া উঠিতেন। বলা বাহুল্য এই সময়ে আমি তাঁহাদের পরিবারভুক্ত হইয়া তাঁহাদের সকলের প্রাণে সান্ত্বনার সলিল-সেচের চেষ্টা করিতাম।

চিন্তামণি বাবুর শেষ-জীবনে জ্যেষ্ঠপুত্র হরিপদ বাবু পিতার দক্ষিণহস্ত স্বরূপ ছিলেন। এই হরিপদ বাবুই এলাহাবাদ কায়স্থ কলেজের তদানীন্তন অধ্যক্ষ সুরেন্দ্র নাথ দেব মহাশয়ের জ্যেষ্ঠা কন্যা মীরারাণীর সহিত হরিকেশব বাবুর বিবাহ-সম্বন্ধ স্থির করিয়াছিলেন। বৈশাখ মাসে বিবাহ কার্য্য সম্পন্ন হইবার কথা ছিল। কিন্তু ফাল্গুন মাসে চিন্তামণি বাবুর সংসারে শোকের ঝড় বহিয়া যাওয়ায় এই শুভকার্য্য সমাধা হইতে পারে নাই। জুলাই মাসের শেষ দিকে হরিকেশববাবুর বিবাহের দিন স্থির হইল। দারুণ শোকের অন্ধকারে আনন্দের ঝলক আসিয়া পড়িল এবং ঈশ্বরকৃপায় শুভকার্য্য নির্দ্ধারিত দিনে কাশীতে সুসম্পন্ন হইল।

বিপদ একাকী আসে না। আবার এক বিপদ আসিয়া পৌঁছিল। এলাহাবাদ বিশ্ববিদ্যালয় চিন্তামণি বাবুর ৩ নং পাইয়োনীয়র রোডস্থ ইণ্ডিয়ান প্রেসের জায়গা অধিকার করিল। অনিচ্ছাসত্ত্বেও চিন্তামণি বাবুর তাহা বিশ্ববিদ্যালয়-কর্তৃপক্ষকে দিতে হইল। কিন্তু সমস্যা হইল—অত বড় ছাপাখানা ও ছাপাখানার বিশাল সরঞ্জাম তিনি কোথায় রাখিবেন। এই সময়ে এলাহাবাদ বিশ্ব-বিদ্যালয় কলিকাতা বিশ্ব-বিদ্যালয়ের মত নিজস্ব ছাপাখানা স্থাপনের স্বপ্ন দেখিতেছিল। চিন্তামণি বাবুর প্রস্তাবে এলাহাবাদ বিশ্ব-বিদ্যালয় সম্মত হইলে সেখানকার গভর্ণমেণ্ট প্রেসের সুপরিণ্টেণ্ডেণ্ট সমস্ত সরঞ্জামসহ ছাপাখানার মূল্য স্থির করিলেন। চিন্তামণিবাবু সেই মূল্যে স্বীকৃত হইয়া প্রেস ও সমস্ত সরঞ্জাম বিক্রয় করিয়া ফেলিলেন। বলা বাহুল্য, প্রেস পরিচালনায় দক্ষিণহস্ত স্বরূপ জ্যেষ্ঠপুত্র হরিপদ বাবুকে হারাইয়া চিন্তামণি বাবু নিরুৎসাহ হইয়া পড়িয়াছিলেন। কিন্তু অত বিশালায়তন পাব্‌লিকেশন ও মজুদ পুস্তকাদি তিনি কি করিবেন, কিছু স্থির করিতে না পারিয়া ২য়, ৩য়, ৪র্থ পুত্র শ্রীমান্ হরিকেশব, হরিপ্রসন্ন ও হরিসাধন বাবুদের পরামর্শ জিজ্ঞাসা করিলেন। তাঁহারা সকলেই বলিলেন, ‘প্রেস নূতনভাবে গঠন করিতে হইবে এবং তাহাকে নবরূপ দিতে হইবে।’ হরিকেশব বাবু পিতার সহকর্মী হিসাবে দাঁড়াইতে সম্মত হইলেন। তিনি তখন বেনারস হিন্দু ইউনিভার্সিটীর ইঞ্জিনীয়ারিং বিভাগের ছাত্র। পিতার অনুরোধে তিনি

কলেজ ত্যাগ করিয়া ইণ্ডিয়ান প্রেসের নব রূপের রূপকার হইয়া দাঁড়াইলেন। তখন হইতেই হরিকেশব বাবু ইণ্ডিয়ান প্রেসের সর্ব্বাঙ্গীন উন্নতির জন্য চেষ্টা করিয়া আসিয়াছেন। প্রেসের পরিচালনায় হরিকেশব বাবু উত্তরকালে যেরূপ নৈপুণ্য দেখাইয়াছেন, পিতা চিন্তামণি বাবু হরিকেশব বাবুর সেই আশা-তরু মূলে সযত্নে সলিল-সেক করিয়াছিলেন। প্রেসের কিসে উন্নতি হইবে—প্রকাশিত পুস্তকাবলী কিরূপে শোভন-সুন্দর হইবে—মুদ্রণ কিরূপে নির্ভুল ও সর্বাঙ্গসুন্দর হইবে, এই চিন্তা তাঁহার সর্বদাই ছিল। এই চিন্তার ফলে বহু বিশিষ্ট বাঙালী ও তদ্দেশীয় গ্রন্থকারের সহিত তাঁহার আলাপ পরিচয় হয়।

প্রকাশন ক্ষেত্রে অগ্রজত্বের অধিকারে হরিকেশব বাবু সহকর্মিগণের প্রতি ভ্রাতৃত্বের স্নেহশীতল ছায়া প্রদানে কখনও বিমুখ হন নাই। ফলে, সহকর্মী প্রকাশকগণ হরিকেশববাবুকে শ্রদ্ধার চক্ষেই দেখিতেন। এই প্রকাশকগণের মধ্যে স্বর্গত শালিগ্রাম বর্মা এম, এ, মহাশয় হরিকেশব বাবুকে বিশেষ সম্মান প্রদর্শন্ করিতেন। হরিকেশব বাবুও উপদেশ ও অর্থ দ্বারা তাঁহাকে পুস্তক প্রকাশন বিষয়ে যথেষ্টসাহায্যকরিয়াছিলেন। শ্রীমান্ হরিকেশব বাবুর সৌহার্দ্দ্যে প্রকাশক বা গ্রন্থকারগণ সবিশেষ আবদ্ধ হইয়া পড়িয়াছিলেন। এই জন্য কোন গ্রন্থকার ও প্রকাশক অন্য স্থান হইতে এলাহাবাদে আসিলে তাঁহারা প্রবাসের দুঃখ ভুলিয়া হরিকেশববাবুর আতিথ্য গ্রহণ করিতেন। এইরূপে হরিকেশববাবুর আবাস-গৃহ ক্রমে এক সারস্বত-তীর্থে পরিণত হইয়া পড়িয়াছিল। হরিকেশব বাবু তাঁহাদিগকে পাইয়া পরম পরিতুষ্ট হইতেন।

ক্রমে ইণ্ডিয়ান প্রেসের শাখা-প্রেস স্থানে স্থানে স্থাপিত হইয়াছিল। বেনারস ইণ্ডিয়ান প্রেস, কলিকাতা ইণ্ডিয়ান প্রেস এখনো তাহার সাক্ষ্য প্রদান করিতেছে। ইহা ছাড়া প্রকাশিত পুস্তকাবলীর বহুল প্রচারের জন্য ভারতের নানাস্থানে এজেন্সীও স্থাপিত হইয়াছিল। বারাণসী, বেরেলী, লক্ষ্ণৌ, দিল্লী, মীরাট, মুরাদাবাদ, আগরা, আলীগড়, আম্বালা, দেরাদুন, কানপুর, গোরক্ষপুর, বম্বে, পাটনা, রাঁচি, ইন্দোর, জয়পুর, জব্বলপুর প্রভৃতি স্থানের এজেন্সী বর্তমানে কাজ করিতেছে। ইহা হইতেই বুঝা যায় হরিকেশব বাবু কি প্রকারের অক্লান্ত কর্ম্মী ছিলেন। কিন্তু ইহাই তাঁহার প্রতিভার সমগ্র প্রকাশ নহে।

কর্মজীবনে চিন্তামণি বাবু এলাহাবাদের ক্যানিং রোডের এক চতুষ্পথের উপর খানিকটা জায়গা কিনিয়া রাখিয়াছিলেন। হরিকেশববাবুর দৃষ্টি পড়িল ঐ জায়গার উপর। তিনি তখনি মানস-নেত্রে তাহার এক নবরূপ দেখিতে পাইলেন। তাঁহার উর্বর মস্তিষ্কে পড়িল তখনি এক প্রমোদ-ভবনের কল্পনা। আরম্ভ করিয়া দিলেন এক রংগশালা। তার নাম দিলেন 'রিজেন্ট' থিয়েটার। তাহার বাহ্যশোভা ও সুসজ্জিত প্রেক্ষাগৃহ নাট্যামোদিগণের দৃষ্টি এড়াইল না। 'রিজেন্ট' (অধুনা 'প্লাজা') রংগালয় দর্শকগণের আনন্দ-কোলাহলে মুখরিত হইয়া উঠিল। সঙ্গে সঙ্গে অবশিষ্ট স্থানে নবীন পরিকল্পনায় বিদ্যুৎ-আলোক-সমুজ্জ্বল বিপণি-গৃহ নির্ম্মিত হইল।

এইবার হরিকেশববাবুর ব্যবসায়-বুদ্ধির আর এক পরিচয় প্রদান করিব। পাঠকগণ দেখিবেন, তাঁহার উর্বর মস্তিষ্কে অর্থাগমের কত নূতন পথের সন্ধান মিলিয়াছে। বাঁকিপুরে পুস্তক-বিক্রয়-শাখা স্থাপনের সংগে সংগেই ছাপরার বিখ্যাত উকিল হেমচন্দ্র মিত্র মহাশয়ের সহিত তাঁহার পরিচয় হয় এবং হেমবাবুর জামাতা ৺টি, এন, দত্ত মহাশয়ের সহিত তিনি বন্ধুত্ব-সূত্রে আবদ্ধ হন। তাঁহারা উভয়েই অর্থাগমের নূতন পথের সন্ধানী ছিলেন। উভয়ের ঐকান্তিক প্রচেষ্টায় বহু টাকা মূলধন সংগৃহীত হইয়া বিহারের সারণ জেলায় শীতলপুরে (অধুনা গরৌলে) এক চিনির কল গড়িয়া উঠিল। হরিকেশব বাবু হইলেন তাহার অন্যতম ম্যানেজিং ডাইরেক্টর। তাঁহার পরিচালনায় শীতলপুর সুগার ওয়ার্কস্ দিন দিনই উন্নতির পথে অগ্রসর হইয়াছে এবং হরিকেশব বাবুকে আশীর্ব্বাদ করিয়া কত কর্ম্মী আজ অন্ন-সংস্থান করিতেছে।

মুদ্রণ শিল্পের আধুনিকতম যন্ত্রাদি ও তাহার কার্য্যাদি পর্য্যবেক্ষণ করিবার জন্য হরিকেশব বাবু আপ্রাণ পরিশ্রম করিয়াছিলেন এবং তিনি ইউরোপে গমন করিয়া হাতে কলমে তাহা শিক্ষাও করিয়া আসিয়াছিলেন। বই-পড়া বিদ্যা অপেক্ষা পরীক্ষিত জ্ঞান মানুষের জীবন গঠনে বিশেষ সাহায্য করে, এই বিশ্বাস হইতেই তিনি পাশ্চাত্য দেশে অফ্‌সেট ও রোটারী মেশিনের কার্য ও তাহার পরিচালনার জ্ঞানার্জ্জন করিয়া আসিয়াছিলেন। ফলে, তিনি মুদ্রণ শিল্পের এই দুই অংশ পরিপূরণের জন্য ইণ্ডিয়ান প্রেসে বুক রোটারী ইত্যাদি মেশিন প্রতিষ্ঠা করিয়াছিলেন। এলাহাবাদে হরিকেশববাবুই সর্বপ্রথমে এই সকল মেশিনের প্রতিষ্ঠাতা।

হরিকেশব বাবু সহানুভূতির সহিত শ্রমিকগণের বক্তব্য শুনিয়া তাহার সুষ্ঠ সমাধান করিতেন এবং বিশেষ ধৈর্য্যসহকারে তাহাদের সহিত আপোষ-মীমাংসাও করিয়া লইতে পারিতেন। এমনি ছিল তাঁর সহিষ্ণুতা, কর্ম্মকুশলতা। ফলতঃ হরিকেশব বাবু স্বীয় প্রতিভার আলোকে অত্যন্ত জটিল বিষয়েরও সমাধান করিতে পারিতেন।

কেবলমাত্র প্রেস ও সুগার ওয়ার্কস্ পরিচালনই তাঁহার প্রতিভার কার্য্যক্ষেত্র ছিল না। তাঁহার প্রতিভা বহুমুখী ছিল। সামাজিক নানাবিষয়েও তাঁহাকে লিপ্ত হইতে হইয়াছিল। তাঁহার অপূর্ব্ব প্রতিভা অনেক সময়ে তাঁহাকে সামাজিক নেতৃত্ব-পদও প্রদান করে। কিন্তু স্বনামধন্য হরিকেশব বাবু তাহার গৌরবের দাবী কোনো দিনই করেন নাই। তিনি নেতার আসন হইতে সাধারণের আসনের মূল্য অনেক অধিক মনে করিতেন। ঘটনাচক্রে কোনো বিষয়ের অধিনেতৃত্ব তাঁহার উপরে ন্যস্ত হইলে, তিনি তাহাতে গৌরব বোধ করিতেন না। সাধারণের পাশে দাঁড়াইয়া দশের কাজ করিতেই ভালবাসিতেন। ইহা ছিল তাঁর অনন্যসাধারণ বৈশিষ্ট্য।

নানা কারণে কাগজের মূল্য অনেক বাড়িয়া গিয়াছে। হরিকেশববাবুর বিশাল 'পাব্‌লিকেশনস্' ছাপিতে প্রচুর কাগজের প্রয়োজন হয়। অনেক সময়ে কাগজ না পাওয়ায় পুস্তক প্রকাশে অযথা বিলম্ব ঘটে। এই অসুবিধা দূরীকরণের জন্য তাঁহার মস্তিষ্কে "কাগজের কল" স্থাপনের প্রশ্ন জাগিয়া

উঠে। তিনি তাহার সমাধানের চেষ্টা করিতেছিলেন। কোথায় এই কল স্থাপন করা উচিত, এই চিন্তা তাঁহার মনকে বিভ্রান্ত করিতেছিল এবং তাহার জন্য স্থানও নির্ব্বাচিত হইয়াছিল। কিন্তু গভীর পরিতাপের বিষয় হরিকেশববাবুর এই ইচ্ছা পূর্ণ হয় নাই। নিষ্ঠুর কাল তাঁহার এই বাসনা-মুকুল অকালে নষ্ট করিয়া দিল। হরিকেশব বাবু সাংঘাতিকভাবে পীড়িত হইয়া পড়িলেন, এবং 'কাগজের কল' স্থাপনে ব্যর্থতার দুঃখ চাপিয়া কে জানিত, এই অক্লান্ত কর্ম্মী মহাপুরুষ মহাপ্রয়াণের পথে এত শীঘ্র অগ্রসর হইবেন!

"সৎ-সাহিত্যের প্রচার" তাঁর আর একটি নব-উদ্যম ছিল। এই কারণে তিনি বাংলা, হিন্দী প্রভৃতি ভাষায় অনেক ভালো ভালো বই প্রকাশ করিয়াছেন। লব্ধপ্রতিষ্ঠ শিশু-সাহিত্যিক শ্রীযুক্ত যোগেন্দ্রনাথ গুপ্তের সম্পাদনায় 'শিশু-ভারতী' নামক ৫০ খণ্ডের এক মহাগ্রন্থ তাঁহারই চেষ্টায় ও ব্যয়ে মুদ্রিত হইয়াছিল। সমগ্র মহাভারতের হিন্দী অনুবাদের সচিত্র সংস্করণ তাঁহার এক মহান্ কীর্ত্তি। 'শিশু-ভারতীর' সমকক্ষ আর একখানি গ্রন্থমালা হিন্দী ভাষায় প্রকাশ করিবার জন্য তিনি চেষ্টা করিতেছিলেন, এবং উপযুক্ত সম্পাদক চয়নেও তিনি বিশেষ সচেষ্ট ছিলেন।

হরিকেশব বাবু আদর্শ গৃহস্বামী ছিলেন। পরিবারের প্রত্যেক ব্যক্তিটির দিকে—এমন কি, দাসদাসীদিগের প্রতিও তাঁহার সর্ব্বদা সতর্ক-দৃষ্টি ছিল। কাহারো কোনো অসুবিধা হইতেছে কি না, তাহার দিকে তিনি সকল সময়েই লক্ষ্য রাখিতেন। ফলে, তাঁহার পরিবারে সর্ব্বদাই শান্তির মলয় বহিত। তাঁহার ভ্রাতৃবর্গ তাঁহাদের জ্যেষ্ঠের প্রতি পিতৃ-সম্মান প্রদর্শন করিয়া চিরদিনই আনুগত্য প্রকাশ করিয়াছেন। হরিকেশব বাবু সংসারে থাকিয়াও সংসারে অনাসক্ত যতীর ন্যায় চিরদিন যাপন করিয়াছেন, ইহাও তাঁহার অন্যতম চারিত্রিক বৈশিষ্ট্য।

দয়া এবং পরোপকার প্রবৃত্তি তাঁহার পৈতৃক সম্পত্তি ছিল। কেহ কোনো বিপদে পড়িয়াছে সংবাদ পাইলে হরিকেশব বাবু তাহার পার্শ্বে দাঁড়াইয়া তাহার বিপদ দূরীকরণে চেষ্টা করিতেন। বিপন্নের হাসিমুখ দেখিলেই তাঁহার প্রাণ পরিতৃপ্ত হইত। এজন্য তিনি কখনো কাহারো কৃতজ্ঞতার প্রত্যাশা করেন নাই। কর্তব্যকেই তিনি আজীবন বড় দেখিয়া আসিয়াছেন। তাঁহার বিশ্বাস করিতেন যে—কর্তব্য পালনই জীবনের মুখ্য উদ্দেশ্য। এই জ্ঞান শুধু তাঁহার নহে, তাঁহার ভ্রাতৃবর্গ ও পিতার উত্তরাধিকার সূত্রে এই জ্ঞান প্রাপ্ত হইয়া স্বসমাজে সুপ্রতিষ্ঠিত হইয়াছেন। আমরা জানি, কত বিপন্নকে তাঁহারা কত ভাবে সাহায্য করিয়া আসিতেছেন। তাঁহাদের পিতার প্রতিষ্ঠিত দাতব্য চিকিৎসালয় থাকিলেও অনাথ-আর্ত্তের চিকিৎসার জন্য তাঁহারা চিরদিনই মুক্ত-হস্ত।

হরিকেশববাবুর পারিবারিক জীবন সুখময় ছিল। অত্যন্ত অনুগত ভাইদের ও তাঁহাদের পরিবারবর্গকে লইয়া স্বপরিবার-সহ তিনি শান্তিময় জীবন যাপন করিতেন। স্বধর্ম্মপরায়ণা, স্বামিগতপ্রাণা সহধর্ম্মিণী ও পুত্র-কন্যা প্রভৃতি পারিবারিক আবেষ্টনে তাঁহার প্রাণে সর্ব্বদাই আনন্দের বন্যা

বহিয়া যাইত। তিনি পুত্র-কন্যাদের উচ্চ শিক্ষার দিকে সর্ব্বদাই দৃষ্টি রাখিতেন। জ্যেষ্ঠপুত্র শ্রীমান্ দেবপ্রসাদ ইঞ্জিনীয়ারিং শিক্ষা লাভ করিয়া গত কয়েক বৎসর হইতে সহকর্মীরূপে পিতার পার্শ্বে দাঁড়াইয়া তাঁহাদের প্রেস-পরিচালনে ও অন্যান্য ব্যবসায় বিষয়ে ব্যাপৃত হইয়া আছেন।

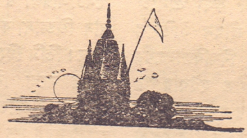
হরিকেশববাবুর কর্ম্মজীবন অসাধারণ ব্যস্ততাময় ছিল। এত বিশাল ও দেশয়ম বিস্তৃত ব্যবসায় ক্ষেত্রের তত্ত্বাবধান তিনি নিজেই করিতেন। সেইজন্য তাঁহার বিশ্রামের অবসর খুব কমই ছিল। একবার পক্ষাধিককাল নানাস্থানের কার্য্য ও হিসাবপত্র পর্য্যবেক্ষণ করিয়া সেই দিন সবে মাত্র এলাহাবাদে ফিরিয়া আসিয়া বৈঠকখানায় বসিয়া আছেন—হঠাৎ টেলিফোন বাজিয়া উঠিল—"পটলবাবু কোথায়?" পটল বাবু টেলিফোন ধরিয়া বলিলেন, "এই যে আমিই পটল বাবু—এইমাত্র সফর শেষ করিয়া প্রায় ১৫ দিন পর ফিরিয়াছি।" জবাব আসিল—"আজ যে কলিকাতায় সুগার ওআর্কসের জরুরী মিটিং, আপনাকে যে এই মিটিংএ উপস্থিত থাকিতেই হইবে। মিটিংয়ের জন্য অনেকেই উপস্থিত হইয়াছেন—৪টার সময় মিটিং বসিবে,—কি হইবে উপায় করুন।" শুনিয়াই পটলবাবু জানাইলেন, "আচ্ছা আমি প্লেনে যাচ্ছি, মিটিং এর ব্যবস্থা হোক।" বলা বাহুল্য আধ ঘণ্টার মধ্যে প্রয়োজনীয় কয়েকটা কাজ সারিয়া বম্‌রৌলী এয়ার ষ্টেশনে পৌঁছিয়া আকাশযানে দমদমে উপস্থিত হইলেন। যথাসময়ে কলিকাতায় পৌঁছিলেন। এম্নি ছিল তাঁহার কাজের প্রতি অনুরাগ! এই অনুরাগেই তিনি শরীরের দিকে লক্ষ্য না রাখিয়া কাজকেই বড় মনে করিয়া কাটাইয়াছেন। ফলে, অল্পদিনের মধ্যেই তাঁহার স্বাস্থ্য ভঙ্গ হইয়া পড়ে। দুরারোগ্য ব্লাড্ প্রেসারের সহিত ডায়বিটিস্ রোগও দেখা দেয়। যথোচিত চিকিৎসায় রোগের উপশম হইলেও আবার দেখা দিল নূতন উপসর্গ—হার্টের দোষ। এই হার্টের দোষই তাঁহার জীবন-প্রদীপ অকালে নিভাইয়া দিয়াছে। এলাহাবাদে যতদূর সম্ভব চিকিৎসা হইতে পারে, হইল। কিন্তু রোগের উপশম না হইয়া ক্রমাগত বাড়িতেই লাগিল। কলিকাতা হইতে ঐ বিষয়ে বিশেষজ্ঞ চিকিৎসক এলাহাবাদে গিয়া রোগ পরীক্ষা করিয়া বলিলেন, 'এতদূর হইতে এই রোগের চিকিৎসা সম্ভবপর নহে—ইঁহাকে কলিকাতায় স্থানান্তরিত করিতে হইবে।' তদনুসারে পটল বাবু জানুয়ারির শেষের দিকে কলিকাতায় আসিলেন। প্রথমে নার্সিং-হোম্-এ রাখিয়া চিকিৎসা চলিতেছিল। জনকোলাহলপূর্ণ ঐরূপ স্থান এরূপ রোগীর পক্ষে উপযুক্ত নহে বলিয়া ডাক্তারগণের পরামর্শে বালীগঞ্জে এক বাটী ভাড়া লইয়া পটলবাবুকে নির্জনে রাখা হইল। সুদক্ষ ইউরোপীয় নার্সগণ তাঁহার শুশ্রূষায় নিযুক্ত হইলেন। লিখিতে বুক ফাটিয়া যাইতেছে,—বালীগঞ্জের ঐ বাটীতে হঠাৎ হৃদ্‌যন্ত্রের ক্রিয়া বন্ধ হইয়া গত ৩রা চৈত্র ইংরাজী ১৭ই মার্চ্চ, ১৯৫৩ সাল অপরাহ্ণ ৪টা ৪৫ মিনিটের সময় ডাক্তারগণের ও ভ্রাতৃবর্গের শত চেষ্টা ব্যর্থ করিয়া "I am going" এই মাত্র বলিয়া পটল বাবু শেষ নিশ্বাস ত্যাগ করিলেন। সংবাদ পাইয়া ৫টার

মধ্যেই বালীগঞ্জের ঐ বাড়ীতে ছুটিলেন তাঁহার কলিকাতার পরিবারবর্গ !

... ...

লিখিতে কলম সরে না—প্রাণ অবসন্ন হইয়া পড়ে। মনে পড়ে, পটল বাবুর সেই সহাস্যবদন আর তার সঙ্গে তাঁর মহাপ্রাণতা। তাঁর সেই আদরের ডাক "পণ্ডিত মশাই" আমার প্রাণে চিরগুঞ্জন তুলিতেছে। বিধাতার নিকট প্রার্থনা—পরলোক-প্রস্থিত পটলবাবুর কর্ম্মক্লান্ত প্রাণ ত্রিদিবের আনন্দ-গানে পরিতৃপ্ত হউক। তাঁর দিব্যচক্ষুর প্রেমাশ্রুবর্ষণে পরিবারবর্গের শোক-সন্তপ্ত প্রাণ সুশীতল হউক, সঞ্জীবিত হউক। আমরাও শোকাশ্রুস্নাত হইয়া বলি—

"মৃত্যু নহে অবসান! নবীন জীবন আছে পরে। লভ তুমি অনন্ত মিলন।"



স্বর্গীয় বন্ধুবর হরিকেশব ঘোষ মহাশয়ের স্মরণে

শ্রীমদনমোহন কর

১৩৫৯ সাল যাবার সময় যে অমূল্য জীবনটী লইয়া গেল তাহার মূল্য নির্দ্ধারণ করিবার সময় এখনো বহু দূরে! তাঁহার অবিনশ্বর আত্মা ঈশ্বরে লীন হইয়া গেল; কিন্তু যে কর্ম্মের গঙ্গা তিনি প্রয়াগ হইতে উৎসারিত করিলেন তাহা বহুদেশ ও বহু নরনারীর জীবন ধন্য করিয়া বহুদিন প্রবাহিত হইবে। জহ্নু মুনির কমণ্ডুল নিঃসৃত গঙ্গার মত, ক্ষণিকের জন্য লুপ্ত স্বনামধন্য ইণ্ডিয়ান প্রেস হরিকেশবের দ্বারাই পুনঃ প্রবাহিত হইয়াছিল—শুধু প্রবাহিত হয় নাই, আজও পূর্ণতরবেগে শাখা প্রশাখা বিস্তার করিয়া দেশের ও দশের প্রভূত কল্যাণ সাধন করিতেছে। এই বিষয়ে প্রায় বিশ বৎসর পূর্ব্বে, তিনি একদিন কথা প্রসঙ্গে নূতন ইণ্ডিয়ান প্রেসের জীবন ইতিহাস বর্ণনাকালে বলেন যে বিশ্ববিদ্যালয়ের দ্বারা পুরাতন প্রেসগৃহ ক্রীত হইবার পর তাঁহার শ্রদ্ধেয় পিতা তাঁহার সম্মুখে দুইটি প্রস্তাব উত্থাপন করিয়াছিলেন। তাহার একটী হইতেছে এই যে, তিনি যে অর্থ রাখিয়া যাইবেন তাহার দ্বারা তিনি সুখে কর্ম্মবিহীন জীবন যাপন করিতে পারিবেন; অন্যটি এই যে, যদি ইচ্ছা করেন তাহা হইলে তিনি পুনরায় প্রেস প্রতিষ্ঠা করিতে পারেন–কিন্তু তাহা কর্ম্মকঠিন ও দায়িত্বপূর্ণ কাজ! হরিকেশব বলেন যে এই প্রস্তাব পাবার পর তিনি চার রাত্রি ঘুমাইতে পারেন নাই। আপন কর্ত্তব্য নির্দ্ধারণ করিতে এই কয়েকদিন তাঁহাকে মনের সহিত অনেক দ্বন্দ্ব করিতে হইয়াছিল। শেষে তাঁহার অন্তরে নিদ্রিত কর্ম্মদেবতা জাগ্রত হইয়া তাঁহাকে উদ্বুদ্ধ করেন এবং তিনি নিরলস পরিশ্রম দ্বারা নিপুণভাবে আধুনিক বিজ্ঞান হিসাবে সুসংগঠিত প্রেসগৃহ নির্ম্মাণ করেন। তিনি বলিতেন "কর্ম্মহীন জীবন মানুষের জন্য নহে।"

যদিও আত্মীয়তা সুত্রে বদ্ধ তবুও হরিকেশবকে প্রথম ভালভাবে জানিয়াছিলাম ১৯২০ সালে কাশী বিশ্ববিদ্যালয়ের ইঞ্জিনীয়ারিং কলেজে। তখন তাঁহার সহপাঠী হইবার সৌভাগ্য আমার হইয়াছিল। আমরা ঐ কলেজের প্রথম ছাত্র ছিলাম। কলেজ সুরু হইলে প্রথম দিন "মেটালারজী"র অধ্যাপক মহাশয় সকলের নাম জিজ্ঞাসা করিয়া রেজিষ্টারে লিখিতেছিলেন। তিনি ছিলেন বিলাত-ফেরৎ ও তাঁহার কথার মধ্যে বিলাতী টান যথেষ্ট ছিল। পরের পর প্রত্যেক ছাত্র নিজের নিজের নাম আমাদেরই মত ইংরাজীটানে বলিয়া যাইতেছিল; কিন্তু হরিকেশবকে নাম জিজ্ঞাসা করিলে তিনি যে ভাবে উত্তর পাইয়াছিলেন তাহাতে তাঁহাকে আশ্চর্য্যান্বিত হইয়া মাথা তুলিয়া তাঁহার দিকে দেখিতে হইয়াছিল। হরিকেশব শুদ্ধ বিলাতীটানে তাঁহার নাম উচ্চারণ করেন। অধ্যাপক মহাশয় বুঝিতে না পারিয়া পুনরায় প্রশ্ন করেন। তাহাতেও তিনি ঐ ভাবে উত্তর দেন। অধ্যাপক মহাশয় দ্বিতীয়বারও সম্পূর্ণ বুঝিতে

না পারিয়া বলেন "What" ; ইহার উত্তরে তিনি নির্ভীক ভাবে H-a-r-i K-e-s-h-a-b G-h-o-s-h করিয়া প্রত্যেকটী অক্ষর বানান করিয়া বলেন। ঘটনাটি সামান্য—কিন্তু আমার মনে তাহা আজও স্মরণীয়। সে দিন তাঁহার মুখে যে আত্মপ্রতিষ্ঠার ও আত্মনির্ভরতার ভাব দেখিয়াছিলাম আজও তাহা ভুলিতে পারি নাই। প্রতিভাবান ব্যক্তির ব্যক্তিত্বের অভিব্যক্তি তাঁহার বাল্যের এবং কৈশোরের প্রত্যেক কার্য্যে দেখিতে পাওয়া যায়। এই ঘটনায় সকল ছাত্রের দৃষ্টি তাঁহার উপর সহসা পড়ে, এবং যে স্বল্পকাল তিনি ঐখানে ছিলেন সহপাঠীদের ভালবাসা ও শ্রদ্ধার পাত্র হইয়াইছিলেন। তাঁহার গাম্ভীর্য্যে, কর্ম্মকুশলতায়, কর্মশৃঙ্খলায়, ন্যায়-অন্যায়ের নিরপেক্ষ বিচারে, মধুর অথচ সুসংযত ব্যবহারে অধ্যক্ষ হইতে হোষ্টেলের প্রত্যেক চাকর পর্য্যন্তও তাঁহার প্রতি অত্যন্ত আকৃষ্ট হইয়াছিল।

পরবর্ত্তী জীবনে তাঁহাকে যে মুর্ত্তিতে মুদ্রণালয়ে কার্য্য করিতে দেখিয়াছি তাহা হয়ত হেন্‌রী ফোর্ড বা টমাস বাটার মধ্যে ছিল। একদিন রবিবার সকালে তাঁহাদের বাড়ী গিয়া শুনিলাম তিনি প্রেসে। সেখানে যাইয়া যাহা দেখিয়াছিলাম তাহা আজও ভুলিতে পারি নাই। সত্য বলিতে কি ইণ্ডিয়ান প্রেসের স্বত্তাধিকারীকে ঐভাবে দেখিব আশা করি নাই। প্রেসের মেশিন ঘরে কর্ম্মচারীদের সঙ্গে, তাহাদেরই মত এক খাকি হাফ প্যান্ট ও হাতকাটা সার্ট পরিয়া হাতে কালী মাখা "জুট" লইয়া মেশিন পরিষ্কার করিতে ব্যস্ত। এই দৃশ্য সে দিন আমাকে অনেক শিক্ষা দিয়াছিল। তিনি ঐরূপ কার্য্যকে কখনও হীন বলিয়া মনে করিতেন না এবং বলিতেন "যে জাতি আপনার কার্য্য করিতে লজ্জা বোধ করে সে জাতির উন্নতি নাই।" সেদিন বলিয়াছিলেন "আমার কাজ, আমার জিনিষ আমি যেমনভাবে করব বা দেখব বেতনভোগীদের দ্বারা সে ভাবে করা সম্ভব কি?" কি সত্য কথা! চেয়ারে বসে হুকুম বা দাঁড়িয়ে তদারক করলে কিছুটা হয় বটে, কিন্তু কর্ম্মক্ষেত্রে নামিয়া সরলভাবে কার্য্য না করিলে কোনও কার্য্যই সুষ্ঠুভাবে সম্পন্ন হয় না। এই জন্যই প্রেসের বাড়ী, মেশিন, কার্য্য, বই প্রভৃতি প্রত্যেকটী জিনিষ একেবারে তাঁহার নখদর্পণে থাকিত।

স্থাপত্যশিল্পে তাঁহার অসাধারণ পারদর্শিতার নিদর্শন এলাহাবাদে প্রচুর বিদ্যমান। এই শিল্পের পরিকল্পনায় ও কার্য্যকারীতায় তাঁহার কত গভীর জ্ঞান, সূক্ষ্ম ও দূরদৃষ্টি ছিল তাহা সম্যকভাবে বলা যায় না। এ বিষয়ে কয়েকবার তাঁহার সহিত আমার আলোচনা হইয়াছিল এবং আমি তাঁহার কল্পনার প্রাচুর্য্যে ও পরিশুদ্ধ চিত্রাঙ্কনে বিস্মিত হইয়াছিলাম। একখণ্ড জমির উপর নিমেষের মধ্যে তিনি পাঁচ সাতখানা বিভিন্ন ধরণের (ডিজাইনের) বাড়ীর সুন্দর ও সুবিবেচিত নক্সা করিয়া দিতে পারিতেন। শুধু তাহাই নয়, তাহাদের নির্ম্মাণে প্রত্যেকটী জিনিষ কত করিয়া লাগিবে ও তাহাদের সমষ্টিগত দাম কত হইবে বলিয়া দিতেন।

এই ত গেল মাত্র এক দিক। অর্থনীতি সম্বন্ধেও তাহার জ্ঞান কত গভীর ও কত সুস্পষ্ট ছিল। ব্যাঙ্কের কার্য্য, চিনির কারখানার কার্য্য, সায়েন্টিফিক্ ইন্‌স্ট্রুমেন্টের কার্য্য ও আরো

ঐ প্রকার বহু অন্যান্য কার্য্য ক্ষেত্রে তিনি নিজের সুচিন্তিত পরামর্শের দ্বারা উন্নতির পথ প্রদর্শন করিতেন। তাঁহার পারলৌকিক কার্য্যে উপস্থিত থাকিবার জন্য নিমন্ত্রিত "বেঙ্গল পেপার মিলের" (বামার লরীর) পরিচালকবৃন্দ তাঁহাদের এক উচ্চপদস্থ প্রতিনিধি পাঠান। তাঁহার মুখে শুনিলাম—"পটল বাবু বেঙ্গল পেপার মিলের পরিচালকবৃন্দকে সময়ে সময়ে কাগজ ব্যবসায় সম্বন্ধীয় অনেক সুচিন্তিত ও কার্য্যকরী পরামর্শ দিতেন এবং তাহা তাঁহারা অত্যন্ত আনন্দের সহিত গ্রহণ করিতেন ও কার্য্যে পরিণত করিয়া সুফল পাইতেন।"

যে পথেই তিনি চলিয়াছিলেন সেই পথেই তাঁহার প্রতিভার পরিচয় পাওয়া যায়। ভ্রাতাদের প্রতি তাঁহার স্নেহের অন্ত ছিল না। তাঁহার পরিচালনাধীনে ঘোষ পরিবার একটী আদর্শ একান্নবর্ত্তী পরিবার—যাহা প্রবাসে আমাদের একটা গর্ব্বের বিষয়! তাঁহার নিরলস, নিরহঙ্কার ও কর্ম্মবহুল জীবন সকলেরই অনুকরণীয়। কালের প্রবাহে আজ আমরা তাঁহাকে হারাইয়াছি; কিন্তু তাঁহার কীর্ত্তির মধ্যে তিনি চিরদিন আমাদের স্মরণীয় হইয়া থাকিবেন। এরূপ একটী বহুমুখী প্রতিভার অকালে তিরোধান আমাদের জাতীয় দুর্দ্দৈব!



স্মৃতিকথা

শ্রীক্ষিতীন্দ্রনাথ মজুমদার

সে আজ বহুদিনের কথা, বোধ হয় ইং ১৯০৮ সাল—সেই বৎসরই আমি ভারতীয় চিত্রকলা শিক্ষা করিবার জন্য শিল্পাচার্য্য শ্রীযুক্ত অবনীন্দ্রনাথ ঠাকুর মহাশয়ের নিকট উপস্থিত হই। সেখানে বন্ধুবর শ্রীযুক্ত শৈলেন্দ্রনাথ দে'র সহিত আমার প্রথম পরিচয় হয়। শুনিলাম তাঁহাকে এলাহাবাদ ইণ্ডিয়ান প্রেসের স্বনামধন্য প্রতিষ্ঠাতা শ্রীযুক্ত চিন্তামণি ঘোষ মহাশয় ভারতীয় চিত্রকলা শিক্ষার নিমিত্ত আচার্য্য মহাশয়ের নিকট পাঠাইয়াছেন। মধ্যে মধ্যে আচার্য্যদেবকে ক্লাশে বলিতে শুনিতাম, "যদি ভাল করিয়া কাজ কর্ম্ম না কর বাপু, আমি এলাহাবাদে..........।" যাহা হউক আচার্য্যদেবের নিকট চিন্তামণিবাবুর নাম ও তাঁহার সদ্‌গুণাবলীর বিষয়ে এই প্রথম শুনি। অতি সদাশয় এবং মহানুভব চিন্তামণিবাবুর সম্বন্ধে আচার্য্যদেবের নিকট প্রায়ই শুনিতাম। যদিও তাঁহাকে চাক্ষুষ দেখিবার সুযোগ আমার ঘটে নাই তথাপি তাঁহার কর্ম্মকুশলতা ও একনিষ্ঠ সাধনার কথা বহুবার শুনিয়াছি।

তাঁহার ইণ্ডিয়ান প্রেসে মুদ্রিত কয়েকখানি চিত্র ইতিমধ্যেই দেখিয়াছিলাম, তন্মধ্যে দুইখানি চিত্র আমার শিল্পী-মনে তখন বিশেষভাবে রেখাপাত করিয়াছিল, যাহা আজও ভুলিতে পারি নাই—প্রথমটি আচার্য্যদেব অঙ্কিত 'বাদশাহ শাজাহানের দেহত্যাগ', অন্যটি শিল্পী নন্দলাল বসুর 'গরুড়-স্তম্ভ হইতে শ্রীচৈতন্যের জগন্নাথ দর্শন'। বাস্তবিকই এই চিত্র দুইটি নিখুঁতভাবে মুদ্রিত হইয়াছিল। আচার্য্যদেবের নিকট শুনিয়াছিলাম যে ইণ্ডিয়ান প্রেসে এই সমস্ত কার্য্যের জন্য বিদেশ হইতে মুদ্রণ-শিল্প-কুশলী কর্ম্মী অধিক বেতনে নিযুক্ত করা হইত। মুদ্রণ-কুশলী চিন্তামণিবাবুর মুদ্রণ-কার্য্য সম্বন্ধে এই প্রকারের বহু গুণ-কাহিনী সেই সময়ে শুনা যাইত। ভারতীয় চিত্রকলার নববিকাশের এই সন্ধিক্ষণে নানা অশোভনীয় মন্তব্য দেশীয় কাহারও কাহারও দ্বারা মাঝে মাঝে প্রচারিত হইত; কিন্তু আচার্য্যদেব বিস্মৃত ভারতীয় চিত্রকলার পুনরুদ্ধারের দৃঢ় প্রচেষ্টা হইতে পশ্চাৎপদ হন নাই। ইণ্ডিয়ান প্রেস ঐ সময়ে ভারতীয় চিত্রকলার প্রচার ও প্রসারকল্পে বিশেষ চেষ্টা করিয়াছিল।

'প্রবাসী' মাসিক পত্রিকা তখন শ্রীযুক্ত রামানন্দ চট্টোপাধ্যায়ের সম্পাদনায় এলাহাবাদ হইতে প্রকাশিত হইত। প্রবাসে ভারতীয় চিত্রকলার প্রতি যাঁহারা তৎকালে শ্রদ্ধা প্রদর্শন করিয়াছিলেন তাঁহাদের মধ্যে চিন্তামণি বাবু ও রামানন্দবাবুর নাম বিশেষ ভাবে উল্লেখযোগ্য। সেই সময় হইতে ইণ্ডিয়ান প্রেসের ভারতীয় চিত্রকলার প্রতি যে বিশেষ অনুরাগ আজও পরিলক্ষিত হয়, তাহার মূলে ছিলেন চিন্তামণিবাবুর সুযোগ্য দ্বিতীয় পুত্র শ্রীহরিকেশব ঘোষ মহাশয় যাঁহার অকাল-মৃত্যুতে শিল্পজগত

আজ প্রভূত ক্ষতিগ্রস্ত হইয়াছে। যাঁহার স্মরণে এই উপরোক্ত কথাগুলির উল্লেখ করিলাম সেই শ্রীযুক্ত হরিকেশব ঘোষ মহাশয়ের সহিত আমার ব্যক্তিগত পরিচয় যদিও ৭।৮ বৎসরের মাত্র তথাপি এই অল্প দিনের পরিচয়ে যে মহৎ–হৃদয়ের সন্ধান পাইয়াছি তাহা আমার অমূল্য সম্পদ হইয়া থাকিবে। পূর্ব্বেই বলিয়াছি ইণ্ডিয়ান প্রেসের মুদ্রণ পরিচয় শিক্ষাবস্থা হইতে জ্ঞাত ছিলাম। পরে শ্রীযুক্ত হরিকেশবের সহিত পরিচিত হইলে উহা আরও নিবিড়তর হইয়া উঠে।

শ্রীযুক্ত হরিকেশব বাল্যকাল হইতেই শিল্পানুরাগী ছিলেন যাহার পরিচয় তাঁহার পরবর্ত্তী জীবনে সম্যকভাবে পরিলক্ষিত হয়। তিনি ছিলেন প্রকৃত শিল্প-রসজ্ঞ—সুন্দরের প্রতি তাঁহার প্রখর দৃষ্টি ছিল—তাই চিত্রাঙ্কণ সম্বন্ধে তাঁহার জ্ঞানও কম ছিল না। যে কোন চিত্র দেখিয়া তাহার ভাল মন্দ বিচার-ক্ষমতা তাঁহার যথেষ্ট ছিল। কাজেই সাধারণ প্রকাশকের ন্যায় চিত্র-সম্বন্ধে যাহা-তাহা মন্তব্য করিতেন না—যদি করিতেন, তাহা হইত প্রকৃত ও যথার্থ সমালোচকের ন্যায়। তাঁহার পক্ষে ইহা স্বাভাবিক বটে—প্রতিভা ছিল তাঁহার বহুমুখী। আমি তাঁহাকে শিল্পীর চক্ষেই দেখিয়াছি। কিন্তু প্রখ্যাত পিতার ন্যায় তিনিও বহু সদ্‌গুণের অধিকারী ছিলেন। মিষ্টভাষী ও সদালাপী হরিকেশববাবুর সংস্পর্শে যে কেহই আসিয়াছেন তাহারা তাঁহার ঐ গুণাবলীর কথা কখনও ভুলিতে পারিবেন না।

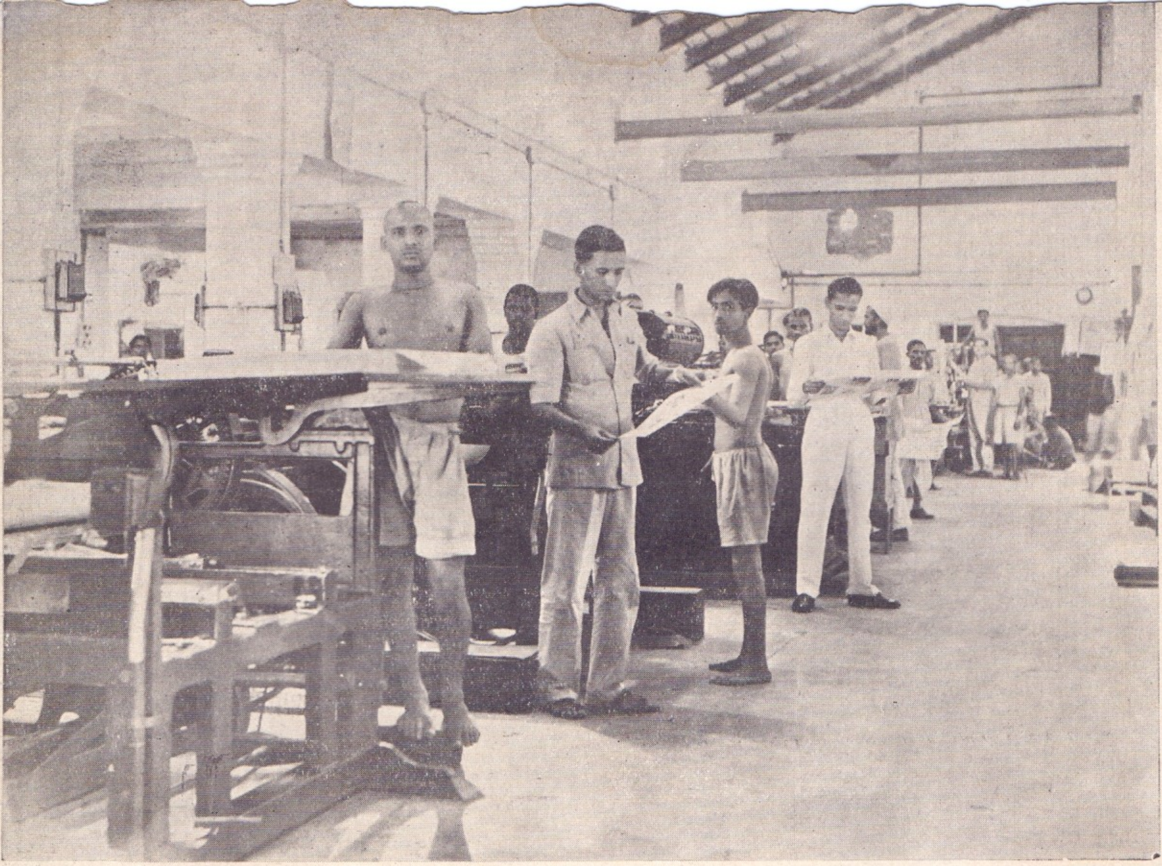
এ সংসারে অনেকে অর্থবলে নিজেকে খুব গুণবান বলিয়া মনে করিয়া থাকেন। কিন্তু অর্থের দ্বারাই প্রকৃত গুণের অধিকারী হওয়া যায় কি? আমার এই স্বল্পকালীন ব্যক্তিগত পরিচয়ে যাহা ইদানীং ঘনিষ্ঠতর হইয়াছিল এবং যাহা আজ বিধাতার এক ভীষণ অদৃশ্য বলে বিচ্ছিন্ন হইল, হরিকেশব বাবুকে যতদূর জানিতে পারিয়াছিলাম, তাঁহার ন্যায় প্রকৃত জ্ঞানী ও গুণী ব্যক্তির দর্শন-লাভ সকলের জীবনে সচরাচর হয় না। বলা বাহুল্য চিত্র-রসজ্ঞ হরিকেশববাবুর অকালমৃত্যুতে চিত্র-শিল্পের অপূরণীয় ক্ষতি হইল। ব্যক্তিগত জীবনে আমি তাঁহার উদার ও মিষ্ট ব্যবহারের কথা কোনদিনই ভুলিতে পারিব না। ভগবানের নিকট আমার সর্ব্বান্তঃকরণে এই প্রার্থনা যে তাঁহার দেহ-মুক্ত আত্মার চির-আনন্দের বিধান করুন।





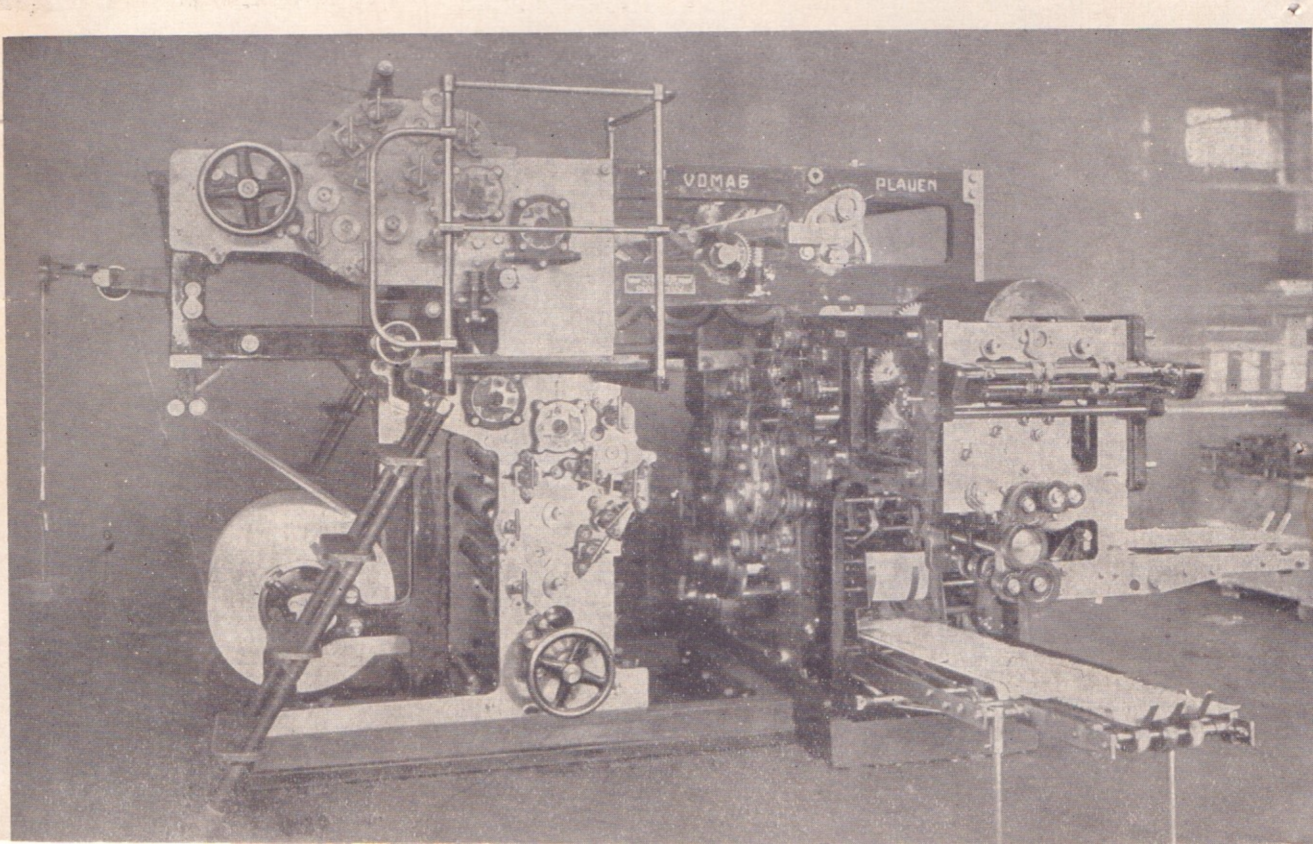
(ऊपर) इंडियन प्रेस लि०, कलकत्ता-शाखा के कार्यालय का एक दृश्य।

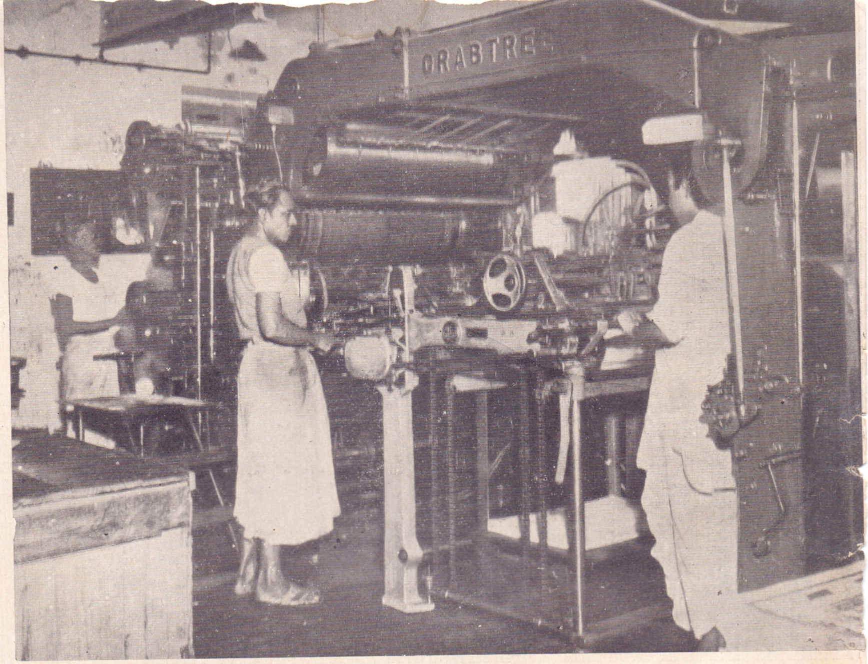
(बाईं ओर) इंडियन प्रेस लि०, कलकत्ता में फोटोग्रेव्यर मशीन।

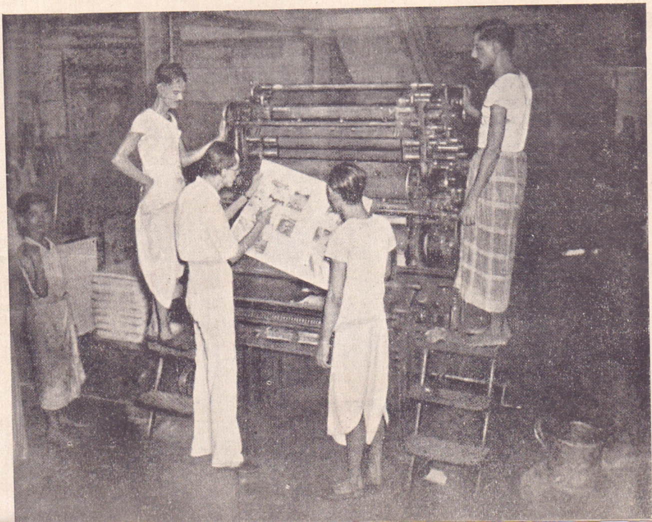


ऊपर : इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग के मशीन-विभाग का एक दृश्य।

नीचे : रोटरी प्रिंटिंग मशीन, जिसे स्व० श्री हरिकेशव घोष जर्मनी से लाये थे।

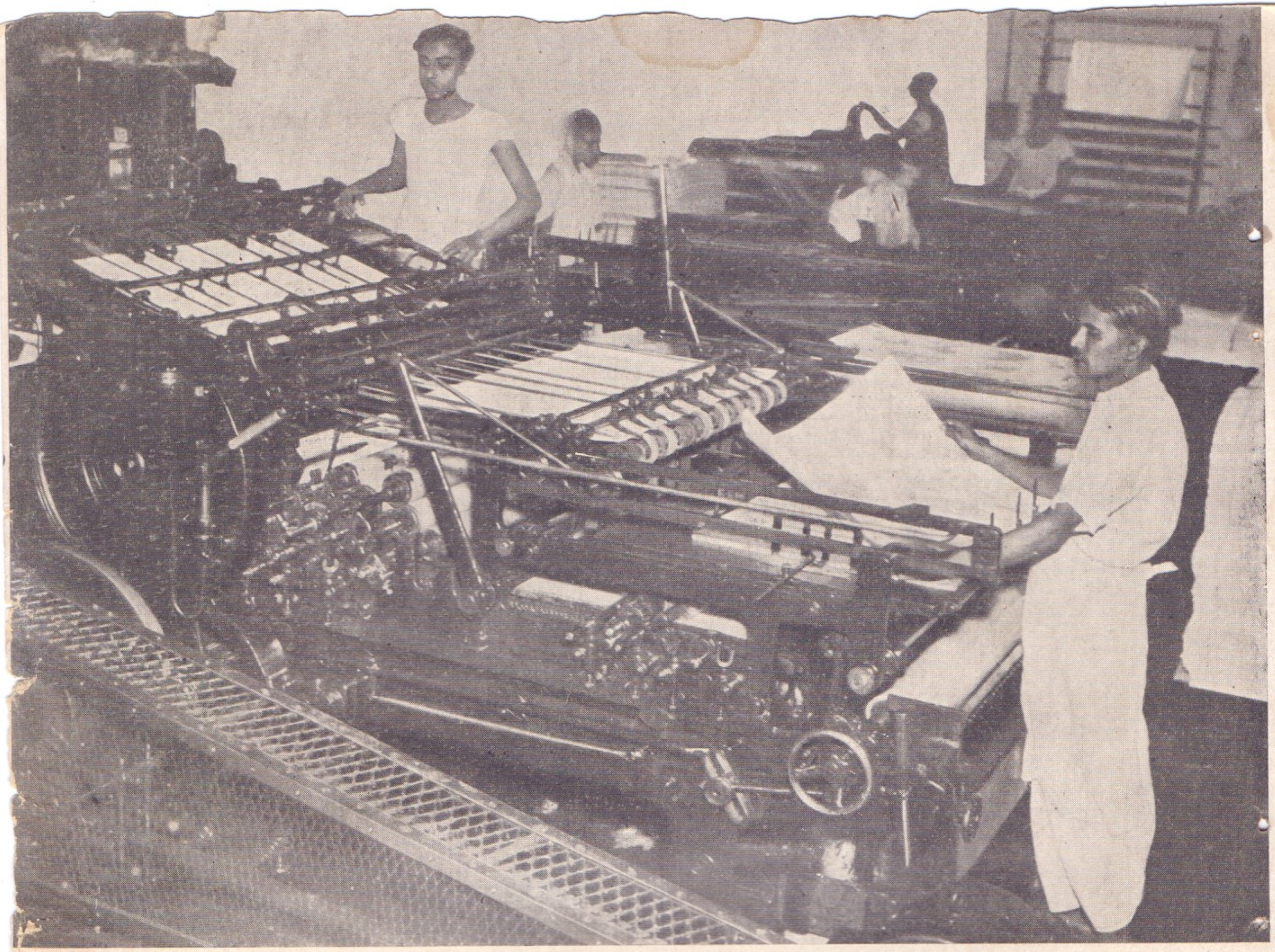


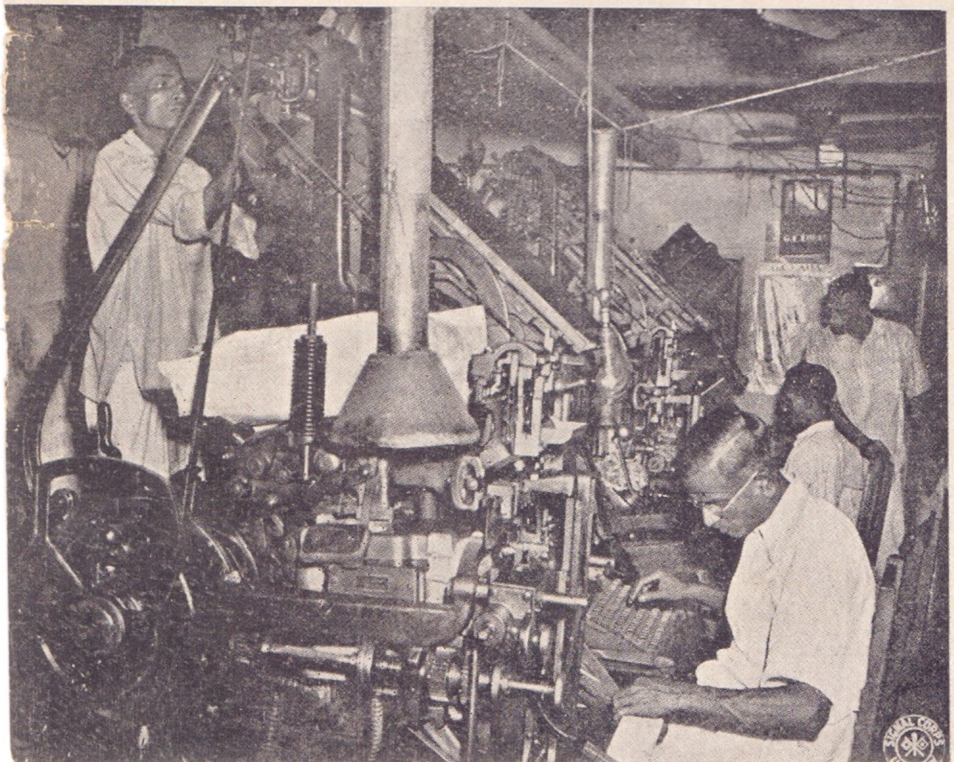




(ऊपर) इंडियन प्रेस लि०, कलकत्ता-शाखा में एक साथ दो रंग छापनेवाली क्रेब्ट्री आफसेट मशीन।

(बाईं ओर) रोलेण्ड आफसेट मशीन।





इंडियन प्रेस लि०, कलकत्ता-शाखा में (ऊपर) दो रंगों में एक साथ छपाई ,करनेवाली मशीन।

(बाईं ओर) इण्टर टाइप और लाइनो मशीन।

মানুষের মত মানুষ

শ্রী এইচ, সেনগুপ্ত

"Be man, more than man you cannot be."

জীবনে যে কয়টি বিশিষ্ট লোকের সংস্পর্শে আসার সৌভাগ্য আমার হয়েছিল ৺শ্রদ্ধেয় হরিকেশব তাঁদেরই একজন।

কর্ম্মযোগী হরিকেশব, তীক্ষ্ণধী, কূটবুদ্ধি-সম্পন্ন হরিকেশব, কর্ত্তব্যপরায়ণ ও দয়ালু হরিকেশবের জীবন বৃত্তান্ত লেখার যোগ্যতর ব্যক্তির অভাব নেই। সুতরাং সে কাজ আমার নয়। আমার ব্যক্তিগত জীবনে এই মানুষের মত মানুষটীর সংস্পর্শে এসে দৈনন্দিন যে সব ছোট খাট ঘটনার মধ্যে তাঁর যে অনিন্দ্য-সুন্দর রূপটী ফুটে উঠেছিল আমি শুধু সেইটুকুই প্রকাশ করার চেষ্টা কোরব।

নিঃসম্বল ব্যবসায়ী জীবনের কর্ম্ম-প্রেরণার তাগিদে কোন এক শুভ মুহূর্তে বাংলার এবং বাঙ্গালীর এই প্রতিভাবান্ প্রবাসী সন্তানটির প্রথম সাহচর্য্য লাভের সৌভাগ্য আমার হয়েছিল।

তারিখ মনে নেই। সম্ভবতঃ ইংরেজী ১৯২৯ বা ৩০ সন, ইণ্ডিয়ান প্রেসের কলকাতা ব্রাঞ্চের কাজ সবে মাত্র সুরু হয়েছে। আমার মনে পড়ে, কথা প্রসঙ্গে হরিকেশব বাবু একদিন বলেছিলেন যে, কর্ম্মচক্রের আবর্ত্তে কর্ত্তাকে (৺চিন্তামণি ঘোষ মহাশয়) জীবনব্যাপি প্রবাসে কাটাতে হয়েছিল বলে ছেলেদের বাংলার সঙ্গে একটা পাকা সম্পর্ক স্থাপন করতে উপদেশ দিয়েছিলেন। পরমারাধ্য পিতার আন্তরিক বাসনাকে বাস্তবে রূপায়িত করার জন্যই কলকাতা শাখার উদ্বোধন করেছিলেন, কর্ত্তার নিজের হাতে তৈরী সুযোগ্য সন্তান হরিকেশব ঘোষ।

ছাপাখানার অন্যান্য অনেক সরঞ্জামের সঙ্গে এসেছিল নতুন রোল্যাণ্ড অফ্‌সেট মেশিন এবং একজন জার্ম্মান প্রিণ্টার মিঃ মুলার। কলকাতায় তখনকার দিনে এ একটা বিস্ময়কর বস্তু।

ছাপাখানার সম্বন্ধে জানবার প্রবল ঔৎসুক্য-ভরা মন নিয়ে তখন যাতায়াত সুরু করেছিলাম বৌবাজারের সেই গলিটীর মধ্যে, যেখানে প্রথম প্রেসের কাজ সুরু হয়েছিল। সর্ব্বশ্রেষ্ঠ ভারতীয় গ্রন্থ প্রকাশক ইণ্ডিয়ান প্রেস, সুতরাং চিত্রশিল্পী হিসাবে যে কিছু কাজ পাওয়ার লোভও মনের কোণে লুকিয়েছিল না—এমন কথা বললে সত্যের অপলাপ করা হবে।

প্রথম পরিচয়ের সুযোগ করিয়ে দিয়েছিল ৺হরিকেশব বাবুর সোদরপম স্নেহে-অভিষিক্ত, আমার অন্তরঙ্গ বন্ধু বিল্লী। শুধু মিষ্টি কথায় তুষ্ট করে প্রথম আলাপে তিনি আমায় বিদায় করে দিয়েছিলেন না, সঙ্গে সঙ্গে দিয়েছিলেন কিছু কাজেরও অর্ডার। এই দিনটি আমার জীবনে স্মরণীয়। কারণ এই কর্ম্মযোগীর

উপদেশ ও অনুপ্রেরণা ভবিষ্যত জীবনে যুগিয়েছে আমার স্বাধীন বৃত্তির ইচ্ছা, এবং ছোট হলেও জীবন চলার অনুযায়ী আবশ্যকীয় উৎসাহ।

দানবীর বলে হরিকেশব বাবু খ্যাতি অর্জ্জনের সুযোগ খোঁজেননি, যদিও ছোট বড় নানাপ্রকারের প্রচুর অর্থদানের নিদর্শন তাঁর সংস্পর্শে যারা এসেছেন অনেকেই জানেন। উদার দৃষ্টিভঙ্গী-সম্পন্ন হরিকেশব বাবু জান্‌তেন যে এই প্রকার ক্ষুদ্র দানে মানুষের অভাব মেটান যায় না, কাজেই তাঁর দানের রূপ করে নিয়েছিলেন স্বতন্ত্র।

সব চেয়ে বিস্ময়কর তাঁর চরিত্রের এই দিকটা যে তিনি নিজ অর্থ, সামর্থ্য ও বুদ্ধি দিয়ে বহু সমব্যবসায়ী সৃষ্টি করে গিয়েছেন। তাঁর অনুপ্রেরণায় ও সাহায্যে সৃষ্টি হয়েছে বাঙ্গলা ও ভারতের বিভিন্ন স্থানে বহু প্রেস ও গ্রন্থ-প্রণেতা। হরিকেশববাবুর দৃষ্টিভঙ্গী সংকীর্ণতার মধ্যে আবদ্ধ ছিল না বলে, ক্ষুদ্র বৃহৎ বহু প্রতিষ্ঠান তাঁর উপদেশ, অনুপ্রেরণা ও সাহায্যে গড়ে উঠে আজ ভারতের নানা প্রদেশে বহু লোকের অন্নের সংস্থান করছে। সাধারণ এককালীন অর্থ-সাহায্যের চেয়ে যে এ দান অনেক উর্দ্ধে তাঁর গুণমুগ্ধ দেশবাসী একথা কৃতজ্ঞতার সঙ্গে স্বীকার করবে, এবং বিশেষ করে করবে তারা যারা তাঁর এই অমূল্য দান পেয়ে কৃতার্থ হয়েছে।

ইণ্ডিয়ান প্রেসের জেনারেল ম্যানেজার, সাইন্‌টিফিক ইন্‌সট্রুমেণ্ট কোম্পানী লিঃএর ডিরেক্টার, শীতলপুর চিনির কারখানার অন্যতম প্রতিষ্ঠাতা ও ম্যানেজিং ডিরেক্টার, এবং আরও বহু ছোট বড় ব্যবসায় প্রতিষ্ঠা-নের সহিত সংশ্লিষ্ট হরিকেশববাবুর কর্ম্ম-জীবনের বিভিন্ন ধারার সঙ্গে দেশবাসী অনেকেই পরিচিত।

এই ত্যাগী, নিস্বার্থ, কর্ম্মযোগীটির মধ্যে যে কতখানি সততা ও কর্ম্মনিষ্ঠা বিদ্যমান ছিল তা যিনিই ঘনিষ্টভাবে তাঁর সঙ্গে মিশবার সুযোগ পেয়েছেন তিনিই তাঁর ঐ সমস্ত সদ্‌গুণাবলীর পরিচয়ও পেয়েছেন। তাঁর মত সরল, উদার, অমায়িক ও সর্ব্বজনপ্রিয় ব্যক্তি অতি অল্পই দেখতে পাওয়া যায়।

ব্যবসার ফাঁদ পেতে অর্থসঞ্চয় করে বহু ব্যবসায়ী ধনী হয়েছেন। কিন্তু নিষ্ঠাবান্‌, ব্যবসায়ীপ্রবর হরিকেশব বাবু জীবনে উন্নতির উচ্চস্তরে উঠেছিলেন, সততা, অদম্য কর্ম-স্পৃহা, তীক্ষ্ণ দুরদৃষ্টি, ব্যবসায়ীসুলভ অমায়িকতা ও অসীম চরিত্রবলের জন্যই, এই ফাঁদের সন্ধান তাঁর জানা ছিল না।

বাঙ্গলা ভাষায় ইণ্ডিয়ান প্রেসের সর্ব্ব-শ্রেষ্ঠ গ্রন্থমালা "শিশু-ভারতী" প্রণয়নের কাজ তখন আরম্ভ হয়েছিল। শিশু সাহিত্যিক শ্রীযুক্ত যোগেন্দ্রনাথ গুপ্ত মহাশয়ের উপর সম্পাদনের ভার ন্যস্ত হয়েছিল। আর ছবি আঁকার ভার পড়েছিল আমার ও সমর বাবুর ওপর। এই প্রসঙ্গে হরিকেশব বাবু যখনই কলিকাতায় আসতেন আমাদের সঙ্গে ঘণ্টার পর ঘণ্টা আলোচনা করতেন, কি করে এই তথ্যপূর্ণ গ্রন্থাবলী শিশুদের মনোজ্ঞ করে তোলা যায়। বিভিন্ন দেশে এই জাতীয় গ্রন্থাবলী কিভাবে শিশুদের উপযোগী ক'রে চিত্রিত ও সম্পাদিত হয় সে সম্পর্কে তাঁর অভিজ্ঞতা বর্ণনা করতেন। এই সব আলাপ আলোচনার মধ্যে একদিন দেখা

করতে গিয়েছিলাম বেলা প্রায় আড়াই-টায়। একতলার বারান্দায় কোথাও যাওয়ার জন্যে প্রস্তুত হয়ে দাঁড়িয়েছিলেন, আমি পৌঁছাতেই বললেন, "চলো"। জিজ্ঞাসা করলাম—"কোথায়?" "তোমাদেরই পাড়ায়, সুরেনদার ওখানে।" হেঁটেই রওনা হলেন। পাশেই গাড়ী অপেক্ষা করছিল। জিজ্ঞাসা করলাম,

"এই রোদে হেঁটে যাবেন, বাসে গরমে কষ্ট হবে না ? গাড়ী তো আছে।"

বল্লেন "হাঁ, আছে, দেখেছি। হেঁটে ও বাসে যেতে আমার কোন কষ্ট বা অপমান বোধ হয় না।" এমনিই ছিল তাঁহার মহান দৃষ্টি-ভঙ্গী। কর্ম-জীবনে হরিকেশববাবুর মূলমন্ত্র ছিল Do or Die। যে কাজে হাত দিতেন একেবারে জীবনপণ করে তার মধ্যে লেগে যেতে দেখেছি। পরিণামে যেখানে তার স্পর্শ লেগেছে সেখানেই সোনা ফলেছে। বিশেষ করে এটা লক্ষ্য করার সুযোগ হয়েছিল শীতলপুর চিনির কারখানা প্রতিষ্ঠার সময়ে ও Orient Illustrated Weekly-র প্রকাশের প্রারম্ভে।

ইউরোপ হতে ফিরে আসার সময়ে অনেক কিছুর সঙ্গে নিয়ে এসেছিলেন একটা Leica ক্যামেরা। ওরিয়েন্টের ফটো-গ্রাফার ফনীবাবুর কাঁধে সেটী ঝুলিয়ে দিয়ে বলেছিলেন—"যাও সারা ভারত ঘুরে Orient এর জন্যে সেরা ছবি তুলে নিয়ে এস।"

কোন কিছু বোঝাতে গিয়ে এমন তন্ময় হয়ে যেতেন যে নিজের পদমর্য্যাদা ও তদনুযায়ী গাম্ভীর্য্য রক্ষা করার প্রয়োজনীয়-তার কথাও ভুলে যেতেন। Orientএর এডিটরের কামরায় দাঁড়িয়ে কি করে ভাল ছবি তুল্‌তে হবে বোঝাচ্ছিলেন একদিন।

"টেনিসের বল যখন খুব উঁচু দিয়ে যায় তাকে আট্‌কাবার জন্য খেলোয়াড় আপ্রাণ চেষ্টায় লাফিয়ে ওঠে র‍্যাকেট্ দিয়ে মারতে।"

বলে ডান হাত উঁচুতে তুলে নিজে প্রায় ততখানি লাফিয়ে উঠে দেখিয়ে বললেন,

"এই পোজে ছবি তুল্‌বে। অন্যথায় তুমি যেসব ছবি তুলে নিয়ে আস তার কোন life থাকে না।"

হরিকেশববাবুর মধ্যে যে সদা কর্ম্মমুখী ব্যক্তিত্ব বিদ্যমান ছিল তা নিজেকে এবং পারিপার্শ্বিক যাবতীয় পরিজন ও কর্ম্মচারী-বৃন্দকে কর্ম্মসমুদ্রে ঝাঁপিয়ে পড়ার অনু-প্রেরণা জোগাত, সুতরাং যে কাজে তিনি হাত দিতেন তারই একটা সুরাহা করতে সমর্থ হতেন।

এই মানুষের মত মানুষটীর সংস্পর্শ আমার ব্যক্তিগত জীবনের উপর যে প্রভাব বিস্তার করেছে তার একটুখানি আভাষ দিয়ে ব্যবসা জীবনের এই শিক্ষাগুরুর প্রতি আমার শ্রদ্ধা-নিবেদন শেষ কোরব।

স্বাধীনভাবে উপজীবিকা অর্জ্জনের অনুপ্রেরণা স্বর্গীয় হরিকেশব বাবুর নিকট হতেই আমি প্রথম পেয়েছিলাম। তিনি বলেছিলেন—

"চাকুরীর উন্নতি অতিশয় সীমাবদ্ধ হয়েন, স্বাধীন ব্যবসা কর। ইণ্ডিয়ান প্রেস হতে যাবতীয় কাজের সুযোগ আমি করে দেব।"

পরবর্ত্তী সময়ে যখনই কলকাতা আসতেন, আগ্রহ-সহকারে আমার ব্যবসা

সম্পর্কে যাবতীয় খবরাখবর জান্‌তে চাইতেন এবং সব সময়ে উপদেশ দিতেন বাজারের দেনা ও পাওনা সম্পর্কে নজর রাখতে। বলতেন—

"ডেবিট্‌-ক্রেডিট্‌ ব্যবসায়ের মাপ কাঠি, কাঁটা কোন দিকে চলে সব সময়ে খেয়াল রাখবে।"

কর্ম্মই ছিল তাঁর জীবনের একমাত্র সাধনা। এই সাধনায় তাঁকে অবিরাম পরিশ্রম করতে হয়েছিল। গভীর পরিতাপের বিষয়, বড়ই অপরিণত বয়সে তিনি চির-বিশ্রাম গ্রহণ করেছেন।

জীবনের কোন অবস্থাতেই ভুলতে পারব না—এই মহোপকারী, আত্মীয়ের চেয়েও আত্মীয়, মানুষের মত মানুষটীর নিকট হতে যে উপদেশ ও অনুপ্রেরণা লাভ করেছি। তাঁর অমর আত্মার প্রতি আমার সশ্রদ্ধ প্রণতি নিবেদন করে এই শ্রদ্ধা-নিবেদন শেষ কর্‌ছি।

জাতীয় সৌভাগ্যের জীবন্ত প্রতীক

শ্রী এস, এম, কর

বিশ্বকবি বলিয়া গিয়াছেন,

"ঠাঁই নাই, ঠাঁই নাই, ছোট সে তরী,
আমারি সোণার ধানে গিয়েছে ভরী।"

'সোণার তরীর' ব্যাখ্যা অনেকেই অনেক রকমে করিয়াছেন, কিন্তু কবির নিজেরটী কতই না সহজ ও সুন্দর। "সংসার আমাদের জীবনের সকল কাজই গ্রহণ করে, কিন্তু আমাদিগকে তো গ্রহণ করে না।" আমরা চিরজীবনের ফসল যখন সংসারের নৌকায় বোঝাই করিয়া দিই, তখন মনে এ আশা থাকে যে আমারও ঐ সঙ্গে স্থান হইবে; কিন্তু সংসার আমাদিগকেই দুই দিনেই ভুলিয়া যায়। আমরা আগুন জ্বালাইয়া রাঁধি। যাহারা আগুন আবিষ্কার করিয়াছিল, তাহাদিগকে কে জানে? যাহারা চাষ-আবাদ সুরু করিয়াছিল, তাহাদেরই বা নাম কোথায়? যাহারা যুগে যুগে নানারূপে মানুষকেই গড়িয়া তুলিতেছে, তাহাদের কাজ আমাদের মধ্যে অমর হইয়া আছে, কিন্তু তাহারা নাম, ধাম, সুখদুঃখ লইয়া কোন্ বিস্মৃতির গর্ভে অন্তর্হিত হইয়াছে, অথচ প্রত্যেকেই সংসারকে বলিয়াছিল, "আমার সমস্ত লও, তোমার জন্যই তো আমি খাটিতেছি, তোমাকে দিয়াই আমার সুখ। আমার সমস্ত লও, কিন্তু আমাকেও ঠেলিও না, আমাকেও ভুলিও না—আমার কাজের মধ্যে, আমার চিন্তাটুকু অন্ততঃ যত্ন করিয়া রাখিও।" কিন্তু এত স্থানই-বা কোথায়?

এই যে কর্ত্তাকে স্মরণ না করিয়া, তার কীর্ত্তিকে গ্রহণ করিবার প্রয়াস, কবির শান্ত মনকে ব্যথিত ও ব্যকুলিত করিয়া তুলিয়াছে যুগে যুগে। কিন্তু বাস্তব জীবনে ইহার চেয়েও নিষ্ঠুর ব্যথা মানুষের হৃদয় রক্তাক্ত করিয়া দেয়। বাস্তব জীবনে আমরা দেখিতে পাই, কীর্ত্তি হইতে কর্ত্তাকে নির্ব্বাসিত করা হইতেছে—যাঁহারা দেশ-সেবার প্রেরণায় মৌলিক কিছু গড়ে তুলেছেন—আপন সৃষ্টির মধ্যেও তাঁহাদের ঠাঁই দিতে অনেকে বেশ কুণ্ঠাবোধ করেন।

প্রবাসে প্রয়াগ চিরকালই কৃষ্টি ও সাধনার ক্ষেত্র। উত্তর প্রদেশ তথা বঙ্গদেশে এমন বাঙ্গালী খুব কমই আছেন যিনি না জানেন ব্যবসায়ীপ্রবর শ্রীহরিকেশব ঘোষ মহাশয় ওরফে পটলবাবুর বহুমুখী প্রতিভার বিষয়। যে অপূর্ব মুদ্রণালয় প্রতিষ্ঠানটী সকলের সমক্ষে বিরাজমান, তার পুনরুজ্জীবন তিনিই করিয়া গিয়াছেন। 'ইণ্ডিয়ান প্রেস' আজ তাঁহার বৈজ্ঞানিক সংগঠন পদ্ধতি এবং সুশৃঙ্খল সঞ্চালন-প্রক্রিয়ার কল্যাণে শাখা, প্রশাখায় বিস্তৃত। ইহা যে পটলবাবুর জীবনের ফসল—ইহা যে তাঁহার যৌবনের স্বপ্নের সার্থক বাস্তব পরিণতি, ইহাকে যে তিনি তিল তিল করিয়া স্বকীয় প্রচেষ্টা ও প্রযত্নে বিরাট মহীরুহে পরিণত করিয়াছেন, তাহা না বলিলেই চলে। জাতীয় জীবনে, মুদ্রণ-পদ্ধতির অভ্যুদয়, ক্রমোন্নতি ও জনপ্রিয়তা অবশ্যম্ভাবী ভবিতব্যেরই অনিন্দ্য বিধান।

সে আজ প্রায় কুড়ি বৎসর পূর্ব্বের কথা, আমি তখন সবেমাত্র কলিকাতা বিশ্ব-বিদ্যালয় হইতে এম, এস, সী, পাশ করিয়া শর্করা-রসায়ন-শাস্ত্র শিক্ষার্থে এলাহাবাদ বিশ্ববিদ্যালয়ে প্রবেশ করিয়াছি। তখন রসায়নাগার হইতে অবসর পাইলেই ইণ্ডিয়ান প্রেসে আসিতাম। প্রেসে আসিলে পটলবাবু প্রায়ই চিনি প্রস্তুতের পদ্ধতি, উহার কল-কারখানার খুঁটিনাটি বিষয়, বস্তু আমার সহিত আলোচনা করিতেন। চিনির কল স্থাপনের পরিকল্পনা ইতিপূর্ব্বেই তাঁহার দৃষ্টি আকর্ষণ করিয়াছিল এবং তিনি এই পরিকল্পনাকে অবিলম্বে কার্য্যকরী করিবার জন্য সচেষ্টও ছিলেন। দেশব্যাপী এই বিরাট মুদ্রণ ও পুস্তক ব্যবসায়ের অবিরাম কর্ম্মব্যস্ততার মধ্যেও অনায়াসে অবসর করিয়া 'সুগার কেমিষ্ট্রি' সম্বন্ধীয় নূতন নূতন বই পাঠ করিতেন ও পাশ্চাত্য দেশে প্রচলিত চিনি প্রস্তুত পদ্ধতির সুন্দর অথচ সরল ব্যাখ্যা করিতেন। এই প্রকারের কথাবার্ত্তায় তিনি কখন কখন জিজ্ঞাসাও করিতেন, "ওহে তুমি ত' কয়েকটা কারখানায় কাজও করেছো, আরও কয়েকটা কারখানা দেখেছো,—বলতে পার কাদের কল-কারখানা, সাজ-সরঞ্জাম সবথেকে ভাল ?... ...." ভিন্ন জাতীয় শিল্প- ব্যবসায়ে তাঁহার এই প্রগাঢ় পাণ্ডিত্য ও গভীর জ্ঞান দেখিয়া আমি আশ্চর্য্যান্বিত হইতাম। তাঁহার উদ্দেশ্য ছিল, তিনি যে চিনির কল স্থাপন করিবেন, তাহা যেন আধুনিক কলকজা সমন্বিত একটি আদর্শ চিনির কল হয়। যৌবনের এই স্বপ্ন ও সাধনা, যাহা কার্য্যে পরিণত করিতে তাঁহাকে যথেষ্ট পরিশ্রম, যথেষ্ট মস্তিষ্ক-চালনা ও যথেষ্ট ত্যাগ করিতে হইয়াছিল, উত্তরকালে তাহা কত সাফল্য-মণ্ডিত হইয়াছে, গরৌলস্থ (বিহারে মজঃফফরপুর জেলায়) শীতলপুর সুগার ওয়ার্কস্ লিঃ আজ,তাহার উজ্জল সাক্ষ্য প্রদান করিতেছে। বলা বাহুল্য, ভারতের মধ্যে আজ এই চিনির কারখানা অন্যতম বিশিষ্ট চিনির কল।

প্রতিভা যাঁহাকে আশ্রয় করে, কার্য্যকুশলতা তাঁহার শতমুখী হয়, পটল-বাবুর জীবন-আলেখ্য ইহার উজ্জল দৃষ্টান্ত। তাই দেখা যায় তাঁহার সমগ্র জীবন একটি অবিরাম কর্ম্ম-সাধনা। জ্ঞান-লিপ্সা ছিল তাঁহার প্রবল। নানা জাতীয় ব্যবসায় প্রতিষ্ঠানের কার্য্যে সক্রিয় যোগদান এবং কার্য্য পরিচালন ব্যবস্থা করিয়াও অবসর মত বহুবিধ পুস্তকও অধ্যয়ন করিতেন। কিন্তু যে সমস্ত পুস্তক তিনি অধ্যয়ন করিতেন তাহা পুঙ্খানুপুঙ্খ-রূপে আয়ত্ত না করা পর্য্যন্ত তাঁহার তৃপ্তি হইত না। যে কোন নূতন বই,—কি শিল্প-বিষয়ক, কি বিজ্ঞান-সম্বন্ধীয়, কি খেলাধূলা-জাতীয়, কি ব্যবসায়-সংক্রান্ত, প্রকাশিত হইলেই তাঁহার উহা পাঠ শেষ করা প্রথম কাজ হইয়া দাঁড়াইত। মুদ্রণ-সম্বন্ধীয় বিভিন্ন পত্র-পত্রিকা জগতের নানা দেশ হইতে তাঁহার কাছে নিয়মিত আসিত। এক একদিন দেখিয়াছি তিনি ঐ রকম কোন ম্যাগাজিন একান্ত নিবিষ্ট-মনে পাঠ করিতেছেন—শুধু পাঠ নয়, অধিকন্তু মুদ্রণ সম্বন্ধীয় যদি কোন নূতনের সন্ধান মিলিত, তাহা কি করিয়া নিজের মুদ্রণালয়ে কাজে লাগান যায় সঙ্গে

ব্যবহারে অতি নিরহঙ্কার ও অমায়িকও ছিলেন। তাঁহার এই চারিত্রিক মাধুর্য্যে সকলেই অতিশয় মুগ্ধ হইতেন।

নবীনের সন্ধানী পটলবাবু নিত্য নূতনের সৃষ্টিই করিয়া গিয়াছেন। কিছুদিন যাবৎ তাঁহার স্থাপত্যকলার প্রতি অনুরাগ হইয়াছিল। তাঁহার এই সখের জন্য বহুলোকে তাঁহাদের বাড়ী তৈরী করার কাজে নানা ভাবে তাঁহার নিকট হইতে সাহায্য গ্রহণ করিতেন—তিনি ভগ্নস্বাস্থ্য হইয়াও এরূপ কাজে নিজেকে সর্ব্বদাই ব্যাপৃত রাখিতেন।

তাঁহার বিরাট চরিত্রের এইরূপ নানা সদগুণের জন্য তিনি চিরদিন আমাদের হৃদয়ে অমর হইয়া থাকিবেন। ভগবানের নিকট প্রার্থনা করি—তিনি যেন তাঁহার বীর্য্যবান অমর আত্মার জন্য তাঁহার নূতন জীবনে বিরাটতম কর্ম্মক্ষেত্রের সুযোগ করিয়া দেন।

শ্রদ্ধেয় ৺হরিকেশববাবু

শ্রী পি. মুখার্জ্জী

সে আজ ২৬ বছরের কথা,—শিল্পী হিসাবে ছবি আঁকার কাজ খুঁজে বেড়াচ্ছিলাম। শ্রদ্ধেয় সাহিত্যিক রবীন্দ্র নাথ সেন মহাশয় একদিন আমাকে ইণ্ডিয়ান্ প্রেসের অন্যতম স্বত্বাধিকারী এবং ম্যানেজিং ডাইরেক্টার শ্রীযুক্ত হরিকেশব ঘোষ মহাশয়ের সহিত পরিচয় করিয়ে দেবার জন্যে, বাদুড়বাগানের মল্লিক মহাশয়ের বাড়ীতে নিয়ে যান। শ্রীযুক্ত ঘোষ মহাশয় তখন সেখানে অবস্থান ক'রছিলেন। সে সময় তিনি গৃহে ছিলেন না; শুনলাম, একটু পরেই ফিরবেন। আমরা পাঁচ-সাত মিনিট অপেক্ষা করতেই তিনি ফিরলেন। দেখলাম একজন গৌরকান্তি প্রতিভাবান অল্পবয়স্ক সুপুরুষ।

রবীনবাবুকে নমস্কার করে বললেন, "এই যে রবীনবাবু,—কতক্ষণ এসেছেন? একটা কাজে একটু বাইরে গিয়েছিলাম,—ইনি কে?"

অমনি সামনের একটা লোহার চেয়ারে বসেই রবীনবাবুর সঙ্গে কাজের কথা আরম্ভ করলেন। রবীনবাবুর লেখা ছোটদের গল্পের বইএর ছবি কে আঁকবেন জিজ্ঞাসা করায়, রবীন বাবু আমাকে দেখিয়ে বললেন, "এঁকে দিন্ না,—ইনি বেশ ছবি আঁকেন।" আমার আঁকা কয়েকখানা ছবি, যা আমার সঙ্গেই ছিল, তিনি হরিকেশব বাবুকে তখনই দেখালেন। ছবিগুলি দেখার পর, শ্রীযুক্ত ঘোষ বল্লেন, "বেশ এঁকেছেন।" শিল্পী হিসাবে নিজের আঁকা ছবির প্রশংসা শুনে খুব আনন্দ পেলাম। এর পূর্ব্বেও অবশ্য ছবি আঁকার কিছু কাজ করেছি, কিন্তু এ রকম খুসীমনে কাজের সুখ্যাতি অন্যান্য গ্রন্থ-প্রকাশকদের কাছ থেকে এত শীঘ্র পাইনি। দু'চার কথা হ'বার পর শ্রীযুক্ত ঘোষ বল্লেন, "এলাহাবাদের প্রেসে আমরা মহাভারত ছাপ্‌ছি,—অনেক ছবি চাই। ছবি আঁকার কাজ করবেন? —১০০৲ টাকা মাসে দেব। সহসা কি জবাব দিই, ভেবে পেলাম না। কলকাতা ছেড়ে যাবার ইচ্ছেও খুব ছিল না। চুপ করে ভাব্‌ছি,—ইতিমধ্যে জিজ্ঞাসা করলেন,

"কলকাতার বাইরে যেতে ইচ্ছে নেই? —দেশ কোথায়"?

জবাব দিলাম, "খুলনায়।"

হেঁসে বল্লেন, "তা'হলে আপনার পক্ষে কলকাতা আর এলাহাবাদ একই ত!"

আমার অন্তরের কথা, তিনি কি করে এত সামান্য পরিচয়ের মধ্যে বুঝলেন, ভেবে আশ্চর্য্য হলাম।

পরে বল্লেন, "এই বইটার ছবিগুলো এঁকে ফেলুন,—হ্যাঁ, একটা দরখাস্তও এলাহাবাদের প্রেসের ঠিকানায় পাঠিয়ে দেবেন।"

সেই সুরু হোল প্রবাসে আমার শিল্প-জীবন,—সে ১৯২৭ সালের কথা। আজও এলাহাবাদে আছি, মাঝের পাঁচ বছর বাদ দিয়ে আজ পর্য্যন্ত এঁদের প্রেসের ছবি

ব্যবহারে অতি নিরহঙ্কার ও অমায়িকও ছিলেন। তাঁহার এই চারিত্রিক মাধুর্য্যে সকলেই অতিশয় মুগ্ধ হইতেন।

নবীনের সন্ধানী পটলবাবু নিত্য নূতনের সৃষ্টিই করিয়া গিয়াছেন। কিছুদিন যাবৎ তাঁহার স্থাপত্যকলার প্রতি অনুরাগ হইয়াছিল। তাঁহার এই সখের জন্য বহুলোকে তাঁহাদের বাড়ী তৈরী করার কাজে নানা ভাবে তাঁহার নিকট হইতে সাহায্য গ্রহণ করিতেন—তিনি ভগ্নস্বাস্থ্য হইয়াও এরূপ কাজে নিজেকে সর্ব্বদাই ব্যাপৃত রাখিতেন।

তাঁহার বিরাট চরিত্রের এইরূপ নানা সদগুণের জন্য তিনি চিরদিন আমাদের হৃদয়ে অমর হইয়া থাকিবেন। ভগবানের নিকট প্রার্থনা করি—তিনি যেন তাঁহার বীর্য্যবান অমর আত্মার জন্য তাঁহার নূতন জীবনে বিরাটতম কর্ম্মক্ষেত্রের সুযোগ করিয়া দেন।



শ্রদ্ধেয় ৺হরিকেশববাবু

শ্রী পি, মুখার্জ্জী

সে আজ ২৬ বছরের কথা,—শিল্পী হিসাবে ছবি আঁকার কাজ খুঁজে বেড়াচ্ছিলাম। শ্রদ্ধেয় সাহিত্যিক রবীন্দ্র নাথ সেন মহাশয় একদিন আমাকে ইণ্ডিয়ান্ প্রেসের অন্যতম স্বত্বাধিকারী এবং ম্যানেজিং ডাইরেক্টার শ্রীযুক্ত হরিকেশব ঘোষ মহাশয়ের সহিত পরিচয় করিয়ে দেবার জন্যে, বাদুড়বাগানের মল্লিক মহাশয়ের বাড়ীতে নিয়ে যান। শ্রীযুক্ত ঘোষ মহাশয় তখন সেখানে অবস্থান ক'রছিলেন। সে সময় তিনি গৃহে ছিলেন না; শুনলাম, একটু পরেই ফিরবেন। আমরা পাঁচ-সাত মিনিট অপেক্ষা করতেই তিনি ফিরলেন। দেখলাম একজন গৌরকান্তি প্রতিভাবান অল্পবয়স্ক সুপুরুষ।

রবীনবাবুকে নমস্কার করে বললেন, "এই যে রবীনবাবু,—কতক্ষণ এসেছেন? একটা কাজে একটু বাইরে গিয়েছিলাম,—ইনি কে?"

অমনি সামনের একটা লোহার চেয়ারে বসেই রবীনবাবুর সঙ্গে কাজের কথা আরম্ভ করলেন। রবীনবাবুর লেখা ছোটদের গল্পের বইএর ছবি কে আঁকবেন জিজ্ঞাসা করায়, রবীন বাবু আমাকে দেখিয়ে বললেন, "এঁকে দিন্ না,—ইনি বেশ ছবি আঁকেন।" আমার আঁকা কয়েকখানা ছবি, যা আমার সঙ্গেই ছিল, তিনি হরিকেশব বাবুকে তখনই দেখালেন। ছবিগুলি দেখার পর, শ্রীযুক্ত ঘোষ বল্লেন, "বেশ এঁকেছেন।" শিল্পী হিসাবে নিজের আঁকা ছবির প্রশংসা শুনে খুব আনন্দ পেলাম। এর পূর্ব্বেও অবশ্য ছবি আঁকার কিছু কাজ করেছি, কিন্তু এ রকম খুসীমনে কাজের সুখ্যাতি অন্যান্য গ্রন্থ-প্রকাশকদের কাছ থেকে এত শীঘ্র পাইনি। দু'চার কথা হ'বার পর শ্রীযুক্ত ঘোষ বল্লেন, "এলাহাবাদের প্রেসে আমরা মহাভারত ছাপ্‌ছি,—অনেক ছবি চাই। ছবি আঁকার কাজ করবেন?—১০০৲ টাকা মাসে দেব। সহসা কি জবাব দিই, ভেবে পেলাম না। কলকাতা ছেড়ে যাবার ইচ্ছেও খুব ছিল না। চুপ করে ভাব্‌ছি,—ইতিমধ্যে জিজ্ঞাসা করলেন,

"কলকাতার বাইরে যেতে ইচ্ছে নেই? —দেশ কোথায়"?

জবাব দিলাম, "খুলনায়।"

হেঁসে বল্লেন, "তা'হলে আপনার পক্ষে কলকাতা আর এলাহাবাদ একই ত!"

আমার অন্তরের কথা, তিনি কি করে এত সামান্য পরিচয়ের মধ্যে বুঝলেন, ভেবে আশ্চর্য্য হলাম।

পরে বল্লেন, "এই বইটার ছবিগুলো এঁকে ফেলুন,—হ্যাঁ, একটা দরখাস্তও এলাহাবাদের প্রেসের ঠিকানায় পাঠিয়ে দেবেন।"

সেই সুরু হোল প্রবাসে আমার শিল্প-জীবন,—সে ১৯২৭ সালের কথা। আজও এলাহাবাদে আছি, মাঝের পাঁচ বছর বাদ দিয়ে আজ পর্য্যন্ত এঁদের প্রেসের ছবি

আঁকার কাজ কিছু কিছু করেছি। এই পঁচিশ-ছাব্বিশ বছরের বেশ ঘনিষ্ঠ সম্পর্কের মধ্যে, একটী দিনও আমি তাঁকে চুপ করে বসে থাকতে দেখিনি। সর্ব্বদাই একটা না একটা কাজ নিয়ে ব্যস্ত থাকতেন। তাঁর সঙ্গে কাজ করে লোকেও খুব খুসী হোত। সময়ের অপব্যবহার তিনি একেবারেই দেখতে পারতেন না। যে কাজে যখন হাত দিতেন, তাঁকে তন্ময় হোয়েই সে কাজ করতে দেখেছি। কোন কাজই তাঁর কাছে ছোট ছিল না।

চিত্রশিল্পেও হরিকেশব বাবু যথেষ্ট উৎসাহী ছিলেন। প্রেসের প্রকাশনগুলি কেমন করে শোভন-সুন্দর হয়, তার প্রতি সর্ব্বদা তাঁর লক্ষ্য ছিল। নতুন পাঠ্য বইএর আবরণ—প্রচ্ছদন প্রস্তুত সম্বন্ধে তিনি অনায়াসে সুন্দর ও সরলভাবে নির্দ্দেশ দিতেন। কখন কখন কাজ বোঝাবার সময়ে কাগজে কলমে ফুটিয়ে তুলতেন তাঁর শিল্পি মনের ভাব সুন্দর রেখাঙ্কনের দ্বারা। নতুন বই প্রকাশিত হলেই অমনি রচনা করতেন নবীন কভার ডিজাইনের নমুনা। মাঝে মাঝে দেখেছি সন্ধ্যাবেলায় অফিসের ব্যস্ততাময় কার্য্যাশেষে শান্ত মনে বসে আঁকছেন আধুনিক ধরণের নতুন নতুন প্রচ্ছদপটের পরিকল্পনা। বস্তুতঃ কোন বই প্রকাশিত হবার পূর্ব্বেই তৈরী হয়ে থাকত তার জন্যে নতুন ধরণের আবরণ বা প্রচ্ছদন। বইএর সাজ-সজ্জায় নিত্য নূতন কভার, চিত্র ও ডিজাইনের সৃষ্টি করা তাঁর একটি স্বকীয় বৈশিষ্ট্য ছিল। ইণ্ডিয়ান প্রেসের বহুবিধ কলামণ্ডিত পুস্তক প্রকাশনগুলি দেখলেই শিল্পানুরাগী হরিকেশববাবুর এই শিল্পিমনের সম্যক পরিচয় অতি সহজেই পাওয়া যায়।

প্রতিভা ছিল তাঁর সর্ব্বতোমুখী। ইণ্ডিয়ান প্রেসকে ভারতের অন্যতম বিশিষ্ট প্রেসে পরিণত করার মূলে ছিল তাঁর অক্লান্ত পরিশ্রম ও নিখুঁত পরিচালন-শক্তি। প্রতিভাবান্ ব্যক্তির পরিচয় তাঁর স্বীয় কর্ম্মের মধ্যেই পাওয়া যায়। কর্ম্মকুশলী হরিকেশব বাবু, তাঁর ত্রিশ-বত্রিশ বছরের জীবনের মধ্যে কত কি না করে গেছেন,—শীতলপুরের চিনির কারখানা, সাইন্টিফিক্ ইন্‌স্ট্রুমেন্ট কোঃ, আদর্শ বীমা কোঃ এবং আরও কত শিল্প প্রতিষ্ঠানের তিনি ছিলেন অন্যতম পরিচালক। হেন্‌রী ফোর্ড, এন্‌ড্রু কার্ণেগীদের ন্যায় বিরাট ব্যবসায়ীদের নামও শুনেছি; আমার শিল্প জীবনের শুভ-সন্ধিক্ষণে, তাঁর মত বিরাট পুরুষের পরিচয়ে বুঝলাম আমাদের দেশেও ঐ মত তীক্ষ্ণধী বিরাট ব্যবসায়ীর জন্ম হয়। তাই স্বাধীন ভারতের অর্থ-সমস্যা-জড়িত শিল্প উন্নয়নের সময়ে তাঁর মত উদ্যোগী, কর্মপটু ব্যবসায়ীর অভাব প্রতিপদেই অত্যন্ত অনুভূত হবে।

কর্ম্মবহুল ও ব্যস্ততাময় জীবনের মধ্যেও তিনি তাঁর অন্তরঙ্গদের পারিবারিক সুখ ও দুঃখের খবরাখবর নিতেন। এই মহৎ-প্রাণের মহানুভবতার কথা একটী দিনের ঘটনাতেই বুঝতে পারা যায়। আজ কয়েক বছর আগের কথা, তখন আমার মধ্যম পুত্র টাই-ফয়েড্ রোগে আক্রান্ত। এ খবর তাঁর পূর্ব্বে জানা ছিল না। প্রেসের ছবি আঁকার কোন জরুরী কাজ পড়ায় আমাকে পত্রদ্বারা প্রেসে তাঁর সঙ্গে দেখা করতে জানান। পত্রবাহক

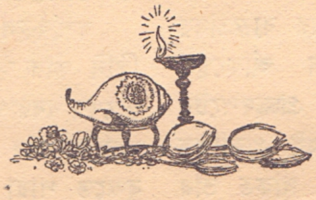
মারফৎ আমার বাটীর অবস্থা জান্‌তে পেরে, তিনি সেই দিনই নিজে গাড়ী করে আমার বাড়ীতে উপস্থিত হন। তাঁকে দেখে, আমি লজ্জিত হয়ে বল্লাম, "আমি 'ত প্রেসে যাচ্ছিলামই।" সহাস্যে উত্তর দিলেন, "তোমার ছেলের অসুখ, তাই ভাবলাম, একবার দেখেও আসি, আর কাজটুকুও বুঝিয়ে দিয়ে আসি।"এমনই ছিল তাঁর আন্তরিকতা।

অবিরাম কর্ম্মই তাঁর জীবনের প্রধান লক্ষ্য ছিল। কর্ম্মবিহীন জীবন তাঁর পক্ষে অসহ্য ছিল। সেই জন্য নিজের স্বাস্থ্য, সুখ বা আরামের দিকে নজর দেবার জন্য তাঁর মুহূর্ত্তের অবসর ছিল না। পূর্ব্বেও কয়েকবার তিনি অসুস্থ হয়েছিলেন, কিন্তু, রোগজীর্ণ, ক্লান্তশরীর, এবারকার আক্রমণ থেকে আর রক্ষা পেল না। স্বনামধন্য পিতার ন্যায় তিনিও বহু সদ্‌গুণে বিভূষিত ছিলেন। তাঁর মত কর্ম্মবীরের অকালমৃত্যু বড়ই বেদনাদায়ক। তথাপি মনে হয়,—

"ডান হাত হইতে বাম হাতে লও
বাম হাত হ'তে ডানে,
নিজ ধন তুমি নিজেই হরিয়া
কি যে কর কে বা জানে—"

আত্মা ত অবিনশ্বর! সুতরাং হরিকেশববাবুর মৃত্যু নেই। তাঁর কীর্ত্তির মধ্যেই তিনি বেঁচে আছেন ও ভবিষ্যতে আমাদের কর্ম্মে উৎসাহ ও প্রেরণা দিতে বেঁচে থাকবেন। শ্রীভগবানের কাছে তাঁর পুণ্য আত্মার শান্তি কামনা করে, আমার এই স্মৃতিকথা শেষ করলাম।

ওঁ শান্তি! ওঁ শান্তি!! ওঁ শান্তি!!!



अँगरेजी संस्मरण

Our Beloved Mejda!

You were indeed a brother
true
No bounds your affection
knew
Your wisdom and prudence
Were always our guidance
In you God had bestowed
all His best
Though He has called you
early to rest;
Work was your daily pleasure
And integrity your life's
treasure;
We cannot forget the
loving grace
In your ever smiling face;
Though you have left
us for ever
We shall forget you
never,
Our vow we renew
Your work to continue
Give us unity, courage and
vision
To fulfil your glorious
mission.

Brothers:
H. P. GHOSH
H. S. GHOSH
H. N. GHOSH
H. B. GHOSH

ADVICE TO YOUNG MEN

[An address delivered by late Shri H. K. Ghosh, extempore on the occasion of the inauguration of the Commerce Association of C. A. V Inter. College, Allahabad on 11th September, 1952.
This is his last public speech which offers a practical solution to the baffling problem of the day, particularly of our younger generation,—what to do and how to do.—*Editor*.]

MY FRIENDS,

Allow me to express my thanks to you all for inviting me on this occasion. It is indeed a very happy occasion when I find our young ones are seriously taking interest in problems connected with the commercial world of the city, province and our country. In our young days we had no such facilities and we had to face with greater difficulties in understanding the true implications of commercial problems. Now that commercial education has become a reality in our schools and universities our young friends will be far better equipped than we were before entering into the world of commerce and finance. Particularly, I am happy as you are not contented with the education you are getting in your school. You have started an Association which will give you ample opportunity to come into contact with practical problems of commercial life. You will understand better the practical applications of your education in your daily contact with people and markets. You will be able to develop your understanding about the application of what you are learning today and all your future contact with people of commerce. You will have the advantage to meet people on this platform to speak to you. They will say what is needed of you and what the future generation expects from you—what will be your duties in life and how you will be able to serve your country better when you go out to a bigger sphere after completing your education. I would not take much of your time as it is time you like to go home and rest. I will only say a few words how you will be able to develop your talents, make yourself more fit for your future occupation in life.

You will please note that good habits will be your number one friend in all future set up for a successful career. You must from now develop such habits as will enable you to exert minimum efforts to prove yourself worthy of any type of vocation you may take up in future. Punctuality, quick decision, logical thinking, neatness of all written work—these are the essentials which should have your urgent attention. Whatever you write it should be neat, clean, free from ambiguities and direct. Whatever answer you have to give to any problem you must say quickly and at once without a wavering understanding. If you are incorrect, if you do not understand a problem seek others without embarrasment. You may be wrong or right, you should seek the correct solution. Do not try to prove that you understand a problem correctly although you know well it is not the case. Do not try to satisfy yourself with unsolved problems.

You must be thoroughly honest in your dealing with others. This will pay you in the long run. You must not try to keep back what you do not wish to disclose. You must deal with others with an attitude which will atonce befriend others permanently. You must remember, people who rely on you

should not have reasons to lose their confidence in you. You must be fair in all your dealings with others.

In order to equip yourself fully to meet the ordeals of life you must look round and study things with a keen eye. You will have many occasions to meet business people. You must study why one has become successful and analyse all good points and try to acquire such knowledge as will help you in your career. Mere book-knowledge will not help you in your career. You will learn to take interest in wider sphere where you will find ample scope to apply your book-knowledge. Practical application of book-knowledge is essential in all kinds of commercial education. It is through these applications that theories have been developed into modern commercial education.

You should frequently visit market areas of your town and study how business is carried on—how they earn money and what factors lead to losses. You must analyse their method of buying and selling. You must be able to judge where such methods could be improved. You must not feel shy to ask questions. You will find that in this way you will acquire practical knowledge and find it very easy to follow your theoritical education. You should try to read commercial news of the daily papers. You will be able to understand by careful questioning the implication of figures of the stock-exchange, export, import and money markets. It is not at all difficult to understand these things if you take interest in studying these statements in the newspapers.

I would not take much of your time. Let me sum up what I have said in these following few lines:—

(1) You must acquire good habits.

(2) You should take interest in all matters connected with commerce and industry.

(3) You should be honest to yourself as well as to others.

(4) You should often go out to market place and closely study how they earn and lose money.

(5) You should read commercial news in the daily paper.

Let us sincerely hope many of you who are quite young today will after twenty years or earlier help our country to become more prosperous, more self-sufficient so that some day we may become as highly industrialised as the countries in Europe and America.



LATE SHRI H. K. GHOSH

Amaranatha Jha, M.A., D.Litt., LL.D., F.R.S.L., Chairman, Bihar Public Service Commission, Patna.

The late Babu Chintamani Ghosh lived in the bungalow which now is part of the University accommodating the Proctor's Court and the Post office. We lived in the bungalow which was demolished when the Ganganatha Jha Hostel was constructed. We were thus next door neighbours for several years. Chintamani Babu's eldest son Haripado (familiarly known to us as Podi) was nearer to me in age than his younger brothers, but I knew Hari Keshab (Patal) very well ever since he was a young boy. All through these years, I watched his career with great interest. He carried on the tradition of his father and made the Indian Press the outstanding Press for the publication of Hindi books and journals. For some years Rabindra Nath Tagore's Bengali books were also printed there. He extended his printing and publication business practically all over North India. His premature death will be widely mourned not only by his business associates but also by a large number of literary men who invariably received help and assistance from him. I recall that on several occasions he accepted my recommendation to get the works of comparatively obscure writers printed and published. In his death I have lost a personal friend of long standing and I shall always regret the untimely end of a career of such distinction.

MY FRIEND

M. N. Saha, D.Sc., F.R.S., F.N.I., M.P. Palit Professor of Physics, University of Calcutta.

I came to know Shri Hari Keshab Ghosh, General Manager of the Indian Press, Allahabad and Calcutta since 1927. Later on, I came into more intimate contact with him because he very kindly undertook the publication of the book "Treatise on Heat" by myself and Dr. B. N. Srivastava and "Treatise on Modern Physics" by myself and Dr. N. K. Saha. The first book is now running several editions. Later I was instrumental in persuading him to start the Sitalpur Sugar Works which is now running as a successful business concern for nearly 20 years. Mr. Ghosh was a man of dynamic personality, intense energy and was capable of concentrating his attention on the problems which he undertook. He had a large vision, and did not confine himself to merely ancestral legacy large as it was. Everybody who came in contact with him was impressed with the seriousness of his purpose and of his personal qualities. His loss would be mourned not only by his relatives but by the very large circle of people who came in contact with him. In him, I have lost a sincere and genuine friend.

A TRIBUTE

N. R. Dhar, D.Sc., F.R.I.C., F.N.I.,F.N.A.Sc., I.E.S., (Retd.), Head of the Chemistry Department and Director, Sheila Dhar Institute of Soil Science, University of Allahabad.

When I came to teach Physical and Inorganic Chemistry as a Professor in the Muir Central College on the 19th July 1919 in the Indian Educational Service, Shri Ghosh was carrying on some experiments on the preparation of scents under the guidance of Dr. A. P. Sircar. At that time Shri Ghosh used to follow my lectures.

Shri Ghosh could carry on chemical experiments quite well and understood the scientific principles involved in those experiments. He had a very strong commonsense and was just and courteous to all he met and worked with. He was a good speaker and dealt with all kinds of difficult, financial and administrative problems with tact and acumen.

TRIBUTE TO A FRIEND

P. L. Srivastava, M.A., D.Phil. F.N.I., M.L.C., Head of Mathematics Dept., Allahabad University and President, Kayasth Pathshala, Allahabad.

Friends and relations of the late lamented Shri Hari Keshav Ghosh, popularly known as Patal Babu, have honoured me by asking me to write a few lines about my dear and esteemed friend, who passed away five months ago, leaving all those who knew him, in a terrible grief.

I had known Patal Babu since his college days when he and I were classmates. I can vividly recall some of those happy moments which we spent together talking all sorts of things outside the class-room. As a student Patal Babu was a great social figure and was a friend of all those, rich or poor, who cared for his friendship. Those who came in contact with him could easily predict that Patal Babu was going to be a great success in business. But none of us could really imagine at that time, that Patal Babu's contribution to the cause of education would be so great as it actually is.

On the death of his illustrious father, the entire burden of the family as well as of the Indian Press, fell on his shoulders, and this burden he bore patiently till the last breath of his life.

Few publishers and printers can claim the privilege of revolutionizing the entire industry of printing and publishing as Patal Babu could. No other publishing concern in U. P. has rendered that long and distinguished service to the reading public as the Indian Press under the able guidance and supervision of Patal Babu. The name and fame of this Press have spread throughout the length and breadth of the country, and its stamp on every printing work is a sure guarantee that it is of a very high standard.

Patal Babu was not only a great edu-

cationist and a noted publisher, but also a great business magnate. That every venture on which he embarked should have proved a success, shows how remarkable a genius Shri Ghosh was in the world of business. But the greatest loss which the city of Allahabad has suffered by the passing away of Shri Ghosh, is the disappearance of a thorough gentleman, and a great philanthropist.

The void created by the departure of Patal Babu from amongst us can never be filled up. There was no good cause to the building of which Shri Ghosh did not contribute generously and no body ever approached him in vain. To his friends Shri Ghosh was a source of great strength. Many an humble person got well settled in life and business through the generosity of Shri Ghosh. Many an aspiring author received boundless encouragement from that genial personality who received the main and sundry with utmost kindness and courtesy.

Long shall we remember him with gratitude and affection, long he shall be missed in the social circles of Allahabad and long shall he continue to inspire and guide his people, by the traditions of honesty, integrity and hard work that were his guiding principles in life.

May his soul rest in peace and may the cause which was near and dear to the heart of Shri Ghosh, ever grow from strength to strength.

Here I pay my humble tribute of love and affection to one who was ever so kind to me and whose magnanimity and generosity I shall ever cherish as long as I live.

MY TRIBUTE TO LATE SHRI H. K. GHOSH

S. K. Ghosh, M.Sc., Retd. Director of Education, U.P.

Shri Hari Keshab Ghosh better known as Patal Babu was a versatile genius. Everything he touched was transformed into sure success. This was no magic. His capacity to take infinite pains coupled with his fertile imagination naturally led to achievements which evoked both envy and admiration.

His was a master mind, but singularly free from any trace of vanity and pomposity. Like a true business executive he would personally go into minutest details to solve an intricate problem or to execute a plan. His affability and sincerity endeared him to all with whom he came in contact whether in business dealings or social intercourse. He was loved and respected in all circles in which he moved and his advice and guidance was eagerly sought by persons in every walk of life. He was closely associated with a number of business concerns of various types, and thus overworked himself. His failing health did not deter him from hard and sustained labour in any cause dear to his heart.

It was, in fact, a triumph of the spirit over flesh that he could survive the ordeal so long.

He leaves a host of friends to mourn his loss.

May his soul rest in peace.

A TRIBUTE

U. S. Varma, M.A., Head of the Department of English
Ewing Christian College, Allahabad.

I consider it a real privilege to have known the late Shri H. K. Ghosh rather intimately. I was deeply impressed by his urbanity of manners, catholicity of outlook, capacity for hard work, integrity of character and above all his nobility of heart. His interests and activities were wide and varied and he 'touched nothing that he did not adorn.' His heart was full of 'the milk of human kindness' and he always extended his helping hand to those who approached him. His philanthropy knew no bounds of caste, creed or colour.

The premature death of this 'prince among publishers' has created, in the life of this city in particular and the state in general, a void which it is difficult to fill. To know 'Patal Babu', as he was popularly known, was to love him, and to love him was to respect him for the sterling qualities of his head and heart. May his soul rest in peace.

"PATAL BABU"

K. P. Dar, Technical Adviser, Hindustan Times, New Delhi.

Late Shri Hari Keshab Ghosh, universally known as *Patal Babu* was one of my greatest friends and I have had the privilege of being in constant touch with him for over 35 years. When we first met, he and I had just started our careers as printers. He was a man of taste and was always ready to put new methods to test, however difficult they may seem. He held very high ambitions and brought the Indian Press to a very high level. He toured all over Europe only for learning new methods.

He had wonderful determination to see things through, and would not rest till his scheme was put into operation successfully. When we used to meet, we exchanged ideas, and he readily adopted anything that was new and good for the printing industry. He had the eye and will, for fine production and I have always found him busy with new methods and schemes not only with press but also in office, home etc. His interests were varied. Press alone did not absorb his daily work. He was managing other concerns—Sugar Mill, Scientific Instrument Co. etc. He had a special hobby for building construction and I think he could suggest better and more economic ideas in the erection of buildings than any class engineers. I have not seen a more hardworking man than "Patal Babu", who even during his prolonged illness, never spared a minute to rest without doing something.

His early death has produced a gap, which will not be easily filled for years to come. Personally, I have lost my best friend.

"IN MEMORIAM"

Ishwari Prasad, M.A., D.Litt., M.L.C. Head of the Department of Political Science, Allahabad University.

Few men in our generation have achieved so much success in the printing and publishing business as Shri H. K. Ghosh, whose death occured on 17th March at Calcutta. Of Allahabad, he was the premier businessman who had by sheer dint of merit risen to the first position and maintained it to the last day of his life.

His was a versatile mind; he did not specialise in printing and publishing only which he had raised to a high pitch of perfection in his own Press, but also in other industries like sugar and textiles. Nature had endowed him with a mind that was inventive and resourceful, a temper that was always calm and unruffled and a character which was straightforward and sincere. He was intensely hard-working; early and late he sat in his office thinking out schemes and discussing their practical aspects with those who came to see him. Argus-eyed, he carefully superintended the various branches of his firm. No detail escaped his attention. It was really amazing to see him at work. Small things and great equally received his attention, and though he controlled a vast volume of business, he never acted in excitement, haste or anger and those who dealt with him had a pleasant experience. Punctilious in his taste, he looked to every detail of printing and he had the poet's or the painter's passion to make the designs of his books artistic and beautiful. He grudged no toil or expenditure in producing the finest things, and was keenly interested in their excellence and final execution. It was this quality which made the Indian Press famous throughout India and its publications sold by lakhs. He was held in esteem by Government and the people alike. Both trusted him and accepted his word without a demur. He never resorted to shady transactions to push his business and was well known as a straightforward and honourable man. He loved money and was desirous of earning it but not by unfair means, and neither evil tongues nor the sneers of selfish man were able to detract from his reputation which was based on unalterable values.

As President of the Uttar Pradesh Publishers' Association he enjoyed a unique status. He was an uncompromising champion of just and equal rights and put forward the business point of view before Government with great courage and independence. For the sake of weaker publishers, he was prepared to sacrifice even his own interest, and never had the slightest intention to pursue his own advantage exclusively. On many an occasion he stood up for the rights of others and suffered loss himself. The Department of Education respected him and since he came at the head of his firm, the successive Directors of Education and other officers valued his advice and gave thought to his suggestions. On questions of printing he spoke with authority, and no one in the whole State was his equal in technical knowledge and experience. He was a man of creative mind, and his imagination could conceive of new plans and ventures on a gigantic scale.

In his dealings he was always straight and fair. "Honesty is the best policy" was his watchword in life. Whoever may fail or falter, whoever may feel jealous of the profits and reputation of others, Mr. Ghosh was always unperturbed by these things and pursued the even tenor of his life with a serenity

which was unsurpassed among his contemporaries. He conducted his business in European style and had devised methods to make it more efficient and profitable. His treatment of authors left nothing to be desired. As for me who had been in close touch with him for nearly 40 years, I can say without fear of contradiction that he was an honest, truthful and obliging person and never, like heartless capitalists, took advantage of the difficulties of impecunious literary craftsmen. His attitude was one of sympathy, gentleness and kindness, and the present writer can recall to his mind numerous instances of his generosity and benevolence. During the long period extending over 35 years there was no misunderstanding between us and the publishing world will be surprised to know that I never entered into an agreement with him regarding my books. My faith in him was complete, and it was amply justified by his excellent behaviour. In my numerous monetary transactions with him, I always found him fair and just and ever prepared to accept a reasonable proposition.

There were cases of defaulting agents, of men who were guilty of misusing his funds, but he was always forgiving and generous and accepted friendly mediation without being harsh. To new publishers, he always extended a helping hand and readily offered advice. He had reached a position in which there was no fear of rivalry, and therefore he could help and guide those who approached him without detriment to his own business interest. A man of opulence, he never went out of his way to seek official favours nor did he covet membership of public bodies. He was devoted heart and soul to his business and, though inclined to take a charitable view of human foibles, he always condemned nepotism, corruption and favouritism and stood for justice and fair deal. He had hoped for much in Free India by way of industrial and economic development but the brighter dreams of his youth were dissipated by cruel experience, and he did not feel very optimistic about the future. Still, he was prepared to make allowance for the period of transition, and did not lose his faith in India's potential genius.

He was a great gentleman and a sincere friend. He was not proud or overweening as the rich usually are. He would always greet you with a smile and make enquiries about your family and its affairs. Ever ready to recognise service, he was kind to his employees and never showed unwillingness, when there was a dispute, to accept reasonable settlement. The inroads of resurgent proletarian democracy disturbed him at times but he faced the labour crises in his firm with cheerfulness and courage and never sought to victimise anyone. Sometimes he was misunderstood but in the long run even his detractors regained the right perspective. He never despised the poor and the lowly and even the humblest man could have easy access to him.

To the students he was particularly generous and I can claim to have secured his help for many of them when they were in desperate need. He was neither greedy nor niggardly and the manner in which he lived admitted of no cavil or criticism. Even those who boasted of their riches felt small before his established superiority.

As the eldest among his five brothers, he enjoyed the position of being the head and the director of the family. His word was a law unto them, but he always took great care to see that he did not appear as an autocrat. By his single-handed and prodigious industry he had vastly added to the fortunes of

the family but he shared the accretions with his brothers and never kept anything for himself. They respected him like a father and never crossed his will. To his brother, Mr. H. P. Ghosh, popularly known as Dhuni Baboo, he was deeply attached and in business matters always took counsel with him. He enjoyed the respect and confidence of the other brothers too in an equal measure, and treated them like his sons. Patal and Dhuni, unfailing comrades in arms, were the two dominant figures of the Indian Press, Ltd. and the prosperity of the latter was in no small measure due to their self-denial and unwearied efforts. Every time he fell ill, he was asked to desist from work, but he had such a passion for it that he disregarded all advice and persevered with his schemes without thought of self. During his illness his brothers served him with a rare devotion; they spent money like water, but who can alter the decrees of Fate? Patal Baboo was a true *paterfamilias* and I have seen few men so solicitous about the welfare of every member of the family. Verily says the Ramayana "Where there is good sense, there abides prosperity of all kinds."

Of late the late Mr. Ghosh had cultivated a passion for bulidings. He was well-versed in the printing industry, of the ins and outs of which he was an undisputed master. But he was an architect and engineer also. He knew about the art of building more than many a professional technician, and added to the beauty of our town by erecting many exquisite buildings. He was a man of taste who hated slovenliness and clumsiness and grudged no amount in making his creations beautiful and attractive. As a landlord he was not exacting, and those who are living in his houses speak of his fairness, courtesy and reasonableness. He was ever ready to look after their comforts and was prompt in removing their grievances. He seldom refused a request and was always considerate in dealing with other men.

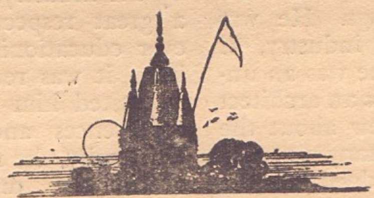
To me, Patal Baboo's death has been a personal loss. I had enjoyed his friendship uninterruptedly for more than three decades and sometimes half in jest and half in earnest, I used to say like Oliver Goldsmith "My publishers are my patrons." He valued my literary craftsmanship, and I have a shrewd suspicion that he honoured my ceaseless industry and devotion to Clio. His death came to me as a shock and I could scarcely realise the void that had been created in the Indian Press by it.

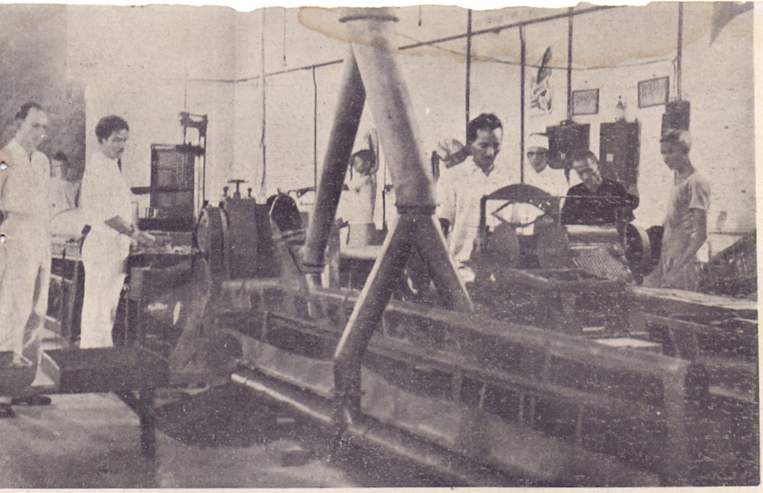
There is no doubt that he was a remarkable man. Suave and courteous by nature, he was a perfect gentleman and though ambitious in his own line, he never tried to grow rich by questionable means. He was friendly and hospitable to the rich and the poor alike and never exploited the weakness of others. He had varied experience of the world but his temper was not soured or embittered by ingratitude or malignity. He was always cheerful and ready to do good to others. As the fortunes of his family were built up by the industry of learned men, he had a great respect for them, and whenever educationists wanted his financial help, it was readily given. When we requested him to give parties to large conferences and conventions in the University, he never refused nor did he obstinately draw the line beyond which he would not go. He was a man of understanding and knew how to do the right thing at the right time. He had in a large degree what the French call *savoir faire*. There was something of the heroic in him; difficulties only spurred his ambition, and his innate sense of exquisiteness never allowed him to sacrifice quality to quantity even under the stress of a keen competition. That a man like him

should die in the prime of life and the plenitude of his powers is nothing short of a national calamity. The Greeks uttered a fine truth when they said that those whom the gods love die young. Truly, we shall never cease to mourn his loss, but the spirit and energy which he showed in all his actions and the moral rectitude which lay behind them will always be a sustaining influence with us. A noble life does not wholly perish and Patal Baboo has indeed gone to join the Choir Invisible of the Immortal Dead who live again. The memory of his deeds will remain. His example will be before us to inculcate habits of industry and devotion to duty. A successful man, with high moral ideals, is a national asset and society has been left the poorer by his premature death. But what can we do? All that wealth and beauty ever gave awaits alike the inevitable hour. Suddenly, in the midst of our endeavours for private or public uplift, in the midst of our pet schemes, when we are making castles in the air, comes the blind fury with the abhorréd shears and slits the thin-spun life. That even the good, the true and the just should be blown about the desert dust is a painful thought, and that is why the poet who lamented the death of his friend sang:—

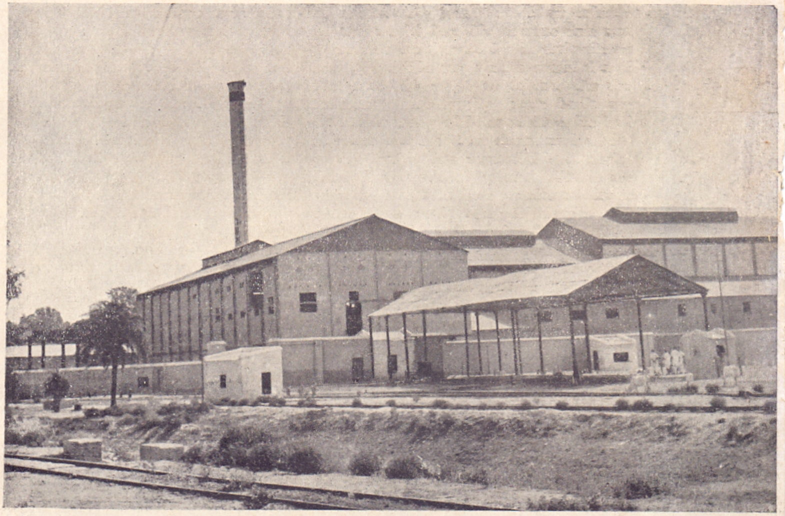
O life as futile, then, as frail!
    O for thy voice to soothe and bless!
What hope of answer, or redress?
    Behind the veil, behind the veil.

But we are not to waste ourselves in sorrow. We must ponder over the qualities of our departed friend and profit by his noble example. Verily to live in minds we leave behind is not to die.





इंडस्ट्रियल रिसर्च हाऊस लिमिटेड का भीतरी दृश्य।



शीतलपुर शुगर वर्क्स लिमिटेड।


Cinelite



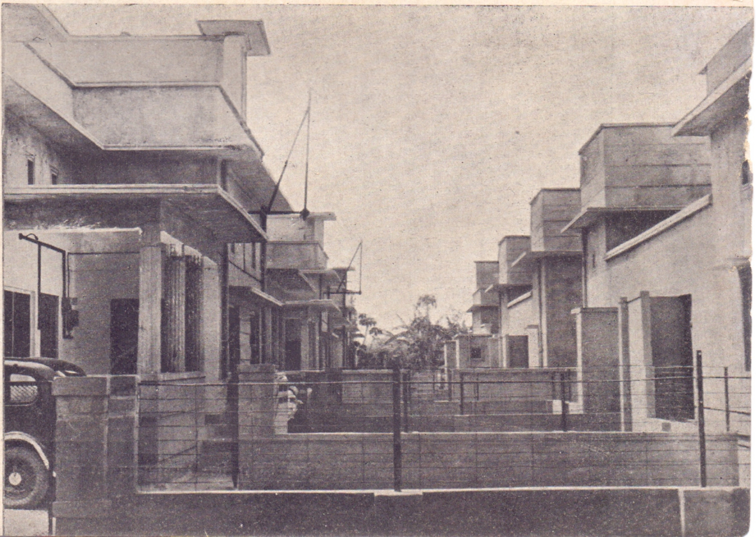


भवन-निर्माण-कला-विशेषज्ञ स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष के निरीक्षण में निर्मित

पार्श्व में : घोष-मार्केट, सिविल लाइन्स, इलाहाबाद का एक दृश्य।

नीचे बाईं ओर : नं० १०, जवाहरलाल नेहरू मार्ग पर अवस्थित निवासगृहों का वाहरी दृश्य।

नीचे दाईं ओर : नं० १०, जवाहरलाल नेहरू मार्ग पर अवस्थित निवासगृहों का भीतरी दृश्य।





स्वर्गीय श्री हरिकेशव घोष की भवन-निर्माण-कला का प्रतीक 'बटलर मार्केट'।



साइंटिफिक इंस्ट्रूमेण्ट कंपनी लि०, इलाहाबाद का एक दृश्य।

HARI KESHAB AND THE SITALPUR SUGAR WORKS, LTD.

H. C. Mitra, B.L., Advocate, President, Chapra Bar Association,
Chairman, Board of Directors, S. S. W., Ltd.

About a quarter of a century ago, when Government by legislation, gave an impetus to Sugar Industry, I, and some friends in Chapra decided to embrace the opportunity. While we were discussing the preliminaries, we learnt that the late lamented Hari Keshab Ghosh, who was the Managing Director of the Indian Press, a flourishing concern, was also thinking on the same lines. I, therefore, sent my son-in-law, the late lamented Troylokeya Nath Dutta to contact Shri Hari Keshab and his brothers at Allahabad. Troylokeya, returned and told me that Hari Keshab will soon be coming to Chapra to discuss the plan with us. A few days later, Hari Keshab came to Chapra, and there was a meeting at my house. The meeting was attended by, amongst others, Dr. Meghnad Saha, F.R.S., the Scientist of World repute, and Shri Bhupendra Nath Biswas, a businessman of Calcutta who, from a clerk at Rs. 45/- has risen to be a multi-millionaire. I was impressed when I saw Hari Keshab for the first time. His fine presence, his charming manners, his quick grasp impressed every one in the meeting. We decided to start a Sugar Factory at Sitalpore (in the district of Saran) and the factory started in the year 1934 and Hari Keshab, and Troylokeya Nath became the first Managing Directors. It is difficult to recount the various qualities of Hari Keshab's head and heart.

Courage was his outstanding character. He was utterly fearless in the service of what he considered to be his duty. His proud courage, his undaunted self-reliance, and natural cheerfulness, conquered the hearts of those whom he came in contact with.

His quick grasp of things was deserving of praise. Either at a Directors' or a general meeting when the Balance-sheet was on the anvil, he would, by facts and figures and close and lucid reasoning, satisfy even the most exacting of critics. Although, as an Advocate practising at the Bar for the last 56 years, I have daily to make speeches in court, I cannot carry on conversation in fluent English as he did. He could work for hours at a stretch beginning from early morning. He was the envy of all of us. Although he was a strict disciplinarian, and employees feared him most, he had always a soft corner in his heart for them and always tried his level best for their welfare and to improve their future prospects.

He was a hero in charity. His left hand did not know what his right hand gave. A poor man with a marriageable daughter, a school boy unable to pay his schooling, a college student who could not afford to purchase books, a penniless orphan and an old religious mendicant, a bankrupt association struggling to regain its feet, were the recipients of his silent charity. He never turned imploring famine from the gate.

He had such a lovable nature that children were attracted to him and he loved to associate with them. I still recall with pleasure that on many an occasion, casting aside the mantle of worries and care, he would play marble with my grand children, and with the simplicity of a child, he would quarrel with them, if they charged him with having played foul.

When the Sitalpore Sugar Factory started, none of us knew how to work a Sugar Factory. It is well known

that human pride is always skilful to invent most serious names to hide ignorance, but it was not so, with our departed Hari Keshab. He knew that experience is achieved by industry and perfected by the swift course of time. He was always willing to light his candle, at the lamp of another. He therefore went to various Sugar Factories both in Bihar and U. P. to gain experience. And it is needless to say that the experience so gathered stood him in good stead in later life.

His father, the late Shri Chintamani Ghosh started the Indian Press, Ltd., and by dint of hard labour he amassed enormous fortune. Although Hari Keshab was born with a silver spoon in his mouth, he believed in the wisdom of the saying "Lowliness is young ambitious ladder." He retained unruffled temper in the midst of strain and stress. He was a pink of politeness.

In Labour troubles which occurred at times in the Factory, his persuasive eloquence and sympathetic attitude disarmed all opposition and poured oil on troubled waters. I remember one occasion when some unruly workers were bent on committing mischief on some false pretext, he called an emergent meeting of the workers in the Mill compound, and spoke in chaste Hindi to meet the mischievous propaganda, and quashed the malicious views of the ring leaders by sound logic and cogent reasoning. And the result was, that the workers disowned the ring leaders, and factory work proceeded smoothly thereafter.

He was an indefatigable worker. We protested against his hard work, but salt to labour never lost its savour with him, and he would not listen. Nature never forgives those who ignore her laws, but will have her toll. Hari Keshab was attacked with a violent form of Diabetes at a very early age. Insulin treatment kept him going on, but we knew that a treacherous malady had taken possession of his body and it was slowly, but surely, sapping his vitality. When sometimes, my son-in-law expostulated with him for recklessly wrecking his health, Hari Keshab would, with a smiling face repeat the charming lines from The Rubaiyat of Omar Khayyam (the great Persian poet) translated by Edward Fitzerald:

"The moving finger writes, and having writ,
Moves on; nor shall thy Piety nor Wit
Shall lure it back to conceal half a Line;
Nor all thy tears wash out a word of it."

In this hour of mourning, let us console ourselves by recalling the classic lines of the poet:

"Dear is the spot where the blessed sleep;
And sweet the strain which angels pour;
Oh, why should we in anguish weep?
They are not lost, but gone before."

Hari Keshab is no more in this world. I have lost in him a dear and near relation, and the factory has lost its philosopher, guide and friend.

AN APPRECIATION

Hon'ble Mr. Justice B. Malik, C.J., Allahabad High Court, Allahabad.

On the 18th of March, 1953, while at Lucknow I was shocked to get the sad news of the untimely death of my friend, Shri Hari Keshab Ghosh. He had been ailing for some time, but with his sturdy optimism he always made us believe that he was getting better and would be able to get through.

It is a pity that a man of his talent and business capacity should die so young. There was no good cause in Allahabad of which he was not the moving spirit. Every charitable and educational institution owes a deep debt of gratitude to him. He helped all such causes with money, labour, advice and in every other way possible. He had a great talent for architecture, though he had never received training in that line, and was always ready with plans and devices; unmindful of his health he would often go out in the hot sun to see how the constructions, which he had either designed or altered, were making progress. The Colonelgunj Intermediate College, the Anglo-Bengali Intermediate College, the Jagat Taran Girls' Intermediate College and the Indian Girls' Higher Secondary School were all helped by him materially and substantially.

No deserving institution, no man or woman in distress ever went to the late Shri Hari Keshab Ghosh in vain. His sympathy was unbounded and it always took a practical shape.

As a businessman there are few in Allahabad who have his business capacity, acumen and foresight. He was the guiding spirit behind the Indian Press, the Sitalpore Sugar Mills and many other industrial and business concerns.

He was a good friend, a good husband, a good brother and a good employer, with the result that to-day we are all mourning his loss.

All his friends feel sorry that he should have been cut off from life so early and when his children were just growing up. In his death Allahabad has lost a prominent citizen and a great industrialist whose help and advice at this time, when there is so much activity all round, would have been invaluable.



PATAL BABU—A MAN OF VERSATILE INTEREST

Hon'ble Mr. Justice Harish Chandra, I.C.S., Allahabad High Court, Allahabad.

Patal Babu, as the late Shri H. K. Ghosh was known to his friends and relations, was my neighbour and I came into very close contact with him during the last eleven years or more. He was the Vice-President of the George Town Association during last ten years of his life and I, as the President of the Association, was intimately associated with him in all its activities. He showed the keenest interest in the welfare of youngmen and children residing in George Town and always tried to help them by providing them facilities for taking part in games and other activities. Under his guidance and encouragement the George Town Association has been giving a good account of itself in Cricket and Football in Allahabad.

He was a practical man and liked to act rather than talk. He was a great industrialist and businessman and the Indian Press which was founded by his late father of revered memory, Shri Chintamani Ghosh, made considerable progress during his time and is now one of the most up-to-date Presses and Publishing Houses in the Country.

He was successful in solving to a great extent the housing problem in Allahabad and flats and shops on Sardar Patel Marg and flats in Tagore Town will remain a living memory of his great achievement in that direction.

He was kind-hearted and always ready to help his friends. He was a religious man and evinced great interest in the performance of the annual Durga and Kali Poojas in George Town.

More than a year ago he suffered greatly in health. But our prayers were answered and after a few months he was quite fit again. I met him for the last time at a meeting of the George Town Association and congratulated him on his good health, little knowing that only a few days later he was to receive a fresh shock from which he never recovered.



THE LATE H. K. GHOSH OF INDIAN PRESS, LTD., ALLAHABAD

Radha Kumud Mukerji, M.P., M.A., Ph.D., D.Litt.

I felt very much shocked and upset by the news of the sad and sudden death of Shri H. K. Ghosh (whom his friends called by the endearing name of 'Patal Babu') whom I had the privilege to count as one of my intimate friends with whom it was always a matter of pleasure and profit to carry on discussions on some of the burning problems of the country, economic, and political. I always found that he could bring to bear upon the discussion of these problems an original mind and penetrating insight which were really rare among the more well-known public leaders of the country. The most striking trait of his character was his scrupulous integrity coupled with a decisive mind and sound business instinct which made him the creator of so many contributions to the industrial life of the country. His mission in life was, of course, very much helped by the rich legacy that was left to him and his brothers by their great father of respected memory, the Late Shri Chintamani Ghosh, who laid the beginnings of a concern which has attained to such remarkable proportions under Patal Babu's supreme direction, the Indian Press of Allahabad which, with its several branches and agencies and specially the well-equipped branch at Calcutta, counts as one of the largest and most up-to-date Presses of India. But Patal Babu's industrial genius found a wider scope beyond the limits of the press and the inheritance with which he started in life. Very early he was possessed with a zeal for promoting a concern by which he could add to the wealth of the country. By his unerring industrial vision, he thought that the best way to contribute to the industrial life and wealth of the country was to organise the sugar industry which was then in its infancy. As a pioneer in a new and difficult field of industrial enterprise, he organised what is now well-known as 'The Sitalpur Sugar Works Ltd.', which, inspite of its early vicissitudes, now counts as one of the most prosperous Sugar Mills of the country. The Indian Press he has transformed from a printing to a great publishing house to which authors can look as their best friend. Much of Patal Babu's industrial education and experience came from his travels in the West from which, with his discerning and discriminating mind, he learnt lessons and practical points which were applicable to the different conditions of Indian industrial environment. A strong point of his industrial genius was to make the right selection of the particular plant and machinery which could supply the missing links in the industrial equipment of the concerns for which he was responsible. Indian industry has indeed suffered a grievous loss and a great blow by the premature passing away of such a trained mind and character so rare in the country.

Within the inner circle of his numerous relations and friends, his disappearance creates a void which cannot be easily filled. His own native town of Allahabad will for ever remain indebted to the marked contributions he made to its social and cultural life. His many private charities and benefactions are not fully known even to the inner circle of his friends because he was not given to publicity which he hated like poison.

MY FRIEND—PATAL BABU

M. K. Ghosh, M.A., B.Com., M.Inst. T., Head of Commerce Department, Allahabad University.

In the sad death of the late Shri Hari Keshab Ghosh, popularly and affectionately called Patal Babu, Allahabad has lost a respectable and foremost citizen, Uttar Pradesh an enterprising and progressive industrialist and the business world a cool and level-headed businessman. The loss caused by his death will be difficult to fill, at least for some time to come.

I came to Allahabad thirty years ago and one of the few persons with whom I came into contact with, was Patal Babu. I was very much impressed even at that time by his genial temperament, amiable nature, helpful attitude and courtesy and gentlemanliness, and our acquaintance soon ripened into close friendship. So highly did I value this friendship that latterly I passed some time with him almost every day. During this long span of thirty years, our relations were not clouded even by a single difference of opinion, which is a very remarkable fact. I found Patal Babu a very good friend, and his death is a very great personal loss to me.

Not only his friends but others were equally attracted to him because of his winning personality and charming manners. He was very kind and generous; and he gave a large number of charities, and this without attracting much attention. Patal Babu could look at a business dispute disapassionately and in a detached manner; and his decision was always just and equitable, even if it meant some loss to him. He often went a long way in accommodating his business associates and customers; and things of minor details were always settled to the advantage of others. This made him very popular with all sections of industrialists and businessmen of Allahabad and Uttar Pradesh and his judgment and opinions were highly valued by them. He also possessed rare business qualities. He had a very alert brain and he was quick to grasp and decide even complicated affairs.

It was because of such rare qualities that he became the controller of a large number of business concerns many of which owed their development and success entirely due to his efforts and brain. He tried his hands on different lines of business, and achieved success in each one of them. The Indian Press, Ltd., though not founded by him, reached great heights under his fostering care and unceasing efforts. The press section of this establishment has the reputation of being among the best and most well-equipped in this State, and has always maintained a high standard of performance. He also controlled a sugar manufacturing Company. For some years past, he took steps to manufacture confectionery and the products thus manufactured have enjoyed a high quality. He was a director of a concern producing scientific instruments as also of a cotton textile company. He had a finger in so many pies that one would normally expect him to be a dormant figure in some of them. But wherever Patal Babu was present, he always became the most prominent figure by dint of his abilities, seriousness of purpose and sincerity of efforts.

Patal Babu was a beloved and much-respected public figure in Allahabad. He was the prime mover in organizing the hitherto unorganized publishing trade of Allahabad and the Uttar

Pradesh; and the services rendered by him to this trade will, I am sure, always be gratefully acknowledged by it. He also had a very keen desire to contribute to the development and progress of Hindi which one, in his opinion, had the right to be the *lingua franca* of the country. *Saraswati,* Hindi monthly magazine, which occupies a front-rank position in the Hindi world and has contributed much to the growth of Hindi, is a publication of the Indian Press, Ltd. This establishment also started the publication of full autobiographies, novels, etc., of well-known Indian and foreign authors in eight-annas-series on the model of the Penguin and Pelican books at the instance of Patal Babu. Never before was such a bold enterprise launched in the Hindi world. He also started several Hindi magazines for children, for ladies, for villagers and for general readers. He published a large number of Hindi books of all classes and categories. He even went to the extent of donating a Chintamani Gold Medal to the Allahabad University for winning distinction in Hindi. Though he did not make a parade of his love for the Hindi language, the solid work done by him for its progress and development will always be treasured in the memory of all Hindi lovers.

Shri Ghosh was so very busy in his business undertakings that one might expect him to have little knowledge of current affairs. But this was not so. I was amazed to find him so well informed in current economic problems and in political and international affairs. The information obtained by reading and discussions was quickly absorbed and digested by his receptive brain and the keenness of his intellect gave him a certain point of view on all important matters.

Such was the man whom we have lost. And this loss is so great that we do not know how and by what manner will it be filled up. But let us hope that his noble example will serve as footprints on the sands of time for his younger colleagues at present engaged in business and industry, and in this way the city of Allahabad and the state will continue to benefit by his death as they did by his active and purposeful life.

A TRIBUTE TO THE MEMORY OF HARI KESHAB GHOSH

B. N. Das Gupta, B.A., A.S.A.A Member,
Tariff Commission, Government of India.

It was sometimes in September 1924 after my joining service at Lucknow that I went to Allahabad for the first time in the company of Late Shri Beni Madhav Mukerjee of Government Technical School, Lucknow. The purpose of my visit was to see the Scientific Instrument Co. Ltd., of which he was a director. He took me in the evening to Late Shri Chintamani Ghosh, founder of the Indian Press. I was introduced to the venerable old gentleman—the maker of the Indian Press—in his office room at his residence where Shri Hari Keshab Ghosh was discussing business matters with his father. As a young man starting on Accountancy profession, I was interested in taking part in these discussions, with (Late) Chintamani Ghosh, Beni Madhav Mukerjee, and Hari Keshab Ghosh. Anybody who remembers Shri Mukerjee will also remember what a great interest he used to take in discussing business affairs. At that time both Shri Mukerjee and Shri H. K. Ghosh were interested in expanding the Scientific Instrument Co. Ltd. of which Late Shri J. C. Chatterjee was the General Manager. Shri Ghosh was always eager to do everything to increase business activity in our young men. This was the common ground for Shri Hari Keshab Ghosh and myself and since then I became a friend of Hari Keshab Ghosh and have been in close touch with most of his activities. During this long association with him I formed a very high opinion about his ability, honesty and sense of duty. It was this sense of duty as General Manager or Managing Director that made him work so hard. Even when he got warnings about his health he overlooked them. The devotion to duty of many a managing agent in our country is commendable and I wish many more of us could realise a fraction of what these managing agents have to do in a country like India. Shri Ghosh was one of such hardworking managing agents and this overwork is wholly responsible for his premature end. It is no wonder that such a devotion to work would give him an insight into the business affairs and that was evident from his insistence on having on his table at the end of every day an abstract of the daily transactions. Such a practice can only be found in advanced business houses where accounting has been systematised. His acute observations on the annual accounts made me question him one day as to how he acquired this habit of emphasising elaborate account-keeping. He replied, "My father used to say that every man entering business must have the first training in accountancy in its fundamentals, before taking up business career." I felt that the grand old man was not only a pioneer in organisation but also a real disciplinarian in business. There is no doubt that Accountancy disciplines the brain best and a businessman needs it most. Hari Keshab Ghosh was as keen on accounting as he was in organising. His interest in business was to contribute his quota towards industrialising India as far as he could do but his main interest was in creating new lines of work, new designs, new varieties, new methods of office organisation and even of new accounting presentations. Often I remarked, "You dabble too much in too many things," to which he gave me once this reply, "In my view, man's only function is to increase his brain-

capacity to the utmost—it may be in any direction." He loved to think, loved to create, loved to organise and loved to expand activities in business—all these for the sake of pleasure and for an intense love of it—not for money so much. He was one of the most generous-hearted men I have come across whose purse was open for all good causes when he was properly approached. He was wide awake to the social problems of the country and his approach to them was also very rational. He used to receive all requests for donations and charities with sympathy—this indicated a large heart. By his death we have lost a perfect gentleman, honest and acute businessman, generous friend and a man with immense potentialities.

SHRI H. K. GHOSH—GENERAL MANAGER OF THE INDIAN PRESS, LTD.

P. C. Addy, M.A., Secretary, Bible Society of India, Pakistan and Ceylon, Allahabad.

I wish to pay my humble tribute to Shri Hari Keshab Ghosh. He was known to me chiefly in his function of General Manager of the Indian Press and I first met him when I came to Allahabad in March 1945, when the war was still on. As the new Secretary of the N. I. Auxiliary of the Bible Society, I had to face a whole range of problems connected with the production of Hindi Scriptures. Shortage of materials, high prices and continually rising costs, all kinds of "controls", above all, unaccountable delays, made life one long nightmare, especially as my "output" was never able to cope with the demand.

Therefore I shall not easily forget the kindness and generosity of Shri H. K. Ghosh, who from the first gave me of his time and went out of his way to assist me in a variety of ways. It made an enormous difference to us at such a time to be able to draw upon his expert knowledge of book-production and to have the resources of one of the best equipped Presses in the U. P. at our disposal. And all through these eight years our gratitude to him has deepened.

The Indian Press had of course been doing some of our printing since the early 1920's; but for Shri H. K. Ghosh to have undertaken and carried through the major part of our heavy printing programme for the last eight years with a minimum of dislocation inspite of the difficulties imposed by unstable conditions, betokened a friendliness that went far beyond mere business interests.

And this was further demonstrated by his willingness to execute jobs like the printing of the Chhattisgarhi Gospels, of Gondhi St. John and Marathi Scriptures which were outside the normal work handled by even the best presses in North India.

These were further occasions for us to be grateful to him. Other friends would perhaps dwell on aspects of his life and work that struck them most—his success as a businessman, his charitable disposition and his wide cultural interests.

Certainly the great business he built up, amply testifies to his enterprise, his industry and sound financial ability. Likewise his reputation throughout North India and his popularity rested on the free and generous use he made of his gifts in the service of his country and his fellowmen.

For me it was a privilege to have known him, and to have felt the impact of his rich personality, instinct with charm, sincerity and a quiet confidence that had its foundations in a truly religious sense of the value of life. It is difficult for us to believe that he has passed away from our midst, and his loss will be sorely felt in many quarters.

In the Book of Ecclesiasticus there is a passage that wisely exhorts us to recollect our indebtedness to great men "who were honoured in their generation and were the glory of their times."

Shri Hari Keshab Ghosh has joined that illustrious company.

To us who mourn his loss today, his memory and his example cannot fail to be a source of unfailing inspiration.

THE LATE SHRI H. K. GHOSH AS I KNEW HIM

R. P. Kichlu, M.A., L.T., Secretary, Public Service Commission, U. P., Allahabad.

I first met Shri H. K. Ghosh at a wedding party. He had been abroad in 1935 and as is usual with a person returning from the Continent or the United States of America he was regaling the guests with what he had seen in far off countries in his visits to various centres of industry or learning, and was listened to with rapt attention. Questions were asked and answered with an astonishing clarity of vision about what he had seen years ago. Shri Ghosh was never confused about his ideas or objectives. He understood the question the moment it was uttered and was ready with his view-point with a wealth of argument which made everybody feel that the man had a real grasp of the problem—no matter whether the problem was connected with the industries with which he was concerned or with life.

As I have said above, he went abroad in 1935 and brought with him the first Rotary Book Printing Machine for the Indian Press at Allahabad and a Photogravure Plant for the Calcutta Branch. Since that time both these Presses have seen immense improvement and expansion. The Indian Press as it is today is the creation of his fertile mind and indefatigable energy. He had the rare gift of winning the attention and admiration of those with whom he came into contact and I do not remember a single occasion when I returned from his company anything but pleased and edified. There were so many demands on his time and so many calls from all sorts and conditions of people for assistance, but Shri Ghosh was never perturbed. He would extend his help if it could be possible, but if he could not accede to the visitors' request he would never use harsh language in refusing it but make the other party feel that his objections were really worthy of consideration.

I have never come across a more conscientious, honest, human, broad-minded and good humoured Prince of Industry than our late lamented friend Shri H. K. Ghosh. We mourn his death because Allahabad and, for the matter of that, the Uttar Pradesh and the Indian Union, have suffered an irreparable loss in his death. He was only 54 and if the gods had willed otherwise he could have lived for yet many more years of useful life, but, alas! 'those whom the gods love die young' and it appears that he has been snatched away from this world!

He was a great and sincere friend. He had survived two or three very severe attacks before and whenever I saw him after those attacks he would always inquire about me and about the Public Service Commission, about my children and even about my old car little minding his own serious illness. I am sure his many friends and admirers at Allahabad and elsewhere must be having the same feeling today when he is no more. To them as to me, it is a great personal loss. I always counted on his help and whenever I found myself in some difficulty and needed advice I always found him a most willing and helpful guide.

Shri Ghosh was a great lover of Hindi, Sanskrit and Bengali. I hope the Press will continue the good work in that direction as indefatigably as ever. The Indian Press is our great treasure, nay our national trust and that trust should never be allowed to go to decay for any reason.

It is my earnest prayer that his younger brothers, particularly Shri H. P. Ghosh, whom he has trained so well in the Printing Industry and in so many other fields of work, will shoulder the responsibility now devolved upon them like men worthy of their steel and his sons, who are still young, will learn to tread in the foot-steps of their illustrious father.

May Shri Ghosh's example continue to inspire his countrymen for ever and ever more.

PATAL BABU—THE MAN

A. K. Sanyal, M.Sc., L.T., Retd.Secy., Board of High School and Intermediate Education, U. P., Allahabad.

I met Shri Hari Keshab Ghosh better known as *Patal Babu* for the first time in 1918 when both of us were students in the Muir Central College. His presence could not be missed and he struck me as one who was distinctly above the average. He was a man of versatile nature. He had a natural genius for business. The present position of the Indian Press not only in U. P. but in Northern India is mainly due to his efforts. His continuous work in the cause of Publishers has raised him in the eyes of all concerned. Even his opponents had full confidence in his judgment and accepted his decisions ungrudgingly. His criticisms were always constructive.

He several times came to the rescue of the Education Department when all others had expressed their inability. On several occasions he had to stay throughout the night to get the publications out in a couple of days. It was not possible for the sake of money but because he took special delight in solving difficulties and hard jobs. That showed the man.

He did not confine himself to the activities of the Press alone. He was actively connected with about a dozen concerns—all running successfully. No work was too low or too high for him. In these days of rivalry it is difficult to find another who is not only just but could make others feel that in his hands no injustice could be done. Above all, his genial temperament was a marvel. He helped many institutions directly and indirectly and his latest hobby of house-building gave an inkling of his taste and artistic learnings.

In his death Allahabad has lost not only a public man and a benefactor but one who had a vision of future and who could give shape to his ideas.

Wish of His Almighty can hardly be known. It is perhaps His desire that the good ones should not be kept here for long and it appears that he has been snatched away from our midst so soon because of that.



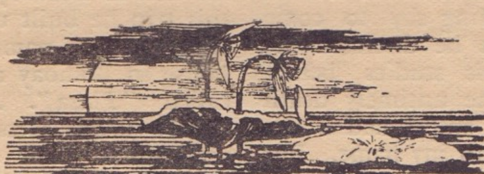
H. K. GHOSH—WORTHY SON OF A WORTHY FATHER

A. K. Ganguli, M.A., General Manager, Scientific Instrument Co. Ltd., Allahabad.

It is indeed a melancholy duty to write something in memory of one with whom one's ties in life had been so close and abiding. Yet there was something so ennobling in his life and character and such a rich fund of charm and humanity about him that it provides an intellectual and moral stimulus to discuss a life so rich and yet so modest as his. Hari Keshab Ghosh was a person of such a heroic and metallic mould, who, born in opulence and plenty, was unspoiled by the wasting fingers of success and wealth. Probably the key-note of his life has to be sought not so much in his vigorous and active habits nor in the adventitious circumstances to which he was born, as in the noble and scintillating example constantly held up before him by his great father, the late Chintamani Ghosh, the founder and creator of that gigantic printing house of Northern India—the Indian Press Ltd., of Allahabad. The son, unlike many similarly born, kept true to the traditions of the sire, and up to the last moment of his life forbade himself to do less than his best for keeping the family flag, so proudly implanted by his patriarchal father, flying in full blaze of glory and success. This indeed speaks a lot about the character and achievement of Hari Keshab; for, it is the common experience in India that a family's tradition of success and glory does not abide down to the next generation and chips of the old block have a tendency to wither away in the hot-house of inherited wealth. Fortunately, Hari Keshab belied this complacent syllogism of life and carried on the duties left to him by his illustrious father with singular efficiency and success. More than this; he not only extended the sphere of the family business vastly in fresh fields and newer avenues but also strengthened its structural and functional basis by a policy of prudent consolidation and expansion going side by side. The magnificent expansion of the Indian Press, the Sitalpur Sugar Works, the Ghosh market etc., bear testimony to his varied activities.

He could have easily rested on the oars of the familyship of success and preferred a life of ease and comfort; but to him it was hardly a life worth living. So he plunged headlong into trade and business, determined to make the best use of the apprenticeship he served under his illustrious father. I have been an admiring but discriminating witness to this period of his early hibernation in business, the inevitable cycle of hopes and frustrations and spells of continued hardwork and sleepless nights. How manfully he fought all this and many things more! And at last honesty and will-to-succeed got the better of all that stood in his way. While success did yield, he did not yield to success and kept himself unspoiled by it throughout. Used to modest living, careless of the glare of publicity, his life was severely divided between his family of which he was a dutiful head, and his vast business interests of which he was a zealous guide and mentor. This perfect mental poise was the governing trait of his character and not a little of his worldly success was due to this happy sense of balance. Such a life has its lesson and offers a stimulating ideal to those who evaluate life by a rigid standard of honesty, character, hardwork, probity and dutifulness. Knowing him as I did at

close quarters, I consider his passing away as a loss not only to those who used to know him but also to those unnamed many to whom a neat life well-lived is at once a moral stimulus and an inspiration.



approv
ıld have
cancelled
do so.
the un-
of Shri
brothers
g:—
His best,
early
to rest.
r ever,

'IN LOVING MEMORY OF SHRI HARI KESHAB GHOSH'

Mm. Dr. P. K. Acharya, I.E.S. (Retd.)

I reached Rambagh station from Banaras late at night on 28th November in 1920 to join the staff of Muir Central College on December 1st, 1920. Late Kumud Bandhu Pal Chaudhuri of Ranaghat gave me an introduction to Shri D. N. Pal, lecturer in Physics at Muir Central College and next-door neighbour of late Chintamani Ghosh, the founder of the now famous Indian Press.

When I met Shri D. N. Pal he spoke in glaring terms about Shri Chintamani Ghosh and actually took me to the Bhisma-like Chintamani Ghosh whom I continued to visit frequently until his death in 1928. During these visits Patal Babu used to look at me from a distance and was feeling shy to come forward, as, later on he disclosed he had discontinued his studies before graduation due to the untimely death of his eldest brother and I had a few frightful degrees against my name. But a sort of natural attraction, soon over-
aloofness and he became more
friendly and even began to
ivate and personal matters

death of his father, Patal
once took up the reins of
ation without any previous
ining. During Shri Chinta-
h's time his sons had to keep
onal expenses within the
eir salary received from the
is was an admirable training
hole family which in Patal
e reached the zenith of its

bu started the expansion of
various other kinds of busi-
oldly overcame what he told
ny capital." He went to
1934 to study at first hand the up-to-date methods and organization of business and purchase new machinery for the Press and I gave him a few introductory letters to friends in Vienna and other cities. The Sitalpore Sugar Works is one of his big adventures and his leading association with it removed fear or "shyness" to buy shares even from the minds of very cautious friends like myself. Another of his well-known adventures is his house-building business. He was neither a trained engineer, nor had even any experience when their palatial residence and the present Press buildings were constructed by his wise father. His only training in this business was his visit to Bombay. On return from this trip he built up the cinema house which at first named after a similar house in Bombay as "Regent" is now called "Plaza". After seeing Patal Babu's success Messrs. Gandhi and Sons remodelled their "Palace" cinema. Several smaller dwelling houses of Bombay pattern were built by him in Tagore Town and are being imitated by several recent buildings. He, boldly remodelled the residential house of the Ghosh family on Malaviya Road. There he added whole apartments for his own and his brothers' families. There is a tiny room in the courtyard closed from three sides, which was used as his personal interview room. It looks like a similar room in *Kaiser's* palace in Berlin wherein famous German Emperors used to finalise big state business. Wherefrom Patal Babu got this idea is not known nor is it known how he carried out his own business in this tiny room. I had the privilege of meeting him there on several occasions.

His building activities have surpassed the earlier landlords of Allahabad.

The Ghosh Market on Albert Road will remain as a memorial to his engineering skill and industry. His laetst construction of rows of buildings in Tagore Town was built with special permission owing to shortage of accommodation since the advent of the World War II. Some thirty middle-size families can live therein in some fifteen houses well partitioned by roads and lanes and all amenities are lavishly provided. This is a great credit to Shri Hari Keshab Ghosh's foresight, sagacity and skill. Last year after his prolonged illness in Calcutta I caught him in the Press office one afternoon and enquired whether he was again tiring himself. He told me that he would attend office only for two hours from 3 to 5 p.m. and I was convinced that he could not get the peace of mind without attending to the all-round prosperity of his own creation.

Apart from business adventure Patal Babu was unique in domestic and social affairs. So many individual families of so many brothers living together in the same house so very peacefully and harmoniously is a sight to see in these days when the modern grown-up and married sons prefer to live independently and separately from parents. Patal Babu's surviving brothers have declared in a published memoir

" Your wisdom and prudence
Were always our guidance,
Our vow we renew,
Your work to continue,
Give us unity, courage and vision
To fulfil your glorious mission."

May this vow be fulfilled!

Patal Babu's sagely guidance was not limited to his brothers and relations. Like his father it was liberally given to whoever sought his advice. Shri D. N. Pal was once bitterly complaining to Shri Chintamani Ghosh in my presence about the high-handed manner of the bridegroom's party with whom Mr. Pal had been negotiating for the marriage of his very pretty youngest daughter. Shri Chintamani Ghosh very quietly told Mr. Pal that " the father of a daughter to be married could never afford to become angry or annoyed with the bridegroom's party without undergoing greater misery." This precious lesson helped me also and Patal Babu effectively consoled me when some mischievous people attempted to disturb the arrangements during my daughter's marriage. While I was constructing the Swastika Mansion in George Town Patal Babu might have been a bitter enemy to me. The plot was auctioned in two parts, one being allotted to me and the other taken by Patal Babu for his father-in-law. Mr. Harper, the then Commissioner rejected the sale by the Municipal Board of Patal Babu's plot and approved of mine. Patal Babu could have got the sale of my plot also cancelled but he did not endeavour to do so.

I feel extremely grieved at the unexpected and untimely death of Shri Hari Keshab Ghosh. With his brothers I mourn his death by repeating:—

" In you God had bestowed all His best,
Though he has called you early
to rest.
Though you have left us for ever,
We shall forget you never."

शोक-संवेदनाएँ और शोक-प्रस्ताव

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, नई दिल्ली—

"…..अब इलाहाबाद पहुँचने पर हरिकेशवजी, जिनसे हिन्दी और हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सम्बन्ध में कभी-कभी सलाह लेता था, देखने को न मिलेंगे। उनकी प्रिय स्मृति ही अब शेष रह गई। ……"

श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय, लखनऊ—

"…..लेखनी स्तब्ध है। हृदय हाहाकार कर रहा है। वह सौम्य मूर्त्ति आँखों से ओझल नहीं होती। काल से कोई वश नहीं।…"

श्रीयुत धर्मवीर, एम० ए०, सम्पादक "हिन्दू", जलंधर—

"…..हमारे साथ श्री घोष का बहुत दिन का सम्बन्ध चला आ रहा था। इसी कारण उनकी स्मृति बहुत समय तक बनी रहेगी। …"

ठाकुर श्रीनाथसिंह, सम्पादक और संचालक 'दीदी', इलाहाबाद—

"…..आज वे नहीं हैं तो उनका महान् व्यक्तित्त्व, उनकी उच्चाशयता, उनकी क्षमाशीलता, उनकी सौजन्यता एक-एक करके मानसपट पर खचित हो हो उठती है। इंडियन प्रेस के एक कर्मचारी के रूप में मैंने बारबार गलतियाँ कीं, अनेक धृष्टताएँ भी कर बैठा; पर पटल बाबू ने सदा क्षमा किया और सदैव अपनी सहायता का हाथ बढ़ाया। उनके जैसा महान् व्यक्ति मुझे जीवन में दूसरा नहीं मिला। वे अपनी संस्था के रूप में—जिसके निर्माण में उन्होंने अपनी बलि की—अमर हैं तथापि उनके निधन पर शोक उमड़ता ही है।"

प्रिंसपल केदारनाथ गुप्त, अग्रवाल विद्यालय इंटर कालेज, प्रयाग—

"…..श्री घोष एक कुशल व्यापारी और शिष्ट सज्जन थे। उनका व्यक्तित्व इतना ऊँचा था कि लोग पहली भेंट में ही उनकी ओर आकृष्ट हो जाते थे। …."

श्रीयुत रामबहोरी शुक्ल, प्रधानाचार्य, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, कानपुर—

"…..पटल बाबू की सौम्य और मुस्कराती हुई मुद्रा आँखों के सामने नाच रही है। खेद है कि अब वह देखने को न मिलेगी। उनसे परिचित कोई भी व्यक्ति उन्हें भूल नहीं सकता।"

अवध पब्लिशिङ्ग हाऊस, लखनऊ—

"….पटल बाबू के निधन से मुद्रण-व्यवसायी परिवार की एक अमूल्य निधि लुट गई तथा हम लोगों के बीच से उनका उठ जाना एक ऐसी क्षति है जिसकी पूर्त्ति असम्भव है। मुद्रण-प्रकाशन-क्षेत्र में उनके कृत्य और सहयोग सदा अमर रहेंगे।….."

बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा—

"….वे एक सफल व्यापारी और सहयोगी थे। उनको खोकर हमने अपना एक स्तम्भ खो दिया है।….."

माया प्रेस, प्रयाग—

"माया प्रेस, इलाहाबाद के समस्त कर्मचारियों की यह सभा इंडियन प्रेस, लि० के संचालक श्री हरिकेशव घोष की आकस्मिक और असामयिक मृत्यु पर अपना हार्दिक शोक प्रकट करती है। श्री घोष एक सफल उद्योगी पुरुष और हिन्दी-प्रेमी थे। अपने इंडियन प्रेस द्वारा

उन्होंने मुद्रण कला का एक ऊँचा आदर्श हिन्दी जगत् के सामने रक्खा और 'सरस्वती' तथा उच्च कोटि का साहित्यिक और शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित कर हिन्दी-साहित्य की अभि-वृद्धि में प्रशंसनीय योग दिया। श्री घोष की मृत्यु इसलिए हिन्दी-संसार की एक बड़ी क्षति है।....."

इंडियन प्रेस यूनियन, इलाहाबाद—

"इंडियन प्रेस के समस्त कर्मचारियों ने आज १८-३-५३ को भरे हृदयों से यह प्रस्ताव स्वीकार किया—जनरल मैनेजर पटल बाबू के निधन पर प्रेस तथा रिसर्च हाऊस के समस्त कर्मचारी यूनियन के तत्त्वावधान में शोकसभा करके दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित करते हैं।...."

इंडियन प्रेस, बनारस —

"आज १८-३-५३ को इंडियन प्रेस, लि०, बनारस ब्रांच के कार्यकर्त्ताओं व प्रेस-मजदूरों की ओर से एक शोक-सभा की गई। सभी उपस्थित कर्मचारियों ने इस दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की।...."

मूलचन्द एंड ब्रदर्स, फैजाबाद—

".....श्री पटल बाबू हमारे ऊपर विशेष कृपा रखते थे। बुकडिपो के पुराने ग्राहक होने के कारण उन्होंने हमको हर प्रकार से सहायता प्रदान की। उनके निधन से उत्तरप्रदेश के प्रकाशकों एवं पुस्तक-विक्रेताओं की जो क्षति हुई है, वह पूरी नहीं की जा सकती।"

उत्तरप्रदेशीय प्रकाशक संघ, बनारस सिटी—

"पटल बाबू के निधन से प्रकाशक समाज की अपूरणीय क्षति हुई है और इसकी पूर्त्ति संभव नहीं।...."

जार्जटाउन लेडीज क्लब, प्रयाग—

"श्रीयुत एच० के० घोष जो प्रयाग के और विशेषतः जार्जटाउन के एक मान्य नागरिक थे तथा जार्जटाउन एसोसिएशन के कई वर्ष से उपसभापति थे और उसकी सर्वदा सहायता करते रहते थे, उनकी मृत्यु पर जार्जटाउन लेडीज क्लब की सदस्याएँ शोक प्रकट करती हैं।....."

सेंटर आफ कास्मिक एजुकेशन, मालवीय रोड, इलाहाबाद—

"श्री पटल बाबू के देहान्त-समाचार सुनकर हमें अत्यन्त दुःख हुआ है। परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे और शोकाकुल परिवार को धैर्य दे। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः"

ट्रेनिंग कालेज, भूँसी—

"आज की 'पत्रिका' में श्री पटल बाबू के स्वर्गवास के दुखद समाचार पढ़कर कालेज के हम सभी सदस्यों को बहुत बड़ा हार्दिक धक्का लगा है। श्री पटल बाबू के इस निधन पर आप परिजनों को जो असह्य दुख हो रहा है, उसे हम सदस्यगण कैसे भूल सकते हैं।...."

निम्नलिखित सज्जनों के भी संवेदनापूर्ण पत्र प्राप्त हुए—

सेठ फूलचन्द द्वादश श्रेणी, अलीगढ़;

श्रीयुत आर० के० दवे, एलगिन रोड, इलाहाबाद;

श्रीयुत कालिदास कपूर, हरदोई मार्ग, लख-नऊ;

श्रीयुत सत्यनारायण पाण्डेय, एस० डी० कालेज, कानपुर;

श्रीयुत राय कृष्णदास, भारत कला-भवन, बनारस;

श्रीयुत बद्रीप्रसाद शर्मा, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़।

দৈনিক বসুমতি ঃ—
৫ই চৈত্র ১৩৫৯ বৃহস্পতিবার—

"... ... ... ইণ্ডিয়ান প্রেস লিঃএর প্রতিষ্ঠাতা স্বর্গীয় চিন্তামণি ঘোষের দ্বিতীয় পুত্র শ্রীহরিকেশব ঘোষ ১৯৩৫ সালে ইংলণ্ড এবং ইউরোপের নানাদেশ ভ্রমণ করেন এবং সেখানকার উন্নত ধরণের মুদ্রণ-প্রণালী শিক্ষা করিয়া আসেন। ব্যবসায়ী মহলেও তাঁহার প্রতিষ্ঠা বিশেষ উল্লেখযোগ্য। তাঁহার প্রতিষ্ঠিত আরো কয়েকটি ব্যবসায়-প্রতিষ্ঠান যথা—শীতলপুর সুগার ওয়ার্কস, বিহার ইণ্ডাষ্ট্রীয়াল রিসার্চ্চ হাউস, এলাহাবাদ ইত্যাদিতে শত শত লোকের জীবিকার সংস্থান হইতেছে। তাঁহার মৃত্যুতে ব্যবসা-জগতের বিশেষ ক্ষতি হইল।"

যুগান্তর ঃ—
২৫শে মার্চ্চ ১৯৫৩ বুধবার—

"ইণ্ডিয়ান প্রেস লিঃএর প্রতিষ্ঠাতা স্বর্গীয় চিন্তামণি ঘোষের দ্বিতীয় পুত্র হরিকেশব ঘোষ নিজ প্রতিভা ও বুদ্ধিবলে উন্নতির চরম শিখরে আরোহণ করেন। ১৯৩৫ সালে তিনি ইংলণ্ড এবং ইউরোপের নানাদেশ ভ্রমণ করেন এবং সেখানকার উন্নত ধরণের মুদ্রণ-প্রণালী শিক্ষা করিয়া আসেন। ব্যবসায়ী মহলেও তাঁহার প্রতিষ্ঠা সুপরিচিত।"

প্রয়াগ বঙ্গ-সাহিত্য মন্দিরের পরিচালক সমিতির ২৩।৩।৫৩ তারিখের বিশেষ অধিবেশনে গৃহীত প্রস্তাব হইতে—

"... ... ... এলাহাবাদের এমন কোনও প্রতিষ্ঠান—ব্যবসায়ী, অব্যবসায়ী, বাঙ্গালী, অবাঙ্গালী নাই যাহা পটলবাবুর আন্তরিক পৃষ্ঠপোষকতা ও কল্যাণস্পর্শ হইতে বঞ্চিত ছিল। ... ... পটলবাবুর বহুমুখী ব্যবসায়ী প্রতিভা, অসামান্য কর্ম্মশক্তি ও বদান্যতা হারাইয়া প্রয়াগ বাঙ্গালী সমাজ আজ মূক ও পঙ্গু। প্রবাসী বাঙ্গালীর এই ক্ষতি যে কতখানি অপূরণীয় তাহা ভাষায় অপ্রকাশ্য ... ...।"

জগৎ তারণ কলেজের ছাত্রীবৃন্দ ও অধ্যাপিকাগণের দ্বারা প্রস্তাবিত এবং গৃহীত শ্রদ্ধাঞ্জলি—

"... ... ... আমরা সমবেত হইয়া এই প্রস্তাব করি যে শ্রীহরিকেশব ঘোষ মহাশয়ের অকাল মৃত্যুতে, আমরা সকলেই অত্যন্ত মর্ম্মাহত। ভগবানের নিকট আমাদের সম্মিলিত প্রার্থনা যে পরলোকগত আত্মার কল্যাণ ও স্বস্তি হোক। শোকসন্তপ্ত পরিবার-বর্গকে আমরা আমাদের আন্তরিক সহানুভূতি জানাই।"

শ্রীঅমলানন্দ ঘোষ,
ডাইরেক্টার জেনারেল অফ্
আর্কীয়লজী ইন্ ইণ্ডিয়া,
নয়াদিল্লী—

" ... ... তাঁহার সহৃদয়তা ও অধ্যবসায়ের কথা সকলেরই চিরদিন মনে থাকিবে।"

সাহিত্যিক শ্রীযোগেন্দ্রনাথ গুপ্ত,
কলিকাতা—

" .. .. আমার সাহিত্য-জগতের প্রতিষ্ঠার মূলে তিনি তাঁহার উৎসাহ, উদ্যম, অর্থব্যয়, প্রচার ও যত্ন দ্বারা চিরজীবনের জন্য ঋণী করিয়া গিয়াছেন। তাঁহার কীর্ত্তি যে কত দিকে প্রসারিত তাহা যাঁহারা তাঁহাকে জানিতেন তাঁহারাই শতমুখে স্বীকার করিবেন। ... ... দেশ যে কত বড় একজন স্বদেশপ্রেমিক, সাহিত্যানুরাগী মহান্ ব্যক্তিকে হারাইল তাহা ভাবিলে মনে হয়, কত বৎসরই বা বাঁচিলেন, তবু কত কি করিয়া গেলেন। ... ... ।"

শিল্পী শ্রীঅসিতকুমার হালদার, লক্ষ্ণৌ—

" .. .. তিনি শুধু আপনাদের ভাই নন, আমারও ভাই ও পরম হিতৈষী বন্ধু ছিলেন। তাঁর সৌজন্য ও সহায় আমার জীবনে অমূল্য সম্পদ। ... ... ।"

শ্রীদেবেন্দ্রনাথ মিত্র, কলিকাতা—

"... ... ... হরিকেশববাবুর মৃত্যুতে দেশেরও যথেষ্ট ক্ষতি হইল—তাঁহার মত নীরব কর্ম্মী খুবই বিরল।"

শ্রীকমলাকান্ত নাথ, এলাহাবাদ—

"... ... ... তিনি একজন মহান্ কর্ম্মবীর ছিলেন। তাঁর অপূর্ব্ব দেশপ্রীতি স্বর্ণাক্ষরে লিখিত থাকিবে। ... ... ।"

শ্রীশৈলেন্দ্রনাথ দে, জয়পুর—

"... ... ... সে আমাদের স্নেহ করিত। তাহার সোদর-প্রীতি আমি কখনই ভুলিতে পারিব না। ... ... ।"

শ্রীবরেন্দ্রনাথ মিশ্র, বেনারস—

" .. .. আদর্শ পুরুষ পটলবাবুর আকস্মিক মৃত্যু সংবাদে মর্ম্মাহত ও স্তম্ভিত হইয়াছি। ... ... ।"

শ্রীনয়নচন্দ্র মুখোপাধ্যায়
(পণ্ডিত-মশাই)
বাঁকুড়া—

"... ... ... তাই আমার সর্ব্বদাই মনে পড়িতেছে, পটলবাবুর সেই সুমধুর কণ্ঠস্বর, আর আমার উপর তাঁর সশ্রদ্ধ ভালবাসা। আমার বড় দুর্ভাগ্য, জীবনসায়াহ্নে পটলবাবুকে হারাইলাম। এ দুঃখ রাখিবার স্থান আমার নাই। ... ... ।"

PRESS NEWS

'The Amrit Bazar Patrika', Allahabad, dated 24.3.53 wrote:

"........By his premature death Allahabad suffers a grievous loss. If it is better to wear out than to rust out, Shri H. K. Ghosh, familiarly known as Patal Babu, chose the better course. Son of the late Chintamani Ghosh, founder of the Indian Press, he threw himself into his father's business at an early age with all his driving force. By his indefatigable efforts he built up the Indian Press into a huge organisation with branches in several cities and in course of time he came to be associated with numerous other business and industrial concerns. A life lived truly and well, a life devoted entirely to economic regeneration of the country, has come to a premature end...................."

'The Hindustan Standard', Calcutta, dated 20.3.53 wrote:

"In the death of Mr. H. K. Ghosh (of the Indian Press) India has lost a prominent personality in the printing and publishing industry. It was through his inspiration that "Homa" had his first novel written and published in the "Orient". An able businessman, he was a generous-hearted friend and everyone who came in intimate contact with him would feel sad at his death at such an early age."

CONDOLENCE RESOLUTIONS

SITALPUR SUGAR WORKS, CO., LTD., GARAUL, MUZAFFARPUR

"Directors feel great sorrow at the sad and untimely demise of Shri H. K. Ghosh, Managing Director of the Company which took place in Calcutta on 17.3.53 and record their deep appreciation of his unique services rendered to the Company from its very inception. He was not only one of the creators and promoters of this company but was also its master builder. As a Managing Director with uncommon talents and abilities, foresight and intelligence, masterly grasp of details and liberal understanding of others' views, Shri Ghosh gave his best to the Sitalpore Sugar Works, Ltd., for the last 19 years and built it up into its present stature by his fostering care. He was liked by everyone and those who worked under him felt the warmth of his kind heart. His sweet disposition, polished manners and loving personality endeared him to all. By his death an era has ended and a void has been created which will be difficult to fill up. The loss to the Company is irreparable. The Directors present here pay their homage to the departed noble soul and pray that he may rest in peace."

THE SCIENTIFIC INSTRUMENT COMPANY, LIMITED, ALLAHABAD

"The Board of Directors place on record its deep sense of sorrow and loss at the untimely and unexpected demise of Shri H. K. Ghosh, one of its valued Directors. In the late Mr. Ghosh the business community in general and our Company in particular has lost a sagacious guide, a dependable colleague and a wise counsellor whose help and advise were always sought after and whose place is not likely to be filled for a long time to come. The Board offers its sincere and heartfelt condolences to his brothers and other members of the bereaved family.................."

U. P. PUBLISHERS' ASSOCIATION, ALLAHABAD

"Resolved that the U.P. Publishers' Association at its General Meeting held on Tuesday, March 31, 1953, places on record its sense of deep sorrow at the untimely and premature passing away of its President, Shri H. K. Ghosh, popularly known as Patal Babu, Managing Director, Indian Press, Limited.

This Association is an institution of Patal Babu's creation, who was its guiding spirit from its very inception. Under his able guidance this Association grew from a mere Tradesman Union into its present dominating and useful character. His versatile and creative genius, his indefatigable energy and sense of devotion to the cause of Printing and Publishing Industry led to the recognition of the Association by the State of Uttar Pradesh. Even when weighed down with failing health, Patal Babu never spared himself to offer his services to the cause of the Association. His generous nature and selflessness, his charming manner and sincerity of heart, his high sense of public spirit and devotion to whatever cause he undertook will ever be remembered by everyone who came in contact with him. His passing away is not only a great blow to the Indian Press alone, but also his absence will be, deeply felt by the Publishers and Printers of Uttar Pradesh. With his clear head and intelligent grasp of

every situation, he would steer through any crisis either of printing technicality or of paper problem and help the Association to tide over the difficulty......
Further resolved that a suitable memorial be raised in memory of Shri H. K. Ghosh by the construction of a building in his memory."

U. P. PUBLISHERS' ASSOCIATION, ALLAHABAD

"Resolved that this meeting expresses its deep sorrow at the sad and untimely death of Shri H. K. Ghosh, the President of this Association at an early age of 54. He was the Managing Director of the Indian Press, Ltd., the leading Printing Press and Publishers of U. P. His death is greatly felt on account of his noble and extremely kind and generous temperament. He was a true friend and guide of the publishers and left no stone unturned to make the organisation of the publishers a living one. The void caused by his untimely death cannot be easily filled....
Further resolved that a suitable memorial be raised in memory of Shri H. K. Ghosh by the construction of a building in his memory."

INTERNATIONAL CO-FREEMASONARY, ALLAHABAD

"The R. W. M. (Bro. N. N. Mukerji) mentioned the loss sustained by Bro. H. P. Ghosh on the sudden and untimely death of his elder brother Shri H. K. Ghosh at Calcutta on the 17th March 1953, and expressed on behalf of himself as well as that of the members of the Lodge Triveni No. 1005 a deep sense of sorrow and sympathy to Bro. Ghosh and to the other members of the bereaved family. All upstanding a minute's silence was observed."

LUCKNOW BOOKSELLERS' ASSOCIATION, LUCKNOW

"We the Publishers and Booksellers of Lucknow express our heartfelt sorrow on the sad demise of Mr. H. K. Ghosh, Managing Director of Indian Press, Ltd. He was one of the premier business magnates among the publishers and was President of the U. P. Publishers' Association, Allahabad...."

AGRA PUBLISHERS' ASSOCIATION, AGRA

"On behalf of the members of this Association, please accept our heartfelt mournings on the very sad and sudden demise of Shri H. K. Ghosh, whom we all of us miss very badly indeed......"

CALCUTTA PRINTING PRESS-OWNERS' ASSOCIATION, CALCUTTA

"Resolved that this meeting of the Calcutta Printing Press Owners' Association deeply regrets the sad and untimely demise of Shri H. K. Ghosh, better known as Patal Babu amongst his friends and colleagues of the business world, of Messrs. Indian Press, Ltd., in whom the country has lost a great pioneer in the industrial field and specially in whom the printing industry has lost a great benefactor and this Association, a great well-wisher and patron.........."

BANARAS EMPLOYERS' ASSOCIATION, BANARAS

"The members of the Association express deep sense of sorrow at the sad demise of Shri Hari Keshab Ghosh, Managing Director of Messrs. Indian

Press, Ltd., who was famous for his quality of head and heart and was associated with our organisation since the time of its inception through his Branch Office, Banaras........"

———

BIBLE SOCIETY OF INDIA, PAKISTAN & CEYLON, NORTH INDIA AUXILIARY, ALLAHABAD

"The North India Auxiliary Committee at its meeting on Tuesday, March 24th, 1953, expresses its deep sorrow at the sad passing of Shri Hari Keshab Ghosh, a sincere and valued friend of the Bible Society at whose disposal he placed all the resources of the splendidly equipped Indian Press of which he was the Managing Director.

He was responsible from 1920, for the printing of successive editions of the Hindi Scriptures—Bibles, Testaments and Portions, in all of which he achieved and maintained a high standard of book-production.

He will also justly be remembered for his high sense of public spirit and wide range of interests which he coupled with an engaging personality and a warm and generous nature. No one ever turned to him in vain for help and wise counsel. His passing has indeed meant a personal and public loss............................"

———

JHANSI ELECTRIC SUPPLY CO. LTD., JHANSI

"The Board of Directors place on record its deep sense of sorrow and loss at the sad and untimely demise of Shri H. K. Ghosh one of the Trustees of the Debenture holders of the Jhansi Electric Supply Company, Limited. In the late Shri H. K. Ghosh the province in general and the business community in particular have lost a sagacious guide, a dependable friend and a generous gentleman whose place is not likely to be filled up for years to come...."

———

UNITED COMMERCIAL BANK, LTD., CALCUTTA

"The Committee places on record their deep sense of grief at the death of Mr. H. K. Ghosh and appreciation of the valuable services rendered by him as a member of the Local Advisory Committee........"

———

ADARSHA BIMA COMPANY, LIMITED, BANARAS

"The meeting records with deep sorrow the sudden and premature demise of Shri Hari Keshab Ghosh, Chairman of the Company and a prominent business magnate of this State and sends its heartfelt sympathy to the members of the bereaved family and to the Directors of the Company. It also requests the Manager of the local branch to close this office on 20.3.53 as a mark of respect to the memory of the Chairman."

———

THE BHARAT SCOUTS AND GUIDES, UTTAR PRADESH, ALLAHABAD

"We are deeply moved by the premature passing away of Shri H. K. Ghosh, a very popular figure of Allahabad and a great philanthropist. He was a perfect gentleman loved by rich and poor, old and young of all classes alike. Every good cause and useful public activity enjoyed his support and patronage........"

———

BHARAT SCOUTS AND GUIDES, PANJAB (I.)

"........He led the exalted house of "The Indian Press, Ltd." to a position of world fame. His death is a big loss to the Literary world of this country........"

THE NATIONAL ACADEMY OF SCIENCES, INDIA, ALLAHABAD

"The Council of the National Academy of Sciences, India, Allahabad, at its meeting held on March 30, 1953, records its deep sense of sorrow at the sudden and untimely death of Shri H. K. Ghosh, donor of the Academy, Managing Director of the Indian Press, Limited, Allahabad, and one of the printers of the Academy Proceedings, and the loss so caused to the Academy........"

CITY A.-V. INTERMEDIATE COLLEGE, ALLAHABAD

"The staff and the students of the City A.-V. Inter. College, Allahabad express their sense of profound grief at the sad and sudden demise of Shri Hari Keshab Ghosh, the General Manager of the Indian Press, Ltd., Allahabad. He was not only a most successful businessman and a highly respected citizen whose untimely death is a great loss to the country in general and this city in particular. They recall with gratitude the interest taken by him in the welfare of this College...."

COMMERCE ASSOCIATION, C.A.V. INTERMEDIATE COLLEGE, ALLAHABAD

"We the members of the Commerce Association of this college have assembled this afternoon to place on record our deepest sorrow and grievous shock at the sad and sudden demise of Shri H. K. Ghosh, the General Manager of the Indian Press, Ltd., and one of our active well-wishers. He had a very loving personality and was one of the most enlightened and philanthropic business magnates of the Northern India. Since he inaugurated our Association last year, he had been taking keen interest in our day to day progress and had throughout given us active co-operation. In him we have really lost an active sympathiser........"

BENGALI EDUCATIONAL SOCIETY, ALLAHABAD

"This meeting of the Managing Committee of the Bengali Educational Society, Allahabad, places on record its sense of deep sorrow and loss at the premature death of Shri Hari Keshab Ghosh, the General Manager of the Indian Press, Ltd., a great Industrial Magnate and a very old member of the Bengali Educational Society.

Late Hari Keshab Ghosh was a brilliant alumnus of the Anglo-Bengali Intermediate College and was for long very closely associated with it in many ways. He was among the great benefactors of the Bengali Educational Society and was a member of its Managing Committee till the time of his death ...."

ANGLO-BENGALI INTERMEDIATE COLLEGE, ALLAHABAD

"This meeting of the staff of the Anglo-Bengali Intermediate College, Allahabad, places on record its sense of deep sorrow and loss at the premature death of Shri Hari Keshab Ghosh, the General Manager of the Indian Press, Ltd., and a great industrial magnate.

Late Hari Keshab Ghosh was a brilliant alumnus of this College and was for long very closely associated with it in many ways. He was among the great benefactors of this Institution and was a member of its Managing Committee till the time of his death. In his death this Institution loses a true friend and supporter and the country a businessman of rare virtues, whose lead and guidance in the field of industry would undoubtedly have been of inestimable value at this critical hour........His premature demise has left a void in the life of Allahabad which it will be difficult to fill........"

COLONELGANJ INTERMEDIATE COLLEGE, ALLAHABAD

"The Committee places on record its deep sense of sorrow at the sad and untimely death of Shri Hari Keshab Ghosh, a most valuable member of the College Committee. The College has suffered an irreparable loss by his sad demise. It was through his untiring zeal and effort that the new buliding of our College could be erected within a short time......................"

THE ALLAHABAD INDIAN GIRLS' EDUCATIONAL SOCIETY

"The Managing Committee places on record its deep and sincere sense of sorrow at the sad and untimely demise of Shri H. K. Ghosh, a donor and benefactor of this institution and convey its sympathy to the members of the bereaved family................"

WOMENS' COLLEGE, BANARAS HINDU UNIVERSITY, BANARAS

"On behalf of the Silver Jubilee Celebration Fund of the Womens' College, Banaras Hindu University, I may accord you our heartfelt condolence on the sad and sudden demise of Shri H. K. Ghosh........Such generous souls as he, are rare indeed and his untimely removal from this mortal world is a loss to one and all of us........"

SALES TAX OFFICE, ALLAHABAD

"We, the staff of the Sales Tax Office, Allahabad, express our profound sense of grief at the sad demise of Shri H. K. Ghosh, the Managing Director of the Indian Press, Ltd., who was sincerely revered and deeply loved by all for his jovial and accommodative spirit...."

ROTARY CLUB, ALLAHABAD

"Resolved that this Club records its deep sense of sorrow at the sad and untimely death of Shri H. K. Ghosh, Proprietor of the Indian Press, Ltd., and conveys its deep sense of sorrow and heartfelt sympathies to his family in their sad bereavement."

GEORGE TOWN ASSOCIATION, ALLAHABAD

"Resolved that members of the George Town Association place on record their deep sense of loss and grief at the sad demise of Shri Hari Keshab Ghosh who was one of the oldest members of our Association and of

whose membership the Association was justly proud. He was one of the greatest businessman and he had in him the qualities of a gentleman in the fullest sense. His death is a loss to the city of Allahabad and specially to our Association ...."

BANI MANDIR, ALLAHABAD

"Resolved that on the sudden death on 17.3.53 of Shri Hari Keshab Ghosh, popularly known as Patal Babu, who was the General Manager of the Indian Press, Ltd., Allahabad, and was a leader of the Bengali community, the public of Allahabad suffered an irreparable loss........................."

KALI BARI MAINTENANCE SOCIETY, ALLAHABAD

"Resolved that on the sudden death on 17.3.53 of Shri Hari Keshab Ghosh, popularly known as Patal Babu, who was the General Manager of the Indian Press, Ltd., Allahabad, the Business community in general, of which he was a leader and the Bengali community in particular, suffered an irreparable loss. It is through his munificence that the reconstruction of the main Temple of Shri Shri Kali Mata and its adjoining structures in a grand style, which is nearing completion, has been possible. It is highly regrettable that he could not live to see the fulfilment of his noble and philanthropic venture ...."

GHOSH MARKET TRADERS' ASSOCIATION, ALLAHABAD

"Members of Ghosh Market Traders, The Lucky Range, The Hind Market and Civil Lines Shop Keepers and others have met here to mourn the sad loss of Allahabad and particularly the business community of the station, has suffered in the sad death of Shri H. K. Ghosh. In his person were blended together the far-sighted and labouring qualities of a great businessman and the generosity of a humanitarian that he was. All those who came into contact with him in the business or social world were enamoured with his personality........"

HARCOURT BUTLER MARKET, ALLAHABAD

"Resolved that we, the residents of the Harcourt Butler Market, place on record our deep sense of grief and mortification at the sad and very untimely death of Shri Hari Keshab Ghosh (Patal Babu) which event has taken away from Allahabad, a first-rate business magnate, a worthy citizen, and, above all, a gentleman........"

CONDOLENCE LETTERS

Hon'ble Justice B. Malik, C. J.,
Allahabad High Court.

"......It is an irreparable loss not only to members of the family and the Bengali community but it is a loss to the country. He was a great industrialist and had great business acumen."

Hon'ble Justice Harish Chandra,
I.C.S., Allahabad High Court.

"........The idea that he is no more makes me feel desolate. He always treated me with the utmost kindness and consideration. I shall miss him greatly........"

Shri Hemchandra Mittra, B.L., Advocate,
Chapra; Chairman, Board of Directors
Sitalpur Sugar Works Co., Ltd.

"........Hari Keshab was the real founder of the Sitalpore Sugar Works Co., Ltd. His able statesmanship, his sagacity, his ardent love for work inspite of his poor health was responsible for bringing the Mill to its present condition. We have lost an able adviser and there is no one to fill his place........"

Dr. N. R. Sengupta, M.D., Calcutta

"........And what a fine gentleman he was! Your family is an extraordinarily cultured type and he seemed to be endowed with so many lovable qualities that when he passed away, I did not loose a patient–I lost a friend.... and I can only tell you that I acquired a friend only to lose him........"

Dr. Tara Chand, M.A., D.Phil.,
Indian Ambassador to Iran.

"........I am very sorry to hear the sad news of the sudden death of Patal Babu. I had known him for a long time and he was such a good and gentle soul........"

Dr. R. P. Tripathi, D.Sc., Vice-
Chancellor, Saugor University, Saugor,

"........As a businessman, lover of healthy literature–particularly of Hindi –as a gentleman and a friend in need, he was an outstanding personality. In his death Northern Indian Publishers have suffered a loss most difficult to repair........"

Acharya Narendra Deva,
Vice-Chancellor, Banaras Hindu
University, Banaras.

I am extremely sorry to hear about the death of your elder brother Patal Babu. Please accept my sincere condolences on your bereavement. May the departed soul rest in peace.

Dr. I. R. Khan, Ph.D.,
UNRWA Education Division, Beirut,
Lebanon.

"........I fail to find words to express my feelings on the sad and untimely passing away of Patal Babu.... His whole picture and all my association with him and with you passed through my memory. It is a great personal loss to me and to you. He was a gentleman and a great man the like of which do not come into the world so often........."

Shri B. S. Sial, M.Sc., L.T., P.E.S., Deputy Director of Education, Uttar Pradesh, Allahabad.

"........His eternal departure is an irreparable loss not only to his kith and friends but to the country also which loses a business and industrial genius with a realistic, wide and original outlook........"

Shri L. P. Gupta, M.Sc., L.T., Deputy Director of Education, U. P., Allahabad.

"We are very much grieved to have learnt the untimely and sad death of our popular Patal Babu. Please believe me that I am also feeling the untimely separation........"

Shri N. D. Gothi, M.A., L.T., Secretary, Board of High School and Intermediate Education, Uttar Pradesh, Allahabad.

"........He had suave manners, was very popular and widely respected for his high business talents. Truly, he shed lustre on the career he chose. Indeed, the loss is irreparable........"

Shri K. L. Govil, M.A., Registrar, Allahabad University.

"........He was really a jewel and a businessman with rare understanding not only of business problems but of human relationships. Among businessmen of the town, he occupied a most eminent place........"

Dr. Ishwari Prasad, M.A., LL.B., D.Litt., M.L.C., Head of the Department of Politics, University of Allahabad.

"........What a jewel of humanity he was. We shall never see the like of him again. He lived nobly and wherever he went he spread the radiance of his genial and magnanimous personality........"

Dr. N. R. Dhar, D.Sc., F.R.I.C., F.N.I., I.E.S., (Retd.) Head of the Chemistry Department, Allahabad University.

"........He was a very dear friend. When I came to teach Physical and Inorganic Chemistry in the Muir Central College in July 1919, he was carrying on some experiments on the preparation of some scents under Dr. A. P. Sarkar and he used to follow my lectures. Since then we were attached to each other and were very good friends........"

Dr. A. P. Mehrotra, M.Sc., D.Phil., F.N.A.Sc., F.B.S., Botany Department, Allahabad University.

"........He was a gentleman with excellent qualities of head and heart. His loss will be mourned for all times to come........"

Dr. Hari Ram Gupta, M.A., Ph.D., D.Litt., Professor and Head of History Department, Panjab University.

"........He was a skilful administrator and was greatly responsible for the rise and growth of the Indian Press.........."

Shri Bodh Raj Sharma,
University College, Hoshiarpur.

"........Shri H. K. Ghosh by his great organising capacity and by his hard work had made the Indian Press almost the greatest Indian Publishing concern and his sudden passing away is a great loss not only to his family, to his friends, the Press, the Authors, but also to the Educational world in India...."

Shri S. S. Avasthi, M.A.,
Principal, B.N.S.D. College, Kanpur.

"........It has given me the greatest shock of my life to learn of the sudden death of dear Patal Babu. Very few persons know how intimate and kind he was to me. I have lost a sincere friend and an adviser in Patal Babu........"

Rai Bahadur Prof. Sohan Lal,
P.E.S. (Retd.), Ambala Cantt.

"........He was a jewel among men........"

Lala Ghanshyam Dass, P.E.S., Ambala.

"........As a man of great ability, organising capacity and business acumen his name will ever live for clean and honest business........"

Shri Sant Ram, Hoshiarpur.

"........It is also the loss of the Hindi world and the cause of good literature in India. I trust you may find consolation in the magnificence of his work and the place he has made in the hearts of those who ever came in contact with him........"

Shri Kedarnath Bhatt, M.A., LL.B.,
Agra.

"........He had a large heart and the manners of a perfect gentleman that he was. In fact, he was gentleman first and businessman afterwards. Such souls are not born often in this world............"

Shri B. L. Verma, M.A.,
Ramjas College, Delhi.

"I was very sorry to learn from Mr. Malik, the sad news of the untimely death of your dear brother who had spent his whole life in devotion to the noble cause—the cause of education and learning.........."

Shri S. D. Singh, Principal, Govt.
Jubilee Inter. College, Lucknow.

"........It is not only a personal loss of yours, everyone of us, connected with education, feels it likewise......"

Shri B. N. Dougall, B.A., B.T.,
Headmaster, V. M. H. School, Rohtak.

"........Why only the Indian Press, many more would lose in him a man of superb capabilities........"

Shri P. P. Chowdry, Gr. Cap.,
Director of Medical Services (Air Headquarters), New Delhi.

"Shocked to hear about Hari Keshab's death. He was a friend of mine for nearly half a century. I can hardly find words to console you and the rest of the family........"

Shri S. N. Lahiri, Retd. C.M.O., G.I.P. Rly., Bombay.

"........Patal was a very dear friend of mine. His smiling face, his ever-willingness to help his friends and his love and affection, I shall always cherish........"

Shri I. C. Mitra, Allahabad.

"........To this world he never cared for his rest as if he was born for others. To the other world where he has gone now, may his soul rest in peace......"

Shri N. N. Bose, Director, Sitalpur Sugar Works, Ltd., Calcutta.

"........As for me, I cannot adequately give vent to my feelings of sorrow at the loss of a valued friend. An eventful career has been cut short by the cruel hand of destiny. The burden of your grief will somewhat be lessened in that it is shared by a number of his friends and admirers...."

Shri S. N. Guha Ray, Hony. Secy., Calcutta Printing Press Owners' Association, Calcutta.

"......Shri Ghosh was a tower of strength to the entire printing industry not only of the Uttar Pradesh but also of the entire Northern India. He had wonder power of organisation and in him we have lost a great friend...."

Shri K. L. Gupta, formerly Manager, U. C. Bank, Ltd., Allahabad Branch.

"........I very well remember the able guidance I had from Shri H. K. Ghosh during the various meetings of the local Advisory Committee we had in Allahabad and the benefit that I derived from him during the course of various discussions that we had. I can very well imagine the shock that his sad demise has meant to you and time will heal the vacuum that has been created by his departure........"

Shri P. M. Srivastava, Station Master, N. Rly., Allahabad.

"........His noble qualities of head and heart endeared him to all........"

Shri C. R. Mitra, Morningside Drive, New York, 27.

"........His death is so sudden, so untimely. He was not only a very worthy citizen of Allahabad, he was one of the pioneers of Industrial India. He leaves behind a great achievement. He was a master builder who never ceased to build......"

Shri K. D. Kapoor, M.A., Lucknow.

"........Patal Babu was a jewel. If Chintamaniji was the founder of the Indian Press, he was its maker......"

Shri R. L. Srivastava, Jabalpur.

"........He was godly and has now merged in God. He is no more but his name will survive many generations........"

Shri F. C. Mehra, Allahabad.

"......Patal Babu was a great soul and a great man—a man of indefatigable energy, drive and will-power not easily to be met with these days. He

endeared himself by the charm of his personality, any and every one who came into contact with him. He possessed magic qualities which could accomplish hardest and most intricate jobs quickly and efficiently......"

Shri Gauri Shanker Misra,
President, District Board, Gorakhpur.

"........An ideal man, a human friend, a Prince in charity and an all round figure has been lost to this Province. His services in varied fields of human activity have really been unequalled........"

GANGES PRINTING INK FACTORY, LTD., HOWRAH

"........For more than 25 years your brother was known to us....He was always well spoken of, and will be greatly missed by many friends......"

BALMER LAWRIE & CO., LTD., CALCUTTA

" We are extremely sorry to hear of the demise of our friend and patron —your Managing Director, Mr. Hari Keshab Ghosh......the pioneer of your organisation and of the paper trade."

JOHN DICKINSON & CO., LTD., CALCUTTA

"........The sad loss which you have sustained will be felt by a very larger circle of the late Mr. Ghosh's friends and business acquaintances, among whom I felt honoured to include myself........"

SCANFENNIA PAPER CO. (CALCUTTA), LTD., CALCUTTA

"........His business connections with us, though in early state of development, impressed us with his charming personality and discriminating business acumen, which undoubtedly contributed to his success in his career. We have lost in him a sincere well-wisher of ours........."

BHOLANATH PAPER HOUSE, LTD., CALCUTTA.

"........He endeared himself to all by his courteous manners and earned everybody's good-will and unreserved support in building up his glorious success in business and life. During his long association with our parent firm and thereafter with us, he earned our sincerest regard and admiration and we shall cherish his memory with tender care. A great career has come to an end but his achievements will remain as a source of inspiration to those left behind........"

G. C. LAW & CO., CALCUTTA

"........He was conspicuous for his business acumen and foresight and undoubtedly his death is a serious loss to the country at large........"

PRINTERS HOUSE, LTD., NEW DELHI

"........The entire Printing Trade Market was closed in Allahabad when the news were received about the death of Shri H. K. Ghosh in that station. Of course, Mr. H. K. Ghosh is definitely a loss to you personally, but he is very

much a loss to the Printing Trade of which he was one of the leading Printers as also a dealer in the Printing Machines."

———

STANDARD MILLS (ALLD.), LTD., ALLAHABAD

"........Shri H. K. Ghosh was a great industrialist and business magnate of our city and without him Allahabad is poorer today........'

———

NAND KISHORE & BROS., PUBLISHERS & BOOKSELLERS, BANARAS

"........He won the praise of all those who had ever chance of coming in touch with him. We admire him for all what he has been able to do in his life and for what he has left behind him—a great name and a legacy indeed........"

———

CITY BOOK HOUSE, KANPUR

"........He has been snatched away at a time when his services were required most in this world. His large-heartedness, zeal for hard work, and sincerity of purpose are the qualities which are becoming rare in this world. He was a tower of strength to us, the publishers of Uttar Pradesh........"

———

K. B. & C. L. AGARWAL, PUBLISHERS & BOOKSELLERS, ALIGARH

"........In his death indeed our country has lost one of the brightest stars in the galaxy of talents. His service to the cause of the emancipation of Indian journalism cannot be over estimated......"

———

Also received from the following:

Messrs. Ajad Kitab Mahal, Simla.

Messrs. All India Seva Samiti, Allahabad.

Shri A. K. Bose, Banaras.

Shri B. B. Lall, M.Sc., D.Phil., B. R. College, Agra.

Shri B. Ghosh, Central Pedagogical Institute, Allahabad.

Shri B. K. Mukherji, LL.B., Pleader, Dehradun.

Shri B. M. Gupta, D. A. V. College, Kanpur.

Shri B. N. Bhargava, General Paper Trading Co., Allahabad.

Shri B. P. Kacker, Lukerganj, Allahabad.

Shri B. Bose, C/o United Commercial Bank, Ltd., Calcutta.

Shri B. Shankar, Stanley Road, Allahabad.

Shri C. B. Rao, I.C.S., New Delhi.

Shri C. L. Francis, Ariwan Kadu, Nilgiris.

Shri C. N. Hangal, Principal, Queen's College, Banaras.

Shri C. S. Dixit, C/o Indian Globe Insurance Co., Ltd., Kanpur.

Shri D. D. Dwivedi, Khamaria, Mirzapur.

Shri F. G. Pearce, Rishi Valley, Chittoor.

Messrs. G. C. Laha, Ltd., Dharumtalla St., Calcutta.

Shri G. D. Karwal, Allahabad University, Allahabad.

Shri G. Hartman, Graphic Arts Supply, Calcutta.

Shri G. L. Khanna, Vishnupuri, Aligarh.

Shri Hari Har Nath Tandon, St. John's College, Agra.

Shri H. L. Gupta, Principal, Model Academy, Jammu, Kashmir.

Messrs. Hari Singh & Bros., Jullundur City.

Shri J. Lall Agarwal, Durga Kund, Banaras.

Shri J. N. Sanyal, Gorakhpur.

Messrs. J. N. Singh & Co., Ltd., Allahabad.

Shri J. R. Kirti, Ballygunge, Calcutta.

Shri K. C. Mukherji, New Bairana, Allahabad.

Mrs. Kamal J. Narain, M.A., D.T., Allahabad.

Shri K. K. Dutta, M.A., Ph.D., P.R.S., Patna University, Patna.

Shri K. Lall, M.A., LL.B., Krishna Kunj, Allahabad.

Messrs. K. N. Seal & Co., Calcutta.

Shri K. S. Lall, M.A., D.Phil., Mahakoshal Vidyalaya, Jabalpur.

Shri K. P. Chatterji, Pitambarpura, Banaras.

Shri K. P. Dar, Technical Adviser, Hindustan Times, New Delhi.

Shri K. S. Chaudhuri, A. B. Patrika, Lucknow Office, Lucknow.

Shri K. S. Jagtiani, J. B. Advani & Co., Ltd., Calcutta.

Shri M. Auginas, I. B. M. V. and the Sisters, St. Mary's Convent, Allahabad.

Shri M. D. Shastri, M.A., Ph.D. (Oxon.), Banaras.

Shri M. L. Srivastava, Subhasnagar, Allahabad.

Shri M. R. K. Murti, C/o J. B. Advani & Co., Ltd., Bombay.

Shri N. Bhargava, Managing Director, U. I. P. House, Ltd., Lucknow.

Shri N. D. Bajpai, Saugor University, Saugor.

Shri N. K. Bose, C/o Heatly & Gresham Ltd., Calcutta.

Shri N. L. Chatterji, M.A., Ph.D., D.Litt., Lucknow University, Lucknow.

Shri N. L. Khanolkar, Scindia School, Gwalior.

Shri O. N. Sharga, Lucknow.

Shri Om Prakash, M.Com., D.Phil., Allahabad University, Allahabad.

Shri P. Ghosh, Tailor & Fitter, Allahabad.

Shri P. K. Banerji, Executive Engineer, Provn. Divn., Gorakhpur.

Messrs. P. Kripalani & Co., Calcutta.

Shri P. Mookerji, Artist, Allahabad.

Shri P. N. Bhatt, Lucknow.

Messrs. Photographic Stores & Agency Co., Ltd., Calcutta.

Publicity Society of India, Ltd., Calcutta.

PRESSES :—Azad Press, Allahabad.
K. P. Press, Allahabad.
St. Paul's Press Training School, Allahabad.
Tandon Printing Works, Allahabad.

Shri R. C. Gulati, Headmaster, Govt. Normal School, Karnal.

Shri R. D. Taneja, Rainbow Book Co., Delhi.

Shri R. D. Vidyarthi, La Martinier College, Lucknow.

Shri R. N. Dutta, Managing Director, S. S. W., Ltd., Chapra.

Shri R. P. Bhargava, Inspector of Schools, Mandi.

Shri R. P. Kichlu, Secy., Public Service Commission, Uttar Pradesh, Allahabad.

Shri R. R. Pandey, M.A., P.T.S.P., G.D.B., Ram Kutir, Nepal.

Messrs. Sinha Brothers, Patna.

Sitalpur Chini Mazdoor Sangh, Garaul.

Shri Satramdas Dhalamal, Calcutta.